अथ विंशं काण्डम्

अथ षट्त्रिंशः प्रपाठकः

अथर्ववेद के १९वें काण्ड की समाप्ति पर वेद की समाप्ति स्पष्ट झलकती है। प्रभु ने वहाँ कहा कि '**स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्**'=मैंने यह वरदा वेदमाता तुम्हारे सामने प्रस्तुत कर दी है। यह तुम्हें प्रेरणा दे। द्विजों को यह पवित्र करनेवाली हो। '**आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्**' यह तुम्हें आयुष्य आदि सातों रत्नों को प्राप्त कराएगी और '**मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्**' इन सातों रत्नों को मेरे प्रति अर्पण करने पर तुम्हें ब्रह्मलोक की प्राप्ति होगी। इसप्रकार फलश्रुति वेद के अन्त को स्पष्ट कर रही है। स्वयं वेद ही कहता है कि '**यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्। कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह**'=जिस कोश से हमने वेद को निकाला था, अध्ययन की समाप्ति पर इसे उसी में धर देते हैं। वेदज्ञान की शक्ति से हमने इष्ट कर्मों को किया। उस तप के द्वारा सब देव यहाँ मेरा रक्षण करें।

इन शब्दों में वेद की समाप्ति स्पष्ट है। फिर यह २० वाँ काण्ड क्या है? इस प्रश्न का उत्तर इसप्रकार दिया जा सकता है कि जैसे एक पिता विदेश-यात्रा पर जानेवाले सन्तान को बहुत कुछ बातें समझाता है। समझाने में आवश्यक बातों पर फिर बल देता है और अन्त में यही कहता है कि पूरा ध्यान करना—मैंने जो आवश्यक था, समझा ही दिया है। इसका ध्यान करने में ही तुम्हारा भला है। अब युवक चल पड़ता है—कदम आगे बढ़ा देता है। उस समय पिता सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात की ओर एक बार फिर ध्यान करा देता है। इसी प्रकार ऋग्वेद द्वारा प्रकृति का ज्ञान दे दिया गया, यजुर्वेद द्वारा कर्त्तव्यों का उपदेश हो गया, जीव का सारा ज्ञान प्राप्त करा दिया गया। साम से प्रभु की उपासना भी हो गई। 'रोगों व युद्धों के आ जाने पर इन विघ्नों का क्या प्रतिकार करना', यह अथर्व द्वारा बतला दिया गया। अब हम जीवन-यात्रा पर चल ही पड़े तो प्रभु ने चलते-चलते एक बार फिर ध्यान कराया कि 'सोम का रक्षण सर्वमहान् कर्त्तव्य है', इसे न भूल जाना। बस यही बीसवाँ काण्ड है। प्रारम्भ करते हैं—

अथ प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

विश्वामित्र

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयम्**=हम **वृषभं त्वा**=सब सुखों का सेचन करनेवाले आपको **सोमे सुते**=सोम के सम्पादन के निमित्त **हवामहे**=पुकारते हैं। आपका आराधन ही सोम-रक्षण का प्रमुख साधन है। २. **सः**=वे आप **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले **अन्धसः**= इस आध्यातव्य (to be taken care of) सोम का **पाहि**=रक्षण कीजिए। आपकी उपासना करते हुए हम जीवन में वासनाओं का शिकार होने से बचें और सोम का रक्षण कर पाएँ। यह सोमरक्षक पुरुष किसी के प्रति राग-द्वेषवाला नहीं होता—'विश्वामित्र' होता है। यही इस मन्त्र

का ऋषि है।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण करते हुए हम वासनाओं से अनाक्रान्त जीवनवाले और सोम-रक्षण करने के द्वारा विश्वामित्र बनें।

सोम-रक्षण के उद्देश्य से ही यह प्राणसाधना करता हुआ सब इन्द्रियों को निर्दोष बनाता है 'प्राणायामैर्दहेद् दोषान्' निर्दोष इन्द्रियोंवाला यह 'गोतम' कहलाता है—प्रशस्तेन्द्रिय। यह कहता है—

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सुगोपा-तमः (जनः)

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः ॥ २ ॥

१. हे **मरुतः**=प्राणो! आप **हि**=निश्चय से **यस्य क्षये**=जिसके शरीररूप गृह में (क्षि निवासे) **पाथा**=सोम का रक्षण करते हो, वहाँ आप **दिवः**=प्रकाशमय होते हो—उस साधक के जीवन को प्रकाशमय बनाते हो और **विमहसः**=उसे विशिष्ट तेजवाला करते हो। २. **सः**=वह दीप्ति व तेज प्राप्त करनेवाला **जनः**=मनुष्य **सुगोपातमः**=अतिशयेन उत्तम रक्षक कहलाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा हम शरीर में सोम का रक्षण करें। यह साधना सोम-रक्षण द्वारा हमें दीप्ति व तेज प्राप्त कराएगी। हम 'सु-गोपा-तम' कहलाएँगे।

यह दीप्तिवाला तेजस्वी पुरुष विशिष्ट रूपवाला होने से 'विरूप' कहलाता है। यह कहता है कि—

ऋषिः—**विरूपः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

उक्षान्नाय वशान्नाय

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये॥ ३ ॥

१. 'उक्षा'-(उक्ष सेचने)-शब्द वृष्टिजल से सेचन का कारण होने से द्युलोक (सूर्य) का नाम है तथा 'इयं पृथिवी वै वशा पृश्निः' श० १.८.३.१५। इस शतपथ-वाक्य से वशा पृथिवी का नाम है। हम उस **अग्नये**=अग्रणी प्रभु के लिए **स्तोमैः**=स्तुतिसमूहों से **विधेम**=पूजा करें जोकि **वेधसे**=ज्ञानी हैं। सर्वज्ञ होने से पूर्ण सृष्टि का निर्माण करनेवाले हैं। २. उस प्रभु का पूजन करें जो **उक्षान्नाय वशान्नाय**=सूर्य व पृथिवी के द्वारा हमारे लिए विविध अन्नों को उत्पन्न करते हैं और वस्तुतः हमें इन अन्नों के सेवन की ही प्रेरणा प्राप्त कराते हैं। वे प्रभु **सोमपृष्ठाय**=सोमरूप पृष्ठवाले हैं। सोम ही उनका आधार है। वस्तुतः प्रभु-दर्शन का आधार यह सोम ही बनता है। इस सोम के सुरक्षित होने पर हम उस सोम (प्रभु) को प्राप्त कर पाते हैं।

भावार्थ—यदि हम सूर्य द्वारा वृष्टि-जल-सेचन से पृथिवी में उत्पन्न होनेवाले अन्नों का ही सेवन करेंगे तो शरीर में सोम का रक्षण करते हुए प्रभु को प्राप्त करने के अधिकारी होंगे।

सूचना—इस सूक्त के तीन मन्त्रों में सोम-रक्षण के तीन साधनों का संकेत है—(१) प्रभु की उपासना, (२) प्राणायाम (३) पृथिवी से उत्पन्न अन्नों का सेवन (मांस आदि भोजनों को न करना)।

अगले सूक्त का ऋषि 'गृत्समद' है, जोकि गृणाति=प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करता है, इन स्तोत्रों में ही **माद्यति**=आनन्द का अनुभव करता है। यह निरन्तर मेधा की ओर चलनेवाला 'मेधातिथि' कहलाता है। यह कहता है—

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**गृत्समदो मेधातिथिर्वा**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥

मरुतः (प्राणसाधना)

मरुतः पोत्रात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु॥ १॥

१. हे **मरुतः**=प्राणो! **पोत्रात्**=हृदय को पवित्र करने के कर्म के द्वारा **ऋतुना सोमं पिबतु**=ऋतु से सोम का पान करो। समय रहते—युवावस्था में ही सोम के रक्षण का ध्यान होना चाहिए। समय बीत जाने पर ध्यान आया तो उसका वह लाभ न हो सकेगा (प्रथमे वयसि यः शान्तः स शान्त इति कथ्यते। धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते)। २. सोम-रक्षण के लिए आवश्यक है कि हम प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। ये प्राण **सुष्टुभः**=(सु+स्तुभ, to stop) वासनाओं के सम्यक् निरोध द्वारा शरीर में सोम-रक्षण का साधन बनेंगे। **स्वर्कात्** (सु अर्क)=(अर्क=a ray of light; Hymn) उत्तम प्रकाश की किरणों के द्वारा अथवा प्रभु-स्तोत्रों के द्वारा ये प्राण सोम का रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से हृदय पवित्र होगा, वासनाओं का निरोध होगा, प्रकाश की किरणों का प्रादुर्भाव होगा (हम ज्ञानरुचि बनेंगे) तथा हमारा झुकाव प्रभु-स्तवन की ओर होगा। इसप्रकार शरीर में सोम का रक्षण हो जाएगा।

ऋषिः—**गृत्समदो मेधातिथिर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराड्गायत्री**॥

अग्निः (आगे बढ़ने की भावना)

अग्निराग्नीध्रात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु॥ २॥

१. **अग्निः**=(अग्रणी) आगे बढ़ने की प्रवृत्तिवाला व्यक्ति **आग्नीध्रात्**=अग्नि को हृदय में धारण करने के द्वारा (आग्नीध्रं वै अन्तरिक्षम्—श०) अर्थात् हृदयान्तरिक्ष में उस प्रभु को धारण करने के द्वारा अथवा प्रगति की भावना को धारण करने के द्वारा—इस निश्चय के द्वारा कि मैं निरन्तर आगे बढ़ूँगा **ऋतुना सोमं पिबतु**=समय रहते—यौवन में ही सोम का रक्षण करे। २. इस प्रगतिशीलता की भावना के द्वारा **सुष्टुभः**=वासनाओं को सम्यक् रोकने के द्वारा तथा **स्वर्कात्**=उत्तम ज्ञानरश्मियों व प्रभु-पूजन के द्वारा हम सोम का शरीर में रक्षण करें।

भावार्थ—प्रगतिशीलता की भावना हमें हृदय में प्रभु-स्मरण की प्रवृत्तिवाला बनाएगी, अतः वासनाओं से ऊपर उठकर तथा ज्ञान व स्तवन की रुचिवाले बनकर हम सोम का शरीर में रक्षण कर पाएँगे।

ऋषिः—**गृत्समदो मेधातिथिर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्**॥

इन्द्रः ब्रह्मा (जितेन्द्रियता+ज्ञान)

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु॥ ३॥

१. **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय **ब्रह्मा**=ज्ञानी पुरुष **ब्राह्मणात्**=ज्ञान-प्राप्ति के कर्म के द्वारा **ऋतुना**=समय रहते **सोमं पिबतु**=सोम का पान करे। जितेन्द्रिय बनकर सारे खाली समय को ज्ञान-प्राप्ति में लगाना ही सोम-रक्षण का सर्वोत्तम साधन है। २. ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहने के द्वारा वह इन्द्र **सुष्टुभः**=वासनाओं के सम्यक् निरोध से तथा **स्वर्कात्**=प्रभु-पूजन से सोम का रक्षण करने में समर्थ होगा।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय व ज्ञानी बनें। ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहना हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाएगा और प्रभु-पूजन में प्रवृत्त करेगा। यही सोम-रक्षण का मार्ग है।

ऋषिः—**गृत्समदो मेधातिथिर्वा** ॥ देवता—**द्रविणोदाः** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्** ॥

देवः द्रविणोदा! (दानवृत्ति)

देवो द्रविणोदाः पोत्रात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ४ ॥

१. **देवः**=सब-कुछ देनेवाला देववृत्ति का पुरुष **द्रविणोदाः**=धनों को देनेवाला बनता है। यह धनों के दान से ही **पोत्रात्**=अपने जीवन को पवित्र बनाने के कर्म के द्वारा **ऋतुना**=समय रहते **सोमं पिबतु**=सोम का पान करे। धन का दान ही हमारे जीवन को पवित्र बनाता है, अन्यथा वह विषय-विलास में मग्न करके हमें विनष्ट कर देता है। २. यह धनों का दान करनेवाला **सुष्टुभः**=वासनाओं को रोकने के द्वारा तथा **स्वर्कात्**=उत्तम ज्ञानरश्मियों व प्रभु-पूजन के द्वारा सोम का रक्षण करे।

भावार्थ—हम देव बनें—धनों का दान करनेवाले हों। अन्यथा ये धन हमें विषयासक्त कर डालेंगे। दान से जीवन को पवित्र बनाकर, वासनाओं के निरोध व प्रभु-पूजन के द्वारा हम सोम को सुरक्षित रक्खें।

सूचना—ऋग्वेद २.३७.१ में पोत्रात् के स्थान में शब्द ही होत्रात् है, अर्थात् धन का तो होत्र=दान ही करना है। दान ही धन की गति का सात्त्विक मार्ग है। 'दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य। यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति'।

इस सूक्त में सोम-रक्षण के चार साधनों का उल्लेख है (१) प्राणसाधना (मरुतः), (२) आगे बढ़ने की भावना (अग्निः), (३) जितेन्द्रियता व ज्ञान (इन्द्रः, ब्रह्मा), (४) दानशीलता (देवः, द्रविणोदाः)।

अगले सूक्त का ऋषि 'इरिम्बिठिः' है। (इर् to go, बिठम्=अन्तरिक्षम्)—क्रियाशीलता की भावना से युक्त हृदयान्तरिक्षवाला (हृत्सु क्रतम्) सदा क्रियाशील बना रहकर यह पवित्र बना रहता है और सोम का रक्षण कर पाता है। यह प्रार्थना करता है कि—

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

हृदयासन पर प्रभु को बिठाना

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **आयाहि**=आइए। **ते**=आपकी प्राप्ति के लिए **हि**=ही **सोमं सुषुम**=हमने सोम का सम्पादन किया है। **इमम्**=इस सोम को **पिब**=पीजिए। आपने ही इस सोम को इस शरीर में सुरक्षित करना है। २. **इदम्**=इस **मम**=मेरे **बर्हिः**=हृदयान्तरिक्ष में **आसदः**=आप आसीन होइए। जब प्रभु (महादेव) मेरे हृदय में आसीन होंगे तब वहाँ कामदेव का सम्भव ही न होगा और इसप्रकार सोम का रक्षण क्योंकर न होगा?

भावार्थ—हम हृदय में सदा प्रभु का स्मरण करें। इसप्रकार वासना के आक्रमण से बचकर सोम का रक्षण कर पाएँ।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

ब्रह्मयुजा केशिना (हरी)

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

१. हे **इन्द्र**=ज्ञानरूप परमैश्वर्यवाले प्रभो! **त्वा**=आपको **हरी**=हमारे ये इन्द्रियाश्व **आवहताम्**=

प्राप्त कराएँ। वे इन्द्रियाश्व जोकि **ब्रह्मयुजा**=ज्ञान के साथ मेलवाले हैं और इसप्रकार **केशिना**=प्रकाश की रश्मियोंवाले हैं। २. हे प्रभो! आप हमें **उप**=समीप प्राप्त होइए—हमारे हृदयासन को स्वीकार कीजिए और **नः**=हमसे की जानेवाली **ब्रह्माणि**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुतिवाणियों को **शृणु**=सुनिए।

भावार्थ—हम अपनी इन्द्रियों को यथासम्भव ज्ञानप्राप्ति में लगाएँ। हृदय में प्रभु का ध्यान करें। यही अपने को वासनाओं के आक्रमण से बचाने का मार्ग है।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

योगाभ्यास व यज्ञशीलता

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं के संहारक प्रभो! **वयम्**=हम **युजा**=योगसमाधि द्वारा—प्राणायाम द्वारा **सोमपाम्**=सोम का रक्षण करनेवाले **त्वा**=आपको **हवामहे**=पुकारते हैं। २. हम **ब्रह्माणः**=ज्ञान की वाणियोंवाले बनने के लिए यत्नशील होते हैं। **सोमिनः**=प्रशस्त सोमवाले बनते हैं—सोम को वासनाओं के आक्रमण से बचाकर पवित्र रखते हैं। **सुतावन्तः**=सोम का सम्पादन करते हैं व (सुव-सव=यज्ञ) यज्ञशील बनते हैं।

भावार्थ—सोम-रक्षण के लिए आवश्यक है कि हम (क) ज्ञानप्रधान बनें, (ख) प्राणायाम का अभ्यास करें, (ग) यज्ञों में—श्रेष्ठतम कर्मों में प्रवृत्त रहें (ब्रह्माणः, युजा, सुतावन्तः)।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'इरिम्बिठिः' है—

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु-स्तवन

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप। पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ १ ॥

१. हे प्रभो! आप **सुतावतः**=सोम का सम्पादन करनेवाले व यज्ञशील **नः**=हमें **आयाहि**=प्राप्त होइए। **अस्माकम्**=हमारी **सुष्टुतीः**=उत्तम स्तुतियों को **उप**=समीपता से प्राप्त होइए। हम हृदयस्थ आपका सदा उत्तम स्तवन करनेवाले बनें। २. हे **सुशिप्रिन्**=उत्तम हनू व नासिकाओं के देनेवाले प्रभो! **अन्धसः**=सोम का **सुपिब**=शरीर में ही सम्यक् पान कीजिए। हम भोजन को सम्यक् चबाते हुए (हनू) तथा प्राणायाम (नासिका) करते हुए सोम को शरीर में ही सुरक्षित कर पाएँ।

भावार्थ—सोम-रक्षण के लिए आवश्यक है कि (१) हम प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले बनें (२) भोजन को खूब चबाकर खाएँ (३) प्राणायाम के अभ्यासी हों।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

मधुरभाषण

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु। गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि मैं इस सोम को **ते कुक्ष्योः**=तेरी कोखों में **आसिञ्चामि**=सींचता हूँ। यह सोम रुधिर में व्याप्त होकर **गात्रा**=तेरे अंग-प्रत्यंग में **अनुविधावतु**=अनुक्रम से गतिवाला हो। उन अंगों में व्याप्त होकर यह शोधन करे (धावु गतिशुद्ध्योः)। २. इस सोम के सर्वत्र व्याप्त होने पर तू **जिह्वया**=जिह्वा से **मधु गृभाय**=मधु का ग्रहण कर, अर्थात् तू सदा मधुरभाषणवाला हो। सोम-रक्षण से सारी क्रियाओं में ही माधुर्य का व्यापन होता है, वाणी भी मधुर बनती है।

भावार्थ—प्रभु ने सोम को शरीर में इसलिए उत्पन्न किया है कि यह सब अंगों को शुद्ध

बनानेवाला हो। शरीर में सुरक्षित सोम सब रोगकृमियों का संहारक होता है। वाणी को भी यह मधुर बनाता है।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

आनन्द-माधुर्य-शान्ति

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वे३ तव। सोमः शमस्तु ते हृदे॥ ३॥

१. **संसुदे**=उत्तम दानशील **ते**=तेरे लिए यह सोम **स्वादुः अस्तु**=जीवन को मधुर बनानेवाला हो। **तव तन्वे**=तेरे शरीर के लिए **मधुमान्**=प्रशस्त माधुर्यवाला हो। जब व्यक्ति कर्मशील बनता है तब भोगासक्ति से ऊपर उठता है। भोगों से ऊपर उठा हुआ यह जीवन को मधुर बना पाता है—इसके शरीर के सब अंगों की क्रियाएँ माधुर्य को लिये हुए होती हैं। २. **सोमः**=शरीर में सुरक्षित यह सोम **ते हृदे शम् अस्तु**=तेरे हृदय के लिए शान्ति देनेवाला हो। सोमी पुरुष के हृदय में राग-द्वेष क्षोभ पैदा करनेवाले नहीं होते—यह राग-द्वेष से शून्य जीवनवाला बनता है।

भावार्थ—सोम-रक्षण द्वारा हमारा जीवन आनन्दमय हो, व्यवहार मधुर हो तथा हृदय शान्ति से युक्त हो।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'इरिम्बिठिः' ही है—

५. [पञ्चमं सूक्तम्]

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

जनीः इव

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः। प्र सोम इन्द्र सर्पतु॥ १॥

१. हे **विचर्षणे**=विशेषरूप से देखनेवाले (नि० ३.११), अर्थात् सब पदार्थों को ठीक रूप में देखनेवाले, अतएव भोगों में न फँसनेवाले **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **अयम्**=यह **सोमः**=सोम **उ**=निश्चय से **त्वा प्रसर्पतु**=तुझे प्राप्त हो। २. यह **अभिसंवृताः**=सब ओर से सुरक्षित (संवृत) सोम तुझे ऐसे प्राप्त हो **इव**=जैसेकि **जनीः**=पत्नी पति को प्राप्त होती है। पत्नी पति की अर्धांगिनी बन जाती है। यह सोम भी तेरा अंग बन जाए—तुझसे पृथक् न हो। यह तेरे जीवन का आवश्यक अंश ही हो जाए। पत्नी के बिना जैसे पति का जीवन अधूरा है, उसी प्रकार सोम के बिना इन्द्र (जितेन्द्रिय पुरुष) का जीवन अधूरा है।

भावार्थ—सोम, संसार के विषयों की वास्तविकता को जाननेवाले जितेन्द्रिय पुरुष के जीवन का अंग ही बन जाए। उसी प्रकार जैसेकि पत्नी पति का अंग ही हो जाती है।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

तुविग्रीवः सुबाहुः

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते॥ २॥

१. **अन्धसः**=शरीर में सुरक्षित सोम के **मदे**=उल्लास में **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **जिघ्नते**=विनष्ट करता है। वासनाओं के विनाश के द्वारा यह अपने ज्ञान को दीप्त कर पाता है। २. इस सोम के मद में ही यह **तुविग्रीवः**=शक्तिशाली गरदनवाला बनता है—निर्बलता से इसकी गरदन झुक नहीं जाती। **वपोदरः**=यह सोम को अपने उदर में ही बोनेवाला होता है। जैसे बीज भूमि में बोया जाता है—वह भूमि में सुरक्षित होता है, इसी प्रकार सोम इसके उदर में सुरक्षित होता है। **सुबाहुः**=सुरक्षित सोम से यह उत्तम भुजाओंवाला होता है—इसकी भुजाएँ शक्तिशाली बनती हैं।

भावार्थ—सोम के सुरक्षित होने पर—वपोदर बनने पर यह शक्तिशाली गरदनवाला और सबल भुजाओंवाला होता है। यह सब वासनाओं को विनष्ट करनेवाला होता है।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु-स्मरण-शक्ति—वासनाविनाश

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा। वृत्राणि वृत्रहञ्जहि॥ ३॥

१. हे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **पुरः प्रेहि**=सदा हमारे सामने होइए। हम आपको कभी भूल न जाएँ। आप **ओजसा**=ओज के द्वारा **विश्वस्य**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के **ईशानः**=ईशान हैं। २. हे **वृत्रहन्**=हमारे ज्ञान की आवरणाभूत वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभो! आप **वृत्राणि जहि**=वासनाओं को विनष्ट कीजिए। आपका स्मरण हमें वासनाओं से बचानेवाला हो।

भावार्थ—हम सदा प्रभु का स्मरण करें—प्रभु को भूले नहीं। यह प्रभु-स्मरण हमें शक्ति देगा और हमारी वासनाओं को विनष्ट करेगा।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु का दीर्घ अंकुश

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि। यजमानाय सुन्वते॥ ४॥

१. हे प्रभो! **ते अंकुशः**=आपका नियमन (restraint, check) **दीर्घः अस्तु**=विशाल हो। हम आपकी प्रेरणा से नियमित जीवनवाले होकर ही जीवन को बिताएँ। **येन**=जिस नियमन के द्वारा आप **वसु**=सब वसुओं को—निवास के लिए आवश्यक तत्त्वों को **प्रयच्छसि**=हमारे लिए देते हैं। २. **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए और **सुन्वते**=अपने शरीर में सोम का अभिषव करनेवाले पुरुष के लिए आप वसुओं को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु के द्वारा नियमन में चलते हुए हम यज्ञशील सोम का रक्षण करनेवाले बनें। यही वसुओं की प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु-स्मरण व सोम-रक्षण

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि। एहीमस्य द्रवा पिब॥ ५॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! **अयं सोमः**=यह सोम **ते**=आपकी प्राप्ति के लिए **निपूतः**=निश्चय से पवित्र किया गया है। आप **बर्हिषि अधि**=इस हृदयान्तरिक्ष में हमें **एहि**=प्राप्त होइए। सोम-रक्षण ही प्रभु-प्राप्ति का साधन है। २. **ईम्**=निश्चय से **द्रव**=आप हमारी ओर आइए—हमें प्राप्त होइए और **अस्य पिब**=इस सोम का पान कीजिए। वस्तुतः प्रभु ने ही वासना-विनाश द्वारा इस सोम का रक्षण करना है।

भावार्थ—हम हृदय में प्रभु का स्मरण करें—प्रभु हमारी वासनाओं का विनाश करेंगे और सोम का रक्षण करेंगे।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

आखण्डल

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः। आखण्डल प्र हूयसे॥ ६॥

१. **शाचिगो**=शक्तिशाली इन्द्रियों को प्राप्त करानेवाले! **शाचिपूजन**=शक्ति देनेवाला है पूजन

जिसका, ऐसे प्रभो! **अयं सोमः**=यह सोम **ते रणाय**=आपके रमण के लिए **सुतः**=सम्पादित हुआ है। इस सोम का रक्षण होने पर ही हमारे हृदयों में प्रभु का प्रकाश हुआ करता है। २. हे **आखण्डल**=समन्तात् (आ) शत्रुओं के भेदन को (खण्ड) प्राप्त करानेवाले (ल) प्रभो! **प्रहूयसे**=आप हमसे पुकारे जाते हैं। वस्तुतः आपने ही वासनारूप शत्रुओं को छिन्न करके हमारे शरीरों में सोम का रक्षण करना है। इस सुरक्षित सोम से ही सब इन्द्रियाँ शक्तिशाली बनेंगी।

भावार्थ—प्रभु-पूजन से शक्ति प्राप्त होती है—सब इन्द्रियाँ सशक्त बनती हैं। प्रभु हमारे वासनारूप शत्रुओं का विनाश करते हैं और सोम-रक्षण होने पर हम प्रभु-दर्शन कर पाते हैं।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

शृङ्गवृषः

यस्ते शृङ्गवृषो नपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः। न्य स्मिन्दध्र आ मनः ॥ ७ ॥

१. हे प्रभो! **यः**=जो **ते**=आपका—आपसे उत्पादित किया गया यह सोम है, वह **शृङ्गवृषः**=(वृष=धर्म) हमें धर्म के शिखर पर ले-जानेवाला है—सोम-रक्षण से उन्नत होते हुए हम धर्म के शिखर पर पहुँचते हैं। यह **नपात्**=हमें न गिरने देनेवाला है। इससे सब शक्तियाँ सुरक्षित रहती हैं। **प्र-णपात्**=यह हमें प्रकर्षेण न गिरने देनेवाला है—हमें उत्कृष्ट व्यवहारोंवाला बनाता है। **कुण्डपाय्यः**=(कुडि दाहे) वासनाओं के दहन (विनाश) के द्वारा शरीर में पीने के योग्य है। २. हे प्रभो! मैं **अस्मिन्**=इस सोम में ही—सोम के रक्षण में ही **मनः**=मन को **नि आदध्रे**=निश्चय से धारण करता हूँ। मन में सोम-रक्षण के लिए दृढ़ निश्चय करता हूँ। इसके रक्षण के लिए ही सब उपायों का अवलम्बन करता हूँ।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें (१) धर्म के शिखर पर ले-जाता है (२) इससे शक्तियाँ सुरक्षित रहती हैं, (३) यह हमारे व्यवहारों को मधुर बनाता है। वासनाओं के विनाश से ही यह शरीर में सुरक्षित करने के योग्य है। हम मन को इसके रक्षण में ही लगाएँ।

यह धर्म के शिखर पर पहुँचनेवाला व्यक्ति 'विश्वामित्र' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

विश्वामित्र

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

यह मन्त्र २०.१.१ पर व्याख्यात है।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

क्रतुविदं, तातृपिम्

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥

१. **इन्द्र**=हे जितेन्द्रिय पुरुष! तू **क्रतुविदम्**=शक्ति व ज्ञान के प्राप्त करानेवाले (विद् लाभे) **सुतम्**='रस-रुधिर-मांस-अस्थि-मज्जा-मेदस् व वीर्य' इस क्रम से पैदा किये गये **सोमम्**=सोम (वीर्य) को **हर्य**=चाहनेवाला बन। २. हे **पुरुष्टुत**=(पुरु ष्टुतं यस्य) खूब ही स्तवन करनेवाले जीव! तू **तातृपिम्**=तृप्ति देनेवाले इस सोम को **पिब**=पीनेवाला बन और **वृषस्व**= शक्तिशाली की तरह आचरण कर—शक्तिशाली बन।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम शक्ति व ज्ञान को प्राप्त कराता है, एक अद्भुत तृप्ति का

अनुभव कराता है। हम जितेन्द्रिय व प्रभु-स्तोता बनकर इसका शरीर में ही रक्षण करें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'धितावानं' यज्ञम्

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः। तिर स्तवान विश्पते॥ ३॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् देवसम्राट्! **विश्पते**=सब प्रजाओं के पालक! **स्तवान**=स्तुति किये जाते हुए प्रभो! आप **नः**=हमारे **यज्ञम्**=इस जीवन-यज्ञ को **विश्वेभिः देवेभिः**=सब देवों के द्वारा **प्रतिर**=बढ़ाइए, जोकि **धितावानम्**=सोम के धारणवाला है। वस्तुतः इस सोम के धारण ने ही हमारे जीवन को दिव्यगुणयुक्त व दीर्घ बनाना है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करते हुए हम इस जीवन-यज्ञ को दिव्यगुणसम्पन्न बनाएँ। इसे सोम-रक्षण द्वारा खूब दीर्घकाल तक चलनेवाला करें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

चन्द्रः, इन्दवः

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते। क्षयं चन्द्रास इन्दवः॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **इमे**=ये **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए **सोमाः**=सोमकण **तव क्षयम्**=तेरे शरीर-गृह को **प्रयन्ति**=प्राप्त होते हैं—शरीर में ही इनकी स्थिति होती है। २. हे **सत्पते**=सब अच्छाइयों का अपने में रक्षण करनेवाले जीव! सुरक्षित सोमकण **चन्द्रासः**=(चदि आह्लादे) जीवन को आनन्दमय बनानेवाले हैं और **इन्दवः**=ये इसे शक्तिशाली बनाते हैं।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनकर सोमकणों का रक्षण करें। ये हमारे जीवन में सब अच्छाइयों का रक्षण करते हुए हमें आनन्दमय व शक्तिशाली बनाएँगे।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

द्युक्षासः, इन्दवः

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्। तव द्युक्षास इन्दवः॥ ५॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **सुतम्**=शरीर में उत्पन्न किये गये **वरेण्यम्**=वरणीय **सोमम्**=इस सोम को **जठरे**=अपने जठर में ही—अपने ही अन्दर-**दधिष्व**=धारण कर। २. ये सोमकण **तव**=तेरी **द्युक्षासः**=ज्ञान-ज्योति में निवास का कारण बनेंगे (द्यु+क्षि) और **इन्दवः**=तुझे शक्तिशाली बनाएँगे।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम शक्ति व ज्ञान-वृद्धि का कारण बनता है।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'मधुर व यशस्वी' जीवन

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे। इन्द्र त्वादातमिद्यशः॥ ६॥

१. हे **गिर्वणः**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुतिवाणियों से सम्माननीय प्रभो! **नः**=हमारे **सुतम्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को **पाहि**=आप रक्षित कीजिए। आपका स्तवन ही इस सोम के रक्षण का साधन बनता है। हे प्रभो! आप **मधोः धाराभिः**=मधु की धाराओं से—माधुर्य के धारण से **अज्यसे**=जाये जाते हैं—प्राप्त किये जाते हैं। माधुर्य को धारण करके ही हम आपको प्राप्त होते हैं। २. हे **इन्द्र**= परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यशः**=यश **इत्**=निश्चय से **त्वादातम्**=आपसे ही दिया गया है। जहाँ-जहाँ जो कुछ 'विभूति, श्री व ऊर्ज्' है वह सब आपके द्वारा ही स्थापित किया

गया है। आपका स्तवन सोम-रक्षण द्वारा मुझे भी यशस्वी बनाएगा।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करते हुए हम सोम-रक्षण द्वारा जीवन को मधुर व यशस्वी बना पाएँगे।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सोम-रक्षण व प्रभु-प्राप्ति

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता। पीत्वी सोमस्य वावृधे॥ ७॥

१. **वनिनः**=सम्भजनशील उपासक **अक्षिता द्युम्नानि अभि**=न क्षीण होनेवाली ज्ञान-ज्योतियों की ओर चलते हैं। ज्ञान की ओर चलते हुए ये **इन्द्रं सचन्ते**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को प्राप्त करते हैं। २. यह उपासक **सोमस्य पीत्वी**=शरीर में उत्पन्न सोम का रक्षण करता हुआ **वावृधे**=निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करता है।

भावार्थ—हम सोम-रक्षण द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करके, ज्ञानवृद्धि करते हुए प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

अर्वावतः, परावतः

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन्। इमा जुषस्व नो गिरः॥ ८॥

१. हे **वृत्रहन्**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! आप **अर्वावतः**=समीप के प्रदेश के हेतु से—इहलोक के हेतु से, अर्थात् अभ्युदय के हेतु से **नः**=हमें **आगहि**=प्राप्त होइए **च**=और **परावतः**=दूर देश के हेतु से—परलोक के हेतु से, अर्थात् निःश्रेयस के हेतु से हमें प्राप्त होइए। आपने ही हमें 'अभ्युदय व निःश्रेयस' प्राप्त कराना है। २. आप **इमाः**=इन **नः**=हमारी—हमसे की गई **गिरः**=स्तुतिवाणियों को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन कीजिए। हमारे द्वारा की गई स्तुतिवाणियाँ हमें आपका प्रिय बनाएँ। वस्तुतः इनसे ही प्रेरणा लेकर हमें जीवन में आगे बढ़ना है और आपके अनुरूप बनने का प्रयत्न करना है।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करें। प्रभु वासना-विनाश के द्वारा हमें 'अभ्युदय व निःश्रेयस' प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

हृदय में प्रभु का दर्शन

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे। इन्द्रेह तत आ गहि॥ ९॥

१. 'परावत्' शब्द दूर देश के लिए आता है—यहाँ पर द्युलोक का संकेत करता है। 'अर्वावत्' समीप देश के लिए आता है—यहाँ यह पृथिवी का संकेत कर रहा है। इन दोनों के अन्तरा=बीच में अन्तरिक्षलोक है। हमारे जीवनों में (अध्यात्म में) मस्तिष्क द्युलोक है, शरीर पृथिवीलोक है। इन दोनों के बीच में हृदय अन्तरिक्षलोक है। हे प्रभो! **यत्**=जब भी **परावतम् अर्वावतं च**=द्युलोक व पृथिवीलोक के **अन्तरा**=बीच में—अन्तरिक्ष में—हृदयान्तरिक्ष में आप **हूयसे**=पुकारे जाते हैं तब हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! आप **ततः**=तब **इह आगहि**=हमें यहाँ प्राप्त होइए। २. हृदय में प्रभु का ध्यान करने पर प्रभु हमें प्राप्त होते ही हैं।

भावार्थ—हम हृदय में प्रभु का ध्यान करें। यही हमारा प्रभु के साथ मिलकर बैठने का स्थान (सध-स्थ) है।

प्रभु-प्राप्ति के दृढ़ व उत्तम निश्चयवाला यह 'सु-कक्ष' कनता है, जिसने प्रभु-प्राप्ति के

लिए दृढ़ निश्चय कर लिया है—कमर कस ली है। यही अगले सूक्त का ऋषि है। अन्ततः (चतुर्थ मन्त्र में) यह 'विश्वामित्र' बनता है।

७. [सप्तमं सूक्तम्]

ऋषिः—**सुकक्षः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु-प्राप्ति का मार्ग

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्। अस्तारमेषि सूर्य॥ १ ॥

१. हे **सूर्य**=सूर्य के समान देदीप्यमान प्रभो! आप **घा इत्**=निश्चय से उस व्यक्ति का **अभि**=लक्ष्य करके **उदेषि**=उदति होते हो—उसके हृदयाकाश में प्रकाशित होते हो जोकि **श्रुतामघम्**=ज्ञान के ऐश्वर्यवाला है तथा **वृषभम्**=शक्तिशाली है। प्रभु उसी को प्राप्त होते हैं जो अपने में ज्ञान और शक्ति का समन्वय करता है। २. हे प्रभो! आप उसे प्राप्त होते हो जो **नर्यापसम्**=लोकहितकारी कर्मों में प्रवृत्त होता है और **अस्तारम्**=वासनारूप शत्रुओं को अपने से दूर फेंकता है (असु क्षेपणे)।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति उसे होती है जो (क) ज्ञान का ऐश्वर्य प्राप्त करता है, (ख) शक्तिशाली बनता है, (ग) लोकहितकर कर्मों में प्रवृत्त होता है, (घ) वासनाओं को अपने से दूर करता है।

ऋषिः—**सुकक्षः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वृत्रहा

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा। अहिं च वृत्रहावधीत्॥ २ ॥

१. **यः**=जो **वृत्रहा**=ज्ञान की आवरणभूत कामवासना को विनष्ट करनेवाला है वह **बाहु+ओजसा**=अपनी भुजाओं के बल से—सदा उत्तम कर्म से लगे रहने के द्वारा **नवनवतिं पुरः**=असुरों की निन्यानवे पुरियों का **बिभेद**=विदारण करता है। हमारे जीवन में आसुरभाव उत्पन्न होते हैं। वे दृढ़मूल होते जाते हैं। मानो वे अपने दुर्ग बना लेते हैं। सतत क्रियाशीलता के द्वारा हम सौ वर्ष के आयुष्य में निन्यानवे बार इनका विदारण करते हैं और प्रत्येक वर्ष को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करते हैं। २. **च**=और यह **वृत्रहा अहिम् (आहन्तारम्)**=सब प्रकार से विनष्ट करनेवाले इस वासनारूप शत्रु को **अवधीत्**=मार डालता है।

भावार्थ—क्रियाशीलता के द्वारा हम वासनाओं को अपने जीवन में दृढ़मूल न होने दें।

ऋषिः—**सुकक्षः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

शिवः सखा

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत्। उरुधारेव दोहते॥ ३ ॥

१. **सः**=वह **इन्द्रः**=शत्रुओं का द्रावण करनेवाला प्रभु **नः**=हमारा **शिवः सखा**=कल्याणकर मित्र है। प्रभु ही सर्वमहान् मित्र हैं। २. ये प्रभु **उरुधारा इव**=विशाल दुग्ध धाराओंवाली कामधेनु के समान हमारे लिए उस ऐश्वर्य को **दोहते**=प्रपूरण करते हैं, जोकि **अश्वावत्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाला है, **गोमत्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाला है तथा **यवमत्**=बुराइयों को दूर करनेवाला व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाला है (यु मिश्रणामिश्रणयोः)।

भावार्थ—प्रभु हमारे कल्याणकर मित्र हैं। वे हमारे लिए उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को प्राप्त कराके हमारे जीवन से बुराइयों को दूर करते हैं तथा अच्छाइयों को हमारे साथ संगत करते है।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'क्रतुवित्' सोम

इन्द्र॑ क्रतु॒विदं॑ सु॒तं सोमं॑ हर्य पुरुष्टुत। पिबा॒ वृ॑षस्व॒ तातृ॑पिम्॥ ४॥

इस मन्त्र की व्याख्या २०.६.२ पर द्रष्टव्य है।

अपने जीवन में सोम का भरण करके यह 'भरद्वाज' बनता है—अपने में शक्ति भरनेवाला। यह बुराइयों का संहार करनेवाला 'कुत्सः' होता है तथा सबका मित्र 'विश्वामित्र' बनता है। अगले सूक्त के मन्त्रों के क्रमशः ये ही ऋषि हैं—

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञानसूर्य का आविर्भाव

ए॒वा पा॑हि प्र॒त्नथा॒ मन्द॑तु त्वा श्रु॒धि ब्रह्म॑ वावृ॒धस्वो॒त गी॒र्भिः।
आ॒विः सूर्यं॑ कृणु॒हि पी॑पि॒हीषो॑ ज॒हि शत्रूँ॑र॒भि गा इ॑न्द्र तृन्धि॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **प्रत्नथा एव**=सदा की भाँति ही आप **पाहि**=हमारा रक्षण कीजिए, अथवा हमारे शरीर में सोम का रक्षण कीजिए। **त्वा मन्दतु**=यह उपासक आपका स्तवन करे। आप **ब्रह्म**=उससे की जानेवाली स्तुतियों को **श्रुधि**=सुनिए, **उत**=और **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **वावृधस्व**=उसके अन्दर खूब ही बढ़िए, अर्थात् वह उपासक ज्ञान प्राप्ति में लगा हुआ, अधिकाधिक आपके प्रकाश को हृदय में देखे। २. हे प्रभो! आप **सूर्यम्**=ज्ञान के सूर्य को उसके मस्तिष्करूप गगन में **आविः कृणुहि**=प्रकट कीजिए। **इषः पीपिहि**=प्रेरणाओं को बढ़ाइए, अर्थात् यह उपासक सदा आपकी प्रेरणा के अनुसार कार्यों को करनेवाला हो। **शत्रून् पीपिहि**=इस उपासक के वासनारूप शत्रुओं को आप विनष्ट कीजिए तथा **गाः**=इन्द्रियों को **अभितृन्धि**=(to set free) वासनाओं के आवरण से मुक्त कीजिए।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करें। ज्ञान-प्राप्ति में लगकर प्रभु के प्रकाश को अपने में अधिकाधिक देखने का प्रयत्न करे। प्रभु कृपा से हमारा ज्ञान बढ़े। हम हृदयों में प्रभु-प्रेरणा को सुनें, वासनारूप शत्रुओं को विनष्ट करें और दीप्त इन्द्रियोंवाले बनें।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'सोम-काम' प्रभु

अ॒र्वाङेहि॒ सोम॑कामं त्वाहुर॒यं सु॒तस्तस्य॑ पिबा॒ मदा॑य।
उ॒रु॒व्यचा॑ ज॒ठर॒ आ वृ॑षस्व पि॒तेव॑ नः शृणुहि हूयमा॑नः॥ २॥

१. हे प्रभो! आप **अर्वाङ् एहि**=हमें अन्दर हृदयों में प्राप्त होइए। **सोमकामं त्वा**=आपको सोम की कामनाओंवाला **आहुः**=कहते हैं—आपकी कामना यही है कि उपासक सोम का सम्पादन करे। **अयं सुतः**=यह सोम शरीर में उत्पन्न किया गया है। **तस्य पिब**=उसका आप शरीर में ही पान कीजिए और **मदाय**=हमारे उल्लास के लिए होइए। २. **उरुव्यचाः**=अनन्त विस्तारवाले—सर्वव्यापक आप **जठरे आवृषस्व**=हमारे जठर में ही—शरीर के मध्य में ही सोम का सेचन कीजिए। **हूयमानः**=पुकारे जाते हुए आप **पिता इव**=पिता की भाँति **नः शृणुहि**=हमारी प्रार्थना को सुनिए। हमारी पुकार व्यर्थ न जाए।

भावार्थ—प्रभु को वही व्यक्ति प्रिय है, जो शरीर में सोम का रक्षण करता है। सोम-रक्षण

भी प्रभु के अनुग्रह से ही होता है। हम सदा उस रक्षक प्रभु को ही पिता जानें, उसी की आराधना करें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कलश की आपूर्णता

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम्॥ ३॥

१. **अस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष का **कलशः**=(कलाः शेरते अस्मिन्) 'प्राण' आदि १६ कलाओं से युक्त यह शरीर-कलश **आपूर्णा**=सब दृष्टिकोणों से पूर्ण होता है। **स्वाहा**=यह (सु+आह) सदा उत्तम स्तुतिशब्दों को बोलनेवाला होता है। यह **सेक्ता इव**=सेचन करनेवाले के समान **कोशं सिसिचे**=अन्नमय आदि कोशों से बने इस शरीर को सोम से सिक्त करता है। **पिबध्यै**=यह इन सोमकणों को पीने के लिए होता है—इनको शरीर में ही व्याप्त करनेवाला होता है। २. **उ**=निश्चय से **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **प्रियाः सोमासः**=प्रीति के जनक ये सोम-कण **मदायः**=जीवन में आनन्द व उल्लास के लिए **प्रदक्षिणित्**=प्रदाक्षिण्य से—ठीक प्रकार **सम्**=सम्यक् **अभि**=आभिमुख्येन **आववृत्रन्**=व्याप्त करते हैं। सोमकण इसके शरीर में ही व्याप्त होते हैं।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनें। प्रभु के स्तुतिशब्दों का उच्चारण करते हुए सोम को शरीर में सुरक्षित करें। यह सोम ही पूर्णता व प्रसन्नता का साधन है।

सोम-रक्षण द्वारा आपूर्ण कलशवाला यह व्यक्ति 'नोधा' (नव-धा) प्रभु-स्तवन का धारण करनेवाला (नु स्तुतौ) तथा शरीर के नौ द्वारों (इन्द्रियों) को धारण करनेवाला (अष्टाचक्रा नवद्वारा०) होता है। यह मेध्य (पवित्र) प्रभु को अपना अतिथि बनाता है—उसी का पूजन करता है, अतः 'मेध्यातिथि' है। यह 'नोधा' व 'मेध्यतिथि' ही क्रमशः अगले सूक्त के ऋषि हैं—

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

दस्मम् ऋतीषहम्

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे॥ १॥

१. **तम्**=उस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **गीर्भिः**=स्तुतिवाणियों से **नवामहे**=स्तुत करते हैं, जो **वः दस्मम्**=तुम्हारे दर्शनीय व दुःखों के दूर करनेवाले हैं। **ऋतीषहम्**=आर्ति (पीड़ा) के अभिभविता व नाशक हैं तथा **वसोः**=निवास के कारणभूत **अन्धसः**=सोम के द्वारा **मन्दानम्**=आनन्दित करनेवाले हैं। २. **स्वसरेषु**=(स्वः आदित्यः एनान् सारयति=अहानि) दिनों में—दिन के निकलने पर **न**=जैसे **धेनवः**=गौवें **वत्सम् अभि**=वत्स का लक्ष्य करके 'हम्मारव' करती हैं। उसी प्रकार हम प्रभु का स्तवन करते हैं। यह प्रभु-स्तवन ही हमारे सब कष्टों को दूर करेगा और हमें सोम-रक्षण द्वारा आनन्दित करेगा।

भावार्थ—हम प्रतिदिन प्रातः-सायं प्रभु का स्मरण करें। यह स्मरण ही पीड़ाहर व सोम रक्षण द्वारा प्रसन्नता का प्रापक है।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतःप्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

'क्षुमन्तं, शतिनं, गोमन्तं' वाजम्

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्त्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे॥ २॥

१. **द्युक्षम्**=दीप्त—ज्ञानदीप्ति में निवास करनेवाले, **सुदानुम्**=सम्यक् वासनाओं का खण्डन करनेवाले (दाप् लवने), **तविषीभिः आवृतम्**=बलों से आवृत—सर्वशक्तिमान् **गिरिं न**=जो उपदेष्टा आचार्य के समान हैं (गृणाति), **पुरुभोजसम्**=खूब ही पालन व पोषण करनेवाले प्रभु से **वाजम्**=(wealth) ऐश्वर्य की **मक्षू ईमहे**=शीघ्र याचना करते हैं। २. उस ऐश्वर्य की याचना करते हैं जो **क्षुमन्तम्**=स्तुतिवाला है—जो हमें प्रभु-स्तवन से पृथक् नहीं करता, **शतिनम्**= हमें शतवर्ष के आयुष्य को प्राप्त करता है **सहस्त्रिणम्**=जो हज़ारों प्राणियों का पोषण करता है तथा **गोमन्तम्**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाला है। जो ऐश्वर्य हमें वासनासक्त करके क्षीण इन्द्रियशक्तिवाला नहीं कर देता।

भावार्थ—प्रभु से हमें वह-वह ऐश्वर्य प्राप्त हो, जो हमें प्रभु-जैसा बनने में सहायक हो। हम इस धन से विषयासक्त न होकर लोकहित में प्रवृत्त हुए हुए दीर्घजीवी व प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले बनें।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

सुवीर्य+ब्रह्म

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ॥ ३॥

१. हे प्रभो! मैं **त्वा**=आपसे **तत्**=उस **सुवीर्यम्**=उत्कृष्ट पराक्रम को **यामि**=माँगता हूँ तथा **तत् ब्रह्म**=उस ज्ञान को माँगता हूँ, जो **पूर्वचित्तये**=पालन व पूरण की साधनाभूत स्मृति के लिए होता है। इस बल व ज्ञान को प्राप्त करके मैं अपने स्वरूप व मानव जीवन के लक्ष्य को भूल न जाऊँ। २. **येन**=जिस बल व ज्ञान के द्वारा **यतिभ्यः**=संयमी पुरुषों के लिए और **भृगवे**=तपः परिपक्व पुरुषों के लिए (भ्रस्ज् पाके) **हिते धने**=हितकर धन के होने पर आप **येन**=जिस धन से **प्रस्कण्वमाविथ**=मेधावी पुरुष का रक्षण करते हैं। इस बल व ज्ञान से आप संयमी व तपस्वी लोगों को हितकर धन में स्थापित करते हैं और मेधावी पुरुष का रक्षण करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु से बल व ज्ञान प्राप्त करके अपने स्वरूप व लक्ष्य का स्मरण करें। संयमी व तपस्वी बनकर हितकर धन को प्राप्त हों। मेधावी बनकर प्रभु से रक्षणीय हो। धन हमारे विनाश का कारण न बन जाए।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

प्रभु की अनन्त महिमा

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **येन**=जिस अपने महान् सामर्थ्य से आप **समुद्रम् असृजः**=समुद्र का सर्जन करते हैं, जिस सामर्थ्य से आप इन **महीः अपः**=अनन्त-से विस्तारवाले जलों का निर्माण करते हैं अथवा पृथिवियों व जलों का निर्माण करते हैं। **ते**=आपका **तत् शवः**=वह बल

वृष्णि=हमपर सुखों का सेचन व वर्षण करनेवाला है। २. **अस्य**=इस प्रभु की **सः**=वह **महिमा**=महिमा व सामर्थ्य **सद्यः**=शीघ्र **न संनशे**=औरों से व्याप्त नहीं की जा सकती। वह महिमा, **यम्**=जिसको **क्षोणीः**=पृथिवीस्थ प्राणिसमूह **अनुचक्रदे**=उद्घोषित करता है।

भावार्थ—समुद्रों में व महान् जलों में प्रभु की महिमा का प्रकाश होता है। प्रभु की महिमा का कोई भी व्यापन नहीं कर सकता। सब प्राणी प्रभु की महिमा का उद्घोष करते हैं।

१०. [दशमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतःप्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

स्तवन+ज्ञान

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव॥ १॥

१. **उ**=निश्चय से **त्ये**=वे **मधुमत्तमाः**=जीवन को अतिशयेन मधुर बनानेवाली **स्तोमासः**=स्तुति-समूह **उदीरते**=उद्गत होते हैं। इसी प्रकार **गिरः**=ज्ञान की वाणियाँ उच्चरित होती हैं। ये स्तुति-वाणियाँ व ज्ञान की वाणियाँ हमारे जीवनों को अतिशयेन मधुर बनाती हैं। २. ये स्तोम **सत्राजितः**=(सह एव) एक साथ ही शत्रुओं को जीतनेवाले हैं। **धनसाः**=धनों को प्रदान करनेवाले हैं। **अक्षित+ऊतयः**=अक्षीण रक्षणोंवाले हैं। **वाजयन्तः**=ये हमें शक्तिशाली बनानेवाले हैं और **रथाः इव**=ये स्तोम जीवन यात्रा की पूर्ति के लिए रथ के समान हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन व ज्ञान के द्वारा जीवन को मधुर, विजयी, ऐश्वर्यसम्पन्न, सुरक्षित व शक्तिशाली बनाएँ। ये स्तवन व ज्ञान की वाणियाँ हमारे जीवन में रथ का काम देंगी—हमें लक्ष्य स्थान पर पहुँचाएँगी।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

कण्व+सूर्य=भृगु, प्रियमेध+आयु

कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमानशुः।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्॥ २॥

१. **कण्वाः इव**=मेधावी पुरुषों के समान तथा **सूर्याः इव**=सूर्यसम तेजस्वी व सूर्य के समान निरन्तर क्रियाशील **भृगवः**=तप की अग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाले लोग **विश्वम्**=उस सर्वव्यापक (सर्वत्र विशति) **धीतम्**=ध्यान किये गये प्रभु को **इत्**=ही **आनशुः**=स्तोत्रों से प्राप्त करते हैं। २. **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **स्तोमेभिः**=स्तुति-समूहों से **महयन्तः**=पूजते हुए **आयवः**=गतिशील **प्रियमेधासः**=बुद्धि-प्रिय मनुष्य **अस्वरन्**=स्तुतिशब्दों का उच्चारण करते हैं। यह स्तवन ही उन्हें बुद्धिप्रिय व गतिशील बनाता है।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करते हुए मेधावी व क्रियाशील बनें। यही सच्ची तपस्या है। कण्व व प्रियमेध बनें, सूर्य व आयु बनें। यही भृगु बनने का मार्ग है। भृगु ही प्रभु को प्राप्त करता है।

यह उपासक सबका हित करनेवाला 'विश्वामित्र' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

११. [एकादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'शत्रु-संहारक' इन्द्र

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्।
ब्रह्मजूतस्तन्वा ∫ वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे॥ १॥

१. **इन्द्रः**=शत्रुओं का द्रावण करनेवाला प्रभु **पूर्भित्**=असुर पुरियों का विदारण करता है। यह **अर्कैः**=प्रकाश की रश्मियों द्वारा **दासम्**=विनाशक काम को (कामदेव) को **आतिरत्**=हमें पार कराता है (संतारयति)। **विदद्वसुः**=सब वसुओं को प्राप्त करानेवाला प्रभु **शत्रून्**=काम क्रोध आदि शत्रुओं को **विदयमानः**=विशेषरूप से हिंसित करता है। २. **ब्रह्मजूतः**=स्तोत्रों के द्वारा हमारे हृदयों में अभिवृद्ध हुआ-हुआ, **तन्वावृधानः**=शक्तियों के विस्तार से हमारा वर्धन करता हुआ, **भूरिदात्रः**=पालक व पोषक धनों को देनेवाला प्रभु **उभे रादेसी**=दोनों द्यावापृथिवी को **आपृणत्**=व्याप्त किये हुए है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु प्रकाश की रश्मियों द्वारा हमारे शत्रुओं का विनाश करेंगे।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मख+तविष

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा॥ २॥

१. **अमृताय भूषन्**=अमृतत्व के लिए अपने को अलंकृत करने के हेतु से (हेतौ शतृ-प्रत्ययः) मैं, हे प्रभो! **मखस्य**=यज्ञरूप **तविषस्य**=अतिशयित बल-सम्पन्न **ते**=आपकी **वाचम्**=स्तुतिवाणी को **प्र इयर्मि**=प्रकर्षेण प्रेरित करता हूँ। यह स्तुतिवाणी **जूतिम्**=प्रेरयित्री है, तुझे उस उस गुण को धारण करने के लिए प्रेरणा देनेवाली है। इस स्तुतिवाणी से मैं भी आपके समान 'मख व तविष' बनता हुआ अमृतत्व को प्राप्त करता हूँ। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **मानुषीणां क्षितीनाम्**=विचारशील—पितृयाणमार्ग से जानेवाली मानव प्रजाओं के **उत**=और **दैवीनाम् विशाम्**=देवयानमार्ग से जानेवाली प्रजाओं के **पूर्वयावा असि**=पहले जानेवाले (पुरोगन्ता) मार्गदर्शक हैं। हृदयस्थरूपेण आप ही इन्हें प्रेरणा देकर मार्गभ्रष्ट होने से बचाते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु स्तवन करें। इस स्तवन से प्रेरणा प्राप्त करके प्रभु की भाँति ही यज्ञशील व शक्तिसम्पन्न बनें। यही अमृतत्व की ओर प्रगति का मार्ग है। प्रभु हमारे पुरोगन्ता हों, प्रभु से प्रेरणा प्राप्त करके मार्ग पर चलते हुए हम मार्गभ्रष्ट न हों।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शर्धनीति—वर्पणीति

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः।
अहन्व्यं ∫ समुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम्॥ ३॥

१. **शर्धनीतिः**=शत्रु हिंसक बल को प्राप्त करानेवाला **इन्द्रः**=शत्रु द्रावक प्रभु **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **अवृणोत्**=रोक देता है। यह **वर्पणीतिः**=तेजस्वीरूप को प्राप्त करानेवाला प्रभु **मायिनाम्**=मायावाले आसुरभावों को **प्र अमिनात्**=प्रकर्षेण हिंसित करता है। प्रभु

का उपासक माया का शिकार नहीं होता। ४. यह **उशधक्**=युद्ध की कामनावाले शत्रुओं का दाहक प्रभु **वनेषु**=उपासकों में वृत्र को **वि अंसम्**=विगत स्कन्ध करके **अहन्**=नष्ट कर डालता है। इसप्रकार वासना को विनष्ट करके **राम्याणाम्**=प्रभु में रमण करनेवाले उपासकों के हृदयों में **धेनाः**=ज्ञान की वाणियों को **आविः अकृणोत्**=प्रकट करता है।

भावार्थ—प्रभु उपासकों को शत्रुसंहारक व तेजस्वी बनानेवाला बल प्राप्त कराते हैं। इनकी वासनाओं को विनष्ट करके इनके हृदयों में ज्ञान की वाणियों को प्रकट करते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्वर्षाः अभिष्टिः

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय॥ ४॥

१. **स्वर्षाः**=स्वर्ग को प्राप्त करानेवाला **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **अभिष्टिः**=शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला है। यह **अहानि जनयन्**=प्रकाशमय दिनों को प्रादुर्भूत करता हुआ—अज्ञानान्धकारमयी रात्रियों को दूर करता हुआ **उशिग्भिः**=युद्ध की कामनावाले आसुरभावों से युद्ध करके **पृतनाः**=शत्रु-सैन्यों को **जिगाय**=जीतता है। २. प्रभु **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिए **अह्नाम्**=दिनों के **केतुम्**=प्रज्ञापक सूर्य को **प्रारोचयत्**=आकाश में दीप्त करते हैं—मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानसूर्य को उदित करते हैं और **बृहते रणाय**=महान् रमणके लिए—मोक्षसुख में विचरने के लिए **ज्योतिः**=ज्ञानज्योति को **अविन्दत्**=प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही उपासकों के हृदयों में प्रकाश करते हुए वासनान्धकार को विनष्ट करते हैं। विचारशील पुरुषों के हृदयों में ज्ञानज्योति को दीप्त करके उन्हें मोक्षसुख प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वासना-विनाश व बुद्धिदीपन

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम्॥ ५॥

१. **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावक प्रभु **बर्हणाः**=अभिवृद्ध—बढ़ी हुई **तुजः**=हिंसक शत्रुसेनाओं में **आविवेश**=ऐसे प्रविष्ट होते हैं, **नवृत्**=जैसकि एक सेनानी शत्रु-सेनाओं में युद्ध के लिए प्रवेश करता है, अर्थात् प्रभु ही हमारे शत्रुओं का विनाश करते हैं। ये प्रभु **पुरूणि**=बहुत **नर्या**=नरहितकारी कार्यों को **दधानः**=धारण करते हैं। २. ये प्रभु **जरित्रे**=स्तोता के लिए **इमाः धियः**=इन बुद्धियों को **अचेतयत्**=चेतनायुक्त करते हैं तथा **आसाम्**=इनके **इमं शुक्रं वर्णम्**=दीप्त रूप को **प्रातिरत्**=बढ़ाते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार करते हैं और हमारी बुद्धियों को चेताते हुए उन्हें दीप्तरूप बनाते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वृजन से वृजिन का संपोषण

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः॥ ६॥

१. **अस्य**=इस **महः**=महान्—गुणों से प्रवृद्ध **इन्द्रस्य**=शक्तिशाली कर्मों के करनेवाले प्रभु के

महानि=महान् **सुकृता**=सुष्ठु सम्पादित **पुरुणि**=पालक व पूरक **कर्म**=कर्मों को **पनयन्ति**=स्तोता लोग स्तुत करते हैं। प्रभु के महान् कर्म सचमुच स्तुति के योग्य हैं। २. प्रभु **वृजनेन**=शत्रुओं के आवर्जक बल से (विनाशक बल से) **वृजिनान्**=पापरूप असुरों को **संपिपेष**=सम्यक् चूर्ण कर देते हैं। **अभिभूत्योजाः**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले बल से युक्त वे प्रभु **मायाभिः**=अपनी शक्तियों व प्रज्ञानों से **दस्यून्**=विनाशक शत्रुओं को (दसु उपक्षये) पीस डालते हैं।

भावार्थ—प्रभु के कर्म महान् व हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं। प्रभु बल से आसुर भावों को पीस डालते हैं, प्राज्ञानों द्वारा दस्युओं का विनाश कर देते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

युधा देवेभ्यः वरिवः चकार

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७ ॥

१. **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **युधा**=युद्ध के द्वारा आसुरवृत्तियों को युद्ध में विनष्ट करने के द्वारा **मह्ना**=अपनी महिमा से **देवेभ्यः**=देववृत्तिवाले पुरुषों के लिए **वरिवः**=वरणीय धन को **चकार**=सम्पादित करते हैं। प्रभु **सत्पतिः**=सज्जनों के रक्षक हैं। **चर्षणिप्राः**=श्रमशील मनुष्यों की कामनाओं को (प्रा पूरणे) पूर्ण करनेवाले हैं। २. **विवस्वतः**=विशेषेण अग्निहोत्र आदि कर्मों के लिए निवास करते हुए यजमान के **सदने**=घर में **विप्राः**=मेधावी **कवयः**=क्रान्तप्रज्ञ ज्ञानी पुरुष **अस्य**=इस इन्द्र के **तानि**=उन प्रसिद्ध वृत्रवध आदि कर्मों को **उक्थेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा **गृणन्ति**=उच्चरित करते हैं। ये ज्ञानी यज्ञशील पुरुषों के गृह में सम्मिलित होकर प्रभु के गुणों का गायन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु आसुरवृत्तियों को विनष्ट करके देवों के लिए वरणीय धन प्राप्त कराते हैं। यज्ञशील पुरुष के घर में एकत्र होकर ज्ञानी लोग प्रभु की महिमा का गायन करते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

धीरणासः इन्द्रम् अनुमदन्ति

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्व᳡रपश्च देवीः।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

१. **धीरणासः**=(धीषु रमणं येषाम्) ज्ञानपूर्वक कर्मों में रमण करनेवाले स्तोता लोग **इन्द्रम् अनुमदन्ति**=उस आनन्दमय प्रभु के अनुभव के अनुपात में आनन्द का अनुभव करते हैं। जितना जितना उन्हें प्रभु का साक्षात् होता है, उतना उतना आनन्द की अनुभूति प्राप्त करते हैं। ये उस प्रभु को अपने हृदयों में हर्षित करते हैं जोकि **सत्रासाहम्**=एक प्रयत्न से ही सब शत्रु- सेनाओं का अभिभव करनेवाले हैं, **वरेण्यम्**=अतएव वरणीय हैं। **सहोदाम्**=हमें शत्रुमर्षक बल प्राप्त करानेवाले हैं। **स्वः**=प्रकाश को **च**=तथा **देवीः अपः**=दिव्य कर्मों को **ससवांसम्**=प्राप्त करानेवाले हैं। प्रभु का उपासक सदा प्रकाश व दिव्य कर्मों को प्राप्त करता है। प्रभु से ज्ञान प्राप्त करके यह सदा उत्तम कर्मों को करनेवाला होता है। २. उस इन्द्र का ये अनुमदन करते हैं **यः**=जोकि **पृथिवीम्**=पृथिवी को—विस्तृत अन्तरिक्ष को **द्याम्**=द्युलोक को **उत**=और **इमाम्**= इस पृथिवी को **ससान**=मनुष्यों के लिए देता है।

भावार्थ—प्रभु हमें शत्रु-मर्षक बल प्राप्त कराते हैं, प्रकाश व दिव्य कर्मों को प्राप्त कराते हैं। प्रभु हमारे लिए त्रिलोकी को देते हैं—मस्तिष्क, हृदय व स्थूलशरीर को प्राप्त कराते हैं। इस

प्रभु का हम बुद्धिपूर्वक कर्मों द्वारा स्तवन करते हुए आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

दस्युहनन+आर्यरक्षण

सुसानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत्॥ ९॥

१. **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **अत्यान्**=अतन (गति) के योग्य—गति के साधनभूत—अश्वों को (तुरग-गज-उष्ट्र आदि वाहनों को) **ससान**=प्राणियों के व्यवहार के लिए देते हैं। **उत**=और **सूर्यम्**=सबके प्रकाशक सूर्य को **ससान**=देते हैं। वे प्रभु **पुरुभोजसम्**=प्राणियों का खूब ही पालन करनेवाली—दूध-दही आदि अनेक भोगसाधनों को प्राप्त करानेवाली **गाम्**=गौ को **ससान**=देते हैं २. **उत**=और **हिरण्ययम्**=हिरण्य-विकारात्मक **भोगम्**=भोगसाधन कटक-मुकुट आदि को **ससान**=वे प्रभु देते हैं। वे प्रभु जीवन-यात्रा की पूर्ति के लिए सब साधनों को उपस्थित करके **दस्यून् हत्वी**=मार्ग में विघातकरूप से प्राप्त होनेवाले दस्युओं (चोर, डाकुओं) को समाप्त करके **आर्यं वर्णम्**=आर्य वर्ण को **प्रावत्**=रक्षित करते हैं—श्रेष्ठ कर्मों में निरत पुरुषों का प्रभु रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक सब साधनों को प्राप्त कराते हैं और मार्ग में विघ्नरूप से उपस्थित होनेवाले दस्युओं का विनाश करके श्रेष्ठ लोगों का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'वल, विवाच् व अभिक्रतु' का निराकरण

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम्।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम्॥ १०॥

१. **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **ओषधीः**=व्रीहि-यव आदि ओषधियों को **असनोत्**=प्राणियों के उपभोग के लिए देते हैं तथा **अहानि**=कार्यों को कर सकने के लिए प्रकाशमय दिनों को प्राप्त कराते हैं। **वनस्पतीन् असनोत्**=आम्र-वट आदि वनस्पतियों को प्राप्त कराते हैं और **अन्तरिक्षम्**=गमनागमन की सुविधा के लिए आकाश को देते हैं। २. हमारे जीवन-मार्ग में अज्ञानान्धकार के आवरणरूप **वलम्**=वलासुर को **बिभेद**=विदीर्ण करते हैं। **विवाचः**=विरुद्ध=प्रतिकूल वाणीवाले लोगों को भी **नुनुदे**=हमसे दूर निराकृत करते हैं। **अथ**=अब **अभिक्रतूनाम्**=अभिचार यज्ञरूप शास्त्रविरुद्ध कर्मों के करनेवालों के **दमिता अभवत्**=दमन करनेवाले होते हैं। एवं, ये 'वल, विवाच् व अभिक्रतु' हमारी जीवन-यात्रा में विघ्न नहीं कर पाते। इसप्रकार प्रभु प्राणियों की इष्ट प्राप्ति व अनिष्टपरिहार करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु सब ओषधि-वनस्पति आदि पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। अज्ञान के आवरण को दूर करते हैं। विरुद्धवाणी व विरुद्ध कर्मोंवाले लोगों को हमसे पृथक् करते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

भरे नृतमम्, समत्सु वृत्राणि घ्नन्तम्

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥ ११॥

१. **शुनम्**=आनन्दमय व सुखकर उस **मघवानम्**=ऐश्वर्यशाली **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को **अस्मिन् भरे**=इस जीवन-संग्राम में **हुवेम**=पुकारते हैं। **वाजसातौ** (वाजस्य सातिर्यस्मिन्)=शक्ति

प्राप्त करानेवाले इस संग्राम में वे प्रभु **नृतमम्**=हमारे उत्कृष्ट नेता हैं। वस्तुतः संघर्ष में ही शक्ति है। २. **शृण्वन्तम्**=हमारे आह्वान को सुननेवाले, **उग्रम्**=उद्गूर्ण बलवाले उस प्रभु को **समत्सु**=संग्रामों में **ऊतये**=रक्षण के लिए पुकारते हैं, जो प्रभु **वृत्राणि घ्नन्तम्**=ज्ञान के आवरक शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले हैं और **धनानां सञ्जितम्**=ज्ञानैश्वर्यों का विजय करनेवाले हैं।

भावार्थ—हम संग्राम में सदा विजय प्राप्त करानेवाले प्रभु को पुकारते हैं। प्रभु शत्रुओं को विनष्ट करके हमें ऐश्वर्यशाली बनाते हैं।

सब शत्रुओं को वश में करनेवाले व निवास को उत्तम बनानेवाले 'वसिष्ठ' अगले सूक्त के ऋषि हैं। सातवें मन्त्र में ये 'अत्रि' हो जाते हैं—जिसमें 'काम-क्रोध-लोभ' तीनों का अभाव है—

१२. [द्वादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु-स्तवन व ज्ञान-वृद्धि

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि॥ १॥

१. हे उपासको! तुम **श्रवस्या**=ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से **ब्रह्माणि**=स्तुतिमन्त्रों का—स्तोत्रों का **उ**=निश्चय से **उत् ऐरत**=उच्चारण करो। हे **वसिष्ठ**=अपने जीवन को उत्तम बनानेवाले यजमान! तू **समर्ये** (मर्या-मर्यादा)=मर्यादायुक्त यज्ञों में, सभाओं में (सह मर्या यत्र) **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **महय**=पूज, समाजों में व्यक्तिपूजन न होकर केवल प्रभु पूजन होगा तो मनुष्यों का परस्पर विरोध न होकर प्रेम बढ़ेगा। व्यक्तिपूजा से भेदभाव बढ़ता है। २. **यः**=जो इन्द्र **शवसा**=बल के द्वारा **विश्वानि**=सब भूतों को **आततान**=विस्तृत करते हैं, वह इन्द्र **ईवतः**=(गच्छतः) क्रियाशील—यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में लगे हुए **मे**=मेरे **वचांसि**=स्तुतिरूप वाक्यों को **उपश्रोता**=समीपता से सुननेवाले होते हैं। प्रभु अकर्मण्य की बात को तो सुनते ही नहीं। 'पूर्ण पुरुषार्थ' के उपरान्त ही तो प्रार्थना ठीक है। ये स्तुतिवचन ही वस्तुतः मुझे पवित्र और ज्ञान-प्राप्ति के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—मैं प्रभु का स्तवन करूँ, जीवन-यज्ञ में प्रभु का पूजन करूँ। प्रभु मुझे बल देंगे और मेरे ज्ञान की वृद्धि करनेवाले होंगे।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

देवजामिः घोषः

अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान्॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जब **देवजामिः**=दिव्य गुण हैं बन्धु जिसके, अर्थात् जो दिव्यगुणों को जन्म देनेवाला है, वह **घोषः**=स्तोत्र—स्तुतिवचन **अयामि**=(अकारि) हमसे नियमितरूप से किया गया है तब इस **विवाचि**=विशिष्ट स्तुति-वाणीवाले यजमान में **शुरुधः**=(शुचं रुन्धन्ति) शोक-निवर्तक व स्वर्गफलक तत्त्व **इरज्यन्त**=परस्पर स्पर्धावाले होते हैं। एक-से-एक बढ़कर ये तत्त्व उसके शोक को रोकते हैं और सुख को बढ़ाते हैं। २. हे प्रभो! **जनेषु**=लोगों में **स्वमायुः**=अपनी आयु **नहि चिकिते**=नहीं जानी जाती। पता नहीं कब अन्त आ जाए, अतः आप शीघ्र ही **अस्मान्**=हमें **तानि अंहांसि**=उन आयुष्य की अल्पता के कारणभूत पापों से

इत्=निश्चयपूर्वक **अतिपर्षि**=लंघाकर पालित कीजिए।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन दिव्यगुणों का वर्धक है। हम नियम से प्रभु-स्तवन करनेवाले बनें। यह स्तवन शोकरोधक तत्त्वों को बढ़ाएगा और प्रभु हमें पापों से पार ले-जाएँगे।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गवेषणं रथम्

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान्॥ ३॥

१. मैं **गवेषणम्**=ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करानेवाले **रथम्**=इस शरीर-रथ को **हरिभ्याम्**=इन्द्रियाश्वों से **युजे**=युक्त करता हूँ। इन्द्रियों को विषयों में भटकने से रोककर मैं उन्हें संयत करता हूँ। ये संयत इन्द्रियाँ ज्ञानवृद्धि का साधन बनती हैं। **जुजुषाणमस्थुः**=सबसे सेव्यमान उस प्रभु को **ब्रह्माणि**=मेरे द्वारा उच्चरित स्तोत्र **उपस्थुः**=उपस्थित होते हैं। मैं स्तोत्रों द्वारा प्रभु का उपासन करता हूँ। **स्यः इन्द्रः**=वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **महित्वा**=अपनी महिमा से **रोदसी**=द्यावापृथिवी को **विबाधिष्ट**=आक्रान्त करते हुए अपने-अपने स्थान में थामते (रोकते) हैं। सारे संसार को वे प्रभु नियन्त्रित करते हैं और **वृत्राणि**=ज्ञान को आवृत करनेवाले काम आदि शत्रुओं को **अप्रती जघन्वान्**=(न विद्यते पुनः प्राप्तिः प्रतिगति यस्मिन्) इसप्रकार नष्ट करते हैं कि वे फिर लौट ही न सकें। चेतन जगत् में भी उपासकों के शत्रुओं का नाश प्रभु ही करते हैं।

भावार्थ—मैं इन्द्रियों को संयत करके ज्ञान-प्राप्ति में लगाता हूँ, प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करता हूँ। प्रभु ही द्युलोक व पृथिवीलोक को थामते हैं और उपासकों के वासनारूप शत्रुओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

धीभिः वाजान् (बुद्धि के साथ शक्ति)

आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान्॥ ४॥

१. **आपः**=रेतःकण (आपः रेतो भूत्वा०) **चित्**=निश्चय से **पिप्युः**=हमारे शरीरों में अभिवृद्ध होते हैं, परिणामतः **गावः**=इन्द्रियाँ **स्तर्यः न**=अब बन्ध्या (Sterile) नहीं हैं। इन रेतःकणों के रक्षण से वे अपना-अपना कार्य करने में समर्थ हुई हैं। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते जरितारः**= आपके स्तोता **ऋतं नक्षन्**=ऋत को—सत्यफलवाले यज्ञ को व सत्य वेदज्ञान को—प्राप्त होते हैं। प्रभु का स्तोता यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होता है तथा अपने ज्ञान को बढ़ानेवाला होता है। २. जिस प्रकार **वायुः**=गतिशील जीव **नियुतः**=अपने इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करता है, उसी प्रकार आप **नः अच्छा याहि**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होइए। जितना-जितना जीव इन्द्रियाश्वों को अपने समीप करता है, अर्थात् जितना-जितना उन्हें वश में करता है, उतना-उतना प्रभु के समीप हो पाता है। हे प्रभो! **त्वं हि**=आप ही **धीभिः**=बुद्धियों के साथ **वाजान्**=शक्तियों को **विदयसे**=देते है (प्रयच्छसि सा०)।

भावार्थ—सोम-रक्षण से इन्द्रियाँ सशक्त बनती हैं। प्रभु के स्तोता ऋत को प्राप्त करते हैं—यज्ञों को व वेदज्ञान को प्राप्त करते हैं। जितना-जितना हम इन्द्रियों को वश में करते हैं, उतना-उतना ही प्रभु को प्राप्त करते हैं। प्रभु हमें बुद्धि के साथ शक्तियाँ देते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शुष्मिणं तुविराधसम्

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिन्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **ते मदाः**=वे उल्लासजनक सोमकण शरीर में रक्षित हुए हुए **त्वा मादयन्तु**=आपको आनन्दित करें। जब हम सोमकणों का रक्षण करें तो आपके प्रकाश को हृदयों में अधिक अधिक देख पाएँ। उन आपको, जोकि **जरित्रे**=स्तोता के लिए **शुष्मिणम्**=शक्ति देनेवाले हैं और **तुविराधसम्**=महान् ऐश्वर्यवाले हैं। २. हे प्रभो! **एकः**=आप अकेले **हि**=ही **देवत्रा**=सब देवों में **मर्तान्**=मनुष्यों को **दयसे**=रक्षित करते हैं। प्रभु अपने स्तोता को दिव्यगुणों में स्थापित करते हैं। हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! आप **अस्मिन् सवने**=इस जीवन-यज्ञ में **मादयस्व**=हमें आनन्दित कीजिए।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोमकणों के द्वारा ही प्रभु का प्रकाश दिखता है। प्रभु स्तोता को बल व ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। प्रभु हमें दिव्यगुणों में स्थापित करते हैं और जीवन यज्ञ में आनन्दित करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वृषणं वज्रबाहुम्

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्य र्चन्त्यर्कैः।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

१. **एव**=इसप्रकार **वसिष्ठासः**=काम क्रोध को वश में करनेवाले उपासक **इत्**=निश्चय से **अर्कैः**=स्तुतिसाधक मन्त्रों के द्वारा **वृषणम्**=शक्तिशाली **वज्रबाहुम्**=वज्रहस्त—शत्रुओं को वज्र द्वारा नष्ट करनेवाले **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को **अभ्यर्चन्ति**=प्रातः सायं पूजते हैं। २. **सः**=वे **स्तुतः**=स्तुति किये गये प्रभु **नः**=हमें **वीरवत्**=उत्तम वीर सन्तानों से युक्त **गोमत्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले धन को **धातु**=दें। हे देवो! आप सब **स्वस्तिभिः**=कल्याणों के साथ **सदा नः पात**=सदा हमारा रक्षण करो।

भावार्थ—हम वसिष्ठ बनकर प्रभु का अर्चन करें। प्रभु हमें वीरों व प्रशस्तेन्द्रियों से युक्त धन दें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

माध्यन्दिने सवने मत्सत् इन्द्रः

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ७ ॥

१. **ऋजीषी**=(ऋजु+इष्) वे प्रभु हृदयस्थ होकर सदा सरलता की प्रेरणा देनेवाले हैं। **वज्री**=क्रियाशीलतारूप व्रज को हाथ में लिये हुए हैं। **वृषभः**=सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। **तुराषाट्**=हिंसक शत्रुओं का अभिभव करनेवाले हैं। **शुष्मी**=शत्रुशोषक बलवाले हैं। **राजा**=दीप्तरूपवाले वे प्रभु **वृत्रहा**=वासनाओं का विनाश करनेवाले व **सोमपावा**=हमारे शरीरों में सोम का रक्षण करनेवाले हैं। २. **हरिभ्याम्**=इन्द्रियों से **युक्त्वा**=हमारे शरीर-रथों को योजित करके **अर्वाङ्**=हमारे अभिमुख प्राप्त होते हुए **उपयासत्**=हमें प्राप्त हों। ये **इन्द्रः**=परमेश्वर्यशाली प्रभु **माध्यन्दिने सवने**=जीवन के इस माध्यन्दिन सवन में **मत्सत्**=सोम-रक्षण द्वारा हमें आनन्दित करें।

प्रात:सवन में भी सोम रक्षण आवश्यक है। उस समय आचार्यकुल में सारा वातावरण उसके अनुकूल-सा ही होता है। सायन्तन सवन में भी वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम में सोम-रक्षण सरल है। माध्यन्दिन में—गृहस्थ के समय ही इसका रक्षण सर्वाधिक कठिन होता है। उस समय प्रभु-स्मरण इसमें सहायक होता है।

भावार्थ—ऋजुता की प्रेरणा देनेवाले प्रभु हमें वासनाओं का विजय करके सोम-रक्षण के योग्य बनाएँ। प्रभु हमें प्राप्त हों और यह प्रभु-स्मरण जीवन के मध्याह्न में भी हमें सोम-रक्षण में समर्थ करे।

यह सोमी पुरुष सुन्दर दिव्यगुणों को धारण करके 'वामदेव' बनता है। प्रशस्त इन्द्रियोंवाला होने से 'गोतम' है। वासनाओं का संहार करनेवाला यह 'कुत्स' होता है (कुथ हिंसायाम्) तथा सभी के साथ स्नेह से चलनेवाला 'विश्वामित्र' होता है। ये ही क्रमशः अगले सूक्त में ऋषि हैं—

१३. [त्रयोदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्राबृहस्पती** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

वामदेव

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम्॥ १॥

१. हे **बृहस्पते**=ज्ञान के स्वामिन्! आप **इन्द्रः च**=और इन्द्र—जितेन्द्रियता की देवता—**अस्मिन् यज्ञे**=इस जीवन-यज्ञ में **सोमं पिबतम्**=सोम का पान करो, अर्थात् मैं ज्ञानरुचिवाला व जितेन्द्रिय बनकर सोम का रक्षण कर सकूँ। जितेन्द्रियता व ज्ञानरुचिता—ये दोनों दिव्यभाव **मन्दसाना**=हमें आनन्दित करनेवाले हैं और **वृषण्वसू**=हमारे लिए वसुओं (धनों) का वर्षण करनेवाले हैं। २. हे बृहस्पते व इन्द्र! **वाम्**-आपके ये **स्वाभुवः**=(सुष्ठु सर्वतो भवन्तः= कृत्स्नशरीरव्यापिनः) सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होनेवाले **इन्दवः**=सोमकण **आविशन्तु**=शरीर में सर्वत्र प्रवेशवाले हों। हे ज्ञानरुचिते व जितेन्द्रियते! **अस्मे**=हमारे लिए **सर्ववीरम्**=सब वीर सन्तानों से युक्त **रयिम्**=धन को **नियच्छतम्**=दो।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व ज्ञानरुचिता शरीर में सोम-रक्षण का कारण बनकर हमें हर्षित करते हैं, आवश्यक वसुओं को प्राप्त कराते हैं, वीर सन्तानों से युक्त धन को देनेवाले होते हैं। ये ही हमें इस मन्त्र का ऋषि वामदेव बनाते हैं।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

गोतम

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः॥ २॥

१. हे **मरुतः**=प्राणो! **वः**=तुम्हें **रघुष्यदः**=शीघ्र गतिवाले—अपने-अपने कार्यों को स्फूर्ति से करनेवाले **सप्तयः**=इन्द्रियाश्व **आवहन्तु**=हमें प्राप्त कराएँ। वस्तुतः इन्द्रियों का अपने कार्यों में लगे रहना—आलस्य में न पड़ना प्राणशक्ति का वर्धन करता है। हे **रघुपत्वानः**=शीघ्र गतिवाले—जीवन को गतिमय बनानेवाले प्राणो! आप **बाहुभिः**=(बाह प्रयत्ने) विविध प्रयत्नों के साथ हमें **प्रजिगात**=प्राप्त होओ। प्राणशक्ति के होने पर मनुष्य सतत गतिवाला—आलस्यशून्य होता है। २. हे प्राणो! **बर्हिः सीदत**=हृदयान्तरिक्ष में आसीन होओ, हृदय को वस्तुतः तुम्हीं ने वासनाओं के उद्बर्हण से 'बर्हि' बनाना है। **वः**=तुम्हारे द्वारा **सदः**=वह हृदयासन **उरु कृतम्**=विशाल बनाया

गया है। प्राणसाधना से हृदय विशाल बनता है। हे **मरुतः**=प्राणो! **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले **अन्धसः**=सोम के द्वारा—शरीर में सोम-रक्षण के द्वारा हमारे जीवन को **मादयध्वम्**=आनन्दयुक्त करो।

भावार्थ—इन्द्रियों के अपने-अपने कर्मों में लगे रहने से प्राणशक्ति बढ़ती है। प्राणशक्ति की वृद्धि हमें आलस्यशून्य बनाती है। प्राणसाधना से हृदय पवित्र व विशाल बनता है। यह प्राण-साधना सोम रक्षण द्वारा जीवन को आनन्दमय बनाती है। इसप्रकार यह साधक 'गोतम' बनता है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

कुत्स

इमं स्तोमुमर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भुद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सुख्ये मा रिषामा वयं तव॥ ३॥

१. **अर्हते**=पूज्य **जातवेदसे**=सर्वज्ञ उस प्रभु के लिए **इमं स्तोमम्**=इस स्तोत्र को **मनीषया**=बुद्धि से—समझदारी से—विचारपूर्वक **संमहेम**=सम्यक् पूजित—निष्पादित करें। हम ज्ञानपूर्वक प्रभु का स्तवन करें। यह स्तोम **रथम् इव**=जीवन यात्रा की पूर्ति के लिए रथ के समान है। यह जीवन-यात्रा की पूर्ति का साधन बनता है। इससे हमारे सामने लक्ष्यदृष्टि उत्पन्न होती है। २. **अस्य**=इस पूजनीय प्रभु की **संसदि**=उपासना में—समीप स्थिति में **नः**=हमारी **प्रमतिः**=प्रकृष्ट बुद्धि **भद्रा**=कल्याणी होती है। हे **अग्ने**=परमात्मन्! **वयम्**=हम **तव सख्ये**=आपकी मित्रता में **मा रिषाम**=मत हिंसित होवें।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु स्तवन जीवन-यात्रा में रथ के समान होता है। प्रभु की उपासना से कल्याणी मति प्राप्त होती है। यह उपासना हमें विनष्ट नहीं होने देती।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

विश्वामित्र

ऐभिरग्ने सुरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व॥ ४॥

१. हे **अग्ने**=परमात्मन्! **ऐभिः**=इन सब देवों के साथ आप **सरथम्**=समान शरीर रथ में **अर्वाङ्**=आभिमुख्येन **आयाहि**=प्राप्त होइए। **नानारथम्**=विविध शक्तियों (देवों) से युक्त होने के कारण उस-उस देव के रथ के रूप में इस नानारथरूप शरीर को आप **वा**=निश्चय से प्राप्त होइए। **अश्वाः**=इस शरीर-रथ के ये इन्द्रियाश्व **हि**=निश्चय से **विभवः**=विशिष्ट शक्ति से युक्त हैं। प्रभु की उपासना इन्हें शक्तिशाली बनती ही है। २. हे प्रभो! आप **पत्नीवतः**=सपत्नीक—शक्तिरूप पत्नियों से युक्त—इन **त्रिंशतं त्रीन् च**=तीस और तीन—तेतीस **देवान्**=देवों को **अनुष्वधम्**=स्वधा का—आत्मधारण शक्ति का लक्ष्य करके **आवह**=प्राप्त कराइए और **मादयस्व**=हमारे जीवनों को आनन्दित कीजिए। शरीर पृथिवीलोक है, हृदय अन्तरिक्षलोक है, मस्तिष्क द्युलोक है। इन लोकों में ११-११ देवों का निवास है। प्रभु की उपासना से ये सब देव हमारे शरीर में उपस्थित होते हैं 'सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते'। आँख में सूर्य, नासिका में वायु, मुख में अग्नि, हृदय में चन्द्रमा और इसी प्रकार अन्य सब देवों की शरीर में स्थिति है। इनके साथ चौंतीसवाँ महादेव होता है। इस शरीर को धारण करनेवाला यह उपासक 'विश्वामित्र' होता है—सबके प्रति स्नेहवाला—कटुता से शून्य।

भावार्थ—सब देवों के साथ प्रभु हमें इस शरीर में प्राप्त हों। हमारा यह शरीर देव-मन्दिर बने। इस मन्दिर के पुजारी हम 'विश्वामित्र' बनें।

गत सूक्त के अनुसार यदि मैं प्रथमाश्रम में 'वामदेव'=सुन्दर दिव्यगुणोंवाला बनने का प्रयत्न करता हूँ। द्वितीयाश्रम में इन्द्रियों को विषयों में न फँसने देकर 'गोतम' बनता हूँ, तथा तृतीय आश्रम में वासनाओं का पूर्ण संहार करके 'कुत्स' होता हूँ और चौथे आश्रम में 'विश्वामित्र' बनता हूँ तो मैं सचमुच 'सोभरि' हूँ—जिसने अपना उत्तम भरण किया है। यह 'सोभरि' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

१४. [चतुर्दशं सूक्तम्]

ऋषिः—**सोभरिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**काकुभःप्रगाथः**
(विषमा+ककुप्+समा-सतोबृहती)॥

अपूर्व्य-कत्+चित्

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः। वाजे चित्रं हवामहे॥ १॥

१. हे **अपूर्व्य**=(अपूर्वेण साधुः) अद्भुतों में उत्तम, अद्भुत-तम प्रभो! **वयम्**=हम **उ**=निश्चय से **त्वाम्**=आपको **भरन्तः**=अपने में धारण करते हुए **अवस्यवः**=रक्षा की कामनावाले होते हैं। आपने ही तो हमारा रक्षण करना है। २. **स्थूरं न**=एक शक्तिशाली के समान **चित्रम्**=ज्ञान देनेवाले (चित्+र) **कश्चित्**=(कत् चित्) आनन्दमय चिद्रूप आपको **वाजे**=शक्ति-प्राप्ति के निमित्त **हवामहे**=पुकारते हैं। आपसे-शक्ति प्राप्त करके ही हम जीवन-संग्राम में सफल होंगे। आप शक्ति देते हैं, ज्ञान देते हैं और इसप्रकार हमारे जीवन को आनन्दमय बनाते हैं।

भावार्थ—हम अद्भुत-तम, शक्तिशाली, आनन्दमय, ज्ञानी प्रभु को पुकारते हैं। प्रभु से ही शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करके हम जीवन-संग्राम में सफल होते हैं।

ऋषिः—**सोभरिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**काकुभःप्रगाथः**
(विषमा+ककुप्+समा-सतोबृहती)॥

सानसिम्-अवितारम्

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वाम्**=आपको **कर्मन्**=युद्ध आदि कर्मों के प्रस्तुत होने पर **ऊतये**=रक्षा के लिए **उप**=समीपता से प्राप्त होते हैं। **यः**=जो **धृषत्**=शत्रुओं का धर्षक है, **सः**=वह **युवा**=बुराइयों को दूर करनेवाला व अच्छाइयों को हमसे मिलानेवाला, **उग्रः**=उद्गूर्ण बलवाला इन्द्र **नः**=हमें **चक्राम**=प्राप्त होता है (क्रामति)—सहायकरूप से हमारे समीप आता है। २. हे इन्द्र! परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! **सानसिम्**=(सम्भक्तारम्) सब वस्तुओं के देनेवाले **अवितारम्**=रक्षक **त्वाम् इत् हि**=आपको ही **सखायः**=मित्र बनाते हुए **ववृमहे**=वरण करते हैं।

भावार्थ—हम सम्भजनीय, रक्षक प्रभु का ही वरण करते हैं। प्रभु हमें प्राप्त होते हैं और हमारा रक्षण करते हैं। प्रभु ही हमें सब कार्यों में विजय प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**सोभरिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**काकुभःप्रगाथः**
(विषमा+ककुप्+समा-सतोबृहती)॥

वस्यः प्र आनिनाय

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे। सखाय इन्द्रमूतये॥ ३॥

१. **यः**=जो **नः**=हमारे लिए व **वः**=तुम्हारे लिए, अर्थात् सबके लिए **इदम् इदम्**=इस और इस **वस्यः**=प्रशस्त धन को **पुरा**=(पृ पालनपूरणयोः) पालन व पूरण के हेतु से **प्र आनिनाय**=प्रकर्षेण प्राप्त कराते हैं **तमु**=उसको ही **स्तुषे**=मैं स्तुत करता हूँ। २. **सखायः**=हे मित्रो! हम **ऊतये**=रक्षण के लिए **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही पुकारते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमें पालन व पूरण के लिए उत्कृष्ट वसुओं को प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**सोभरिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**काकुभःप्रगाथः** **(विषमा+ककुप्+समा-सतोबृहती)** ॥

'हर्यश्व' प्रभु

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम्॥ ४॥

१. **हर्यश्वम्**=दुःखों का हरण करनेवाले, इन्द्रियाश्वों को देनेवाले, **सत्पतिम्**=सज्जनों के रक्षक, **चर्षणीसहम्**=सब मनुष्यों के अभिभविता, अर्थात् नियन्ता उस प्रभु का हम स्तवन करते हैं। **सः**=वह प्रभु **हि**=ही **स्म**=निश्चय से स्तुत्य हैं। **यः**=जो **अमन्दत**=आनन्दमय होते हुए स्तोताओं को आनन्दित करते हैं। २. **सः मघवा**=वे ऐश्वर्यशाली प्रभु **तु**=तो **नः स्तोतृभ्यः**=हम स्तोताओं के लिए **शतम्**=शतवर्षपर्यन्त **गव्यम्**=ज्ञानेन्द्रियों के समूह को तथा **अश्व्यम्**=कर्मेन्द्रियों के समूह को **आवयति**=प्राप्त कराते हैं (वी गत्यादिषु)।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमारे लिए उत्तम इन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं।
प्रशस्त इन्द्रियों को प्राप्त करनेवाला स्तोता 'गोतम' है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

१५. [पञ्चदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'मंहिष्ठ-सत्यशुष्म' प्रभु

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम्॥ १॥

१. **मंहिष्ठाय**=दातृतम—सर्वाधिक देनेवाले, **बृहते**=महान्, **बृहद्रये**=प्रभूत धनवाले—सर्वैश्वर्य सम्पन्न, **सत्यशुष्माय**=सत्य (यथार्थ) बलवाले प्रभु के लिए, **तवसे**=बल की प्राप्ति के लिए, **मतिम्**=मननपूर्वक की गई स्तुति को **भरे**=करता हूँ। प्रभु स्तवन से ही तो बल प्राप्त होता है। २. **यस्य**=जिस प्रभु का **विश्वायु**=सम्पूर्ण मनुष्यों का पालन करनेवाला **राधः**=ऐश्वर्य **प्रवणे**=अवनत प्रदेश में **अपाम् इव**=जलों के प्रवाह के समान **दुर्धरम्**=रोका नहीं जा सकता। यह प्रभु का ऐश्वर्य **शवसे**=उपासक के बल के लिए **अपावृतम्**=अपगत आवरणवाला होता है। प्रभु का यह ऐश्वर्य बल प्राप्त कराता ही है।

भावार्थ—प्रभु सर्वमहान् दाता हैं। हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु का ऐश्वर्य हमारे लिए शक्ति देनेवाला होता है।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु-पूजन की सहजवृत्ति

अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः॥ २॥

१. **अध**=अब, हे इन्द्र! **ते इष्टये**=आपके पूजन के लिए **विश्वम्**=सम्पूर्ण जगत् **ह**=निश्चय से **अनु असत्**=अनुकूल हो। हमारी सारी परिस्थिति इसप्रकार की हो कि हम आपका पूजन कर सकें। **हविष्मतः**=यज्ञशील पुरुष के **सवना**=जीवन के तीनों सवन—प्रातःसवन, माध्यन्दिन-सवन व सायन्तनसवन—प्रथम २४ वर्ष, अगले ४४ वर्ष व अन्तिम ४८ वर्ष—आपकी ओर इसप्रकार अग्रसर हों, **इव**=जैसेकि **आपः निम्ना**=जल निम्नप्रदेश की ओर बहाववाले होते हैं। हम अपने जीवन में आपके प्रति सहज पूजा की वृत्तिवाले हों। २. इसलिए हम आपकी पूजावाले हों, **यत्**=जिससे कि **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष का **वज्रः**=क्रियाशीलतारूप वज्र **हर्यतः**=बड़ा कान्त (कमनीय) हो, **श्नथिता**=वासनारूप शत्रुओं का हिंसक हो और **पर्वते**=अविद्यापर्वत पर **न समशीत**=सक्त न हो जाए, अपितु उस अविद्यापर्वत का विदारण करनेवाला ही बने। प्रभु का पूजन हमें इसप्रकार यज्ञ आदि उत्तमकर्मों में प्रवृत्त करेगा कि हम अविद्यापर्वत का विदारण, ज्ञान प्रकाश की प्राप्ति और वासनान्धकार को विनष्ट कर सकेंगे।

भावार्थ—हमारी सारी परिस्थिति हमें प्रभु-पूजन की ओर झुकानेवाली हो। हम सदा प्रभु-पूजन की सहज वृत्तिवाले हों। क्रियाशील बनकर अविद्या-विध्वंस करते हुए वासनाओं को दग्ध करनेवाले बनें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उषाकाल में प्रभु-पूजन

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे॥ ३॥

१. **अस्मै**=इस **भीमाय**=शत्रुओं के लिए भयंकर **पनीयसे**=स्तुत्य प्रभु के लिए **उषः न शुभ्रे**=उषाकाल के समान शुभ्र **अध्वरे**=यज्ञ में **नमसा**=नमन के साथ **सम् आभर**=अपने को सम्यक् प्राप्त करा। उपासक को चाहिए कि उषाकाल में नम्रता के साथ प्रभु की उपासना में प्रवृत्त हो। २. उस परमात्मा की उपासना में हम प्रवृत्त हों **यस्य**=जिस प्रभु का **धाम**=तेज **श्रवसे**=हमारी यशोवृद्धि के लिए होता है। जिस प्रभु का **नाम**=नामस्मरण **इन्द्रियम्**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए हितकर होता है (इन्द्रहितम्)। प्रभु-नाम-स्मरण से वासना का विनाश होता है, अतः मनुष्य जितेन्द्रिय बन पाता है। जिस प्रभु का **ज्योतिः**=प्रकाश **हरितः न**=दिशाओं की भाँति **अयसे**=गति के लिए होता है, अर्थात् जहाँ तक दिशाओं का विस्तार है, वहाँ तक प्रभु का प्रकाश फैला हुआ है। उपासक इस प्रकाश में मार्ग को देख पाता है और आगे बढ़ता है।

भावार्थ—हम प्रतिदिन उषाकाल में प्रभु-पूजन में प्रवृत्त हों। हमें प्रभु का तेज प्राप्त होगा। प्रभु का नामस्मरण हमें बल देगा। प्रभु के प्रकाश में हम मार्ग पर आगे बढ़ेंगे।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

इमे वयं ते (प्रभु के)

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः॥ ४॥

१. हे **पुरुष्टुत**=पालन व पूरण करनेवाली है स्तुति जिनकी, ऐसे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **इमे**=ये **ते वयम्**=वे हम सब **ते**=आपके हैं, **ये**=जो हे **प्रभूवसो**=प्रभूतधन प्रभो! **त्वा आरभ्य**=आपका आश्रय करके ही **चरामसि**=गति करते हैं। २. हे **गिर्वणः**=स्तुतिवाणियों से सम्भजनीय प्रभो! **त्वदन्यः**(त्वत् अन्यः)=आप से भिन्न और कोई **गिरः**=इन स्तुतिवाणियों को

नहि सघत्=नहीं सहता। स्तुत्य जो आप हैं, आपकी महिमा तो अनन्त है, उसकी तुलना में हमारे स्तुतिवचन अत्यल्प हैं, अतः हम आपकी ठीक स्तुति नहीं कर पाते, फिर भी **क्षोणीः इव**=आपकी प्रजाओं के समान जो हम हैं उन **नः**=हमारे **तत् वचः**=उन स्तुतिवचनों को **प्रतिहर्य**=प्रीतिपूर्वक ग्रहण कीजिए। ये हमसे उच्चरित स्तुतिवचन आपके लिए प्रिय हों।

भावार्थ—हम प्रभु के ही तो हैं, प्रभु के आश्रय से ही सब कार्यों को कर पाते हैं। यद्यपि स्तुत्य प्रभु की महिमा को हमारे स्तुतिवचन पूर्णतया माप नहीं पाते, तो भी हमारे ये स्तुतिवचन प्रभु के लिए प्रिय हों—हम इनके द्वारा प्रभु जैसा बनने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'अनन्त-शक्ति' प्रभु

भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृण।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे॥ ५॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **ते वीर्यम्**=आपका पराक्रम **भूरि**=महान् है। **तव स्मसि**=हम आपके ही तो हैं। हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **अस्य स्तोतुः कामम् आपृण**=इस स्तोता की कामना को पूरण कीजिए। २. यह **बृहती द्यौः**=विशाल द्युलोक **ते वीर्यम् अनु**=आपके पराक्रम से ही **ममे**=निर्मित हुआ है। **इयं च पृथिवी**=और यह पृथिवी **ते**=आपके **ओजसे नेमे**=ओज के लिए नतमस्तक होती है। वस्तुतः ये द्यावापृथिवी आपकी महिमा का ही प्रतिपादन कर रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु की शक्ति अनन्त है। प्रभु ही स्तोता की कामना को पूरण करते हैं। ये द्यावा-पृथिवी प्रभु की ही महिमा हैं।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अविद्यापर्वत का विदारण

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः॥ ६॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले **वज्रिन्**=ज्ञानव्रज को हाथ में लिये हुए प्रभो! **त्वम्**=आप **तम्**=उस **महान्**=महान् **उरुम्**=विशाल **पवर्तम्**=अविद्यापर्वत को **वज्रेण**=ज्ञान वज्र के द्वारा **पर्वशः**=एक-एक पर्व करके **चकर्तिथ**=काट डालते हैं। हृदय में प्रभु की स्थिति होते ही सब अज्ञानान्धकार विलीन हो जाता है। २. अविद्यापर्वत के विनाश के द्वारा आप **निवृताः**=वासना के आवरण से ढके हुए **अपः**=रेतःकणों को **सर्तव**=शरीर में गति के लिए **अवासृजः**=विसृष्ट करते हैं। काम के पाश से मुक्त होने पर रेतःकण शरीर में ही गतिवाले होते हैं। इसप्रकार **सत्रा**=सचमुच **विश्वम्**=सब—अंग प्रत्यंग में प्रविष्ट **केवलम्**—आनन्द में विचरण करानेवाले **सहः**=बल को **दधिषे**=धारण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ज्ञानवज्र द्वारा अविद्यापर्वत का विदारण करते हैं। इसप्रकार वासना-विनाश के द्वारा सोमकणों की शरीर में गति कराते हुए वे प्रभु हममें आनन्दप्रद बल को स्थापित करते हैं।

वासनाओं से पीड़ित न होनेवाला यह उपासक अपने अन्दर प्राणशक्ति को धारण करता है, अतः 'अयास्य' कहलाता है—अनथक। यह अगले सूक्त का ऋषि है। यह 'बृहस्पति' नाम से प्रभु का स्तवन करता है—

१६. [षोडशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु का उच्चैःस्तवन

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्य१र्का अनावन्॥ १ ॥

१. **उदप्रुतः**=जलों में विचरण करते हुए, **रक्षमाणाः**=व्याध आदि से अपना रक्षण करते हुए **वयः न**=पक्षियों के समान ऊँचा शब्द करते हुए **अर्काः**=अर्चना करनेवाले स्तोता **बृहस्पतिम्**=ज्ञान के स्वामी उस महान् देव को **अभि अनावन्**=अभिष्टुत करते हैं। २. यह प्रभु का स्तवन इन स्तोताओं को भी वासनारूप शत्रुओं से बचाता है। ये उपासक काम-क्रोध आदि के शिकार नहीं हो जाते। २. **वावदतः**=खूब ही गर्जना के शब्दों को करते हुए **अभ्रियस्य**=मेघसमूह के **घोषाः**=शब्दों की **इव**=भाँति ये स्तोता उस प्रभु के स्तुतिशब्दों का उच्चारण करते हैं। इन स्तोताओं का यह स्तुतिपाठ मेघध्वनि के समान गम्भीरता को लिये हुए होता है। ३. **गिरिभ्रजः**=पर्वतों से निकलनेवाले **मदन्तः**=सस्य आदि को तृप्त करते हुए **ऊर्मयः न**=(current, flow) जल-प्रवाहों के समान शब्द करते हुए ये उपासक प्रभु का स्तवन करते हैं। इन उपासकों का यह स्तवन भी एक अद्भुत तृप्ति का साधन बनता है।

भावार्थ—जलचर पक्षियों के समान, गर्जना करते हुए मेघों की ध्वनि के समान, पर्वत से प्रवाहित होते हुए झरनों के समान शब्द करते हुए ये उपासक प्रभु-स्तवन करते हैं। यह स्तवन उन्हें वासनाओं के आक्रमण से बचाता है। यह उनमें गम्भीरता व हर्ष उत्पन्न करता है। एवं यह स्तोता 'अनासक्त, गम्भीर व उल्लासमय जीवनवाला होता है।'

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

गोभिः नक्षमाणः

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भगइवेदर्यमणं निनाय।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ॥ २ ॥

१. **गोभिः**=स्तुतिवाणियों से व ज्ञानवाणियों से **नक्षमाणः**=व्याप्त होता हुआ **अङ्गिरसः**=यह रसमय अंगोंवाला उपासक **अर्यमणम्**=शत्रुओं के नियामक उस प्रभु को **इत्**=निश्चय से **भगः इव**=ऐश्वर्य के समान (भगम् इव) **संनिनाय**=अपने हृदय में प्राप्त कराता है। प्रभु का हृदय में स्मरण करता है—प्रभु को ही अपना ऐश्वर्य समझता है। यहाँ 'अंगिरसः' शब्द शरीर के पूर्ण स्वास्थ्य का संकेत कर रहा है, 'गोभिः नक्षमाणः' पद ज्ञान का संकेत करते हुए मस्तिष्क की दीप्ति का उल्लेख करते हैं तथा 'अर्यमणं' शब्द शत्रुसंयम द्वारा मन की निर्मलता को कह रहे हैं। २. वह प्रभु **जने**=प्राणिसमूह में **मित्रः न**=मित्र के समान **दम्पती**=इन उपासक पति-पत्नी को **अनक्ति**=प्राप्त होता है (गच्छति)। हे **बृहस्पते**=ब्रह्मणस्पते प्रभो! **आजौ**=संग्राम में **आशून् इव**=शीघ्रगामी अश्वों के समान **वाजय**=इन पति-पत्नी को आप गमन के लिए प्रेरित कीजिए (वज गतौ)। आपके उपासक इस जीवन-संग्राम में शत्रुओं को जीतते हुए आगे बढ़ें।

भावार्थ—स्तुति करते हुए हम प्रभु को ही अपना ऐश्वर्य जानें। प्रभु को हृदय में आसीन करें। प्रभु मित्र के समान हमें प्राप्त होते हैं और हमें जीवन-संग्राम में गतिशील बनाते हैं।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पर्वतेभ्यः वितूर्य

साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः॥ ३॥

१. **बृहस्पतिः**=ब्रह्मणस्पति—ज्ञान के स्वामी प्रभु **गाः**=इन्द्रियों को **पर्वतेभ्यः**=अविद्यापर्वतों से **वितूर्य**=पृथक् करके—बाहर करके **निः ऊपे**=स्तोताओं के लिए (निर्वपति-प्रयच्छति) देते हैं। **इव**=जिस प्रकार **स्थिविभ्यः**=कुसूलों से—खत्तियों से निकालकर **यवम्**=जौ को। अथवा **स्थिविभ्यः**=स्थिर यवकाण्डों से पृथक् करके यवों को हमारे लिए देते हैं। २. ये इन्द्रियाँ **साधु अर्याः**=सदा उत्तम कार्यों की ओर गतिवाली होती हैं। **अतिथिनीः**=प्रभुरूप अतिथि की ओर निरन्तर चलनेवाली होती हैं, अतएव ये **इषिराः**=एषणीय (चाहने योग्य) व **स्पार्हाः**=सबसे स्पृहणीय, **सुवर्णाः**=उत्तम वर्ण (रूप) वाली व **अनवद्यरूपाः**=प्रशस्तरूपवाली होती हैं।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करें। प्रभु हमें पवित्र इन्द्रियों को प्राप्त कराएँगे। हमारी इन्द्रियाँ अविद्यापर्वत से बाहर आ जाएँगी।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अर्कः-बृहस्पतिः

आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद॥ ४॥

१. **मधुना**=जीवन को मधुर बनानेवाले सोम (वीर्य) के द्वारा **आप्रुषायन्**=शरीर-भूमि को सर्वतः सिक्त करता हुआ और **ऋतस्य योनिम्**=सत्य वेदज्ञान के उत्पत्तिस्थान प्रभु को **अवक्षिपन्**=(अवाङ् मुखं प्रेरयन्) अपने अन्दर प्रेरित करता हुआ **अर्कः**=उपासक **त्वचम्**=अज्ञानान्धकार के आवरण को **विबिभेद**=विदीर्ण कर डालता है। इसप्रकार विदीर्ण कर डालता है, **इव**=जैसेकि **उद्ना**=जल से **भूम्याः**=भूमि की त्वचा को विदीर्ण कर दिया जाता है। २. यह उपासक **द्योः उल्काम् इव**=जिस प्रकार आकाश से उल्का (flame) अग्नि ज्वाला को, इसीप्रकार ज्ञान को अपने अन्दर प्रेरित करता हुआ **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी बनता है और **अश्मनः**=अविद्यान्धकाररूप पर्वत से **गाः**=इन्द्रियरूप गौओं को **उद्धरन्**=उद्धृत करता हुआ होता है। धीमे-धीमे अविद्या के विनाश के द्वारा सब इन्द्रियों को दीप्त करनेवाला बनता है।

भावार्थ—हम शरीर में सोम का सर्वतःसेचन करें। प्रभु व ज्ञान को अपने हृदयों में प्रेरित करते हुए इन्द्रियों को अविद्यान्धकार से बाहर करें।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उद्नः शीपालम् इव

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत्।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः॥ ५॥

१. **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **ज्योतिषा**=ज्ञान-ज्योति के द्वारा **अन्तरिक्षात्**=हमारे हृदयान्तरिक्ष से **तमः**=अन्धकार को **अप आजत्**=दूर फेंक देता है, **इव**=जैसेकि **वातः**=वायु **उद्नः**=पानी पर से **शीपालम्**=शैवाल—काई को दूर फेंक देता है। प्रभु ज्योति के द्वारा अज्ञानान्धकार को इसीप्रकार परे फेंक देते हैं जैसेकि तेज़ वायु पानी पर से काई को परे फेंक देती है। २. वे प्रभु **वलस्य**=ज्ञान के आवरणभूत कामरूप आसुरभाव को **अनुमृश्य**=क्रमशः दूर

करके (मृश्=to remove, rule off) **गाः आचक्रे**=चारों ओर ज्ञान-रश्मियों को फैलानेवाले होते हैं। प्रभु काम (वृत्र) को इसप्रकार दूर कर देते हैं, **इव**=जैसेकि **वातः**=वायु **अभ्रम्**=मेघ को दूर कर देता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे हृदयान्तरिक्ष से अन्धकार को ज्योति के द्वारा इसप्रकार भगा देते हैं, जैसे तेज वायु मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वल जसु-भेदन

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्त्रियाणाम्॥ ६ ॥

१. **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **यदा**=जब **पीयतः**=हिंसा करनेवाले **वलस्य**=ज्ञान के आवरणभूत काम के **जसुम्**=विनाशक प्रभाव को **अग्नितपोभिः**=अग्नि के समान दीप्त **अर्कैः**=अर्चन-साधन मन्त्रों से **भेद्**=विनष्ट कर डालता है तब **उस्त्रियाणाम्**=ज्ञानरश्मियों (light) के **निधीन्**=कोशों को **आविः अकृणोत्**=प्रकट करता है। २. **न**-जिस प्रकार **जिह्वा परिविष्टम्**=जिह्वा परोसे हुए भोजन को **दद्भिः**=दाँतों से **आदत्**=खाती है, उसीप्रकार प्रभु वल-वृत्र=काम के विनाशक प्रभाव को खा जाते हैं। हृदय में प्रभु के आसीन होने पर वहाँ से काम विनष्ट हो जाता है।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान की वाणियों के द्वारा वासना-जनित अन्धकार को विनष्ट करते हैं और ज्ञान-रश्मियों के कोश को प्रकट कर देते हैं।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भम्

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत्।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्त्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत्॥ ७ ॥

१. **बृहस्पतिः**=ज्ञान के स्वामी प्रभु **गुहा सदने**=बुद्धिरूप गुहा के स्थान में **स्वरीणाम्**=शब्दायमान **आसाम्**=इन ज्ञान-धेनुओं के **त्यत् नाम**=उस प्रसिद्ध (नाम-form) स्वरूप को **अमत**=जब जनाते हैं तब **हि**=निश्चय से **पर्वतस्य गर्भं भित्त्वा**=अविद्यापर्वत के गर्भ को विदीर्ण करके **उस्त्रियाः**=ज्ञानदुग्ध देनेवाली धेनुओं को **त्मना**=स्वयं ही **उदजत्**=उद्गत करते हैं। प्रभु वासना को विनष्ट करते हैं—ज्ञानरश्मियों को प्रकट करते हैं। २. प्रभु बुद्धिरूप गुहा में स्थित ज्ञान की रश्मियों को इसप्रकार प्रकट करते हैं, **इव**=जिस प्रकार **शकुनस्य**=पक्षी के **आण्डा**=अण्डों को **भित्त्वा**=विदीर्ण करके तदन्तःस्थित **गर्भम्**=गर्भ को प्रकट करते हैं।

भावार्थ—प्रभु वासना-विनाश द्वारा ज्ञानरश्मियों को हमारे हृदयों में प्रकट करते हैं।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

चमसं न वृक्षाद्

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य॥ ८ ॥

१. **बृहस्पतिः**=ब्रह्मणस्पति प्रभु ने जीव के **मधु**=जीवन को मधुर बनानेवाले ज्ञान को **अश्ना**=(अश्मना) अविद्यापर्वत से **अपिनद्धम्**=ढका हुआ **पर्यपश्यत्**=देखा। इसप्रकार देखा,

न=जैसेकि **दीने**=परिक्षीण **उदनि**=जल में **क्षियन्तम्**=निवास करते हुए **मत्स्यम्**=मछली को कोई देखता है। २. परमात्मा ने **तत्**=उस मधु को **विरवेण**=विशिष्ट शब्दों द्वारा **विकृत्य**=अविद्यापर्वत का विदारण करके **निर्जभार**=बाहर किया—प्रकट किया। इसप्रकार प्रकट किया **न**=जैसेकि **वृक्षात्**=वृक्ष से **विकृत्य**=काट कर—छील-छालकर **चमसम्**=पात्र को अलग किया जाता है। प्रभु का यही महान् अनुग्रह हैं।

भावार्थ—हृदयास्थ प्रभु विशिष्ट प्रेरणात्मक शब्दों द्वारा, अज्ञान को नष्ट करके, ज्ञान प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उषा-सूर्य-अग्नि-अर्क (मन्त्र)

सोषामविन्दत्स स्व१: सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार॥ ९ ॥

१. **सः**=वे प्रभु ही **उषाम्**=अन्धकार विनाशिनी उषा को **अविन्दत्**=प्राप्त कराते हैं। **सः**=वे ही **स्वः**=प्रकाश के साधनभूत सूर्य को प्राप्त कराते हैं। **सः**=वे **अग्निम्**=यज्ञ आदि कर्मों के लिए अग्नि को प्राप्त कराते हैं। **सः**=वे **अर्केण**=अर्चनसाधन मन्त्रों के द्वारा **तमांसि**=अज्ञानान्धकारों को **विबबाधे**=दूर बाधित करते हैं। २. (वपुषं=beauty) **गोवपुषः**=(गोभिः वपुषं यस्य) ज्ञान की वाणियों के सौन्दर्यवाले **बृहस्पतिः**=(ब्रह्म) ज्ञान के स्वामी प्रभु **वलस्य**=ज्ञान के आवरणभूत वृत्र के विदारण के द्वारा **निर्जभार**=ज्ञान-धेनु को अविद्यापर्वत की गुहा से बाहर करते हैं, **न**=जिस प्रकार **पर्वणः**-अस्थिपर्व से **मज्जानम्**=मज्जा को बाहर किया जाता है।

मन्त्र ९ तथा १० में प्रभु संकेत करते हैं कि (१) हे जीव! तू उषाकाल में प्रबुद्ध हो (२) सूर्योदय तक सारे नित्यकृत्यों को समाप्त करके (स्वः) अग्निहोत्र के लिए प्रवृत्त हो (३) तत्पश्चात् अर्चनमन्त्रों से प्रभु-पूजन करता हुआ (अर्केण) स्वाध्याय द्वारा अज्ञानान्धकार को दूर कर (तमांसि विबबाधे) (४) वल (वासना) के आवरण से (गाः) वेदवाणीरूप गौओं को बाहर निकाल। तेरे जीवन में विद्या के सूर्य व विज्ञान के चन्द्र का उदय हो (सूर्यामासा)।

भावार्थ—प्रभु 'उषा-सूर्य अग्नि व मन्त्रों' को प्राप्त कराके, वासना को विनष्ट करते हुए हमारे जीवनों को ज्ञान के सौन्दर्य से सम्पन्न करते हैं।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सूर्यामासा मिथ उच्चरातः

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः॥ १० ॥

१. **इव**=जैसे **हिमा**=बर्फ **पर्णा**=पत्तों को निःसार करके चुरा-सा लेती है, इसी प्रकार **बृहस्पतिना**=ज्ञान के स्वामी प्रभु के द्वारा **वनानि**=सम्भजनीय गोधन—ज्ञानवाणीरूप धन **मुषिता**=वृत्रासुर ने हर लिये, **वल**=ज्ञान की आवरणभूत इस वासना ने तो—वृत्र ने तो **गाः** **अकृपयत्**=इन ज्ञानवाणीरूप गौओं को बड़ा निर्बल कर दिया था (कृप् to be weak)। बृहस्पति ने वल (वृत्र) को विनष्ट करके इन ज्ञानधेनुओं को फिर से हमें प्राप्त कराया है। २. परमात्मा ने **अनानुकृत्यम्**=अन्यों से न अनुकरणीय, तथा **अपुनः**=पुनः करणरहित, अर्थात् दुबारा जिसे करने की आवश्यकता न हो इस प्रकार **चकार**=यह कर्म किया है। **यात्**=जब (यात्=यत्) हमारे जीवनों में **सूर्यामासा**=सूर्य और चन्द्र **मिथः**=परस्पर मिलकर **उच्चरातः**=उद्गत होते हैं। हमारे

जीवनों में ज्ञान का सूर्य व विज्ञान का चन्द्र इकट्ठे ही उदित होते हैं। भौतिक क्षेत्र में भी दाहिने नासिका छिद्र से सूर्यस्वर तथा बाएँ से चन्द्रस्वर उच्चरित होते हैं। ये ही प्राण और अपान हैं—ये मिलकर कार्य करते हैं। इनके ठीक कार्य करने पर हम स्वस्थ बुद्धि बनकर ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु वृत्र को विनष्ट कर ज्ञानधेनु को हमें प्राप्त कराते हैं। प्रभु का यह वृत्र-विनाश द्वारा ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त कराना एक अद्भुत ही कार्य है।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

रात्र्यां तमः, अहन् ज्योतिः

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन्।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः॥ ११ ॥

१. **पितरः**=पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त पुरुष **द्याम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को **नक्षत्रेभिः**=विज्ञान के नक्षत्रों से इसप्रकार **अपिंशन्**=अलंकृत करते हैं, **न**=जैसेकि **श्यावं अश्वम्**=(श्यैङ् गतौ) खूब गतिशील व कपिशवर्णवाले अश्व को **कृशनेभिः**=सुवर्णमय आभरणों से **अभि** (पिंशन्ति)=सजाया करते हैं। २. ये पितर **तमः**=सारे अज्ञानान्धकार को **रात्र्यां अदधुः**=रात में ही स्थापित कर देते हैं। **अहन्**=जीवन के दिनों में ये **ज्योतिः**=प्रकाश-ही-प्रकाश को स्थापित करते हैं। इनका दिन ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करने में ही बीतता है। **बृहस्पतिः**=वह ज्ञान का स्वामी प्रभु **अद्रिं भिनत्**=इनके अविद्यापर्वत का विदारण करता है और **गाः विदत्**=इन्हें ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—हम अपने मस्तिष्करूप द्युलोक को विज्ञान के नक्षत्रों से दीप्त करने का प्रयत्न करें। हमारे दिन का समय ज्ञान-प्राप्ति में ही व्यतीत हो। प्रभु भी हमारे अविद्यापर्वत का विदारण करके हमारे लिए ज्ञान-धेनुओं को प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

गौ-अश्व-वीर-नर

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात्॥ १२ ॥

१. **अभ्रियाय**=वासना के बादलों को विदीर्ण करके ज्ञान जल को प्राप्त करानेवाले प्रभु के लिए **इदं नमः**=इस नमस्कार को **अकर्म**=करते हैं। **यः**=जो प्रभु **पूर्वीः**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली ज्ञानवाणियों को **अनु**=अनुक्रम से **आनोनवीति**=आभिमुख्येन खूब ही उच्चरित करते हैं। प्रभु सृष्टि के प्रारम्भ में इस वेदज्ञान को देते हैं। २. **सः हि बृहस्पतिः**=वे ज्ञान के स्वामी प्रभु ही **गोभिः**=उत्कृष्ट ज्ञानेन्द्रियों के साथ **नः**=हमारे लिए **वयः**=जीवन को **धात्**=धारण करते हैं। **सः**=वे प्रभु **अश्वैः**=उत्कृष्ट कर्मेन्द्रियों के द्वारा, **सः वीरेभिः**=वे प्रभु वीर सन्तानों के द्वारा, **सः नृभिः**=तथा वे प्रभु उत्तम (नृ नये) पथ-प्रदर्शकों के द्वारा हमारे लिए उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु वासना के मेघों का विदारण करके हमें ज्ञानजल प्राप्त कराते हैं। उत्तम ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों व वीर सन्तानों तथा उत्तम पथ-प्रदर्शकों को प्राप्त कराके हमें उत्कृष्ट जीवन देते हैं।

अगले सूक्त का ऋषि 'कृष्णः' है, जो संसार के रंगों में न रंगा जाकर अपने जीवन को

पवित्र बनाए रखता है। यह अच्छाइयों को अपनी ओर आकृष्ट करता है और अन्त में (१२) 'वसिष्ठ' बनता है—उत्तम निवासवाला। यह प्रार्थना करता है—

१७. [सप्तदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'स्वर्विदः सध्रीचीः' मतयः

अच्छा॑ म॒ इन्द्रं॑ म॒तयः॑ स्व॒र्विदः॑ स॒ध्रीची॒र्विश्वा॑ उश॒तीर॑नूषत।
परि॑ ष्वजन्ते॒ जन॑यो॒ यथा॒ पतिं॒ मर्यं॒ न शुन्ध्युं॒ म॒घवा॑नमू॒तये॑॥ १॥

१. **मे**=मेरी **मतयः**=मननपूर्वक की गई स्तुतियाँ **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **अच्छ**= लक्ष्य करके **अनूषत**=स्तवन करती हैं। ये स्तुतियाँ **स्वर्विदः**=प्रकाश को प्राप्त करानेवाली हैं, **सध्रीचीः**=(सह अञ्चन्ति) प्रभु के साथ गतिवाली होती हैं। **विश्वाः**=प्रभु में हमारा प्रवेश करानेवाली होती हैं। **उशतीः**=प्रभु की कामनावाली होती हैं। २. ये स्तुतियाँ **ऊतये**=रक्षण के लिए **मघवानम्**= ऐश्वर्यशाली प्रभु का **परिष्वजन्ते**=इसप्रकार आलिंगन करती हैं, **यथा**= जैसेकि **जनयः**=पत्नियाँ (जनयन्ति अपत्यानि) **पतिम्**=अपने पति को तथा **न**=जैसे **शुन्ध्युम्**=जीवन को शुद्ध बनानेवाले **मर्यम्**=दूर से आये हुए पिता आदि को पुत्र आदि बन्धुजन आलिंगन करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। ये स्तुतियाँ हमें प्रभु की ओर ले चलती हैं।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

मे मनः त्वद्रिक्

न घा॑ त्व॒द्रिगप॑ वेति मे॒ मन॒स्त्वे इत्कामं॑ पुरुहूत शिश्रय।
राजे॑व दस्म॒ नि ष॒दोऽधि॑ ब॒र्हिष्य॒स्मिन्त्सु सोमे॑ऽव॒पान॑मस्तु ते॥ २॥

१. हे **पुरुहूत**=पालक व पूरक आह्वानवाले प्रभो! **त्वद्रिक्**=आपकी ओर गतिवाला **मे मनः**=मेरा मन **घ**=निश्चय से **न अपवेति**=आपसे कभी दूर नहीं होता। **त्वे इत्**=आपमें ही **कामम्**=अभिलाषा को **शिश्रय**=आश्रित करता है, अर्थात् मेरा मन सदा आपकी ओर आता है—मेरी अभिलाषा आपको ही प्राप्त करने की है। २. हे **दस्म**=शत्रुओं के विनाशक प्रभो! **राजा इव**=मेरे शासक के समान आप **बर्हिषि अधि**=इस मेरे वासनाशून्य हृदयासन पर **निषदः**=आसीन होइए। इस आसन पर बैठकर **अस्मिन् सोमे**=इस सोम के विषय में **ते**=आपका **अवपानम्**= अवपान—शरीर के अंग-प्रत्यंगों में ही रक्षण सुसम्यक्तया **अस्तु**=हो। आपके हृदयासीन होने पर यहाँ वासनाएँ न होंगी और सोम (वीर्य) शरीर में ही सुरक्षित रहेगा।

भावार्थ—हम मन को सदा प्रभु में लगाएँ, हमारी अभिलाषा प्रभु को प्राप्त करने की हो। प्रभु हमारे हृदयासन के राजा हों, जिससे शरीर में सोम का रक्षण सम्यक्तया हो।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'दारिद्र्य व क्षुधा के निवर्तक' प्रभु

वि॒षू॒वृदिन्द्रो॒ अम॑तेरु॒त क्षु॒धः स इद्रा॒यो म॒घवा॒ वस्व॒ ईशते।
तस्येदि॒मे प्र॑व॒णे स॒प्त सिन्ध॑वो॒ वयो॑ वर्धन्ति वृष॒भस्य॑ शु॒ष्मिणः॑॥ ३॥

१. **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **अमतेः**=दारिद्र्य व बुद्धिशून्यता का **विषूवृत्**=(विष्वक् वर्तयिता) चारों ओर भगा देनेवाला—नष्ट कर देनेवाला है **उत**=और **क्षुधा**=भूख को भी दूर करनेवाला है। **स इत् मघवा**=वह ऐश्वर्यशाली प्रभु ही **रायः**=दान के योग्य **वस्वः**=धन के, निवास को उत्तम

बनानेवाले ऐश्वर्य के **ईशते**=स्वामी हैं। २. **तस्य इत्**=उस प्रभु की ही **इमे**=ये **प्रवणे**=निम्न मार्ग में **सप्त**=सर्पणशील **सिन्धवः**=नदियाँ **वयः**=अन्न को **वर्धन्ति**=बढ़ाती हैं। ये नदियाँ उस **वृषभस्य**=सुखों का वर्षण करनेवाले **शुष्मिणः**=बलवान् प्रभु की हैं। प्रभु के शासन में ही ये पूर्व से पश्चिम में व उत्तर से दक्षिण में बह रही हैं। मैदानों में बहती हुई ये नदियाँ भूमि का सेचन करती हुई शक्तिवर्धक अन्न को उत्पन्न करती हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे दारिद्र्य व भूख का प्रतीकार करते हैं। वे हमें निवास के लिए आवश्यक धनों को देते हैं। उनके शासन में बहती हुई नदियाँ भूमि का सेचन करती हुई अन्न उत्पन्न करती हैं।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'स्वः आर्यं' ज्योतिः

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम्॥ ४॥

१. **न**=जैसे **वयः**=पक्षी **सुपलाशम्**=शोभन पर्णों (पत्तों) से युक्त **वृक्षम्**=वृक्ष पर **आसदन्**=असीन होते हैं, इसी प्रकार **मन्दिनः**=आनन्द का वर्धन करनेवाले **चमूषदः**=(चम्बो, द्यावापृथिव्योः) द्यावापृथिवी में—मस्तिष्क व शरीर में स्थित होनेवाले—इनको तेजस्वी व दीप्त बनानेवाले **सोमासः**=सोमकण **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष में आसीन होते हैं। २. **एषाम्**=इन चमूषद् सोमकणों का **अनीकम्**=बल (तेज) **शवसा**=शक्ति से **दविद्युतत्**=चमक उठता है और **मनवे**=विचारशील पुरुषों के लिए **स्वः**=सुख देनेवाली **आर्यम्**=श्रेष्ठ **ज्योतिः**=ज्ञानज्योति को प्रभु **विदत्**=प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हमारे शरीर में सोमकण सुरक्षित होते हैं। वे जीवन को आनन्दप्रद बनाते हैं। इनसे शरीर तेजस्वी होता है और मस्तिष्क उत्तम ज्ञानज्योति से परिपूर्ण हो जाता है।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

संवर्ग सूर्य का विजय

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः॥ ५॥

१. **देवने**=जुए के खेल में **न**=जैसे **श्वघ्नी** (कितवा)=जुआरी **कृतम्**=विजय के हेतु कृत नामक अक्ष (पासे) को **विचिनोति**=बटोर लेता है (संचित कर लेता है) इसी प्रकार **यत् मघवा**=जो ऐश्वर्यशाली प्रभु हैं, वे **संवर्गम्**=अन्धकार के संवर्तक **सूर्यम्**=सूर्य को **जयत्**=विजय करते हैं। प्रभु के हृदयासीन होते ही ज्ञानसूर्य का उदय होता है और अज्ञानान्धकार का विलय हो जाता है। २. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **तत् ते वीर्यम्**=आपके उस पराक्रम को **अन्यः**=और कोई **न पुराणः**=न तो प्राचीन काल का व्यक्ति **उत**=और **न नूतनः**=न ही अर्वाचीन काल का व्यक्ति **अनु शकत्**=अनुकरण करने के लिए समर्थ होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिए उस ज्ञानसूर्य का विजय करते हैं जो हमारे सब अन्धकार को विनष्ट कर देता है।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः॥ ६॥

१. **मघवा**=वे ऐश्वर्यशाली प्रभु **विशंविशं पर्यशायत**=प्रत्येक प्रजा में निवास करते हैं—प्रभु सर्वव्यापक हैं। **वृषा**=सबपर सुखों का सेचन करनेवाले प्रभु **जनानाम्**=लोगों की **धेनाः**=ज्ञानवाणियों को **अवचाकशत्**=प्रकाशित करते हैं। प्रभु उन्हें ज्ञान प्राप्त कराते हैं—हृदय में स्थित हुए हुए प्रभु प्रेरणा द्वारा ज्ञान देनेवाले होते हैं। २. **शक्रः**=वह शक्तिमान् प्रभु **यस्य**=जिसके **सवनेषु**=यज्ञों में—अथवा जीवन के प्रातः, मध्याह्न व सायन्तन सवनों में **रण्यति**=रमण करते हैं, अर्थात् जो प्रभु को सदा स्मरण करता है, **सः**=वह पुरुष **तीव्रैः सोमैः**=शरीर में सुरक्षित अत्यन्त शक्तिप्रद सोमकणों के द्वारा **पृतन्यतः**=संग्राम की इच्छावाले शत्रुओं को **सहते**=पराभूत करता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे हृदयों में आसीन होकर ज्ञान की वाणियों का प्रकाश करते हैं। प्रभु-स्मरण करनेवाला पुरुष सोम-रक्षण द्वारा काम-क्रोध आदि शत्रुओं व रोगों का पराभव करनेवाला होता है।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

घरों में प्रभु-स्तवन

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्याइव ह्रदम्।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना॥ ७॥

१. **यत्**=जब **सोमासः**=सोमकण **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष की **अभि समक्षरन्**=ओर गतिवाले होते हैं, उसी प्रकार **न**=जैसेकि **आपः**=जल **सिन्धुम्**=समुद्र की ओर, **इव**=जैसे **कुल्याः**=छोटी-छोटी नदियाँ **ह्रदम्**=झील की ओर, उस समय **विप्राः**=ज्ञानी पुरुष **सादने**=उपासनागृहों में—अपने घरों में **अस्य**=इस प्रभु के **महः**=माहात्म्य को **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं। २. सोमरक्षक पुरुष प्रभु के माहात्म्य का अपने घरों में इसप्रकार वर्धन करते हैं, **न**=जैसेकि **वृष्टिः**=वर्षा **दिव्येन दानुना**=अन्तरिक्ष से होनेवाले उदकदान के द्वारा **यवम्**=यव (जौ) को बढ़ाती है। यहाँ स्तवन व प्रभु माहात्म्य वर्धन की उपमा वृष्टि द्वारा यव-वर्धन से देकर यह संकेत किया गया है कि 'यव' सात्त्विक भोजन है। इसका सेवन सोम-रक्षण में भी सहायक होगा और वृत्ति को भी सात्त्विक बनाएगा—हम प्रकृति की ओर न झुककर प्रभु की ओर झुकाववाले बनेंगे।

भावार्थ—हम यव आदि सात्त्विक भोजनों का सेवन करते हुए प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले बनें और सोम का शरीर में रक्षण कर पाएँ।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

सुन्वते-जीरदानवे-हविष्मते मनवे

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते॥ ८॥

१. वह **वृषा**=सुखों का सेचन करनेवाला, **न क्रुद्धः**=कभी क्रुद्ध न होनेवाला प्रभु **रजःसु**=सब लोकों में **आपतयत्**=समन्तात् गति व प्राप्तिवाले होते हैं। सदा सर्वत्र वर्तमान वे प्रभु

सुखों का वर्षण करते हैं। **यः**=जिस प्रभु ने **इमाः अपः**=इन रेत:कणरूप जलों को **अर्यपत्नीः**=जितेन्द्रिय (इन्द्रियों के स्वामी) पुरुष की पत्नी के रूप में पालन करनेवाला **अकृणोत्**-किया है। सोमकणों के रक्षण से ये उस रक्षक का रक्षण करनेवाले होते हैं। २. **सः मघवा**=वे ऐश्वर्यशाली प्रभु **सुन्वते**=सोमाभिषव करनेवाले—शरीर में सोम का सम्पादन करनेवाले **जीरदानवे**=क्षिप्रदान पुरुष के लिए, तुरन्त दान करनेवाले पुरुष के लिए **हविष्मते**=यज्ञशील व **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिए **ज्योतिः अविन्दत्**=ज्योति प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—सब लोकों में प्राप्त होते हुए प्रभु सुखों का वर्षण करते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष के जीवन में सोमकणरूप जलों को रक्षक के रूप में प्राप्त कराते हैं। इस सोम का सम्पादन करनेवाले, क्षिप्रदानी, यज्ञशील पुरुष के लिए ज्योति देते हैं।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

परशुः ज्योतिषा सह

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत्।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्व१र्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९ ॥

१. हमारे जीवनों में **परशुः**=शत्रुओं को क्षीण करनेवाला (शो तनूकरणे) वज्र **ज्योतिषा सहः**=ज्ञान-ज्योति के साथ **उत् जायताम्**=उत्कर्षेण प्रादुर्भूत हो। हम स्वाध्याय द्वारा ज्ञान का वर्धन करें और क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा वासनाओं का विनाश करें। हमारे लिए यह वेद-धेनु **पुराणवत्**=सदा की भाँति **ऋतस्य**=सत्य-ज्ञान का **सुदुघा**=दोहन करनेवाली हो। २. हमारे हृदयों में **अरुषः**=वह आरोचमान, **भानुना**=अपने तेज से **शुचिः**=दीप्त होता हुआ प्रभु **विरोचताम्**=विशिष्ट शोभावाला हो। हम हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखनेवाले हों। **सत्पतिः**=सज्जनों के पालक प्रभु **स्वः न**=सूर्य के समान **शुक्रं शुशुचीत**=दीप्ति के साथ अतिशयेन दीप्त हों।

भावार्थ—हम ज्ञान प्राप्त करें, क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा वासनाओं का विनाश करें। हमारे हृदयों में प्रभु का प्रकाश हो।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

गोदुग्ध से दुर्गति व दुर्मति का दूरीकरण

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

१. **गोभिः**=गोदुग्धादि से हम **अमतिम्**-बुद्धिहीनता व **दुरेवाम्**=दुर्गति को **तरेम**=पार कर जाएँ। गोदुग्ध का सेवन हमें दुर्गति व दुर्मति से दूर करे। हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! हम **यवेन**=जौ के सेवन से **विश्वाम्**=सब **क्षुधम्**=भूख को दूर कर पाएँ। २. **वयम्**=हम **राजभिः**=जीवन को दीप्त व नियमित बनाने के द्वारा (राजृ दीप्तौ, राज्=regulate) **प्रथमाः**=शक्तियों का विस्तार करनेवाले होते हुए **अस्माकेन वृजनेन**=अपने बल के द्वारा **धनानि जयेम**=जीवन-धनों का विजय करनेवाले हों।

भावार्थ—गोदुग्ध का सेवन हमें दुर्मति व दुर्गति से बचाए। जौ के द्वारा हम क्षुधा का निवारण करें। जीवन को दीप्त व नियमित बनाकर शक्तियों का विस्तार करते हुए धनों का विजय करें।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'बृहस्पति+इन्द्र' का आराधन

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु॥ ११ ॥

१. **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **नः**=हमें **पश्चात्**=पीछे से **उत**=और **उत्तरस्मात्**= ऊपर से व **अधरात्**=नीचे से **अघायोः**=हमारी हिंसा (पाप) को चाहनेवाले पुरुष से **परिपातु**=सर्वथा रक्षित करें। २. **इन्द्रः**=वह शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु **पुरस्तात्**=सामने से **उत**=और **मध्यतः**=बीच से **नः**=हमारा रक्षण करे। वह **सखा**=सबका मित्र प्रभु **सखिभ्यः**=मित्रभूत हम उपासकों के लिए **वरिवः**=धन को **कृणोतु**=करे।

भावार्थ—हम ज्ञान को प्राप्त करनेवाले बनकर 'बृहस्पति' के उपासक हों, जितेन्द्रिय बनकर 'इन्द्र' के उपासक हों। ये बृहस्पति व इन्द्र हमें अघायु पुरुषों से रक्षित करें और हमारे लिए आवश्यक धनों को प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'दिव्य व पार्थिव' धन

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ १२ ॥

१. हे **बृहस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! आप **च**=और **इन्द्रः**=वह शत्रुविद्रावक प्रभु **युवम्**=आप दोनों **दिव्यस्य**=मस्तिष्करूप द्युलोक के **वस्वः**=ज्ञानधन के, **उत**=और **पार्थिवस्य**=शरीररूप पृथिवी के शक्तिधन के **ईशाथे**=ईश हैं। ज्ञानधन के ईश होने से आप 'बृहस्पति' हैं, शक्तिधन के ईश होने से 'इन्द्र' हैं। २. आप **स्तुवते**=स्तुति करते हुए इस **कीरये चित्**=स्तोता के लिए भी **रयिं धत्तम्**=ऐश्वर्य का धारण कीजिए। **यूयम्**=आप सब देव **स्वस्तिभिः**= कल्याणों के द्वारा **सदा**=सदा **नः**=हमारा **पात**=रक्षण कीजिए।

भावार्थ—'बृहस्पति' हमें ज्ञानधन दें। 'इन्द्र' शक्तिधन प्राप्त कराएँ। इसप्रकार सब देव हमारा रक्षण करनेवाल हों।

देवों से रक्षित होकर हम 'मेधातिथि व प्रियमेध' बनते हैं। यह मेधा का प्रिय व्यक्ति ही उत्तम जीवनवाला 'वसिष्ठ' बन जाता है। अगले सूक्त में ये ही प्रथमत्रिक व द्वितीयत्रिक के ऋषि हैं—

१८. [अष्टादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मेधातिथिः प्रियमेधश्च** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

तदिदर्थाः-त्वायन्तः

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवान् प्रभो! **वयम्**=हम उ=निश्चय से **तदिदर्थाः**=(तदेव स्तोत्रं अर्थः प्रयोजनं येषाम्) आपके स्तोत्ररूप प्रयोजनवाले ही हैं। **त्वायन्त**=(त्वाम् आत्मन इच्छन्तः) आपको ही प्राप्त करने की कामनावाले हैं। **त्वा सखायः**=(तव) आपके ही मित्र हैं। २. **कण्वाः**=मेधावी पुरुष **उक्थेभिः**=स्तोत्रों से **त्वा जरन्ते**=आपका ही स्तवन करते हैं।

भावार्थ—हमारा प्रयोजन एकमात्र प्रभु प्राप्ति हो। प्रभु-प्राप्ति की हम कामनावाले हों। प्रभु

के ही मित्र हों। प्रभु का ही स्तवन करें।

ऋषिः—**मेधातिथिः प्रियमेधश्च**॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—**गायत्री**॥

एकमात्र प्रभु का ही स्तवन

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ। तवेदु स्तोमं चिकेत॥ २॥

१. हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! हम **अपसः**=यज्ञरूप कर्मों के **नविष्टौ**=(नवायां इष्टौ) नव प्रारम्भ में, अर्थात् प्रत्येक कर्म को करने के अवसर पर **घा ईम्**=निश्चय **अन्यत् न आपपन**=किसी अन्य के स्तोत्र को नहीं करते। २. मैं **इत्**=निश्चय से **तव उ**=आपके ही **स्तोत्रम्**=स्तोत्र को **चिकेत**=जानता हूँ।

भावार्थ—प्रभु को छोड़कर हम किसी अन्य का स्तवन न करें। प्रत्येक कर्म के आरम्भ में हम प्रभु का स्मरण करें।

ऋषिः—**मेधातिथिः प्रियमेधश्च**॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—**गायत्री**॥

सुन्वन्, नकि स्वप्नक् (शयालु)

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। यन्ति प्रमादमतन्द्राः॥ ३॥

१. **देवाः**=सब देव **सुन्वन्तं इच्छन्ति**=यज्ञशील पुरुष को चाहते हैं। **स्वप्नाय**=मूर्तिमान् स्वप्न के लिए—बड़े सोंदू पुरुष के लिए—**न स्पृहयन्ति**=स्पृहा-(प्रेम व इच्छा)-वाले नहीं होते। २. इस संसार में **अतन्द्राः**=आलस्यशून्य पुरुष ही **प्रमादं यन्ति**=प्रकृष्ट हर्ष को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—यज्ञशीलता ही हमें देवों का प्रिय बनाती है। आलस्य हमें उनका अप्रिय बना देता है। उद्यमी पुरुष ही उत्कृष्ट आनन्द के भागी होते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—**गायत्री**॥

अभि प्रणोनुमः

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन्। विद्धी त्व१स्य नो वसो॥ ४॥

१. हे **वृषन्**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले **इन्द्र**=प्रभो! **वयम्**=हम **त्वायवः**=आपको प्राप्त करने की कामनावाले होते हुए **अभि प्रणोनुमः**=आभिमुख्येन खूब ही स्तवन करते हैं। २. हे **वसो**=निवासक प्रभो! **नः**=हमारे **अस्य**=इस स्तोत्र को **विद्धी तु**=आप अवश्य जानिए ही। हम आपका स्तवन करें। यह स्तवन हमें आपका प्रिय बनाए। इस स्तवन से हम कुछ आपसे ही बन पाएँ।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। यह स्तवन हमें पवित्र जीवनवाला बनाता हुआ प्रभु का प्रिय बनाए।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—**गायत्री**॥

न निन्दा, न कठोरभाषण, न कृपणता

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे। त्वे अपि क्रतुर्मम॥ ५॥

१. हे प्रभो! **अर्यः**=स्वामी आप **नः**=हमें **निदे**=निन्दक के लिए **मा रन्धीः**=मत वशीभूत कीजिए। **च**=और **वक्तवे**=बहुत व कठोर बोलनेवाले के लिए वशीभूत मत कीजिए। **अराव्णे**=अदानशील के लिए वशीभूत मत कीजिए। हम निन्दा—कठोर-भाषण व कृपणता से दूर हों। २. हे प्रभो! **मम क्रतुः**=मेरा संकल्प व स्तुतिरूप कर्म **अपि**=भी **त्वे**=आपके विषय में ही हो। मैं आपको ही चाहूँ, आपका ही स्तवन करूँ।

भावार्थ—हम निन्दा, कटुभाषण व कृपणता से दूर रहकर प्रभु की प्राप्ति की कामनावाले हों—प्रभु का ही स्तवन करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सप्रथः-पुरोयोधः

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन्। त्वया प्रति ब्रुवे युजा॥ ६॥

१. हे **वृत्रहन्**=सब वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **सप्रथः**=अतिशयेन शक्तियों के विस्तारवाले हो, **च**=और **पुरोयोधः**=संग्राम में आप ही आगे होकर हमारे शत्रुओं से युद्ध करते हो। आप **वर्म असि**=मेरे कवच हो। २. **त्वया युजा**=सहायभूत आपके साथ में **प्रतिब्रुवे**=सब शत्रुओं को ललकार देता व विनष्ट करता हूँ।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे कवच हैं। हमारे शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं।

सब वासनाओं को विनष्ट करके यह सबका मित्र 'विश्वामित्र' बनता है। यह विश्वामित्र ही अगले सूक्त का ऋषि है—

१९. [एकोनविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वृत्रहनन, पृतना-सहन

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च। इन्द्र त्वा वर्तयामसि॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **वार्त्रहत्याय**=ज्ञान की आवरणभूत वासना के विनाश के निमित्तभूत **शवसे**=बल के लिए—बल की प्राप्ति के लिए हम **त्वा**=आपको **आवर्तयामसि**=अपने अभिमुख करते हैं—आपका आराधन करते हैं। आपके द्वारा ही तो हम इन काम, क्रोध का विनाश कर सकेंगे २. **च**=और **पृतनाषाह्याय**=शत्रु सैन्यों के पराभव के निमित्तभूत बल के लिए हम आपका आवर्तन करते हैं। आपका आराधन ही हमें वह बल प्राप्त कराएगा, जिससे हम सब शत्रुओं को पराभूत कर पाएँगे।

भावार्थ—प्रभु की आराधना से हम वृत्रहनन में तथा शत्रुसैन्यों के पराभव में समर्थ हों।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

यज्ञशीलता तथा प्रभु-कृपा-पात्रता

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो। इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः॥ २॥

१. हे **शतक्रतो**=अनन्त शक्ति व प्रज्ञानवाले प्रभो! **वाघतः**=यज्ञ आदि उत्तम कर्मों का वहन करनेवाले ऋत्विज् लोग **ते मनः**=आपके मन को **सु**=सम्यक् **अर्वाचीनम्**=अपने अभिमुख **कृण्वन्तु**=करनेवाले हों २. **उत**=और, हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **चक्षुः**=आपकी आँख को ये ऋत्विज् अपने अभिमुख करनेवाले हों।

भावार्थ—यज्ञशीलपुरुष ही प्रभु की कृपा के पात्र बनते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

विश्वाभिः गीर्भिः

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। इन्द्राभिमातिषाह्ये॥ ३॥

१. हे **शतक्रतो**=अनन्तशक्ति व प्रज्ञानवाले प्रभो! **ते नामानि**=आपके नामों को **विश्वाभिः गीर्भिः**=सब वाणियों के द्वारा **ईमहे**=चाहते हैं—संकीर्तित करते हैं। २. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो!

अभिमातिषाह्ये=पाप व अभिमानरूप शत्रु के पराभव के लिए हम विविध वाणियों से आपके नामों का कीर्तन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु-नाम-कीर्तन हमें अभिमानरूप शत्रु का पराभव करने में समर्थ करे।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता -**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

शतेन धामभिः

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि। इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥

१. **पुरुष्टुतस्य**=(पुरु स्तुतं यस्य) पालक व पूरक है स्तवन जिनका उन पुरुष्टुत प्रभु का हम **महयामसि**=पूजन करते हैं, जिससे **शतेन धामभिः**=शतवर्षपर्यन्त स्थिर रहनेवाले तेजों को हम प्राप्त कर सकें। इन तेजों के हेतु से ही हम प्रभु का पूजन करते हैं। २. **इन्द्रस्य**=सर्वशक्तिमान् **चर्षणीधृतः**=सब मनुष्यों का धारण करनेवाले प्रभु के पूजन से हम आजीवन तेजस्वी बने रहेंगे।

भावार्थ—प्रभु का पूजन हमें शतवर्ष के जीवन में तेजस्वी बनाए रखता है।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

भरेषु वाजसातये

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे। भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥

१. **पुरुहूतम्**=पालक व पूरक है पुकार जिसकी उस **इन्द्रम्**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु को **वृत्राय हन्तवे**=ज्ञान की आवरणभूत वासना के विनाश के लिए **उपब्रुवे**=पुकारता हूँ। २. मैं उस प्रभु को **भरेषु**=संग्रामों में **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के निमित्त पुकारता हूँ। प्रभु ही शक्ति देते हैं और उपासक को संग्राम में विजयी बनाते हैं।

भावार्थ—हम 'पुरुहूत इन्द्र' की आराधना करें। ये प्रभु हमें शक्ति प्राप्त कराएँगे। इस शक्ति के द्वारा हम संग्रामों में विजय प्राप्त करेंगे और ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट कर पाएँगे।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वाजेषु सासहिः

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो। इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

१. हे **शतक्रतो**=अनन्तशक्ति व प्रज्ञानवाले प्रभो! आप **वाजेषु**=संग्रामों में **सासहिः**=शत्रुओं का मर्षण (अभिभव) करनेवाले **भव**=होइए। **त्वाम् ईमहे**=हम आपसे ही याचना करते हैं। आप ही वस्तुतः इन शत्रुओं का पराभव कर सकते हैं। २. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **वृत्राय हन्तवे**=ज्ञान की आवरणभूत वासना के विनाश के लिए हम आपको पुकराते हैं—आप से ही याचना करते हैं।

भावार्थ—संग्रामों में प्रभु ही हमारे शत्रुओं का अभिभव करते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

अभिमातिषु साक्ष्व

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च। इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

१. **द्युम्नेषु**=द्योतमान धनों की प्राप्ति के समय, **पृतनाज्ये**=(पृतनासु प्रजनं तर्तव्यासु च) सेनाओं की चहल-पहलवाले रणांगणों में, **पृत्सु तूर्षु**=(पृतनासु तर्तव्यासु च) सेनाओं के पराभव के समय **च**=और **श्रवःसु**=कीर्तियों की प्राप्ति के समय, हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **साक्ष्व**=आप हमारे साथ होइए (षच समवाये)। आपने ही तो धन-विजय व कीर्ति को प्राप्त कराना है। २.

अभिमातिषु=(पापेषु हन्तव्येषु) अभिमान आदि पापों के विनाश के समय आप **साक्ष्व**=हमारे साथ होइए—आपके द्वारा ही हम पाप का विनाश कर सकेंगे।

भावार्थ—प्रभु ही हमें धन-विजय व कीर्ति प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही हमारे शत्रुओं का संहार करते हैं।

अगले सूक्त के प्रथम चार मन्त्रों के ऋषि भी 'विश्वामित्र' ही हैं। पिछले तीन में ऋषि 'गृत्समदः' हैं—प्रभु स्तवन करते है (गृणाति) और आनन्द का अनुभव करते हैं—

२०. [विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

बल-ज्ञान-चेतना

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **नः ऊतये**=हमारे रक्षण के लिए आप **सोमं पाहि**=सोम का हमारे शरीर में रक्षण कीजिए। आपने ही वासनाओं का विनाश करके सोम का रक्षण करना है। २. उस सोम का आप रक्षण कीजिए जो **शुष्मिन्तमम्**-अतिशयेन बलवाला है, **द्युम्निनम्**=ज्ञान की ज्योतिवाला है तथा **जागृविम्**=हमें सदा जगानेवाला—चेतना को न नष्ट होने देनेवाला है। सोम-रक्षण से हमें शक्ति प्राप्त होती है, ज्ञान की वृद्धि होती है तथा चेतना का विनाश नहीं होता। हमें अपना स्मरण बना रहता है कि 'हम कौन हैं और यहाँ क्यों आये हैं?'

भावार्थ—प्रभु सोम-रक्षण द्वारा हमें रक्षित करें। इससे हमारा बल व ज्ञान बढ़ेगा। यह सोम-रक्षण हमें सदा आत्मस्मृतिवाला बनाएगा।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

इन्द्रियाणि

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे॥ २॥

१. हे **शतक्रतो**-अनन्तशक्ति व प्रज्ञानवाले **इन्द्र** परमैश्वर्यशालिन् परमेश्वर! **पञ्चसु जनेषु**=(पचि विस्तारे) शक्तियों का विस्तार करनेवाले लोगों में **या इन्द्रियाणि**=जो बल हैं, वे **ते**=आपके ही हैं। २. हे प्रभो! मैं भी **तानि**=उन बलों को **ते**=आपसे **आवृणे**=माँगता हूँ। आपकी कृपा से मैं उन बलों को प्राप्त करूँ।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हम सब अंगों के बलों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

दुष्टरं द्युम्नम्

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत्ते शुष्मं तिरामसि॥ ३॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! हमें **बृहत्**=वृद्धि का कारणभूत **श्रवः**=यश **अगन्**=प्राप्त हुआ है। आप **दुष्टरम्**=वासनारूप शत्रुओं से आक्रान्त न होने योग्य **द्युम्नम्**=ज्ञानज्योति को **दधिष्व**=धारण कीजिए। आपके अनुग्रह से हमें 'दुष्टर द्युम्न' प्राप्त हो। २. हम **ते**=आपसे दिये हुए **शुष्मम्**=बल को **उत्तिरामसि**=आपके स्तवन व सोम-रक्षण द्वारा बढ़ाते हैं। हमारे मन यशस्वी विचारों से परिपूर्ण हों, मस्तिष्क ज्ञान से दीप्त बनें तथा शरीर शक्ति-सम्पन्न हों।

भावार्थ—प्रभु हमें 'यश-ज्ञान व बल' प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

इहलोक-परलोक-ब्रह्मलोक

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि॥ ४॥

१. हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! आप **अर्वावतः**=इस समीपस्थ लोक के उद्देश्य से **नः आगहि**=हमें प्राप्त होइए। आपकी कृपा से हमारा इहलोक उत्तम बने। **अथ उ**=और अब निश्चय से **परावतः**=सुदूर परलोक के उद्देश्य से भी हमें प्राप्त होइए। आपके अनुग्रह से परलोक में भी हमारा मंगल हो। २. हे **अद्रिवः**=आदरणीय (आ दृ), **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **उ**=निश्चय से यह **ते लोकः**=जो आपका अपना ब्रह्मलोक है, **ततः**=उस लोक को प्राप्त कराने के उद्देश्य से **इह**=यहाँ हमारे जीवनों में **आगहि**=प्राप्त होइए।

भावार्थ—हम प्रभु का स्मरण करें। यह प्रभु का अविस्मरण हमारे इहलोक व परलोक दोनों के मंगल के लिए होगा तथा अन्ततः इस प्रभु-स्मरण से ही हम ब्रह्मलोक को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

भय-प्रच्यावन

इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः॥ ५॥

१. हे **अङ्ग**=प्रिय! **इन्द्रः**=वे सर्वशक्तिमान् प्रभु ही **महद्भयम्**=महान् भय को **अभि सत्**=(अभीषत्) अभिभूत करते हैं। **अप चुच्यवत्**=इस महान् भय को हमसे सुदूर विनष्ट करते हैं। २. **सः**=वे प्रभु **हि**=निश्चय से **स्थिरः**=किसी से भी च्याव्य नहीं हैं। कोई भी प्रभु को अभिभूत व च्युत नहीं कर सकता। **विचर्षणिः**=वे प्रभु सबके द्रष्टा हैं—सभी का ध्यान करते हैं (Look after)।

भावार्थ—प्रभु हमारे भयों को अभिभूत व पृथक् करनेवाले हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

पाप-विनाश व कल्याण-प्राप्ति

इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः॥ ६॥

१. च (चेत्)=यदि **इन्द्रः**=वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **नः मृडयाति**=हमें अनुगृहीत करते हैं तो **अघम्**=पाप व दुःख **नः पश्चात्**=हमारे पीछे **न नशत्**=नहीं प्राप्त होता। प्रभु का अनुग्रह होने पर पाप हमारे पीछे आ ही नहीं पाता। २. उस समय **नः पुरः**=हमारे सामने **भद्रं भवाति**=कल्याण-ही-कल्याण होता है।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से पाप नष्ट होता है और कल्याण प्राप्त होता है।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

निर्भयता

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून्विचर्षणिः॥ ७॥

१. **इन्द्रः**=वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि**=सब दिशाओं से (परि=से पञ्चमी के अर्थ का द्योतक है) **अभयम्**=हमारे लिए भयराहित्य व कल्याण **करत्**=करें। २. ये प्रभु **शत्रून् जेता**=हमारे सब शत्रुओं को जीतनेवाले हैं और **विचर्षणिः**=विशेषरूप से हमारे द्रष्टा—हमारा ध्यान करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें सर्वत:निर्भय करते हैं। हमारे शत्रुओं का पराभव करते हैं।

सदा 'इन्द्र' से प्रेरणा प्राप्त करनेवाला 'सव्य' (षू प्रेरणे) अगले सूक्त का ऋषि है—

२१. [एकविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

महान् दाता

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते॥ १॥

१. **महे**=महान्—पूजनीय **इन्द्राय**=सर्वैश्वर्यवान् प्रभु के लिए **सुवाचम्**-शोभन स्तुतिवाणी को **नि प्र भरामहे**=नितरां प्रयुक्त करते हैं। **विवस्वतः**=प्रभु परिचर्या करनेवाले यजमान के **सदने**=यज्ञगृह में **उ**=निश्चय से उस इन्द्र के लिए **गिरः**=स्तुतिवाणियाँ उच्चरित होती है। २. **हि**=निश्चय से वह प्रभु **नू चित् हि रत्नम्**=रमणीय धन को **अविदत्**=प्राप्त कराते हैं, **इव**-जिस प्रकार वे **ससताम्**=सोये हुए पुरुषों के धन को छीन लेते हैं। सोये हुओं के धनों को छीन कर वे पुरुषार्थियों को प्राप्त करा देते हैं। **द्रविणोदेषु**-धन के दाता पुरुषों में **दुष्टुतिः**=असमीचीन स्तुति, अर्थात् निन्दा **न**=नहीं **शस्यते**=कही जाती—दाता की कभी निन्दा नहीं की जाती, अत: हम उस महान् दाता का भी स्तवन करें।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। यज्ञशील पुरुष सदा प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु सदा रमणीय धन देते हैं। दाता की सदा प्रशंसा होती है।

ऋषिः—**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

प्रदिवः+अकामकर्शनः

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि॥ २॥

१. हे प्रभो! आप **अश्वस्य**='अश्नुवते कर्मसु' यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में व्याप्त होनेवाली कर्मेन्द्रियों के **दुरः**=दाता (दा+उरच्) **अस्ति**=हैं। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **गोः**='गमयन्ति अर्थान्' अर्थों की प्रज्ञापक ज्ञानेन्द्रियों के आप **दुरः**=दाता हैं। इन इन्द्रियों की उत्तमता के लिए **यवस्य**=जौरूप सात्त्विक अन्न के आप **दुरः**=दाता हैं। सब **वसुनः**=धनों के आप ही **इनः**=स्वामी व **पतिः**=रक्षक हैं। २. **शिक्षानरः** (शिक्षतिः-दानकर्मा) दान के आप नेता (नृ नये) हैं। धन देकर हमें दान की प्रेरणा देते हैं। **प्रदिवः**=आप प्रकृष्ट ज्ञान के प्रकाशवाले हैं। इस ज्ञान को देकर **अकामकर्शनः**=हमें काम का शिकार नहीं होने देते। इसप्रकार **सखिभ्यः सखा**=सखाओं के सच्चे सखा हैं। **तम्**=उन आपके प्रति **इदम्**=इस स्तोत्र का **गृणीमसि**=उच्चारण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु उत्तम कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, यव आदि सात्त्विक भोजनों व वसुओं के देनेवाले हैं। हम धनों को प्राप्त करके दान देनेवाले बनें। वे प्रकृष्ट ज्ञानी प्रभु हमें काम का शिकार होने से बचाते हैं। उस सच्चे सखा प्रभु का हम स्तवन करते हैं।

ऋषिः—**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम'

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः॥ ३॥

१. हे **शचीवः**=प्रज्ञावन् (शची=प्रज्ञा), **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन्, **पुरुकृत्**=सबका पालन व पूरण करनेवाले, **द्युमत्तम**=अतिशयेन दीप्तिमन् प्रभो! **इदम्**=यह **अभितः**=सर्वत्र वर्तमान **वसुः**=धन **तव इत्**=आपका ही है, यह बात **चेकिते**=हमसे जानी जाती है। सब धनों के स्वामी आप ही तो हैं। २. हे **अभिभूते**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले प्रभो! **अतः**=क्योंकि आप ही सब धनों के स्वामी हैं, इसलिए **संगृभ्य**=इनका संग्रह करके **आभर**=हमारे लिए दीजिए। **त्वायतः**=आपको अपनाने की कामनावाले **जरितुः**=स्तोता के **कामम्**=मनोरथ को **मा ऊनयीः**=अपूर्ण मत कीजिए। स्तोता के लिए आप मनोवाञ्छित फल को देनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु स्तोता को 'प्रज्ञा शक्ति-पोषण व दीप्ति' प्राप्त कराते हैं। सम्पूर्ण धन प्रभु का है। प्रभु स्तोता की कामना को पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

युत-द्वेषसः

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि॥ ४॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि **एभिः द्युभिः**=इन ज्ञान-प्रदीप्तियों से तू **सुमना**=उत्तम मनवाला हो। **एभिः इन्दुभिः**=इन सुरक्षित सोमकणों के द्वारा, **गोभिः**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा तथा **अश्विना**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियरूप धन के द्वारा अथवा प्राणापान के द्वारा, अर्थात् प्राणायाम द्वारा—प्राणसाधना से **अ-मतिम्**=दुर्बुद्धि व दारिद्र्य का **निरुन्धानः**=निरोध करनेवाला हो। २. जीव प्रभु से प्रार्थना करता है कि **इन्द्रेण**=शत्रुविद्रावक आपके द्वारा **दस्युं दरयन्तः**=दास्यव भावनाओं को विदीर्ण करते हुए, **इन्दुभिः**=सुरक्षित सोमकणों से **युतद्वेषसः**=द्वेषशून्य मनोंवाले होते हुए **इषा**=आपकी प्रेरणा के अनुसार हम **संरभेमहि**=कार्यों से संगत हों। मनुष्य का सुन्दरतम जीवन यही है कि (१) वह ज्ञानज्योतियों को प्राप्त करता हुआ उत्तम मनवाला बने, (२) सोम-रक्षण द्वारा ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को शक्तिशाली बनाता हुआ उत्तम बुद्धिवाला बने, (३) प्रभु-स्मरण द्वारा दास्यव वृत्तियों को दूर करे, (४) सोम-रक्षण से निर्दोष बने, (५) पवित्र हृदय में प्रभु प्रेरणा को सुनकर तदनुसार कार्यों को करे।

भावार्थ—ज्ञानज्योति से हमारा मन निर्मल हो। सोम-रक्षण द्वारा सब इन्द्रियों को प्रशस्त बनाते हुए हम दुर्बुद्धि को दूर करें। प्रभु-उपासना द्वारा दास्यव वृत्तियों का विनाश करें। निर्दोष बनकर प्रभु-प्रेरणा के अनुसार कार्यों में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

राया+इषा+वाजेभिः+प्रमत्या

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि॥ ५॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवान् प्रभो! **राया संरभेमहि**=हम आपसे दत्त धन से संगत हों तथा **इषा**=आपसे दी गई प्रेरणा से **सम्**=संगत हों। उस धन का विनियोग आपकी प्रेरणा के अनुसार करें। हे प्रभो! इस प्रकार धनों का सद्व्यय करते हुए **वाजैः सम्**=बलों से संगत हों, जो बल **पुरुश्चन्द्रैः**=बहुतों के आह्लादक हों, अर्थात् जिन बलों का विनियोग इस रूप में हो कि वे अधिक-से-अधिक व्यक्तियों का कल्याण करें तथा **अभिद्युभिः**=अभितः दीप्यमान हों—ज्ञान से युक्त हों। अथवा ये बल चारों ओर यश फैलानेवाले हों। २. इसप्रकार ऐश्वर्य, प्रभु-प्रेरणा व

बलों से युक्त होकर हम **देव्या**=उस इन्द्र से सम्बद्ध **प्रमत्या**=प्रकृष्ट बुद्धि से युक्त हों जोकि **वीरशुष्मया**= शत्रुओं को कम्पित करनेवाले बल से युक्त हो, **गोअग्रया**=प्रकृष्ट ज्ञानेन्द्रियों को अग्रभाग में लिये हुए हो तथा **अश्वावत्या**=प्रकृष्ट कर्मेन्द्रियोंवाली हो।

भावार्थ—हमें प्रभु के अनुग्रह से ऐश्वर्य, प्रभु प्रेरणा व बल प्राप्त हो। हम उस प्रमति को प्राप्त करें जो शत्रुओं को कम्पित करके दूर करे तथा उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियोंवाली हो।

ऋषिः —**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

प्राणायाम+स्तोत्र+सोम-रक्षण

ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः॥ ६॥

१. हे **सत्पते**=हे सज्जनों के रक्षक प्रभो! **वृत्रहत्येषु**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं के विनाशकारी संग्रामों में **मदाः**=मद (उल्लास) के जनक मरुतों (प्राणों) ने **अमदन्**=आनन्दित किया है। उपासक प्राणसाधना द्वारा प्रभु का प्रिय बनता है। **तानि वृष्ण्या**=उन स्तोत्रों ने तुझे आनन्दित किया है जो स्तोता के लिए सुखों के वर्षक होते हैं। **ते सोमासः**=शरीर में सुरक्षित उन सोमकणों ने तुझे आनन्दित किया है। यह सोमकणों का रक्षण हमें प्रभु का प्रिय बनाता है। प्रभु-प्रीति-प्राप्ति के तीन साधन हैं (क) प्राणायाम (ख) स्तोत्र (ग) सोम रक्षण। २. इसप्रकार **यत्**=जब आप प्रसन्न होते हैं तब **कारवे**=स्तोता के लिए **बर्हिष्मते**=यज्ञादि पवित्र कर्मों को करनेवाले के लिए **दश सहस्राणि**=दशों हज़ार **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरक वासनाओं को **अप्रति निबर्हयः**=आप ऐसे विनष्ट करते हैं जिससे कि उनका फिर लौटना होता ही नहीं। प्रसन्न प्रभु हमारी सब शत्रुभूत वासनाओं को विनष्ट कर डालते हैं।

भावार्थ—प्राणायाम+स्तवन व सोम रक्षण द्वारा हम प्रभु के प्रीतिपात्र बनें। प्रभु हमारी सब वासनाओं को विनष्ट कर डालेंगे।

ऋषिः—**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

नमुचि-निबर्हण

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम्॥ ७॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! आप **धृष्णुया**=शत्रुओं के धर्षक **युधा**=आयुध के द्वारा **युधम्**=शत्रु के आयुध को **उप घा इत् एषि**=निश्चय से समीपता से प्राप्त होते हैं। धर्षक आयुधों के द्वारा शत्रु के आयुध को विनष्ट कर डालते हैं। **पुरा**=हमारे पालन व पूरण के दृष्टिकोण से (पृ पालनपूरणयोः) **इदं पुरम्**=इस शत्रु की नगरी को **ओजसा**=ओज के द्वारा **सं हंसि**=सम्यक् नष्ट कर डालते हैं। 'काम' ने इन्द्रियों में, क्रोध ने मन में तथा लोभ ने बुद्धि में जो किले बना लिये थे, उन्हें आप नष्ट कर डालते हैं और इसप्रकार हमारा पालन करते हैं। २. हे इन्द्र! **यत्**=जब आप **नम्या**=सबको प्रह्वीभूत करनेवाली—झुका देनेवाली **सख्या**=सखिभूत शक्ति से **नमुचिं नाम मायिनम्**=इस नमुचि नामक आसुरभाव को **परावति**=सुदूर देश में **निबर्हयः**=विनष्ट कर डालते हैं। अहंकार की वासना नमुचि है—पीछा न छोड़नेवाली है (न+मुच्)। सब आसुरभावों को जीत लेने पर भी यह इस रूप में प्रकट होती है कि 'मैंने कितनी महान् विजय कर ली'। प्रभु-स्मरण ही इसका विनाश करता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे सब आसुरभावों का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'करञ्ज, पर्णय व वंगृद' का विनाश

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना॥ ८॥

१. **त्वम्**=तू **करञ्जम्**=(किरति विक्षिपति धार्मिकान्) धार्मिकों को पीड़ित करने की वृत्ति को तथा **पर्णयम्**=(पर्णानि परप्राप्तानि वस्तूनि याति द०) चोरी की वृत्ति को **अतिथिग्वस्य**=अतिथियों के प्रति नम्रता से जानेवाले—अतिथियज्ञ करनेवाले की **तेजिष्ठया वर्तनी**=अत्यन्त तीव्र सत्क्रिया से **वधीः**=नष्ट करता है। यह अतिथि व विद्वान्व्रती लोगों का आतिथ्य करता हुआ उनसे सत्प्रेरणाओं को प्राप्त करने के कारण 'करञ्ज व पर्णय' का वध कर पाता है। अपने अन्दर यह परपीड़न व चोरी की वृत्ति को नहीं आने देता। २. हे प्रभो! **त्वम्**=आप **अनानुदः**=शत्रुओं से न धकेले जाते हुए **वंगृदस्य**=(विषादि पदार्थान् ददाति)=विषादि देनेवाले असुर के **शता पुरः**=सैकड़ों नगरों को **अभिनत्**=विदीर्ण करते हैं। ये घात-पात करनेवाले लोग ऐश्वर्य को खूब बढ़ा लेते हैं। प्रभु इनकी कोठियों को क्षणभर में नष्ट कर डालते हैं। वंगृद की ये पुरियाँ **ऋजिश्वना**=ऋजुमार्ग से गति करनेवाले के द्वारा **परिषूताः**=चारों ओर से घेर ली जाती हैं। यह ऋजिश्वा इनका विनाश करनेवाला होता है। ऋजुमार्ग से चलनेवाला व्यक्ति वंगृद बनकर कोठियाँ नहीं खड़ी करता रहता।

भावार्थ—प्रभु का स्मरण हमें 'करञ्ज, पर्णय व वंगृद' का वध करने में समर्थ करे। यह स्मरण हमें ऋजिश्वा बनाए।

ऋषिः—**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

वासना-सरित्-संतरण

त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक्॥ ९॥

१. हे प्रभो! **त्वम्**=आप **एतान्**=इन **द्विर्दश**=बीस **जनराज्ञः**=मनुष्यों पर शासन करनेवाली अशुभवृत्तियों को **वि अवृणक्**=निश्चित रूप से दूर करते हैं। ये अशुभवृत्तियाँ बीस हैं—'दस इन्द्रियों, पाँच प्राणों व मन, बुद्धि, चित्त अहंकार व हृदय' इन बीस से इनका सम्बन्ध है। ये अशुभ वृत्तियाँ बीस होती हुई भी सैकड़ों रूपों में अभिव्यक्त होती हैं, अतः यहाँ उन्हें **षष्टिं सहस्रा**=६० हज़ार कहा है। **नवतिं नव**=निन्यानवें वर्षपर्यन्त इन्हें दूर करने का प्रयत्न करते रहना है। न जाने कब हम इनके शिकार हो जाएँ। २. ये अशुभवृत्तियाँ **अबन्धुना**=संसार में न बन्धनेवाले **सुश्रवता**=ज्ञान-उपदेशों को सुननेवाले के भी **उपजग्मुषः**=समीप आ जाती हैं। इनका आक्रमण बड़े-बड़े ज्ञानियों पर भी हो जाता है। इनके आक्रमण को **श्रुतः**=सम्पूर्ण ज्ञान के पुञ्ज प्रभु ही **दुष्पदा**=बड़ी कठिनता से आक्रमण के योग्य (दुरत्यम्) **रथ्या**=शरीररूप रथ में होनेवाले **चक्रेण**=क्रियाशीलतारूप पहिये से **निवृणक्**=छिन्न करते हैं। प्रभु ही इनके आक्रमण को विफल कर पाते हैं। 'प्रभु-स्मरणपूर्वक क्रिया में लगे रहना ही' एकमात्र उपाय है, जो हमें इन वासनाओं के आक्रमण से बचाता है।

भावार्थ—प्रभु-कृपा से अनन्त प्रवाहों में बहनेवाली वासना-नदी को हम तैर जाएँ।

ऋषिः—**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सुश्रवस्+तूर्वयाण

त्वमा॑विथ सु॒श्रव॑सं॒ तवो॒तिभि॒स्तव॒ त्राम॑भिरिन्द्र॒ तूर्व॑याणम्।
त्वम॑स्मै॒ कुत्स॑मतिथि॒ग्वमा॒युं म॒हे रा॒ज्ञे यूने॑ अरन्धनायः ॥ १० ॥

१. **त्वम्**=आप **तव ऊतिभिः**=अपने रक्षणों के द्वारा **सुश्रवसम्**=उत्तम ज्ञानवाले पुरुष की **आविथ**=रक्षा करते हो। हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! आप **तूर्वयाणम्**=(तूर्व याति) हिंसक काम-क्रोध आदि पर आक्रमण करनेवाले की **तव त्रामभिः**=अपने रक्षा साधनों से रक्षा करते हैं। हम 'सुश्रवस व तूर्वयाण' बनकर प्रभु की रक्षा के पात्र बनते हैं। २. **त्वम्**=आप **अस्मै**=इस **महे**=महनीय व पूजा की वृत्तिवाले **राज्ञे**=जीवन को व्यवस्थित (Regulated) बनानेवाले **यूने**=दोषों को दूर व अच्छाइयों को समीप प्राप्त करानेवाले इस 'सुश्रवस्' के लिए '**कुत्सम्**'=(कुथ हिंसायाम्) वासनाओं का संहार करनेवाले, **अतिथिग्वम्**=उस महान् अतिथि प्रभु की ओर चलनेवाले **आयुम्**=(एति) गतिशील वीरसन्तान को **अरन्धनायः**=तैयार करते हैं। इसके घर में ऐसी सन्तानों का ही परिपाक होता है।

भावार्थ—हम ज्ञानप्राप्ति के व वासना-संहार के मार्ग पर चलते हुए प्रभु के प्रिय व रक्षणीय बनें। हम पूजा की वृत्तिवाले प्रभु की ओर चलनेवाले व अच्छाइयों को धारण करनेवाले बनकर उत्तम सन्तानों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**सव्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

देवगोपाः, ते सखायः

य उ॒दृचीन्द्र दे॒वगो॑पाः॒ सखा॑यस्ते शि॒वत॑मा॒ असा॑म।
त्वां स्तो॑षाम॒ त्वया॑ सु॒वीरा॒ द्राघी॑य॒ आयुः॑ प्र॒तरं॒ दधा॑नाः ॥ ११ ॥

१. हे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ये**=जो हम **उदृचि**=(उद्गता ऋच यस्मिन्) ऋचाओं के, स्तोत्रों के उच्चारण करनेवाले कर्म में **देवगोपाः**=दिव्यगुणों का अपने अन्दर रक्षण करनेवाले बनते हैं, वे हम **ते सखायः**=आपके मित्र बनते हुए **शिवतमाः असाम**=अतिशयेन कल्याण प्राप्त करनेवाले हैं। हम ऋचाओं में विज्ञान का अध्ययन करें। २. हे प्रभो! **त्वां स्तोषाम**=आपका स्तवन करें। **त्वया सुवीराः**=आपके द्वारा हम उत्तम वीर सन्तानोंवाले हों। **द्राघीय**=अतिशयेन दीर्घ व **प्रतरम्**=उत्कृष्ट—जिसमें सब वासनाओं को तैरा गया है **आयुः**=उस जीवन को **दधानाः**=धारण करते हुए हों।

भावार्थ—हम ज्ञानी, देववृत्तिवाले प्रभु के मित्र व कल्याण को प्राप्त करनेवाले बनें। प्रभु-स्तवन करते हुए वीरसन्तानों को व उत्कृष्ट दीर्घजीवन को प्राप्त करें।

यह प्रभु का मित्र 'शरीर मन व बुद्धि' तीनों को दीप्त करके 'त्रिशोक' बनता है। यह 'प्रियमेध'=यज्ञप्रिय होता है। अगले सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों का ऋषि 'त्रिशोक' व पिछले तीन का यह 'प्रियमेध' है—

२२. [द्वाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**त्रिशोकः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु-स्मरण व सोम-रक्षण

अ॒भि त्वा॑ वृषभा सु॒ते सु॒तं सृ॑जामि पी॒तये॑। तृम्पा व्य॑श्नु॒ही मद॑म् ॥ १ ॥

१. हे **वृषभ**=सुखों के वर्षक इन्द्र! **सुते**=सोम की उत्पत्ति होने पर **सुतं पीतये**=इस उत्पन्न सोम के रक्षण के लिए **त्वा**=आपको **अभिसृजामि**=अपने साथ संयुक्त करता हूँ। हृदयदेश में आपके उपस्थित होने पर न वासनाओं का आक्रमण होगा और न ही सोम का विनाश होगा। २. हे प्रभो! **तृम्पा**=आप इस सोम-रक्षण द्वारा प्रसन्न होइए—हम आपके प्रीतिपात्र बनें। आप **मदं व्यश्नुहि**=आनन्दजनक सोम को हमारे अन्दर व्याप्त कीजिए।

भावार्थ—हम प्रभु-स्मरण द्वारा सोम-रक्षण करते हुए आनन्द प्राप्त करें।

ऋषिः—**त्रिशोकः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'उपहस्वा-अविष्यु, ब्रह्मद्विद्' मूढ़

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्। माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २ ॥

१. हे प्रभो! **मूराः**=मूढ़ लोग **अविष्यवः**=(अव हिंसायाम्) दूसरों की हिंसा की कामनावाले **त्वा**=आपको **मा आदभन्**=हमारे अन्दर हिंसित करनेवाले न हों। **उपहस्वानः**=उपहास करनेवाले लोग भी हमें आपकी आस्था से दूर करने में समर्थ न हों। इनकी बातें हमारी आस्था को नष्ट न कर पाएँ। २. हे प्रभो! **त्वम्**=आप **ब्रह्मद्विषः**=ज्ञान के साथ अप्रीतिवाले लोगों को **माकीं वनः**=मत प्राप्त हों। ज्ञानी भक्त ही आपका प्रिय हो।

भावार्थ—संसार में हम आध्यात्मिकता का उपहास करनेवाले, पर-हिंसारत मूढ़ लोगों की बातों में आकर प्रभु के प्रति श्रद्धा को न छोड़ बैठें। ज्ञानरुचि बनें और प्रभु को प्राप्त हों।

ऋषिः—**त्रिशोकः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

महे राधसे

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे। सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि **इह**=इस जीवन में **त्वा**=तुझे ये सोमकण **गोपरीणसा**=ज्ञान की रश्मियों के चारों ओर व्यापन के द्वारा (परि पूर्वाद् व्याप्तिकर्मणो नसतेः क्विप्) **महे राधसे**=महती सिद्धि के लिए **मन्दन्तु**=आनन्दित करें (मादयन्तु)। सोमकणों का रक्षण करता हुआ तू ज्ञानाग्नि के दीपन से ज्ञानरश्मियों से व्याप्त होकर अविद्यान्धकार का विनाश करनेवाला बन। यह तेरा सर्वमहान् साफल्य होगा। इसी से तेरा जीवन आनन्दमय होगा। २. **यथा**=जैसे **गौरः**=गौरमृग **सरः**=तालाब का जल पीता है इसी प्रकार तू सोम का **पिब**=पान कर—यह सोमपान ही तेरे सारे उत्कर्ष का मूल है।

भावार्थ—हमें चाहिए कि सोम-रक्षण द्वारा जीवन को ज्ञानाग्नि से दीप्त करें। यही आनन्द व साफल्य का मूल है।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सूनु सत्यस्य, सत्पतिम्

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनु सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

१. हे स्तोतः! तू **गोपतिम्**=ज्ञान की वाणियों के स्वामी **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **यथा विदे**=यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए **गिरा**=स्तुतिवाणियों से **अभि प्र अर्च**=प्रकर्षेण पूजित करनेवाला हो। २. तू उस प्रभु को पूजित करनेवाला हो जो **सत्यस्य सूनुम्**=सत्य की प्रेरणा देनेवाले हैं तथा **सत्पतिम्**=सज्जनों के रक्षक हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करें, प्रभु हमें यथार्थ ज्ञान देंगे, सत्य की प्रेरणा प्राप्त कराएँगे और हमें सज्जन बनाकर हमारा रक्षण करेंगे।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रकाशरश्मियों से दीप्त हृदयदेश

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि संनवामहे॥ ५॥

१. प्रभु की उपासना होने पर **अरुषी:**=आरोचमान **हरयः**=प्रकाश की रश्मियाँ **अधि बर्हिषि**= हृदयदेश में **आ ससृज्रिरे**=समन्तात् सृष्ट होती हैं। २. उस हृदयदेश में ये प्रकाशरश्मियाँ व्याप्त होती हैं, **यत्र**=जहाँ कि हम **अभिसंनवामहे**=प्रभु को प्रातः-सायं स्तुत करते हैं।

भावार्थ—प्रभु स्तवन से हृदय वासनाशून्य हो जाता है और प्रकाश की रश्मियों से दीप्त हो उठता है।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

उपह्वरे विदत्

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत्सीमुपह्वरे विदत्॥ ६॥

१. **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय **वज्रिणे**=क्रियाशीलतारूप वज्र को हाथ में लिये हुए पुरुष के लिए **गाव:**=प्रकाश की रशिमयाँ **मधु**=उस मधुर ज्ञान का **दुदुह्रे**=दोहन करती हैं, जोकि **आशिरम्**= वासनामल को समन्तात् शीर्ण करनेवाला है। २. यह वह समय होता है **यत्**=जबकि **सीम्**=निश्चय से **उपह्वरे**=एकान्त हृदयदेश में समीप ही (Prominently) उस प्रभु को **विदत्**=प्राप्त करता है।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनें। हमें वह मधुर ज्ञान प्राप्त होगा जो हमें हृदयदेश में प्रभु की प्राप्ति के योग्य बनाएगा।

यह प्रभु को पानेवाला व्यक्ति 'विश्वामित्र' बनता है—सबके प्रति स्नेहवाला। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

२३. [त्रयोविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

आद्रिवः! आयाहि

आ तू न इन्द्र मद्र्य ग्घुवानः सोमपीतये। हरिभ्यां याह्यद्रिवः॥ १॥

१. हे **अद्रिव:**-आदरणीय व वज्रहस्त **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **हुवानः**-पुकारे जाते हुए **मद्र्यक्**=मदभिमुख होकर **नः**=हमारे इस जीवन-यज्ञ में **सोमपीतये**=सोम के पान के लिए— शरीरों में ही सोम के रक्षण के लिए **हरिभ्याम्**=उत्तम इन्द्रियाश्वों के साथ **तू**=निश्चय से **आयाहि**=प्राप्त होइए। २. हमारे हृदयों में आपके स्थित होने पर ही ये इन्द्रियाँ विषयासक्ति से बची रह पाती हैं। तभी सोम का रक्षण सम्भव होता है।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमारे हृदय में दर्शन दीजिए, जिससे इन्द्रियाँ विषयासक्ति से बची रहें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

यज्ञ+ध्यान+क्रियाशीलता

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक्। अयुज्रन्प्रातरद्रयः॥ २॥

१. **नः**=हमारे इस जीवन-यज्ञ में **होता**=यज्ञ करनेवाला यह ऋत्विक् **ऋत्वियः**=समय पर कार्य करनेवाला होता हुआ **सत्तः**=निषण्ण हुआ है, अर्थात् इस शरीर को प्राप्त करके मैं समय पर ठीक अग्निहोत्र आदि कर्मों को करनेवाला बनता हूँ। २. मेरे द्वारा **आनुषक्**=निरन्तर—

प्रतिदिन **बर्हिः**=जिसमें से वासनाओं का उद्बर्हण कर दिया गया है, वह हृदयासन **तिस्तिरे**=बिछाया गया है। मैं हृदय को पवित्र करके उसपर आसीन होने के लिए आपको पुकारता हूँ। ३. **अद्रयः**=ये प्रभु के उपासक (adore आद्रियते) **प्रातः**=प्रातः-प्रातः ही **अयुज्रन्**=अपने को अपने कर्त्तव्य-कर्मों में युक्त (संगत) कर देते हैं।

भावार्थ—हम समय पर अग्निहोत्र आदि कर्मों को करनेवाले हों। पवित्र हृदयासन पर प्रभु को आसीन करने का प्रयत्न करें। प्रातः से ही अपने कर्त्तव्य को करने में लग जाएँ।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

(प्रभु-ध्यान—प्रभु-दर्शन) पुरोडाश-सेवन

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद। वीहि शूर पुरोडाशम्॥ ३॥

१. हे **ब्रह्मवाहः**=ज्ञान की वाणियों का वहन करनेवाले प्रभो! **इमा ब्रह्म**=ये स्तुतिवाणियाँ **क्रियन्ते**=हमसे की जाती हैं। आप **बर्हिः आसीद**=हमारे हृदयासन पर आसीन होइए। हम ध्यान द्वारा हृदय में प्रभु को देखने का प्रयत्न करें। २. हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! आप **पुरोडाशम् वीहि**=जिसमें से पहले यज्ञ के लिए दिया गया है (पुरो दाश्यते यस्मात्) उस यज्ञशेषभूत अन्न का **वीहि**=भक्षण कीजिए। प्रभु ही तो हमारे इस अन्न का पाचन करते हैं, 'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रतः। प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्'=देह में आश्रित प्रभु ही वैश्वानररूपेण अन्नों का पाचन करते हैं, अतः मैं क्या खाता हूँ, प्रभु ही देहस्थ होकर इस भोजन को करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करते हुए हृदयों में प्रभु का दर्शन करें। इस देहस्थ प्रभु को ही यज्ञशेषरूप अन्नों का सेवन करता हुआ जानें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सवनेषु-स्तोमेषु-उक्थेषु

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन्। उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः॥ ४॥

१. हे **वृत्रहन्**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **नः**=हमारे **एषु**=इन **सवनेषु**=यज्ञों में **रारन्धि**=आप प्रीतिवाले होइए (रमस्व)। हमसे किये जानेवाले यज्ञ हमें आपका प्रिय बनाएँ। इन यज्ञों में लगे रहकर ही तो हम वासनाओं के आक्रमण से बचे रहते हैं। २. हे **इन्द्र**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! हमारे इन **सोमेषु**=स्तुति-समूहों में आप प्रीतिवाले होइए। प्रभु-स्तवन करते हुए हम भी इन्द्र जैसे ही बनें। २. हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों से सम्भजनीय प्रभो! **उक्थेषु**= हमसे उच्चारित ज्ञानवाणियों में आप प्रीतिवाले हों। ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करते हुए हम प्रभु के प्रिय बनें।

भावार्थ—हम यज्ञों—स्तोत्रों व ज्ञान की वाणियों के उच्चारणों से प्रभु के प्रिय बनें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सोमपां, उरुं, शवसस्पतिम्, इन्द्रम्

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम्। इन्द्रं वत्सं न मातरः॥ ५॥

१. **मतयः**=हमसे की जानेवाली स्तुतियाँ उस **सोमपाम्**=सोम का रक्षण करनेवाले **उरुम्**=महान् **शवसस्पतिम्**=बल के स्वामी **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को **रिहन्ति**=(लिहन्ति) आस्वादित करती हैं—प्राप्त होती हैं। २. हमारी स्तुतियाँ प्रभु को इसप्रकार प्राप्त होती हैं, **न**=जैसेकि **मातरः**=धेनुएँ **वत्सम्**=बछड़े को अथवा माताएँ बच्चों को, अर्थात् हम बड़े प्रेम से प्रभु का स्तवन करते हैं।

भावार्थ—हम प्रेम से प्रभु स्तवन करते हुए सोम का शरीर में रक्षण करें, हृदय को विशाल बनाएँ, बल प्राप्त करें और परमैश्वर्यवाले हों।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

तन्वा, महे राधसे, न निदे

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे। न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥

१. हे प्रभो! **सः**=वे आप **अन्धसः**=सोम के द्वारा **हि**=निश्चय से **मन्दस्व**=हमें आनन्दित कीजिए। **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार के हेतु से तथा **महे राधसे**=महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए आप सोम के द्वारा हमें आनन्दित कीजिए। सोम-रक्षण द्वारा हम अपनी शक्तियों का विस्तार करनेवाले हों तथा मोक्षरूप महान् धन को प्राप्त कर सकें। २. आप **स्तोतारम्**=मुझ स्तोता को **निदे न करः**=निन्दा के लिए न कीजिए। न मैं औरों की निन्दा करता रहूँ, न निन्दा का पात्र ही बनूँ।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करता हुआ मैं सोम रक्षण द्वारा शरीर की शक्तियों का विस्तार करूँ, अन्ततः उस महान् मोक्षधन को प्राप्त करूँ और कभी निन्दा के वशीभूत न हो जाऊँ। न निन्द्य बनूँ, न निन्दक होऊँ।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वयं त्वायवः, त्वम् अस्मयुः

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे। उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वायवः**=आपको प्राप्त करने की कामनावाले **वयम्**=हम **हविष्मन्तः**=त्यागपूर्वक अदनवाले—यज्ञशेष का सेवन करनेवाले होते हुए **जरामहे**=आपका स्तवन करते हैं। २. **उत**=और हे **वसो**=उत्तम निवास देनेवाले प्रभो! **त्वम् अस्मयुः**=आप हमें अभिमत प्रदान के लिए चाहनेवाले होते हैं—हम आपको चाहते हैं और आपके प्रिय बनते हैं।

भावार्थ—हम हविष्मान् बनकर प्रभु-प्राप्ति की कामनावाले होते हुए प्रभु का स्तवन करें। इसप्रकार हम प्रभु के प्रिय बनें, प्रभु से सब अभिमत वस्तुओं को प्राप्त करें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

मा आरे विमुमुचः

मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि। इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

१. हे **हरिप्रिय**=प्रीतिकर इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले (हरिः प्रियो यस्य) **इन्द्र**=परमैश्वर्य-शालिन् प्रभो! **अस्मत् आरे**=हमसे दूर **मा विमुमुचः**=रथयुक्त अश्वों को मुक्त मत कर दीजिए। **अर्वाङ् याहि**=आप हमें आभिमुख्येन प्राप्त हों। २. हे **स्वधावः**=आत्मधारणशक्तिवाले प्रभो! **इह**=इस—हमारे जीवन में आप **मत्स्व**=आनन्दित होइए। सोम-रक्षण के द्वारा आप हम उपासकों को आनन्दमय जीवनवाला बनाइए।

भावार्थ—प्रभु हमें समीपता से प्राप्त हों। वे आत्मधारणशक्तिवाले प्रभु सोम रक्षण द्वारा हमें आनन्दित करें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

केशिना-घृतस्नू

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना। घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सुखे रथे**=(सु+ख) उत्तम इन्द्रियोंवाले (सुखकर) इस शरीर-रथ में **केशिना**=प्रकाश की रश्मियोंवाले ये इन्द्रियाश्व **त्वा**=आपको **अर्वाञ्चम्**=हमारे अभिमुख **वहताम्**=प्राप्त कराएँ। २. **घृत-स्नू**=दीप्ति को प्रस्तुत करनेवाले ये अश्व आपको **बर्हि**=हमारे हृदयान्तरिक्ष में **आसदे**=बैठने के लिए हमारे अभिमुख प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—हमारी इन्द्रियाँ ज्ञानदीप्तिवाली होती हुई हमें प्रभु को प्राप्त कराएँ।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'विश्वामित्र' ही है—

२४. [चतुर्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाला रथ

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम्। हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **नः**=हमारे **सतुम्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को **उप आगहि**=समीपता से प्राप्त होइए। आपकी उपासना से ही हम इस सोम का रक्षण कर पाएँगे। उस सोम को प्राप्त होइए जो **गवाशिरम्**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा समन्तात् वासनाओं को शीर्ण करनेवाला है। २. हे प्रभो! **हरिभ्याम्**=प्रशस्त इन्द्रियों से युक्त **यः ते**=जो आपका रथ है, वह **अस्मयुः**=हमारी कामनावाला हो, अर्थात् हमें प्रशस्त इन्द्रियाश्वों से युक्त शरीर रथ प्राप्त हो।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से सोम का रक्षण होगा। सुरक्षित सोम ज्ञानवृद्धि व वासना-विनाश का कारण बनेगा। उस समय हमारा शरीर-रथ प्रशस्त इन्द्रियाश्वों से युक्त होगा।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

जितेन्द्रियता-वासनाविनाश-स्तवन

तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम्। कुविन्न्वस्य तृप्णवः ॥ २ ॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **तं मदम् आगहि**=उस उल्लासजनक सोम को प्राप्त हो, जो **बर्हिष्ठाम्**=वासनाशून्य हृदय में स्थित होनेवाला है। **ग्रावभिः सुतम्**=स्तोताओं से सम्पादित होता है—प्रभु के स्तोता ही इसे अपने अन्दर रक्षित कर पाते हैं। २. तू **कुवित्**=बहुत **नु**=अब शीघ्र ही **अस्य तृप्णवः**=इससे तृप्त हो (तृपेः लेटिरूपम्)। इसके रक्षण से तू प्रीति का अनुभव कर।

भावार्थ—सोम-रक्षण के लिए 'जितेन्द्रियता-वासनाविनाश व स्तवन' साधन हैं। इसके रक्षण से अद्भुत प्रीति का अनुभव होता है।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

आवृते, सोमपीतये

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः। आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥

१. **इतः**=यहाँ—हमारे गृह की यज्ञभूमि से **मम**=मेरी **गिरः**=स्तुतिरूप वाणियाँ **इषिताः**=हमसे प्रेरित हुई-हुई **इत्था**=सचमुच **इन्द्रम् अच्छा**=प्रभु को लक्ष्य करके **अगुः**=प्रभु की ओर जाती हैं। हम स्तुतिवाणियाँ द्वारा प्रभु का स्तवन करते हैं। २. हम यह स्तवन **आवृते**=प्रभु को अपनी ओर आवृत्त करने के लिए करते हैं। हम अपनी ओर प्रभु की आवृत्ति **सोमपीतये**=सोम के रक्षण के लिए चाहते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करें। प्रभु को प्राप्त करने से हम सोम का रक्षण कर पाएँगे।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

स्तोमैः-उक्थेभिः

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे। उक्थेभिः कुविदागमत्॥ ४॥

१. **इह**=यहाँ—इस जीवन में **सोमस्य पीतये**=सोम के रक्षण के लिए **इन्द्रम्**=उस शत्रुविद्रावक प्रभु को **स्तोमैः**=स्तोत्रों के द्वारा **हवामहे**=पुकराते हैं। २. **उक्थेभिः**=ऊँचे से उच्चार्यमाण इन स्तोत्रों के द्वारा वे प्रभु **कुवित्**=अच्छी प्रकार **आगमत्**-हमें प्राप्त होते हैं। प्रभु-प्राप्ति होने पर काम आदि शत्रुओं का सम्भव ही नहीं रहता, अतः सोमपान सहज में ही हो जाता है।

भावार्थ—हम स्तोत्रों के द्वारा प्रभु की समीपता प्राप्त करते हैं। समीपस्थ प्रभु वासनाविनाश द्वारा सोम का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

इन्द्र-शतक्रतो-वाजिनीवसो

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो। जठरे वाजिनीवसो॥ ५॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **इमे सोमाः सुताः**=ये सोम सम्पादित हुए हैं। हे **शतक्रतो**=अनन्तशक्ति व प्रज्ञानवाले प्रभो! आप **तान् दधिष्व**=उनको धारण कीजिए। २. हे **वाजिनीवसो**=शक्तिप्रद अन्नों के द्वारा हमें बसानेवाले प्रभो! इन सोमकणों को **जठरे**-हमारे अन्दर ही—शरीर में ही धारण कीजिए। हम इन शक्तिप्रद अन्नों का सेवन करते हुए सोम को अपने अन्दर सुरक्षित कर पाएँ।

भावार्थ—सोम-रक्षण के लिए साधन हैं (क) जितेन्द्रियता (इन्द्र), (ख) सदा कर्मों व ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहना (शतक्रतो), (ग) अन्नों का सेवन, मांस का असेवन (वाजिनीवसो)।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

धनञ्जय, वाजेषु दधृषम्

विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे। अधा ते सुम्नमीमहे॥ ६॥

१. हे **कवे**=क्रान्तप्रज्ञ प्रभो! हम **त्वा**=आपको **हि**=निश्चय से **धनञ्जयम्**=सब धनों का विजेता **विद्म**=जानते हैं। आपको ही **वाजेषु**=संग्रामों में **दधृषम्**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाला जानते हैं। २. **अधा**=इसीलिए अब **ते**=आपके **सुम्नम्**=स्तोत्र को **ईमहे**=चाहते हैं। आपका स्तवन करते हुए हम धनों को भी प्राप्त करेंगे और संग्रामों में विजयी होंगे।

भावार्थ—प्रभु स्तवन करते हुए हम संग्रामों में विजयी बनें और धनों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'गवाशिर्, यवाशिर्' सोम

इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब। आगत्या वृषभिः सुतम्॥ ७॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **नः**=हमारे **इमम्**=इस **वृषभिः**=अपने अन्दर शक्ति का सेचन करनेवाले पुरुषों के द्वारा **सुतम्**=उत्पन्न किये गये सोम को **आगत्य**=हमें प्राप्त होकर **पिब**=आप पीजिए। वृषा पुरुष अपने अन्दर सोम का सम्पादन करते हैं। प्रभु ही उसका उनके अन्दर रक्षण करते हैं, अतः ये प्रभु की उपासना में प्रवृत्त होते हैं। २. उस सोम का आप पान कीजिए जो **गवाशिरम्**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा समन्तात् वासनाओं को शीर्ण करनेवाला है तथा **यवाशिरम्**=(यु मिश्रणामिश्रणयोः) बुराइयों को दूर करने व अच्छाइयों को प्राप्त कराने के द्वारा सब

अवाञ्छनीय तत्त्वों को विनष्ट करता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे अन्दर होते हैं तो सोम का रक्षण करते हैं। यह सोम-ज्ञान की वाणियों के द्वारा वासनाओं को शीर्ण करता है तथा बुराइयों को दूर करके सब अच्छाइयों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सोम-रक्षण व प्रभु-प्राप्ति

तुभ्येदिन्द्र स्वा ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये। एष रारन्तु ते हृदि॥ ८॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तुभ्य इत्**=आपकी प्राप्ति के लिए ही मैं **स्वे ओक्ये**=अपने निवासस्थानभूत इस शरीर में ही **सोमम्**=सोम को **पीतये**=पीने के लिए **चोदामि**=प्रेरित करता हूँ। शरीर में सुरक्षित सोम अन्ततः प्रभु-प्राप्ति का साधन बनता है। २. **एषा**=यह सोम **हृदि**=हृदय में **ते रारन्तु**=आपको रमण करानेवाला हो। सोम-रक्षण द्वारा हम हृदयस्थ प्रभु में रमण करनेवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति का मूल सोम-रक्षण ही है।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

कुशिकासः अवस्यवः

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे। कुशिकासो अवस्यवः॥ ९॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! **सुतस्य**=उत्पन्न हुए सोम के **पीतये**=पान के लिए **प्रत्नम्**=सनातन **त्वम्**=आपको **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु का आराधन वासना-विद्रावण द्वारा सोम-रक्षण का साधन बनता है। २. **अवस्यवः**=रक्षण की कामनावाले हम **कुशिकासः** (कुश संश्लेषणे)=प्रभु के साथ आलिंगन करनेवाले होते हैं। प्रभु के साथ मेल के द्वारा ही (क्रंशतेर्वा प्रकाशयति कर्मणः) ये सपने हृदयों को प्रकाशमय बनाते हैं।

भावार्थ—हम उत्पन्न सोम के रक्षण के लिए सनातन प्रभु का आराधन करते हैं। प्रभु के आराधन से ही हृदय को प्रकाशमय बना पाते हैं।

प्रभु के आराधन से प्रशस्त इन्द्रियोंवाला यह 'गोतम' बनता है। यह गोतम अगले सूक्त का ऋषि है—

२५. [पञ्चविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

गोषु प्रथमः

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! जो **मर्त्यः**=मनुष्य **तव ऊतिभिः**=आपके रक्षणों से **सुप्रावीः**=सम्यक् रक्षित होता है वह **अश्वावति**=उत्तम कर्मेन्द्रियोंवाले यज्ञादि कर्मों में **प्रथमः**=पहला होता है तथा **गोषु**=ज्ञानेन्द्रियों में भी मुख्य होता हुआ **गच्छति**=गतिवाला होता है। प्रभु से रक्षित मनुष्य उत्तम कर्मेन्द्रियों व उत्तम ज्ञानेन्द्रियोंवाला होता है। २. हे प्रभो! आप भी **तम् इत्**=उस प्रशस्त इन्द्रियोंवाले पुरुष को ही **भवीयसा वसुना**=अत्यधिक धन से **पृणक्षि**=सम्पृक्त करते हैं, **यथा**=जैसे **आपः**=जल **अभितः**=सब ओर से **सिन्धुम्**=समुद्र को जल से भरते हैं। हे प्रभो! ये

पुरुष, जिनको आप उत्तम इन्द्रियाँ प्राप्त कराते हैं, और जिन्हें आप प्रभूत धन देते हैं, **विचेतसः**=विशिष्ट ज्ञानवाले होते हैं। 'घृतलवणतण्डुलेन्धनचिन्ता' इन्हें परेशान नहीं किये रखती।

भावार्थ—प्रभु से रक्षित व्यक्ति उत्तम इन्द्रियोंवाला, पर्याप्त धनवाला व विशिष्ट चेतनावाला होता है।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

वितत॑ं यथा रजः (एक व्यापक प्रकाश)

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वराइव॥ २॥

१. **देवीः आपः**=दिव्यगुणों से युक्त जल **न**=जैसे समुद्र की ओर जाते हैं, उसी प्रकार हमारी स्तुतियाँ **होत्रियम् उपयन्ति**=होत्र (समर्पण) के योग्य उस प्रभु के समीप प्राप्त होती है। उस समय ये स्तोता लोग **अवः**=(अवस्तोत्) अपने अन्दर—हृदयदेश में उस प्रभु को इसप्रकार **पश्यन्ति**=देखते हैं, **यथा**=जैसेकि **विततं रजः**=एक विस्तृत ज्योति हो। २. **देवासः**=देववृत्ति के लोग **देवयुम्**=दिव्यगुणों का हमारे साथ मिश्रण करनेवाले प्रभु को **प्राचैःप्रणयन्ति**=अग्रगमनों के द्वारा—उन्नतिपथ पर चलने के द्वारा अपने में प्राप्त कराते हैं। **ब्रह्मप्रियम्**=ज्ञान के द्वारा प्रीणित करनेवाले प्रभु को ये स्तोता लोग **जोषयन्ते**=प्रीतिपूर्वक उपासित करते हैं। **वराः इव**=इस प्रकार उपासित करते हैं जैसेकि वर कन्या को।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करते हुए हम हृदय में प्रभु के प्रकाश को देखते हैं। आगे बढ़ते हुए हम देववृत्ति के बनकर प्रभु को प्राप्त करते हैं। उस ज्ञान के द्वारा प्रीणित करनेवाले प्रभु को ही हम प्रीतिपूर्वक उपासित करते हैं।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'ज्ञान व कर्म' रूप दो स्तम्भों पर 'भक्ति' रूप छत

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुनाया सपर्यतः।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते॥ ३॥

१. यह उपासक **द्वयोः अधि**=ज्ञान व कर्मरूप स्तम्भों पर छत के रूप में **उक्थ्यं वचः**=स्तुतिवचन को **अदधाः**=धारण करता है। वही स्तुति मनुष्य का का रक्षण करनेवाली होती है, जोकि ज्ञान व कर्म पर आश्रित हो। **या**=जो **मिथुना**=स्त्री व पुमान्‌रूप द्वन्द्व **यतस्रुचा**=यज्ञ-साधन चमस् आदि पात्रों को ग्रहण किये हुए होते हैं, अर्थात् यज्ञशील होते हैं, अथवा नियमित वाणीवाले—मौनव्रतवाले होते हैं, वे ही वस्तुतः **सपर्यतः**=प्रभु-पूजन करते हैं (वाग्वै स्तुमः श० ६.३.१.८)। २. हे प्रभो! **असंयतः**=विषयों से अबद्ध पुरुष **ते व्रते क्षेति**=आपके व्रत में निवास करता है, इसके जीवन का उद्देश्य आपको प्राप्त करना होता है। इसकी सब क्रियाएँ आपको प्राप्त करने के उद्देश्य से होती हैं। **पुष्यति**=यह पोषण को प्राप्त करता है। इस **यजमानाय**=यज्ञशील **सुन्वते**=सोम का अभिषव (सम्पादन) करनेवाले पुरुष के लिए ही **भद्रा शक्तिः**=कल्याणकर शक्ति होती है। यह शक्तिशाली होता है और इसकी शक्ति सदा हितकर कार्यों में प्रवृत्त होती है।

भावार्थ—हम ज्ञान व कर्मरूप दो स्तम्भों पर भक्तिरूप छत की स्थापना करें। मौनव्रत को धारें। विषयों से अबद्ध होकर प्रभु की ओर चलें। यज्ञशील व सोम का सम्पादन करनेवाले बनकर भद्रशक्ति को प्राप्त करें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

सुकृत्यया शम्या

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः॥ ४॥

१. **आत्**=गतमन्त्र के अनुसार ज्ञान व कर्मरूप भित्तियों पर भक्तिरूप छत के धारण करने के बाद (आत् अनन्तरमेव) ही **ये अङ्गिराः**=जो ये गतिशील पुरुष (अगि गतौ) थे, वे **सुकृत्यया**=उत्तम रीति से किये जानेवाले **शम्या**=कर्मों से **इद्धाग्नयः**=दीप्त अग्निवाले बनकर—यज्ञ आदि कर्मों को करनेवाले होकर **प्रथमं वयः दधिरे**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करते थे। २. ये अङ्गिरा लोग **पणेः** (पण व्यवहारे) उत्तम व्यवहारों के द्वारा **सर्वं भोजनं**=सम्पूर्ण पालन व पोषण के लिए अवश्यक सामग्री को **समविन्दन्त**=प्राप्त करते थे। यह भोजन **अश्वावन्तम्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाला व **गोमन्तम्**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियोंवाला हुआ और इस सात्त्विक भोजन का सेवन करते हुए **नरः**=इस उन्नति-पथ पर चलनेवाले लोगों में **आ पशुम्**=सब ओर उस सर्वद्रष्टा प्रभु को पाया—ये सर्वत्र प्रभु की महिमा को देखनेवाले बनें।

भावार्थ—हम यज्ञादि कर्मों को करते हुए उत्तम जीवनवाले बनें। उत्तम व्यवहारों से सात्त्विक भोजनों को प्राप्त करके प्रशस्तेन्द्रिय बनें। उन्नति-पथ पर चलते हुए हम सर्वत्र प्रभु की महिमा को देखें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

अथर्वा-सूर्यः-व्रतपाः

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे॥ ५॥

१. **अथर्वा**=संसार के विषयों में डाँवाडोल न होनेवाला व्यक्ति **प्रथमः**=सर्वप्रथम होता है—वह सबका अग्रणी होता है। **यज्ञैः**=यज्ञों के द्वारा **पथः**=मार्गों को **तते**=विस्तृत करता है। **ततः**=तब ऐसा करने पर, यह **सूर्यः**=(सरति) निरन्तर क्रियाशील व सूर्य के समान चमकनेवाला बनता है। **व्रतपाः**=यह व्रतों का पालन करता है और **वेनः आजनि**=विचारशील हो जाता है—प्रत्येक काम को सोच-समझकर विचारपूर्वक करता है। २. यह **गाः**=इन्द्रियों को **आ आजत्**=समन्तात् अपने-अपने कर्मों में प्रेरित करता है। **उशनाः**=प्रभु-प्राप्ति की कामनावाला होता है। **काव्यः**=ज्ञानी बनता है। इस **यमस्य**=सर्वनियन्ता प्रभु के **सचा**=साथ **जातम्**=प्रादुर्भूतशक्तिवाले **अमृतम्**=विषय वासनाओं के पीछे न मारनेवाले पुरुष को **यजामहे**=हम आदर देते हैं और इसका संग करने का यत्न करते हैं।

भावार्थ—हम स्थिरवृत्ति बनकर यज्ञमय जीवनवाले बनें। सूर्य के समान व्रतों का पालन करनेवाले हों। इन्द्रियों को कर्त्तव्य-कर्मों में प्रेरित करें। प्रभु के सम्पर्क में रहनेवाले लोगों का संसर्ग करें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

प्रभु-रमण कहाँ?

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति॥ ६॥

१. **यत्**=जब **वा**=निश्चय से **बर्हिः**=यह वासनाशून्य हृदय **स्वपत्याय**=उत्तम सन्तानों के लिए **वृज्यते**=पाप की भावनाओं से पृथक् किया जाता है, अर्थात् जब एक घर में पति-पत्नी अपने हृदयों को पवित्र बनाते हैं और परिणामतः उत्तम सन्तानों को प्राप्त करते हैं। **वा**=या जब **अर्थः**=स्तोता **दिवि**=स्तुतिकर्म में (दिव् स्तुतौ) **श्लोकम् आघोषते**=प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करता है। २. **यत्र**=जिस गृह में **ग्रावा**=सत्कर्मों का उपदेष्टा, **कारुः**=स्वयं उत्तमता से कार्यों को करनेवाला **उक्थ्यः**=स्तोत्रों में उत्तम पुरुष **वदति**=कर्तव्य-पथ का उपदेश करता है, **तस्य इत्**=उस गृह के ही **अभिपित्वेषु**=समीप देशों में—ऐसे घर के वातावरण में ही—**इन्द्रः रण्यति**=प्रभु रमण करते हैं, अर्थात् इस गृह का वातावरण ही प्रभु प्राप्ति के अनुकूल होता है।

भावार्थ—प्रभु का निवास उन घरों में होता है, जहाँ लोग (क) अपने हृदयों को पवित्र बनाते हैं, (ख) जहाँ प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण होता है, (ग) जहाँ स्वयं 'ज्ञानप्रधान कर्मशील स्तोता' बनकर सन्तानों को कर्त्तव्य-पथ का उपदेश दिया जाता है।

ऋषिः—**अष्टकः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'धीभिः+शच्या' गृणानः

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ ७ ॥

१. हे **हर्यश्व**=लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाले इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **वृष्णे**=सब सुखों के वर्षक **प्रयै**=प्रकृष्ट गमनवाले **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिए **सतुस्य**=उत्पन्न हुए हुए इस सोम के **उग्रम्**=उद्गूर्ण बलवाले—तेजस्वी बनानेवाले **सत्याम्**=अवितथ सामर्थ्यवाले **पीतिम्**=पान को **प्र इयर्मि**=अपने में प्रेरित करता हूँ। इस सोम-रक्षण के द्वारा ही तो मैं आपको प्राप्त करूँगा। २. **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **धीभिः**=सब बुद्धियों के द्वारा—ज्ञानप्राप्तियों के द्वारा तथा **शच्या**=कर्मों के द्वारा **गृणानः**=हमसे स्तुति किये जाते हुए **इह**=यहाँ इस जीवन में **विश्वाभिः धेनाभिः**=सम्पूर्ण सत्य ज्ञानों को देनेवाली इन वेदवाणियों से **मादयस्व**=हमें आनन्दित कीजिए।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लए सोम-रक्षण आवश्यक है, यही हमें तेजस्वी व सत्यवृत्तिवाला बनाता है। हम ज्ञानप्राप्ति में लगने व यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त होने के द्वारा प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमारे हृदयों में वेदवाणियों का प्रकाश करेंगे।

प्रभु की सच्ची उपासना से अपने जीवन में सुख का निर्माण करनेवाला यह 'शुनःशेप' है—यह अत्यन्त मधुर इच्छाओंवाला होने से 'मधुचछन्दाः' होता है। अगले सूक्त में ये ही क्रमशः तीन मन्त्रों के ऋषि हैं—

२६. [षड्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

योगे-योगे तवस्तरम्

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

१. हम **सखायः**=परस्पर सखा बनते हुए—परस्पर मित्रभाव से वर्तते हुए **ऊतये**=अपने रक्षण के लिए **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु ने ही तो हमें वास्तविक रक्षण प्राप्त कराना है। २. हम उस प्रभु को **वाजेवाजे**=(Conflict, Battle) प्रत्येक संग्राम में पुकारते हैं, जोकि **योगेयोगे तवस्तरम्**=जितना-जितना सम्पर्क होता है, उतना ही अधिक शक्ति को प्राप्त करानेवाले हैं। जितना-जितना यह उपासक प्रभु के समीप प्राप्त होता है, उतना-उतना

ही अधिक शक्तिशाली बनता है। प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर ही यह उपासक काम-क्रोध आदि को पराजित कर पाता है।

भावार्थ—हम प्रभु को पुकारें—प्रभु के अधिकाधिक सम्पर्क में आयें, प्रभु हमें शक्ति देंगे और हम शत्रुओं को पराजित कर पाएँगे।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

ऊतिभिः+वाजेभिः

आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः। वाजेभिरुप नो हवम्॥ २॥

१. **यदि**=यदि वे प्रभु **नः**=हमारी **हवम्**=पुकार को **श्रवत्**=सुनते हैं, अर्थात् यदि हम प्रभु को पुकारते हैं तो वे **सहस्रिणीभिः ऊतिभिः**=हज़ारों रक्षणों के साथ तथा **वाजेभिः**=बलों के साथ **घा**=निश्चय से **उप आगमत्**=हमें समीपता से प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु को पुकारें। प्रभु हमें रक्षण व बल प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रत्न ओकस् (सनातन गृह)

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे॥ ३॥

१. **प्रत्नस्य ओकसः अनु**=उस सनातन घर का—ब्रह्मलोकरूप अपने मूल गृह का लक्ष्य करके **तुविप्रतिम्**=शक्तिशालियों के (तुवि=Strong) प्रतिनिधिभूत **नरम्**=उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाले प्रभु को **हुवे**=पुकारता हूँ। प्रभु की आराधना से ही मैं शत्रुओं पर विजय पाता हुआ ब्रह्मलोकरूप गृह को प्राप्त करूँगा। २. **यं ते**=(त्वाम्) जिन आपको **पूर्वम्**=पहले **पिता**=मेरे पिता **हुवे**=पुकारते थे। एक घर में पिता को प्रभु की आराधना करते हुए देखकर सन्तानों में भी प्रभु की आराधना की वृत्ति उत्पन्न होती है।

भावार्थ—हम ब्रह्मलोकरूप अपने सनातन गृह को प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रभु को पुकारें जैसे हमारे पिता पुकारते थे। प्रभु हमें शक्ति देंगे और हम शत्रुओं से न रोके जाकर आगे बढ़ते हुए लक्ष्यस्थान पर पहुँच पाएँगे।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

गृह प्राप्त्यर्थ क्या करें?

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि॥ ४॥

१. गतमन्त्र के अनुसार उस ब्रह्मलोक में पहुँचने की कामनावाले लोग **ब्रध्नम्**=(असौ वा आदित्यो ब्रध्नः। —तैब्रा० ३.९.४.१,२) आदित्य को **युञ्जन्ति**=अपने साथ जोड़ते हैं, आदित्य की भाँति अपने को प्रकाशमय बनाने का प्रयत्न करते हैं। **अरुषम्**=(अग्निर्वा अरुषः) अग्नि को अपने साथ जोड़ते हैं, अर्थात् अग्नि ही बनने का प्रयत्न करते हैं—निरन्तर आगे बढ़ने के लिए यत्नशील होते हैं। **चरन्तम्** (वायुर्वै चरन्)=वायु को अपने साथ जोड़ते हैं—वायु की भाँति निरन्तर गतिशील होते हैं। **परितस्थुषः** (इमे वै लोकाः परितस्थुषः)=इन सब लोकों को अपने साथ जोड़ते हैं—विश्वबन्धुत्व की भावना को अपने अन्दर जगाते हैं। २. ऐसा करने पर **दिवि रोचना**=आकाश में चमकते हुए नक्षत्र (नक्षत्राणि वै रोचना दिवि) **रोचन्ते**=इनके लिए रुचिकर होते हैं। ये उन नक्षत्रों में ही जन्म लेते हैं और अन्ततः ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं अथवा **दिवि**=अपने मस्तिष्करूप द्युलोक में **रोचना**=विज्ञान के नक्षत्रों को ये **रोचन्ते** (रोचयन्ति)=दीप्त करते हैं। ऐसा करके ही तो वे ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकेंगे।

भावार्थ—ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम सूर्य की भाँति अपने को दीप्त करें। अग्नि की भाँति अग्रणी बनें, वायु की भाँति क्रियाशील हों, विश्वबन्धु की भावना को धारण करें और अपने मस्तिष्करूप द्युलोक को विज्ञान के नक्षत्रों से चमकाएँ।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

उत्तम इन्द्रियाश्व

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ५ ॥

१. उपासक लोग **रथे**=अपने शरीर-रथ में **अस्य**=इस प्रभु से दिये गये (प्रभु के) **हरी**=इन्द्रियाश्वों को **युञ्जन्ति**=युक्त करते हैं। उन इन्द्रियाश्वों से युक्त करते हैं, जो **काम्या**=चाहने योग्य व सुन्दर हैं। **विपक्षसा**=विशिष्टरूप से अपने अपने कार्यों का परिग्रह करनेवाले हैं। २. इस उपासक के ये इन्द्रियाश्व **शोणा**=तेजस्विता से चमकनेवाले व गतिशील (शोणति to go, to move), **धृष्णू**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले व **नृवाहसा**=मनुष्यों को लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाले हैं।

भावार्थ—उपासक उन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करता है, जो कमनीय, विशिष्टरूप से अपने कार्यों को करनेवाले, तेजस्वी—शत्रुधर्षक व उसे लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

केतुं+पेशस्

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥ ६ ॥

१. हे **मर्याः**=मनुष्यो! प्रभु **अकेतवे**=प्रज्ञानरहित के लिए **केतुं कृण्वन्**=प्रज्ञान को करता हुआ है तथा **अपेशसे**=तेजस्विता की कमी से रूपरहित के लिए **पेशः**=तेजस्विता से दीप्त रूप को देते हैं। प्रभु प्रज्ञान व शक्ति प्राप्त कराते हैं। २. हे प्रभो! आप **उषद्भिः**=अन्धकार का दहन करनेवाली रश्मियों के साथ **सं अजायथाः**=हमारे हृदयों में प्रादुर्भूत होते हैं।

भावार्थ—हम हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखने का प्रयत्न करें। प्रभु हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त कराते हैं।

प्रज्ञान को प्राप्त करके ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रभु का उत्तमता से प्रतिपादन करनेवाला यह उपासक 'गो-सूक्ति' बनता है। शक्ति प्राप्त करके कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रभु का प्रतिपादन करता हुआ यह व्यक्ति 'अश्वसूक्ति' है। ये ही अगले सूक्त के ऋषि हैं—

२७. [सप्तविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु-स्तवन व धन-धान्य

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=यदि **अहम्**-मैं **यथा त्वम्**=आपकी भाँति **इत्**=निश्चय से **एकः**=अद्वितीय **वस्वः ईशीय**=धन का ईश बन जाऊँ, तो **मे स्तोता**=मेरा स्तोता **गोषखा स्यात्**=प्रशस्त इन्द्रियरूप गौओं का मालिक हो जाए। अथवा गौओं का स्वामी बन जाए। उसे धन-धान्य की कमी न रहे। २. प्रभु के स्तोता को धन-धान्य की कमी नहीं रहती। प्रभु उसके योगक्षेम को सम्यक् चलाते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करते हुए अभ्युदय को प्राप्त करें। प्रशस्त इन्द्रियरूप धनवाले हों।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

धन-प्राप्ति व धन-दान

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम्॥ २॥

१. हे **शचीपते**=शक्तियों व प्रज्ञानों के स्वामिन् प्रभो! **यत्**=यदि **अहम्**=मैं **गोपतिः स्याम्**=गौओं का मालिक होऊँ—गोधन को प्राप्त करूँ तो **अस्मै**=इस **मनीषिणे**=विद्वान् पुरुष के लिए **दित्सेयम्**=धन को देने की कामना करूँ और कामना ही नहीं, **शिक्षेयम्**=देनेवाला बनूँ (शिक्षतिर्दानकर्मा) २. हम प्रभु-कृपा से धन प्राप्त करें और ज्ञान-प्रसार के कार्यों में लगे हुए ज्ञानियों के लिए उन धनों को दें। 'गोधन' वेदधेनु का भी संकेत करता है। यदि इस वेदवाणीरूप गोधन को प्राप्त करें तो समझदार पुरुषों के लिए इसे देने की कामना करें और दें। ज्ञान-प्रसार में अधिक-से-अधिक शक्ति लगाएँ।

भावार्थ—हम धन के स्वामी बनें और ज्ञान प्रसार के कार्यों के लिए उसका दान करें।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सूनृता धेनु

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे॥ ३॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते धेनुः**=आपकी यह वेदवाणीरूप धेनु **सुनृता**=अत्यन्त प्रिय सत्यवाणीवाली है। यह सत्य-ज्ञान को प्रिय शब्दों में प्राप्त कराती है। २. यह धेनु **यजमानाय**=यज्ञशील **सुन्वते**=सोमशक्ति का सम्पादन करनेवाले पुरुष के लिए **पिप्युषी**=आप्यायन (वर्धन) करनेवाली होती हुई **गाम्**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियों को तथा **अश्वम्**=उत्तम कर्मेन्द्रियों को **दुहे**=प्रपूरित करती है। वेदवाणी को अपनाने से इन्द्रियों की शक्ति का वर्धन होता है।

भावार्थ—वेदवाणीरूप धेनु सत्य-ज्ञान को प्रियरूप में प्राप्त कराती है। इसका अध्ययन इन्द्रियों को प्रशस्त करता है।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

न देवो न मर्त्यः वर्ता अस्ति

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः। यद्दित्ससि स्तुतो मघम्॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **न देवः**=न तो सूर्य-चन्द्र आदि प्राकृतिक देव (शक्तियाँ) **न मर्त्यः**=न ही कोई मनुष्य **ते राधसः**=आपके ऐश्वर्य का **वर्ता अस्ति**=निवारक है। २. **स्तुतः**=स्तुति किये गये आप **यत्**=जब **मघम्**=ऐश्वर्य को **दित्ससि**=देने की कामनावाले होते हैं तब कोई आपको रोक थोड़े ही सकता है?

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से जब स्तोता को धन प्राप्त होता है तब कोई भी उस कार्य को विहत नहीं कर पाता।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

यज्ञ का महत्त्व

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि॥ ५॥

१. **यज्ञः**=यज्ञ **इन्द्रम् अवर्धयत्**=इन्द्र को बढ़ाता है, जब हम यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त होते हैं तब हमारे हृदयों में प्रभु का प्रकाश बढ़ता है। यज्ञ अर्थात् 'देवपूजा, संगतिकरण व दान' में हम जितना-जितना बढ़ते हैं उतना-उतना प्रभु के समीप होते जाते हैं। देवपूजा हमें प्रभु का उपासक बनाती है, संगतिकरण में हम प्रभु की गोद में पहुँच जाते हैं और दान (अर्पण) करके

हम प्रभु में प्रविष्ट होकर प्रभु के साथ 'एक' हो जाते हैं। **यत्**=जबकि प्रभु **भूमिम्**=हमारी इस शरीररूप पृथिवी को **व्यवर्तयत्**=रोगों से परे करते हैं—हमारा शरीर रोगशून्य बनता है। २. इस समय प्रभु **दिवि**=हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में **ओपशम्**=शिरोभूषण को—ज्ञान के आभरण को **चक्राणः**=करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—यज्ञों द्वारा हृदय में प्रभु के प्रकाश का वर्धन होता है। इससे शरीर नीरोग बनता है और मस्तिष्क ज्ञान से अलंकृत हो जाता है।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

प्रभु से रक्षा की पात्रता

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः। ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे॥ ६॥

१. गतमन्त्र के अनुसार यज्ञों द्वारा हमारे अन्दर **वावृधानस्य**=निरन्तर बढ़ते हुए, हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयम्**=हम **विश्वा धनानि**=सम्पूर्ण धनों को **जिग्युषः**=जीतनेवाले **ते**=आपके **ऊतिम्**=रक्षण को **आवृणीमहे**=सर्वथा वरते हैं। २. हमारी यही कामना होती है कि हम प्रभु की रक्षा के पात्र हों।

भावार्थ—हम यज्ञों द्वारा प्रभु का अपने में वर्धन करें और इसप्रकार प्रभु द्वारा रक्षणीय हों।

अगले सूक्त में भी 'गोषूक्ति व अश्वसूक्ति' ही ऋषि हैं—

२८. [अष्टाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

इन्द्रो यदभिनद् वलम्

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद् वलम्॥ १॥

१. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **सोमस्य मदे**=सोम के मद में—सोम रक्षण से जनित उल्लास होने पर **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष को **रोचना**=ज्ञानदीप्तियों के साथ **वि अतिरत्**=बढ़ाता है। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। इस ज्ञानदीप्ति से हृदयान्तरिक्ष चमक उठता है। २. यह सब होता तब है **यत्**=जबकि यह इन्द्र **वलम्**=ज्ञान पर आवरण के रूप में आ जानेवाली वासनाओं को **अभिनद्**=विदीर्ण कर डालता है। वासना विदारण से ही ज्ञानाग्नि का प्रकाश होता है।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनकर वासनारूप आवरण को विनष्ट करें और हृदय को ज्ञान-प्रकाश से दीप्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

उद्गाः आजत् अङ्गिरोभ्यः

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्॥ २॥

१. प्रभु **अङ्गिरोभ्यः**=इन गतिशील—कर्त्तव्य कर्मों के करने में लगे हुए उपासकों के लिए **गुहा सतीः**=अविद्यापर्वत की गुहा में वर्तमान **गाः**=इन्द्रियरूप गौओं को **आविष्कृण्वन्**=प्रकाशयुक्त करता हुआ **उद् आजत्**=उत्कृष्ट गतिवाला करता है। २. इसी उद्देश्य से प्रभु **वलम्**=इस आवरणभूत वासना को **अर्वाञ्चं नुनुदे**=अधोमुख विनष्ट कर देते हैं। वासनाओं को विनष्ट करके ही तो वे इन्द्रियों को प्रकाशमय करते हैं।

भावार्थ—प्रभु वासना को विनष्ट करके, गतिमय कर्त्तव्यपरायण पुरुषों की इन्द्रियों को प्रकाशमय करते हैं।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

दिवः दृढानि रोचना

इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे॥ ३॥

१. **इन्द्रेण**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु से **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक के **रोचना**=दीप्त ज्ञान नक्षत्र **दृढानि**=बड़े बलवाले (स्थूल) **च**=तथा **दृंहितानि**=स्थिर किये जाते हैं। हम प्रभु की उपासना करते हैं, प्रभु हमारे मस्तिष्क में महान् ज्ञान-नक्षत्रों को उदित करते हैं। २. ये सब ज्ञान-नक्षत्र **स्थिराणि**=स्थिर होते हैं, **न पराणुदे**=अपनोदनीय—नष्ट करने योग्य नहीं होते। इन ज्ञान-नक्षत्रों की दीप्ति मस्तिष्करूप द्युलोक को उज्ज्वल बनाये रखती है।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करते हैं। प्रभु हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में स्थिर, सबल ज्ञान-नक्षत्रों को उदित करते हैं।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सोमः अजिरायते

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते। वि ते मदा अराजिषुः॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **अपाम् ऊर्मिः इव**=समुद्रगत जलों की तरंग की भाँति **मदन्**=उल्लसित होती हुई **स्तोमः**=स्तुतिवाणी **अजिरायते**=क्षिप्रगामी की भाँति आचरण करती है, अर्थात् शीघ्रता से मेरे मुख से आपके प्रति निर्गत होती है। हम उल्लासयुक्त होकर प्रभु के स्तवन में प्रवृत्त होते हैं। २. हे प्रभो! ऐसा करने पर **ते मदाः**=आपके द्वारा प्राप्त कराये गये सोमपानजनित मद (उल्लास) **अराजिषुः**=विशिष्टरूप से दीप्त होते हैं। हम सोम-रक्षण द्वारा आनन्दमय जीवनवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करते हैं। उल्लसित जीवनवाले होकर सोम-रक्षण से एक विशिष्ट आनन्द का अनुभव करते हैं।

अगले सूक्त के ऋषि भी पूर्ववत् ही हैं—

२९. [एकोनत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

स्तोमवर्धनः+उक्थवर्धनः

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः। स्तोतॄणामुत भद्रकृत्॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वं हि**=आप निश्चय से **स्तोमवर्धनः**=स्तुतिसमूहों से हृदयों में वृद्धि को प्राप्त होनेवाले हैं। स्तोता जितना-जितना स्तवन करता है, उतना-उतना अधिकाधिक आपके प्रकाश को हृदय में पाता है। आप **उक्थवर्धनः असि**=वेदसूक्तों से—ज्ञान की वाणियों से—जानने योग्य हैं। जितना-जितना ज्ञान बढ़ता है, उतना-उतना हम आपके समीप होते हैं २. **उत**=और हे प्रभो! आप **स्तोतॄणां भद्रकृत्**=स्तोताओं का सदा कल्याण करते हैं।

भावार्थ—स्तुतिसमूहों से हम हृदय में प्रभु का वर्धन करें। ज्ञान की वाणियों से प्रभु के समीप और समीप हों। प्रभु स्तोताओं का कल्याण करते ही हैं।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

उप यज्ञं सुराधसम्

इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः। उप यज्ञं सुराधसम्॥ २॥

१. **केशिना**=प्रकाश की रश्मियोंवाले **हरी**=इन्द्रियाश्व **इन्द्रम् इत्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के ही **उपवक्षतः**=समीप मुझे प्राप्त कराते हैं। मैं अपनी इन्द्रियों के द्वारा विषयों की ओर न जाकर प्रभु की ओर ही चलता हूँ। २. ये मेरे इन्द्रियाश्व **सोमपेयाय**=सोम के शरीर में ही पान (रक्षण) के लिए मुझे इन्द्र के समीप प्राप्त कराते हैं, जोकि **यज्ञम्**=यष्टव्य, पूजनीय हैं और **सुराधसम्**=उत्तम ऐश्वर्य व साफल्य प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें सोम-रक्षण के योग्य बनाएँगे और हमें उत्तम सफलता प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

अपां फेनेन

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः। विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ३ ॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **अपाम्**=कर्मों के **फेनेन**=आप्यायन—वर्धन से (स्फायी वृद्धौ) **नमुचेः**=इस पीछा न छोड़नेवाली वासना के **शिरः**=सिर को **उदवर्तयः**=शरीर से उद्गत कर देता है—विच्छिन्न कर डालता है। कर्मों में लगे रहने के द्वारा वासना को विनष्ट कर डालता है। २. यही वह समय होता है **यत्**=जबकि तू **विश्वा**=सब **स्पृधः**=स्पर्धा करती हुई शत्रु-सेनाओं को **अजयः**=जीत लेता है। यह क्रियाशीलता तुझे सब शत्रुओं के पराभव के लिए समर्थ करती हैं।

भावार्थ—हम क्रियाशील बनकर वासना-सम्राट् 'कामदेव' के सिर का उच्छेदन कर डालें।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

मायाभिः उत् सिसृप्सतः दस्यून् (अवाधूनुथाः)

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः। अव दस्यूँरधूनुथाः ॥ ४ ॥

१. विषय वासनाओं की कामनाएँ नाना प्रकार से धोखा देकर हमारे अन्दर प्रवेश कर जाती हैं और हमारे मस्तिष्क में अपना स्थान बना लेती हैं। उस समय इनका पराभव बड़ा कठिन हो जाता है, परन्तु हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **मायाभिः**=छल-कपटों के द्वारा **उत्सिसृप्सतः**=हमारे अन्दर ऊर्ध्वगति की कामनावाली होती हुई और **द्याम् आरुरुक्षतः**=मस्तिष्करूप द्युलोक में आरूढ़ होती हुई इन **दस्यून्**=विनाशक वासनावृत्तियों को **अव अधूनुथाः**=अधोमुख करके नीचे पटक देता है।

भावार्थ—हम विषयवासना की वृत्तियों को मस्तिष्क में अपना स्थान न बना लेने दें। वहाँ अपना स्थान बनाने से पूर्व ही इन्हें विनष्ट कर डालें। ये तो मायावी रूप धारण करके हममें प्रबल होने के लिए यत्नशील होंगी।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

असुनु संसद्

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्य नाशयः। सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **असुन्वां संसदम्**=(न विद्यते सुनुः अभिभवो यस्याः) सोम के अभिषव में विघात करनेवाली अयष्टृसभा को **विषूचीं व्यनाशयः**=तितर-बितर करके नष्ट कर डाल। 'काम, क्रोध, लोभ' आदि आसुरभावों के होने पर मनुष्य यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त न होकर विषयों की ओर झुकता है और शरीर में सोमशक्ति का रक्षण नहीं कर पाता, अतः इन्हें 'असुनु संसद्' कहा गया है। इस संसद् का विनाश आवश्यक है। २. इस संसद् के विनाश से हे इन्द्र! तू **सोमपाः**=सोम का शरीर में रक्षण करनेवाला हो और **उत्तरः**

भवन्=उत्कृष्टतम जीवनवाला बन।

भावार्थ—हम काम-क्रोध आदि आसुरभावों की संसद् को भंग करके सोम रक्षण करें और उन्नत जीवनवाले बनें।

काम-क्रोधादि को विनष्ट करनेवाला यह 'बरु' कहलाता है—प्रभु का वरण करनेवाला। यह सर्वव्यापक, वासनाहारक प्रभु का ही स्मरण करता है, अतः 'सर्वहरि' भी कहलाता है। यह 'सर्वहरि बरु' प्रभु का स्तवन करता हुआ कहता है—

३०. [त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**जगती**॥

घृतं+चारु

प्र ते॑ म॒हे वि॒दथे॑ शंसिषं॒ हरी॒ प्र ते॑ वन्वे व॒नुषो॑ हर्य॒तं मद॑म्।

घृ॒तं न यो हरि॑भि॒श्चारु॒ सेच॑त॒ आ त्वा॑ विशन्तु॒ हरि॑वर्पसं॒ गिरः॑॥ १॥

१. हे प्रभो! **महे विदथे**=महान् ज्ञानयज्ञ के निमित्त **ते हरी**=आपसे दिये गये इन्द्रियाश्वों का **प्रशंसिषम्**=शंसन करता हूँ। इनके द्वारा मैं इस जीवन संग्राम में ज्ञानपूर्वक कर्म करता हुआ उन्नति-पथ पर आगे बढ़नेवाला बनूँ। २. **वनुषः**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाले आपसे मैं **ते**=आपके द्वारा दिये जानेवाले **हर्यतम्**=चाहने योग्य (कमनीय) **मदम्**=सोमपानजनित मद को **प्रवन्वे**=प्रकर्षेण माँगता हूँ। ३. **यः**=जो आप **हरिभिः**=इन इन्द्रियाश्वों के द्वारा **घृतं न**=ज्ञानदीप्ति के समान **चारु**=यज्ञादि कर्मों के आचरण को **सेचते**=हममें सिक्त करते हैं, उन **हरिवर्पसम्**=तेजस्वी रूपवाले **त्वा**=आपको **गिरः**=हमारी स्तुतिवाणियाँ **आविशन्तु**=सर्वथा प्रविष्ट हों। आपका हम स्तवन करें। आप हमें ज्ञानदीप्ति व क्रियाशीलता प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—प्रभु-प्रदत्त इन्द्रियों के महत्त्व को समझते हुए हम उनसे ज्ञान प्राप्त करते हुए सदा उत्तम कर्म करनेवाले बनें। सोम-रक्षण द्वारा इन्हें सशक्त बनाएँ। प्रभु-स्मरण करते हुए ज्ञान व कर्म का अपने में समुच्चय करें।

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**जगती**॥

हरिवन्तं शूषम्

हरिं॒ हि योनि॑म॒भि ये स॒मस्व॑रन्हि॒न्वन्तो॒ हरी॑ दि॒व्यं यथा॒ सदः॑।

आ यं पृ॒णन्ति॒ हरि॑भि॒र्न धे॒नव॒ इन्द्रा॑य शू॒षं हरि॑वन्तमर्चत॥ २॥

१. **ये**=जो उपासक **हि**=निश्चय से **हरिम्**=दुःखों का हरण करनेवाले **योनिम्**=सबके मूल-कारण प्रभु को **अभि समस्वरन्**=प्रातः-सायं सम्यक् स्तुत करते हैं, **यथा**=जिस स्तवन के द्वारा ये उपासक **हरी**=इन्द्रियाश्वों को **दिव्यं सदः**=देवों के निवासस्थानभूत यागगृह में **हिन्वन्तः**=प्रेरित करते हैं। प्रभु-स्तवन के द्वारा इन्द्रियाँ सदा उत्तम कर्मों को करनेवाली होती हैं। वे यज्ञगृहों की ओर जाती हैं। उनका झुकाव क्लबों व चित्रगृहों की ओर नहीं रहता। २. यह उपासक तो वह बन जाता है **यम्**=जिसको **धेनवः न**=गौएँ जैसे दूध से बछड़े को प्रीणित करती हैं, इसी प्रकार इसे वेद-धेनुएँ **हरिभिः**=ज्ञानरश्मिरूप दुग्धों से **आपृणन्ति**=पूरित करती है, अतः हे मनुष्यो! तुम **इन्द्राय**=प्रभु की प्राप्ति के लिए **हरिवन्तम्**=प्रकाश की रश्मियोंवाले **रक्षणम्**=बल को **अर्चत**=पूजित करो। प्रकाश की रश्मियों व बल को सम्पादित करते हुए तुम प्रभु को प्राप्त कर सकोगे।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। इन्द्रियों को यज्ञगृहों, न कि क्लबों की ओर प्रेरित करें। प्रकाश की रश्मियों व बल का सम्पादन करते हुए प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'हरित आयस' वज्र

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे॥ ३॥

१. **सः**=वह **अस्य**=इस प्रभु का **वज्रः**=क्रियाशीलतारूप वज्र **हरितः**=सब दुःखों का हरण करनेवाला है, **यः**-जो वज्र **आयसः**=लोहनिर्मित है। यह वज्र शत्रुओं का संहार करता ही है। यह **हरिः**=दुःखों का हरण करता है, **निकामः**=नितरां कमनीय (सुन्दर) है। **हरिः**=वे प्रकाशमय प्रभु **गभस्त्योः**=बाहुओं में **आ** (दधाति)=धारण कराते हैं। प्रभु वस्तुतः कर्म करने के लिए ही तो हाथों को देते हैं। २. **द्युम्नी**=वे प्रभु उत्तम ज्ञान की ज्योतिवाले हैं। **सुशिप्रः**=शोभन हनू व नासिकाओंवाले हैं। उत्तम जबड़ों को प्राप्त कराके वे हमें भोजन को खूब चबाने का संकेत करते हैं। यही नीरोगता का मार्ग है। नासिका छिद्रों को प्राणसाधना में विनियुक्त करने की प्रेरणा देते हैं। यही पवित्रता का मार्ग है 'प्राणायामैर्दहेद् दोषान्'। **हरिमन्युसायकः**=वे प्रभु अत्यन्त तेजस्वी, ज्ञानरूप बाणवाले हैं। इसी के द्वारा वे काम का संहार करते हैं। **इन्द्रे**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में सब **हरिता रूपा**=तेजस्वी रूप **नि मिमिक्षिरे**=नियोजयितुम् इष्ट होते हैं—सब तेजस्विता के स्रोत वे प्रभु ही तो हैं। जहाँ जहाँ तेजस्विता है, वह प्रभु के अंश के कारण ही है।

भावार्थ—क्रियाशीलतारूप वज्र बड़ा तेजस्वी व दृढ़ है। प्रभु ने इसे हमारे हाथों में धारण किया है। हम इसे अपनाकर शत्रुओं का संहार करें। ज्ञान प्राप्त करें। चबाकर खाएँ। प्राणायाम करें। सब तेजस्विता का स्रोत प्रभु को जानें।

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

सहस्रशोकाः हरिम्भरः

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः॥ ४॥

१. **वज्रः**=यह क्रियाशीलतारूप वज्र **दिवि**=द्युलोक में **केतुः न**=प्रज्ञापक आदित्य के समान **हर्यतः**=कान्त (दीप्त) होता हुआ **अधिधायि**=हाथों में धारण किया जाता है। यह वज्र **रंह्या**=वेग के दृष्टिकोण से **हरितः न**=सूर्य की किरणरूप अश्वों के समान **विव्यचत्**=सर्वत्र व्याप्त होता है, अर्थात् यह इन्द्र हाथों में क्रियाशीलतारूप वज्र लेकर सब कर्त्तव्य-कर्मों को सम्यक्तया करनेवाला होता है। २. **हरिशिप्रः**-यह प्रकाशमय शिरस्त्राणवाला (शिप्र Helmet) ज्ञानी पुरुष **यः**=जो **आयसः**=शरीर में लोहे का बना हुआ है वह **अहिम्**=वासना को **तुदत्**=विनष्ट करता है। वासना को विनष्ट करके यह **सहस्रशोकाः**=अनन्तदीप्तिवाला **हरिम्भरः**=प्रकाश की किरणों को धारण करनेवाला **अभवत्**=होता है।

भावार्थ—हम हाथों में चमकते हुए क्रियाशीलतारूप वज्र को धारण करें। वासना को विनष्ट करके दीप्त ज्ञानवाले बनें।

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

हरिकेश-हरिजात

त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य मसामि राधो हरिजात हर्यतम्॥ ५॥

१. हे **हरिकेश इन्द्र**=(हरि सूर्य, केश प्रकाशरश्मि) सूर्य के समान प्रकाश की रश्मियोंवाले

सर्वशक्तिमन् प्रभो! **पूर्वेभिः**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **यज्वभिः**=यज्ञशील पुरुषों से **उपस्तुतः**=स्तुति किये गये **त्वम्**=आप **त्वम्**=और आप ही **अहर्यथाः**=उस स्तोता के प्रति प्रीतिवाले होते हो और उसे प्राप्त होते हो (हर्य गतिकान्तयोः) २. **त्वं हर्यसि**=आप गतिवाले व दीप्तिवाले होते हो। हे **हरिजात**=सूर्य के समान प्रादुर्भूत हुए-हुए प्रभो! **तव विश्वं राधः**=आपका सम्पूर्ण ऐश्वर्य **उक्थ्यम्**=स्तुति के योग्य है, **असामि**=पूर्ण है तथा **हर्यतम्**=कान्त है। आप ही उपासकों के लिए इस ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें प्राप्त होंगे और प्रभु हमें सब आवश्यक ऐश्वर्यों को प्राप्त कराएँगे।

अगले सूक्त में ऋषि-देवता पूर्ववत् ही हैं—

३१. [एकत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**जगती**॥

पुरूणि सवनानि+हरयः सोमाः

ता व॒ज्रिणं॑ म॒न्दिनं॒ स्तोम्यं॒ मद॑ इन्द्रं॒ रथे॑ वहतो हर्य॒ता हरी॑।
पु॒रूण्य॑स्मै॒ सव॑नानि॒ हर्य॑त॒ इन्द्रा॑य॒ सोमा॒ हर॑यो दधन्विरे॥ १॥

१. **ता**=वे **हर्यता**=कमनीय व गतिशील **हरी**=इन्द्रियाश्व **मदे**=सोम-रक्षण-जनित उल्लास के निमित्त **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **रथे**=शरीर-रथ में **वहतः**=धारण करते हैं। प्रभु-स्मरण से ही तो शरीर में सोम का रक्षण होगा। ये प्रभु **वज्रिणम्**=वासना-विनाश के लिए हाथों में वज्र को लिये हुए हैं। **मन्दिनम्**=आनन्दमय हैं व **स्तोम्यम्**=स्तुति के योग्य हैं। प्रभु का स्तवन होने पर वासना का विनाश होता है, सोम का रक्षण होता है और जीवन में आनन्द व उल्लास का अनुभव होता है। २. **अस्मै**=इस **हर्यते**=व्याप्त व गतिशील **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिए **हरयः**=सब दुःखों को हरण करनेवाले **सोमाः**=सोमकण तथा **पुरूणि सवनानि**=पालनात्मक यज्ञ **दधन्विरे**=धारण किये जाते हैं। प्रभु-प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि (क) सोमकणों का रक्षण किया जाए तथा (ख) उत्तम कर्मों में (यज्ञात्मक कर्मों में) अपने को व्यापृत रक्खा जाए।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण द्वारा सोम रक्षण के लिए हम यत्नशील हों। प्रभु प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि सोमकणों का रक्षण किया जाए तथा यज्ञात्मक कर्मों में हम प्रवृत्त रहें।

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**जगती**॥

इन्द्रियों की पवित्रता

अरं॒ कामा॑य॒ हर॑यो दधन्विरे स्थि॒राय॑ हिन्व॒न्हर॑यो॒ हरी॑ तु॒रा।
अर्व॑द्भि॒र्यो हरि॑भि॒र्जोष॒मीय॑ते॒ सो अ॑स्य॒ काम॒ं हरि॑वन्तमानशे॥ २॥

१. उस **कामाय**=कमनीय **स्थिराय**=संग्राम में अविचलित इन्द्र की प्राप्ति के लिए **हरयः**=रोगों को हरण करनेवाले सोमकण **अरम्**=ख़ूब ही धारण किये जाते हैं। सोमकणों के रक्षण से ही प्रभु की प्राप्ति होती है। ये **हरयः**=सोमकण **तुरा**=शीघ्रता से अपना कार्य करनेवाले **हरी**=इन्द्रियाश्वों को **हिन्वन्**=यज्ञ आदि कर्मों में प्रेरित करते हैं। सोम-रक्षण करनेवाले पुरुष का झुकाव यज्ञादि कर्मों के प्रति बना रहता है। २. **यः**=जो **अर्वद्भिः**=(अर्व् to kill) वासनाओं का संहार करनेवाले **हरिभिः**=इन्द्रियाश्वों के साथ **जोषम्**=प्रीतिपूर्वक प्रभु के उपासन को **ईयते**=प्राप्त होता है, **सः**=वह **अस्य**=इसके, अर्थात् अपने **हरिवन्तं कामम्**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाली अभिलाषा को, अर्थात् इस

इच्छा को कि 'मेरी इन्द्रियाँ उत्तम बनी रहें' **आनशे**=व्याप्त करता है। उसकी यह इच्छा अवश्य पूर्ण होती है।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए सोमकणों का रक्षण करें। सुरक्षित सोम इन्द्रियों को उत्तम कर्मों में प्रेरित करेगा। जो भी व्यक्ति इन्द्रियों को निरुद्ध करके प्रभु का उपासन करता है, वही अपनी इन्द्रियों को पवित्र कर पाता है।

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**जगती**॥

हरि-श्म-शारुः

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी॥ ३॥

१. **हरि-श्म-शारुः**=शेर के समान शरीरवाला व शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला (हरि-शेर, श्म शरीर, शारु-हिंसक) **हरिकेशः**=सूर्य के समान प्रकाश की रश्मियोंवाला, **आयसः**=लोहशरीर—लोहे के समान दृढ़ शरीरवाला, **तुरस्पेये**=शीघ्रता से पीने योग्य सोम के विषय में **यः**=जो **हरिपाः**=इस दुःखहर्ता सोम का पान करनेवाला है, वह **अवर्धत**=वृद्धि को प्राप्त करता है। सब वृद्धियों का मूल सोम-रक्षण ही है। २. सोम-रक्षण द्वारा **यः**=जो **अर्वद्भिः**=सब बुराइयों का संहार करनेवाले **हरिभिः**=इन्द्रियाश्वों के द्वारा **वाजिनीवसुः**=शक्तिरूप धनवाला है, वह **हरी**=अपने इन्द्रियाश्वों को **विश्वा**=सब **दुरिता**=पापों के **पारिषत्**=पार ले-जाता है। इसप्रकार यह निष्पाप व पवित्र जीवनवाला होता है।

भावार्थ—हम तेजस्वी शरीरवाले, पवित्र मनवाले व प्रकाशमय मस्तिष्कवाले बनने के लिए सोम का रक्षण करें। इन्द्रियों को विषयों से दूर रखते हुए शक्तिरूप धनवाले बनें।

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**जगती**॥

इन्द्रियों का परिमार्जन

स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः॥ ४॥

१. **यस्य**=जिसके **हरिणी**=(ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी—ष० १.१) ऋक् और साम—विज्ञान व भक्ति—**स्रुवा इव**=दो स्रुवों के समान—यज्ञपात्रों के समान **विपेततुः**=विशिष्ट गतिवाले होते हैं, अर्थात् जिसके जीवन में विज्ञान व भक्ति का समन्वय होता है। २. जिसके **शिप्रे**=हनू और नासिका **वाजाय**=शक्ति-वृद्धि के लिए **हरिणी**=रोगों व वासनाओं का हरण करनेवाले होकर **दविध्वतः**=इन रोगों व वासनाओं को कम्पित करके दूर करते हैं। हनू का चर्वणरूप कार्य ठीक से होने पर रोग नहीं आते तथा नासिका का प्राणायामरूप कार्य ठीक से होने पर वासनाओं का विनाश होता है। ३. इस मन के वासनाशून्य होने पर **हर्यतस्य**=अत्यन्त कान्त—कमनीय **मदस्य**=उल्लासजनक **अन्धसः**=सोम का **पीत्वा**=पान करके इस **कृते चमसे**=संस्कृत शरीर में **यत्**=जो **हरी**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व हैं, उनको **प्रमर्मृजत्**=अच्छी प्रकार शुद्ध कर डालता है। सुरक्षित सोम इन्द्रियों की शक्ति को दीप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—हमारे जीवन-यज्ञ में विज्ञान व भक्ति का समन्वय हो। हम ख़ूब चबाकर भोजन करते हुए व्याधिशून्य बनें, प्राणायाम द्वारा निर्मल मनवाले (आधिशून्य) बनें। सोमपान द्वारा, संस्कृत शरीर में दीप्त इन्द्रियोंवाले हों।

ऋषिः—बरुः सर्वहरिर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—जगती ॥

पूजा-प्रकाश-ओज

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्यो३रत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत्।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा॥ ५॥

१. **उत**=और **हरिवान्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाला पुरुष **हर्यतस्य**=गति देनेवाले कान्त सोम के **पस्त्योः**=द्यावापृथिवी में—मस्तिष्क व शरीर में **सद्म**=गृह को—निवासस्थान को **अचिक्रदत्** **स्म**=प्रार्थित करता है। उसी प्रकार प्रार्थित करता है **न**=जैसेकि **अत्यः**=सतत गमनशील अश्व **वाजम्**=संग्राम को चाहता है। २. सोम का मस्तिष्क व शरीर में निवास-स्थान बनानेवाले इस पुरुष की **मही चित्**=निश्चय से उपासना की मनोवृत्तिवाली **धिषणा**=बुद्धि **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **अहर्यत्**=उस प्रभु की ओर गतिवाली होती है। हृदय को उपासनावाला, मस्तिष्क को ज्ञान के प्रकाशवाला व शरीर को ओजस्वी बनाकर यह प्रभु की ओर चलता है। इस **हर्यतः**=गतिमय कान्त जीवनवाले पुरुष के **बृहद् वयः**=उत्कृष्ट जीवन को हे प्रभो! आप ही **चित्**=निश्चय से **दधिषे**=धारण करते हैं।

भावार्थ—हम सोम को शरीर में सुरक्षित करके उत्तम मस्तिष्क व शरीर को प्राप्त करें। उपासना, ज्ञान व ओज को धारण करते हुए प्रभु की ओर चलें। प्रभु हमें उत्कृष्ट जीवन प्राप्त कराएँगे।

अगले सूक्त के ऋषि-देवता पूर्ववत् ही हैं—

३२. [द्वात्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—बरुः सर्वहरिर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

हरये-सूर्याय

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम्।
प्र पस्त्य॑मसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय॥ १॥

१. हे प्रभो! आप अपनी **महित्वा**=महिमा से **रोदसी**=इस द्यावापृथिवी में **आहर्यमाणः**=सर्वत्र व्याप्तिवाले हैं। सब पदार्थों में आपकी महिमा का दर्शन होता है। इन द्यावापृथिवी व लोक-लोकान्तरों का निर्माण करके **नु**=अब **नव्यम्**=अत्यन्त स्तुत्य (नु स्तुतौ) **नव्यम्** (नव गतौ)=कर्मों का उपदेश देनेवाले **मन्म**=ज्ञान को **हर्यसि**=आप प्राप्त कराते हैं। यह ज्ञान **प्रियम्**=प्रीति का जनक होता है—आनन्द देनेवाला है। २. हे **असुर**=ज्ञान देकर वासनाओं को विक्षिप्त करनेवाले प्रभो! (असु क्षेपणे) आप **हरये**=औरों के दुःख को हरनेवाले **सूर्याय**=निरन्तर गतिशील पुरुष के लिए **गोः**=इस वेदवाणी के **हर्यतम्**=कान्त—चाहने योग्य **पस्त्यम्**=गृह को **प्र आविष्कृधि**=प्रकर्षेण आविष्कृत करते हैं। जो भी हरि व सूर्य बनता है वही इस वेदवाणीरूप गृह को प्राप्त करता है।

भावार्थ—प्रभु की महिमा सर्वत्र व्याप्त है। प्रभु लोक-लोकान्तरों का निर्माण करके हमारे लिए प्रशस्त ज्ञान प्राप्त कराते हैं। जो भी पुरुष 'हरि व सूर्य' बनते हैं, प्रभु उनके लिए वेदज्ञान का प्रकाश करते हैं।

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

दशोणि यज्ञ

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम्॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **हरिशिप्रम्**=हरणशील हैं हनू व नासिका जिसकी, जिसके जबड़े भोजन को ख़ूब चबाकर रोगों को दूर करनेवाले हैं और नासिका प्राणायाम के द्वारा वासनाओं को विनष्ट करनेवाली है, उस **हर्यन्तम्**=प्रभु प्राप्ति की कामनावाले **त्वा**=तुझको **जनानाम्**=शक्तियों का विकास करनेवाले लोगों की **प्रयुजः**=योगवृत्तियाँ **रथे**=इस शरीर रथ में **आवहन्तु**=धारण करनेवाली हों, इन योगवृत्तियों के द्वारा तू सब शक्तियों का धारण करनेवाला बन। २. योगवृत्तियों को तू इसलिए अपनानेवाला हो, **यथा**=जिससे **प्रतिभृतस्य**=प्रतिदिन तेरे अन्दर धारण किये गये **मध्वः**=सोम का **पिब**=तू पान करे तथा **सधमादे**=प्रभु के साथ आनन्द प्राप्ति के निमित्त **दशोणिम्**=दशों इन्द्रियों को विषयों से पृथक् करनेवाले **यज्ञम्**=श्रेष्ठतम कर्मों को **हर्यन्**=चाहनेवाला हो।

भावार्थ—योगवृत्तियों को अपनाते हुए हम सोम का रक्षण करें तथा दशों इन्द्रियों को विषयों से पृथक् करके उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें। यही प्रभु के साथ मिलकर आनन्द प्राप्त करने का मार्ग है।

ऋषिः—**बरुः सर्वहरिर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मधुर व शक्तिशाली जीवन

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ वृषस्व॥ ३॥

१. हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले जीव! तूने **पूर्वेषाम्**=इन पालन व पूरण करनेवाले **सुतानाम्**=उत्पन्न हुए हुए सोमकणों का **अपाः**=पान किया है। **अथ उ**=और निश्चय से **इदं सवनम्**=यह सोम का उत्पादन **केवलं ते**=शुद्ध तेरे ही उत्कर्ष के लिए है। २. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **मधुमन्तं सोमम्**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाले इस सोम को **ममद्धि**=(पिब सा०) पीनेवाला बन—इसे शरीर में ही व्याप्त कर। हे **वृषन्**=शक्तिशालिन्! तू **सत्रा**=सदा **जठरे**=अपने अन्दर **आवृषस्व**=इस सोम का सेचन करनेवाला बन।

भावार्थ—शरीर में उत्पन्न किये गये सोमकणों का शरीर में रक्षण होने पर ही जीवन मधुर व शक्तिशाली बनता है।

सोम रक्षण द्वारा शरीरस्थ 'पाँचों भूतों व मन, बुद्धि, अहंकार' इन आठों को ठीक रखनेवाला यह व्यक्ति 'अष्टक' बनता है। यह सोम-रक्षण के महत्त्व को इसप्रकार प्रकट करता है—

३३. [त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अष्टकः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

क्रियामय, उपासनावाला जीवन

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः॥ १॥

१. हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **इह**=इस हमारे जीवन-यज्ञ में **नृभिः सुतस्य**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले लोगों से सम्पादित तथा **अप्सु धूतस्य**=कर्मों में पवित्र किये गये इस सोम का **पिब**=पान कीजिए। कर्मों में लगे रहने पर वासनाओं का आक्रमण नहीं होता और इसप्रकार सोम शरीर में सुरक्षित रहता है। इस सोम के द्वारा **जठरं पृणस्व**-हमारे आभ्यन्तर को पूरित कीजिए। यह सोम शरीर में ही व्याप्त हो जाए। २. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **यम्**=जिस सोम को **अद्रयः**=उपासक लोग **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिए **मिमिक्षुः**=अपने जठरों में सिक्त करते हैं, **तेभिः**=उन सोमकणों के द्वारा **उक्थवाहः**=स्तोत्रों को धारण करनेवाले इस पुरुष के **मदम्**=हर्ष को **वर्धस्व**=बढ़ाइए। सोम-रक्षण द्वारा शक्ति व ज्ञान का वर्धन होकर नीरोगता व निर्मलता प्राप्त होती है और जीवन आनन्दमय बनता है।

भावार्थ—सोम-रक्षण के लिए आवश्यक है कि हम कर्मों में लगे रहें, उन्नति-पथ पर आगे बढ़ें। सोम-रक्षण द्वारा प्रभु की प्राप्ति तथा ज्ञानवृद्धि होकर आनन्द की वृद्धि होगी।

ऋषिः—**अष्टकः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'उग्रा सत्या' पीति

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ २ ॥

१. हे **हर्यश्व**=प्रकाशमय इन्द्रियाश्वोंवाले प्रभो! **वृष्णे**=सब सुखों के वर्षक **तुभ्यम्**=आपके प्रति **प्रयै**=जाने के लिए **सुतस्य**=इस उत्पन्न हुए-हुए सोम की **उग्राम्**=हमें तेजस्वी बनानेवाली तथा **सत्याम्**=जीवनों को सत्यमय बनानेवाली **पीतिम्**=शरीर में ही रक्षा को **प्र इयर्मि**=प्रकर्षेण प्राप्त होता हूँ। मैं सोम-रक्षण द्वारा तेजस्वी व सत्य जीवनवाला बनकर आपको प्राप्त करता हूँ। २. हे **इन्द्र**=ज्ञानैश्वर्यवाले प्रभो! **धेनाभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **इह मादयस्व**=यहाँ—इस जीवन में हमें आनन्दित कीजिए। आप ही **विश्वाभिः धीभिः**=सम्पूर्ण प्रज्ञानों से तथा **शच्या**=शक्ति से **गृणानः**=स्तूयमान हैं। सम्पूर्ण प्रज्ञान व शक्ति के स्वामी आप ही हैं। हम भी आपकी उपासना के द्वारा सोम का रक्षण करते हुए आपसे ज्ञान व शक्ति प्राप्त करें।

भावार्थ—सोम-रक्षण द्वारा जीवन को उग्र (तेजस्वी) व सत्य बनाएँ। प्रभु हमें ज्ञान व शक्ति अवश्य प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**अष्टकः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उशिक् व ऋतज्ञ

ऊती शचीवस्तव वीर्ये॑ण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ३ ॥

१. हे **शचीवः**=शक्तिमन् प्रभो! **तव ऊती**=आपके रक्षण के द्वारा तथा (तव) **वीर्येण**=आपकी शक्ति के द्वारा **उशिजः**=मेधावी **ऋतज्ञः**=जीवन में ऋत के अनुसार (नियमित) कार्यों को करनेवाले लोग **वयः दधाना**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हैं। २. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! 'उशिक् ऋतज्ञ' **गृणन्तः**=आपका स्तवन करते हुए **सधमाद्यासः**=और आपके साथ आनन्द का अनुभव करते हुए **मनुषः दुरोणे**=एक विचारशील पुरुष के (दुर्-बुराई, ओण्-अपनयन) अपनीत मलवाले शरीर-गृह में **प्रजावत् तस्थुः**=सब शक्तियों के विकास (प्रजन्=प्रादुर्भाव) के साथ स्थित होते हैं।

भावार्थ—हम मेधावी व समय पर ठीक कार्यों को करनेवाले बनकर प्रभु से रक्षण व शक्ति

को प्राप्त करते हुए उत्कृष्ट जीवन को धारण करें। प्रभु स्तवन करते हुए हम प्रभु उपासन में आनन्द का अनुभव करें और इस पवित्र शरीर गृह में सब शक्तियों के विकास के साथ स्थित हों।

यह प्रभु-स्तवन करनेवाला व प्रभु के साथ आनन्द का अनुभव करनेवाला 'गृत्स मद' अगले सूक्त का ऋषि है—

अथ चतुर्थोऽनुवाकः।

३४. [चतुस्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

इन्द्र

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥ १॥

१. **सः इन्द्रः**=प्रभु वे हैं **यः जातः एव**=जो सदा से प्रादुर्भूत हैं। प्रभु 'कभी जन्म लेते हों' ऐसी बात नहीं। वे सदा से हैं। **प्रथमः**=वे अधिक-से-अधिक विस्तारवाले हैं। **मनस्वान्**=ज्ञानवाले हैं। **देवः**=ये दिव्य गुणयुक्त प्रभु **देवान्**=सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र आदि देवों को **क्रतुना**=शक्ति से **पर्यभूषत्**=अलंकृत करते हैं। प्रभु की महिमा से ही ये सब देव देवत्व को प्राप्त करते हैं। २. **यस्य**=जिनके **शुष्मात्**=बल से **रोदसी**=द्यावापृथिवी **अभ्यसेताम्**=भयभीत हो उठते हैं, हे **जनासः**=लोगो! **नृम्णस्य**=बल की **मह्ना**=महिमा से **सः इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु हैं। 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः' प्रभु की शक्ति के भय से ही अग्नि आदि देव अपना-अपना कार्य ठीक से कर रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु सदा से हैं, ये ही देवों को देवत्व प्राप्त कराते हैं। प्रभु की शक्ति की महिमा से ही सारे सूर्य आदि देव अपनी व्यवस्था में चल रहे हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सर्वाधार प्रभु

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः॥ २॥

१. **जनासः**=हे लोगो! **इन्द्रः सः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु वे हैं **यः**=जोकि **व्यथमानाम्**=भूकम्पादि से कम्पित होती हुई **पृथिवीम्**=पृथिवी को **अदृंहत्**=दृढ़ करते हैं। **यः**=जो **प्रकुपितान्**=मानो कुपित होकर लावा आदि के रूप में गर्म पदार्थों को बाहर फेंकते हुए **पर्वतान्**=पर्वतों को भी **अरम्णात्**=बड़ा रमणीय बना देते हैं। २. प्रभु वे हैं **यः**=जिन्होंने **अन्तरिक्षम्**=इस अन्तरिक्षलोक को **वरीयः**=अतिशयेन विशाल **विममे**=बनाया है और **यः**=जोकि **द्याम्**=द्युलोक को [**नृम्णस्य मह्ना**=अपने बल की महिमा से] **अस्तभ्नात्**=थामते हैं।

भावार्थ—प्रभु वे हैं जोकि पृथिवी को दृढ़, पर्वतों को रमणीय, अन्तरिक्ष को विशाल व द्युलोक को स्वस्थानस्थित बनाते हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सप्तसिन्धु प्रवहण

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः॥ ३॥

१. हे **जनासः**=लोगो! **इन्द्रः सः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु वे हैं **यः**=जो **अहिम्**=हमारा विनाश करनेवाली वासना का (आहन्ति) **हत्वा**=विनाश करके **सप्तसिन्धून्**=दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व मुखरूप सप्त ऋषियों से प्रवाहित किये जानेवाले सात (सर्पणशील) ज्ञान-प्रवाहों को **अरिणात्**=गतिमय करते हैं, और जो **वलस्य**=ज्ञान पर पर्दे के रूप में आ जानेवाली वासना के **अपधा**=(अप-धा) दूर स्थापन के द्वारा **गाः**=ज्ञान की वाणियों को **उद् आजत्**=उत्कर्षेण प्रेरित करते हैं। २. प्रभु वे हैं **यः**=जो **अश्मनोः अन्तः**=दो मेघों के अन्दर **अग्निम्**=विद्युत् रूप अग्नि को **जजान**=प्रादुर्भूत करते हैं। इसी प्रकार हमारे जीवनों में ज्ञान व श्रद्धारूप अश्माओं के बीच में कर्मरूप अग्नि को उत्पन्न करते हैं और **समत्सु**=वासना-संग्रामों में **संवृक्**='काम-क्रोध' आदि शत्रुओं का वर्जन करनेवाले हैं। इन प्रभु का ही स्मरण करें।

भावार्थ—प्रभु वासना-विनाश के द्वारा हमारे जीवनों में ज्ञानप्रवाहों को चलाते हैं। ज्ञान और श्रद्धा को उत्पन्न करके हमें कर्मशील बनाते हैं। काम-क्रोध आदि का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

दासं वर्णम् अधरं गुहाकः

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः॥ ४॥

१. **येन**=जिन्होंने **इमा विश्वा**=इन सब लोकों को **च्यवना**=अस्थिर-नश्वर **कृतानि**=बनाया है। दृढ़-से-दृढ़ भी लोक को प्रभु प्रलय के समय विदीर्ण कर देते हैं। **यः**=जो **दासं वर्णम्**=औरों का उपक्षय करनेवाले मानवसमूह को **अधरम्**=निचली योनियों में **गुहाकः**=संवृत ज्ञान की (गुह संवरणे) स्थिति में करते हैं, अर्थात् इन्हें पशु-पक्षियों व वृक्षादि स्थावर योनियों में जन्म देते हैं। यहाँ इनकी बुद्धि सुप्त-सी रहती है। ३. **यः**=जो **जिगीवान्**=सदा विजयी प्रभु **अर्यः**=वैश्यवृत्तिवाले कृपण व्यक्ति की **पुष्टानि**=सम्पत्तियों को इसप्रकार **आदत्**=छीन लेते हैं, **इव**=जैसेकि **श्वघ्नी**=व्याध **लक्षम्**=अपने लक्ष्यभूत मृग आदि को ले-लेता है। हे **जनासः**=लोगो! **सः**=वे कृपण-धनहर्ता प्रभु ही **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली हैं।

भावार्थ—प्रभु वे हैं जो (क) इन दृढ़-से-दृढ़ लोकों का भी विदारण करनेवाले हैं (ख) औरों का उपक्षय करनेवालों को निचली योनियों में जन्म देते हैं। (ग) कृपणों के धनों का अपहरण कर लेते हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अर्यः पुष्टीः विज इव आमिनाति

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः॥ ५॥

१. आसुरवृत्तिवाले लोग **यम्**=जिस **घोरम्**=शत्रुभयंकर प्रभु को **'कुह सः इति'**='अरे वे कहाँ है?' इसप्रकार **पृच्छन्ति स्म**=पूछते हैं। **उत**=और **एनम्**=इनको **'एषः न अस्ति इति'**='ये नहीं है' इसप्रकार **ईम् आहुः**=निश्चय से कहते हैं। ऐसा कहते हुए ये अन्याय-मार्गों से धनार्जन करते

हैं। २. **सः**=वे प्रभु **अर्यः**=इन मानवजाति के शत्रुभूत असुरों की **पुष्टीः**=सम्पत्तियों को **विजः इव**=भूकम्प की तरह **आमिनाति**=सर्वथा नष्ट करते हैं। हे **जनासः**=लोगो! **अस्मै**=इस प्रभु के लिए **श्रत् धत्त**=श्रद्धा करो। **सः इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली हैं—सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु में अविश्वास करनेवाले अन्याय्य मार्गों से धनार्जन करते हैं। प्रभु इनके सम्पत्ति-भण्डारों को भूकम्प की भाँति नष्ट कर देते हैं। प्रभु में विश्वास आवश्यक है।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'युक्तग्राव्णा-सुतसोम'

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो यो ऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥

१. हे **जनासः**=लोगो! **इन्द्रः सः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु वे हैं, **यः**=जो **रध्रस्य**=समृद्ध पुरुषों के **चोदिता**=प्रेरक हैं। उन्हें यज्ञादि कर्मों में धन के उपयोग की प्रेरणा देनेवाले ये प्रभु ही हैं। प्रभु वे हैं, **यः**=जो **कृशस्य**=दुर्बल के भी प्रेरक हैं। इसे उत्साहित करते हुए आगे बढ़ने के योग्य बनाते हैं। प्रभु वे हैं **यः**=जो **नाधमानस्य**=याचना करते हुए **कीरेः**=स्तोता के लिए धनों को प्रेरित करते हैं तथा **ब्रह्मणः**=ज्ञानी के प्रेरक हैं—ज्ञानी के लिए ज्ञान देनेवाले प्रभु ही हैं। २. प्रभु वे हैं **यः**=जो **युक्तग्राव्णः** (ग्रावा-प्राण)-प्राणायाम द्वारा चित्तवृत्ति को प्रभु में लगानेवाले के **अविता**=रक्षक हैं तथा **सुतसोमस्य**=अपने अन्दर सोम का सम्पादन करनेवाले पुरुष को **सुशिप्रः**=उत्तम जबड़ों व नासिका-छिद्रों को प्राप्त करानेवाले हैं। वस्तुतः जबड़ों से भोजन को ठीक चबाता हुआ तथा नासिका छिद्रों से प्राणायाम करता हुआ ही यह सुतसोम बन पाता है।

भावार्थ—प्रभु 'धनी, निर्धन, ज्ञानी व स्तोता' सभी को समुचित प्रेरणा देनेवाले हैं। प्राणसाधना करनेवाले व सोम का सम्पादन करनेवाले पुरुष को उत्तम जबड़ों व नासिका को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु के प्रशासन में

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥

१. हे **जनासः**=लोगो! **इन्द्रः सः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु वे हैं, **यस्य**=जिनके **प्रदिशि**=प्रशासन में **अश्वासः**=हमारी कर्मेन्द्रियाँ कर्मों में व्याप्त होती हैं और **यस्य**=जिसके प्रशासन में ही **गावः**=अर्थों की गमक ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति का कार्य करती हैं। **यस्य**=जिसके प्रशासन में ये **ग्रामाः**=प्राणसमूह अपना-अपना कार्य करते हैं और **यस्य**=जिसके प्रशासन में ही **विश्वे**=सब **रथासः**=शरीर रथ गति कर रहे हैं। 'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया'। २. आधिदैविक जगत् में भी **यः**=जो **सूर्यम्**=सूर्य को **जजान**=प्रादुर्भूत करते हैं और **यः**=जो **उषसम्**=उषा को प्रकट करते हैं। सूर्यकिरणों द्वारा जलों का वाष्पीभवन करके, मेघनिर्माण द्वारा **यः**=जो **अपाम्**=जलों के **नेता**=प्राप्त करानेवाले हैं, वे प्रभु ही 'इन्द्र' है।

भावार्थ—प्रभु के प्रशासन में ही हमारी 'कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणसमूह व शरीर रथ' गति कर रहे हैं। आधिदैविक जगत् में भी प्रभु के प्रशासन में ही 'सूर्य, उषा व मेघ' आदि देव अपना-अपना कार्य करते हैं।

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

सर्वाराध्य प्रभु

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥

१. हे **जनासः**=लोगो! **इन्द्रः सः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु वे हैं, **यम्**=जिनको **संयती**=सम्यक् गति करते हुए **क्रन्दसी**=परस्पर आह्वान सा करनेवाले ये द्यावापृथिवी **विह्वयेते**=विविध रूपों में पुकारते हैं। द्युलोक से पृथिवीलोक तक निवास करनेवाले सब प्राणी प्रभु को ही पुकारते हैं। २. **परे**=उत्कृष्ट मोक्षमार्ग पर चलनेवाले निष्काम कर्मयोगी भी प्रभु का आराधन करते हैं और **अवरे**=सकाम कर्म-मार्ग पर चलनेवाले ये निचली श्रेणी के व्यक्ति भी प्रभु को ही पुकारते हैं। ३. **उभयाः अमित्राः**=रणाङ्गण में एक-दूसरे के विरुद्ध मोर्चों को लगाये हुए ये दोनों शत्रु-सैन्य भी विजय के लिए उस प्रभु को ही पुकराते हैं। ४. **चित्**=निश्चय से **समानं रथम्**=समान ही गृहस्थरूप रथ पर **आतस्थिवांसा**=स्थित पति-पत्नी भी **नाना हवेते**=भिन्न-भिन्न रूपों में उस प्रभु का ही आराधन करते हैं। पति उचित धन के लिए आराधन करता है तो पत्नी गृह को सुचारुरूपेण चला सकने के लिए याचना करती है।

भावार्थ—सब संसार प्रभु का ही आराधन करता है। प्रभु से ही उस-उस कामना को प्राप्त करता है '**लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान्**'।

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

'सर्वविजेता' प्रभु

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥

१. हे **जनासः**=लोगो! **इन्द्रः सः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु वे हैं, **यस्मात् ऋते**=जिनके विना **जनासः**=लोग **न विजयन्ते**=विजय को प्राप्त नहीं करते। वस्तुतः सब विजय प्रभु की ही है 'जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि, सत्त्वं सत्त्ववतामहम्'। २. प्रभु वे हैं, **यम्**=जिनको **युध्यमानाः**=युद्ध करते हुए लोग **अवसे**=रक्षण के लिए **हवन्ते**=पुकारते हैं। प्रभु ही युद्ध में हमें शत्रुपराभव की शक्ति प्राप्त कराते हैं। ३. प्रभु वे हैं **यः**=जो **विश्वस्य**=संसार का **प्रतिमानम्** (An adversary)= प्रतिस्पर्द्धा करनेवाले योद्धा **बभूव**=हैं। सारा संसार हमारे विरुद्ध हो, परन्तु प्रभु का हमें साथ प्राप्त हो तो हम पराजित न होंगे। प्रभु तो वे हैं, **यः**=जो **अच्युतच्युत्**=दृढ़-से-दृढ़ (च्यावयितुम् अशक्यम्) भी लोकों को च्युत करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब विजयों के करनेवाले हैं। सबके रक्षक हैं। अनन्तशक्तिवाले हैं। सब शत्रुओं के पराजेता हैं।

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

'दस्यु-हन्ता' प्रभु

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥

१. **यः**=जो **शश्वतः**=बहुत ही **महि एनः दधानान्**=महान् पापों को धारण करनेवाले, **अमन्यमानान्**=प्रभु में आस्था न रखनेवाले पापियों को **शर्वा**=हनन-साधन वज्र आदि से

जघान=नष्ट कर डालते हैं। हे **जनासः**=लोगो! **सः इन्द्रः**=वे ही परमैश्वर्यशाली प्रभु हैं। २. प्रभु वे हैं, **यः**=जो **शर्धते**=बल के अभिमान में निर्बलों का हिंसन करनेवाले के लिए **शृध्याम्**=शत्रु प्रसहनशक्ति को **न अनुददाति**=नहीं देते हैं और **यः**=जो **दस्योः हन्ता**=औरों का उपक्षय करनेवाले दस्युओं के हन्ता हैं।

भावार्थ—प्रभु ही पापियों का विनाश करते हैं। अत्याचारियों की शक्तियों को छीन लेते हैं तथा दस्युओं के विनाशक हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पर्वतवासी शम्बर का विनाश

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः॥ ११॥

१. अविद्या पाँच पर्वोंवाली होने से 'पर्वत' है। इस अविद्या-पर्वत में ही ईर्ष्या का निवास है। अज्ञान में फँसा मनुष्य ईर्ष्या-द्वेष में फँसा रहता है। 'आचत्वारिंशतः संपूर्णता' इस चरक वाक्य के अनुसार मनुष्य ४० वर्ष में सब शक्तियों के परिपाक को प्राप्त कर लेता है। उस समय भी वह इस ईर्ष्या को अपना पीछा करता हुआ देखता है। **यः**=जो **शम्बरम्**=(शं वर) शान्ति पर पर्दा डाल देनेवाली, **पर्वतेषु क्षियन्तम्**=अविद्या पर्वत में निवास करती हुई ईर्ष्या को **चत्वारिंश्यां शरदि**=चालीसवें वर्ष में भी **अन्वविन्दत्**=अपना पीछा करता हुआ पाता है और इस ईर्ष्या को विनष्ट करने के लिए यत्नशील होता है। २. उस समय **ओजायमानम्**=अत्यन्त ओजस्वी (बलवान्) की तरह आचरण करती हुई, **अहिम्** (आहन्ति)=विनाशकारिणी, **शयानम्**-हमारे अन्दर छिपे रूप में रहनेवाली **दानुम्**=शक्तियों को छिन्न करनेवाली इस ईर्ष्या को **यः जघान**=जो विनष्ट करते हैं, हे **जनासः**=लोगो! **सः इन्द्रः**=वे ही प्रभु हैं। प्रभु ही हमें ईर्ष्या द्वेष से ऊपर उठने के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—अज्ञान के कारण ईर्ष्या से ऊपर उठना सम्भव नहीं होता। इस अति प्रबल भी ईर्ष्या द्वेष की भावना को प्रभु-कृपा से हम पराजित कर पाते हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'अचारुक-आस्ना'

यः शम्बरं पर्यतरत्कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत्सुतस्य।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत्स जनास इन्द्रः॥ १२॥

१. **यः**=जो **कसीभिः**=गतिशीलताओं के द्वारा—निरन्तर कर्म में लगे रहने के द्वारा **शम्बरं**=शान्ति के विनाशक ईर्ष्या नामक असुर को **पर्यतरत्**=(पर्यतारयत् सा०) पार करने में—तैर जाने में हमें समर्थ करता है। प्रभु हमें निरन्तर क्रियाओं में प्रेरित करके ईर्ष्या से ऊपर उठाते हैं। अकर्मण्य लोग ही ईर्ष्या द्वेष में फँसते हैं। २. वे प्रभु ही वस्तुतः **अचारुक-आस्ना**=सदा न चरते रहनेवाले मुख से **सुतस्य अपिबत्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम का पान करते हैं। प्रभु उपासक को जिह्वा के संयम के द्वारा सोम के रक्षण के योग्य बनाते हैं। भोजन का संयम हमें ब्रह्मचर्य पालन में समर्थ करता है। ३. **यस्मिन्**=जिस सोम का रक्षण होने पर **गिरौ अन्तः**=(आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः) आचार्य गर्भ (गिरि गुरु) के अन्दर निवास करते हुए **यजमानम्**=देवपूजन करते हुए—बड़ों का आदर करते हुए **बहुं जनम्**=बहुत लोगों को जो **आमूर्छत्**=(Strengthens) शक्ति देता है, हे **जनासः**=लोगो! **सः इन्द्रः**=वही परमैश्वर्यशाली प्रभु है।

आचार्यकुल में निवास करते हुए विनीत ब्रह्मचारियों को प्रभु ही वृद्धि प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—क्रियाशील बनाकर प्रभु हमें ईर्ष्या से ऊपर उठाते हैं। जिह्वा-संयम के द्वारा सोम-रक्षण के योग्य बनाते हैं। आचार्यकुलवासी ब्रह्मचारियों को प्रभु ही उन्नति प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

रौहिणासुर-वध

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः॥ १३॥

१. **यः**=जो **सप्तरश्मिः**=गायत्री आदि सात छन्दों में ज्ञान की रश्मियों को देनेवाले हैं। **वृषभः**=ज्ञान द्वारा सब सुखों का वर्षण करनेवाले हैं और **तुविष्मान्**=अत्यन्त प्रवृद्ध बलवाले हैं। हमारे जीवनों को **सर्तवे**=प्रवाहित करने के लिए **सप्त सिन्धून्**=सात छन्दों में प्रवाहित होनेवाली ज्ञान-नदियों को **अवासृजत्**=वासनाओं के बन्धन से मुक्त करते हैं, अर्थात् वासना-विनाश द्वारा हमारे जीवन में ज्ञान-प्रवाहों को प्रवाहित करते हैं। २. **यः**=जो **वज्रबाहुः**=वज्रहस्त प्रभु **रौहिणम्**=निरन्तर बढ़नेवाले और बढ़ते-बढ़ते **द्याम् आरोहन्तम्**=द्युलोक तक जा पहुँचनेवाले लोभ को **अस्फुरत्**=विनष्ट कर डालते हैं। हे **जनासः**=लोगो! **सः इन्द्रः**=वे ही परमैश्वर्यशाली प्रभु हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे अन्दर सप्त छन्दोमयी ज्ञान-नदियों को प्रवाहित करते हैं। इनको प्रवाहित करने के लिए ही वे विघ्नभूत लोभ को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'ब्रह्माण्ड के शासक' प्रभु

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः॥ १४॥

१. **अस्मै**=इस प्रभु के लिए **द्यावापृथिवी चित्**=द्युलोक व पृथिवीलोक भी **नमेते**=नमन करते हैं, अर्थात् ये सब इस प्रभु के शासन में चलते हैं। **अस्य**=इसके **शुष्मात्**=शत्रु-शोषक बल से **पर्वताः**=पर्वत भी **भयन्ते**=भयभीत होते हैं, अर्थात् दृढ़-से-दृढ़ पर्वत को भी प्रभु विदीर्ण कर डालते हैं। २. **यः**=जो प्रभु **सोमपाः**=(सोम=उत्पन्न जगत्) उत्पन्न जगत् के रक्षक हैं। **निचितः**=(निकेति=to observe) सर्वद्रष्टा हैं। **वज्रबाहुः**=वज्रसदृश बाहुवाले हैं। कभी न थकनेवाली भुजाओंवाले, अर्थात् अत्यन्त शक्तिसम्पन्न हैं। **यः**=जो **वज्रहस्तः**=दुष्टों को दण्डित करने के लिए हाथ में वज्र लिये हुए हैं, हे **जनासः**=लोगो! **सः इन्द्रः**=सब शत्रुओं के विद्रावक वे प्रभु ही 'इन्द्र' हैं।

भावार्थ—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रभु के शासन में है। वे प्रभु अनन्तशक्तिवाले व सर्वद्रष्टा हैं। दुष्टों को दण्डित करके ठीक मार्ग पर लानेवाले हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'ब्रह्म-सोम-राधः'

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः॥ १५॥

१. **यः**=जो **सुन्वन्तम्**=सोम का अभिषव करनेवाले का—शरीर में सोम का रक्षण करनेवाले का **अवति**=रक्षण करता है, **यः**=जो **पचन्तम्**=ज्ञानाग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाले को रक्षित

करता है, **यः**=जो **शंसन्तम्**=प्रभु का शंसन करनेवाले का रक्षण करता है और **शशमानम्**=प्लुत गति से अपने कर्त्तव्य-कर्मों को करनेवालों को **ऊती**=रक्षण के द्वारा प्राप्त होता है। २. **यस्य**=जिसका—जिससे दिया हुआ, **ब्रह्म**=ज्ञान **वर्धनम्**=हमारी वृद्धि का कारण होता है। **यस्य**=जिसका—जिससे उत्पन्न किया गया **सोमः**=सोम हमारी वृद्धि का साधक होता है और **यस्य**=जिसका **इदं राधः**=यह ऐश्वर्य है, हे **जनासः**=लोगो! **सः इन्द्रः**=वही परमैश्वर्यशाली प्रभु 'इन्द्र' है।

भावार्थ—प्रभु 'सोमरक्षक, ज्ञानाग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाले, स्तोता, क्रियाशील' व्यक्ति को प्राप्त होते हैं। प्रभु से दिया गया ज्ञान, प्रभु से उत्पन्न किया गया सोम तथा प्रभु प्रदत्त ऐश्वर्य हमारा वर्धक होता है।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'स्वयम्भू' ब्रह्म

जातो व्य ऽ ख्यत्पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः॥ १६॥

१. **जातः**=प्रादुर्भूत हुआ-हुआ यह प्रभु **पित्रोः उपस्थे**=द्यावापृथिवी की गोद में **व्यख्यत्**=प्रकाशित होता है। द्यावापृथिवी में सर्वत्र उस प्रभु की महिमा का प्रकाश होता है। यह प्रभु **भुवः**=मातृभूत पृथिवी को तथा **परस्य जनितुः**=उत्कृष्ट पितृस्थानीय द्युलोक को **न वेद**=नहीं जानता, अर्थात् जैसे ये द्युलोक व पृथिवीलोक सबके माता व पिता के रूप में हैं, इसी प्रकार प्रभु के भी कोई 'माता व पिता हों' ऐसी बात नहीं। प्रभु सबके मातृपितृभूत पृथिवी व द्युलोक को जन्म देते हैं। प्रभु को जन्म देनेवाला कोई नहीं—वे 'स्वयम्भू' हैं। २. **यः**=जो **अस्मत्**=हमसे **स्तविष्यमाणः**=स्तुति किये जाते हुए **नः**=हमारे **व्रता**=कर्मों को **देवानाम्**=देवों के कर्म बना देते हैं। प्रभु स्तोता को दिव्य कर्मोंवाला बनाते हैं। हे **जनासः**=लोगो! **सः इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु 'इन्द्र' हैं।

भावार्थ—द्यावापृथिवी प्रभु की महिमा का प्रकाश करते हैं। प्रभु के कोई माता-पिता नहीं हैं। स्तोता को प्रभु दिव्य कर्मोंवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'एकवीर' इन्द्र

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद्रेजन्ते भुवनानि विश्वा।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः॥ १७॥

१. **यः**=जो **सोमकामः**=सोम को चाहते हैं—प्रभु की सर्वोपरि कामना यही है कि हम अपने अन्दर उत्पन्न होनेवाले इस सोम का रक्षण करें। **हर्यश्वः**=सब दुःखों का हरण करनेवाले इन्द्रियाश्वों को देनेवाले हैं। प्रभु प्रदत्त कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे सब दुःखों का हरण करनेवाली हैं। **सूरिः**=वे प्रभु ज्ञानी हैं—ज्ञान के पुञ्ज हैं—ज्ञानस्वरूप हैं। **यस्मात्**=जिस प्रभु से **विश्वा भुवनानि**=सब भुवन **रेजन्ते**=चमकते हैं। 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'। २. **यः**=जो प्रभु **शम्बरम्**=शान्ति पर पर्दा डाल देनेवाली ईर्ष्या को **जघान**=नष्ट कर डालते हैं **च**=और **यः**=जो **शुष्णम्**=सब शक्तियों का शोषण कर डालनेवाले 'काम' को नष्ट करते हैं। इसप्रकार **यः**=जो **एकवीरः**=अद्वितीय वीर है, हे **जनासः**=लोगो! **सः इन्द्रः**=वे ही परमैश्वर्यशाली प्रभु 'इन्द्र' है।

भावार्थ—प्रभु हमसे चाहते हैं कि हम सोम का रक्षण करें। वे प्रभु हमें दुःखहारक इन्द्रियाँ

देते हैं। वे सर्वज्ञ प्रभु ही सब भुवनों को दीप्त करते हैं। प्रभु ही हमें ईर्ष्या व काम के संहार में समर्थ करते हैं।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रियासः सुवीरासः

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम॥ १८ ॥

१. **यः**=जो **दुध्रः**=दुर्धर्ष व अजेय प्रभु **सुन्वते**=अपने अन्दर सोम का अभिषव करनेवाले के लिए तथा **पचते**=ज्ञानाग्नि में अपना परिपाक करनेवाले के लिए **चित्**=निश्चय से **वाजम्**=शक्ति को **आदर्दर्षि**=खूब ही प्राप्त कराते हैं। **सः**=वे आप **किल**=निश्चय से **सत्यः असि**=सत्यस्वरूप हैं। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयम्**=हम **विश्वह**=सदा **ते**=आपके **प्रियासः**=प्रिय बनें, तथा **सुवीरासः**=उत्तम वीर बनते हुए **विदथम् आवदेम**=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करें—ज्ञानी बनने के लिए यत्नशील हों।

भावार्थ—सोमरक्षक, ज्ञानाग्नि में अपना परिपाक करनेवाले पुरुष को प्रभु शक्ति देते हैं। हम सदा प्रभु के प्रिय, वीर होते हुए ज्ञान की वाणियों का ही उच्चारण करें।

यह ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाला व्यक्ति प्रभु का प्रिय स्तोता बनता है, अतः 'नोधाः' कहलाता है—स्तुति का धारण करनेवाला। यह अपने अन्दर शक्ति को भर पाता है, अतः 'भरद्वाज' होता है। यह स्तवन करता हुआ कहता है कि—

३५. [पञ्चत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'स्तवन व हवन' से प्रभु-परिचरण

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा॥ १ ॥

१. **अस्मै**=इस **तवसे**=प्रवृद्ध, **तुराय**=शत्रु-संहारक, **माहिनाय**=पूजनीय **ऋचीषमाय**=(ऋचा समः) जितनी भी स्तुति की जाए उससे अन्यून, **अध्रिगवे**=अप्रतिहत गमनवाले प्रभु के लिए **ओहम्**=(वहनीय) प्रापणीय **स्तोमम्**=स्तुतिसमूह को **इत् उ**=निश्चय से **प्र हर्मि**=प्रकर्षेण प्राप्त कराता हूँ, (हरामि)। उसी प्रकार प्राप्त कराता हूँ **न**=जैसेकि **प्रयः**=अन्न को। जैसे मैं नियमपूर्वक अन्न का सेवन करता हूँ, उसी प्रकार नियमितरूप से प्रभु स्तवन भी करता हूँ। २. **इन्द्राय**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिए ही मुझसे **ब्रह्माणि**=प्रवृद्ध सोम आदि हवियाँ **राततमा**=अतिशयेन प्रदत्त होती हैं, अर्थात् जहाँ मैं स्तुति करता हूँ, वहाँ इस प्रभु की प्राप्ति के लिए यज्ञादि कर्मों को भी करता हूँ।

भावार्थ—मैं नियमितरूप से प्रभु-स्तवन व यज्ञ आदि करता हुआ प्रभु की प्रीति के लिए प्रयत्नशील होता हूँ।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'हृदा, मनसा, मनीषा'

अस्मा इदु प्रयइव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त॥ २ ॥

१. **अस्मै इत् उ**=इस प्रभु के लिए निश्चय से **प्रयः इव**=अन्न की भाँति **प्रयंसि**=तू अपने को प्राप्त कराता है। जैसे प्रातः-सायं तू अन्न का सेवन करता है, उसी प्रकार प्रातः सायं तू प्रभु का उपासन भी करता है। तू यह निश्चय कर कि मैं **बाधे**=शत्रुओं के बन्धन के निमित्त **सुवृक्ति**=शत्रुओं का सम्यक् वर्जन करनेवाले **आंगूषम्**=स्तोत्र को **भरामि**=सम्पादित करता हूँ। प्रभु-स्तवन ही काम क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का वर्जन करनेवाला होगा। २. उस **प्रत्नाय**=सनातन **पत्ये**=सबके रक्षक **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिए स्तोता लोग **हृदा**=हृदय से—हृदयस्थ श्रद्धा से, **मनसा**=मन से—मन के दृढ़ संकल्प से तथा **मनीषा**=बुद्धि के द्वारा **धियः**=अपने कर्मों को **मर्जयन्त**=शुद्ध करते हैं। इस कर्मशुद्धि के होने पर ही प्रभु का दर्शन होगा।

भावार्थ—हम प्रातः सायं प्रभु-स्तवन करें। प्रभु-प्राप्ति के लिए 'हृदय, मन व बुद्धि' की पवित्रता से कर्मों की पवित्रता का सम्पादन करें।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उपमं स्वर्षां आंगूषम्

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्ये॑न।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै॥ ३॥

१. **अस्मै इत् उ**=इस प्रभु के लिए निश्चय से **त्यम्**=उस **उपमम्**=(उपमीयते अनेन) समीपता से मापनेवाले, अर्थात् यद्यपि प्रभु का पूर्ण मापन सम्भव नहीं, तो भी बहुत कुछ प्रभु के गुणों का प्रतिपादन करनेवाले **स्वर्षाम्**=सुख व प्रकाश को प्राप्त करानेवाले **आंगूषम्**=स्तोत्र को **आस्येन**=मुख से **भरामि**-सम्पादित करता हूँ। २. उस **मंहिष्ठम्**=दातृतम—सर्वाधिक देनेवाले **सूरिम्**=ज्ञानी प्रभु को **मतीनाम् अच्छ उक्तिभिः**=मननपूर्वक की गई स्तुतियों के स्वच्छ वचनों से तथा **सुवृक्तिभिः**=सम्यक् पापों के वर्जन से **वावृधध्यै**=अपने में बढ़ाने के लिए होता हूँ।

भावार्थ—प्रभु स्तवन से प्रकाश की प्राप्ति होती है। स्तुति व पापवर्जन के द्वारा हम प्रभु की भावना को अपने में बढ़ा पाते हैं।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्तुति व ज्ञान

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय॥ ४॥

१. **इव**=जैसे **तष्टा**=बढ़ई **तत्सिनाय**=(तेन सिनम् अन्नं यस्य) रथ द्वारा आजीविका करनेवाले रथ स्वामी के लिए **रथम्**=रथ को प्राप्त कराता है, इसी प्रकार मैं भी **अस्मै**=इस प्रभु के लिए **इत् उ**=निश्चय से **स्तोमं संहिनोमि**=स्तुति को प्राप्त कराता हूँ। २. **च**=और **गिर्वाहसे**=ज्ञान की वाणियों को धारण करनेवाले प्रभु के लिए **गिरः**=इन ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुतिवाणियों को प्राप्त कराता हूँ। उस **मेधिराय**=(मेध यज्ञम्) यज्ञ के योग्य अथवा मेधावी **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिए **विश्वमिन्वम्**=सब गुणों का व्यापन करनेवाली **सुवृक्ति**=सम्यक् पापों का वर्जन करनेवाली स्तुति को प्रेरित करता हूँ।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए मैं ज्ञान व स्तुति को अपनाता हूँ।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अर्कं जुह्वा समञ्जे (सतत स्तवन)

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम्॥ ५॥

१. **अस्मै इन्द्राय इत् उ**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिए ही निश्चय से **श्रवस्या**=ज्ञान व यश की प्राप्ति के हेतु से **अर्कम्**=स्तुतिसाधन मन्त्रों को **जुह्वा**=आह्वान की साधनभूतवाणी से **समञ्जे**=संगत करता हूँ। इसप्रकार संगत करता हूँ—सदा स्तवन करनेवाला बनता हूँ **इव**=जैसेकि एक व्यक्ति **श्रवस्या**=अन्न-प्राप्ति की इच्छा से **सप्तिम्**=घोड़े को रथ से जोड़ता है। २. तथा मैं उस प्रभु को **वन्दध्यै**=वन्दन करने के लिए प्रवृत्त होता हूँ, जो **वीरम्**=शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करनेवाले हैं। **दानौकसम्**=दान के ओकस (गृह) हैं—सब-कुछ देनेवाले हैं। **पुरां दर्माणम्**=असुरों की पुरियों का विदारण करनेवाले हैं। 'काम, क्रोध, लोभ' के दुर्गों के विनाशक हैं। **गूर्तश्रवसम्**=उद्यत (उत्कृष्ट) ज्ञानवाले हैं। 'प्रभु सर्वज्ञ' हैं—भक्तों के ज्ञान को उत्कृष्ट करते हैं।

भावार्थ—मैं सदा उस प्रभु का स्तवन करता हूँ, जो वीर, सर्वप्रद, शत्रु-विनाशक व ज्ञान देनेवाले हैं।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'स्वपस्तम स्वर्य' वज्र

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्य१ं रणाय।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः॥ ६॥

१. **त्वष्टा**=वह देवशिल्पी प्रभु **अस्मा इत्**=इस उपासक के लिए निश्चय से **वज्रम्**=क्रियाशीलता रूप वज्र को **तक्षत्**=निर्मित करता है। यह वज्र **स्वपस्तमम्**=अतिशयेन उत्कृष्ट कर्मोंवाला है तथा **स्वर्यम्**=स्तुत्य व शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाला है ('स्वृ' शब्दोपतापयोः)। इसप्रकार उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करके तथा शत्रुओं को विनष्ट करके यह वज्र **रणाय**=जीवन की रमणीयता के लिए होता है। २. यह **कियेधाः**=(क्रममाणधाः नि ६.२०) आक्रमण करनेवाले शत्रुओं का निग्रह करनेवाला, **ईशानः**=जितेन्द्रिय पुरुष **तुजता येन**=शत्रुओं का संहार करनेवाले जिस वज्र के द्वारा **तुजन्**=शत्रुसंहार करता हुआ **चित्**=निश्चय से **वृत्रस्य**=ज्ञान की आवरणभूत वासना के **मर्म विदत्**=मर्मस्थल को प्राप्त करता है। वृत्र के मर्म पर प्रहार करता हुआ यह वृत्र का विनाश कर डालता है। वृत्र-विनाश से ही अपने जीवन में उत्तम कर्मों को करता हुआ प्रभु को प्राप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु हमें क्रियाशीलतारूप वज्र प्राप्त कराते हैं। इसके द्वारा वासनाओं को विनष्ट करके हम रमणीय जीवनवाले बनते हैं।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सोम-रक्षण व सात्त्विक अन्न-सेवन

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवां चार्वन्ना।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता॥ ७॥

१. **अस्य इत् उ मातुः**=इसी निश्चय से, गतमन्त्र के अनुसार, वज्र का निर्माण करनेवाले के **सवनेषु**=उत्पादनों के निमित्त, अर्थात् प्रभु के दर्शन के निमित्त (प्रथम शक्तिमान् के रूप में,

फिर बुद्धिमान् के रूप में और अन्ततः दयालुरूप में दर्शन के निमित्त) **सद्यः**=शीघ्र ही **महः पितुम्**=तेजस्विता के रक्षक सोम का यह उपासक **पपिवान्**=पीनेवाला होता है। शरीर में सुरक्षित सोम ही ज्ञानाग्नि को दीप्त करके प्रभु का दर्शन कराएगा। इस सोम के रक्षण के लिए ही यह उपासक **चारु अन्ना**=सुन्दर सात्त्विक अन्नों का ग्रहण करता है। २. सोम-रक्षण द्वारा **विष्णुः**=व्यापक उन्नति करनेवाला—'शरीर-मन-मस्तिष्क' तीनों को उन्नत करनेवाला—यह उपासक **सहीयान्**=शत्रुओं का अतिशयेन अभिभव करता है तथा **पचतम्**='अन्न से रस, रस से रुधिर, रुधिर से मांस, मांस से मेदस्, मेदस् से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से शुक्र' इसप्रकार परिपक्व हुए-हुए इस वीर्य को **मुषायत्**=चुरा लेता है। प्रभु ने इसे अन्न में छिपाकर रखा है, यह विष्णु इसका अपहरण कर लेता है। यह **वराहम्**=(मेघ-वृत्रम्, वरं वरं आहन्ति)=ज्ञान की आवरणभूत अच्छी बातों को नष्ट करनेवाली—वासना को **विध्यद्**=बींधता हुआ **अद्रिम्**=अविद्यापर्वत को **तिरः अस्ता**=सुदूर (across, beyond), सात समुद्रपार फेंकनेवाला होता है।

भावार्थ—हम प्रभु-दर्शन के निमित्त सोम का रक्षण करें। सोम रक्षण के लिए सात्त्विक अन्न का सेवन करें। वासना को विनष्ट करके अविद्या को परे फेंकें और सोम-रक्षण के योग्य बनें।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वेदवाणियों द्वारा प्रभु-स्तवन

अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः॥ ८॥

१. **अस्मै इन्द्राय इत्** उ=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिए ही **देवपत्नीः**=दिव्यगुणों का पालन करनेवाली **ग्नाः चित्**=गायत्री आदि छन्दोमयी वेदवाणियाँ निश्चय से **अहिहत्ये**=ज्ञान की आवरणभूत वासना के विनाश के निमित्त **अर्कम्**=स्तुतिसाधन मन्त्रों को **ऊवुः**=(अतन्वत) विस्तृत करती हैं। इन वेदवाणियों के द्वारा प्रभु का स्तवन करता हुआ यह स्तोता वासनाओं का शिकार नहीं होता। २. यह इस रूप में प्रभु का स्तवन करता है कि वे प्रभु **उर्वी**-इन विस्तृत **द्यावापृथिवी**=द्यावापृथिवी को **परिजभ्रे**=(हृ Win over) विजय करनेवाले हैं अथवा (हृ to lead) प्रभु इन्हें गति देते हैं (भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया)। **ते**=वे द्यावापृथिवी **अस्य महिमानम्**=इसकी महिमा को न **परि स्तः**=चारों ओर से व्याप्त नहीं कर पाते, प्रभु इन्हें व्याप्त करके बाहर भी विद्यमान हैं (एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः)। इसप्रकार प्रभु-स्तवन करता हुआ यह व्यक्ति वासनाओं से पराभूत नहीं होता।

भावार्थ—वेदवाणियाँ हमारे लिए प्रभु स्तोत्रों को उपस्थित करती हैं। इनसे प्रभु स्तवन करता हुआ यह स्तोता वासना का विनाश कर पाता है।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्वरिः ववक्षे रणाय

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय॥ ९॥

१. **अस्य**=इस प्रभु की **महित्वम्**=महिमा **इत् एव**=निश्चय से ही **दिवः पृथिव्याः**=द्युलोक से व पृथिवीलोक से **प्रररिचे**=बढ़ी हुई है। वह प्रभु द्यावापृथिवी से व्याप्त नहीं किये जाते। **अन्तरिक्षात् परि**=अन्तरिक्ष से भी उस प्रभु की महिमा ऊपर है—बढ़ी हुई है। ये सब लोकत्रयी

प्रभु के एक देश में ही समायी हुई है (पादोऽस्य विश्वा भूतानि)। २. वे **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **स्वराट्**=स्वयं देदीप्यमान हैं, व अपना शासन स्वयं करनेवाले हैं। **दमे**=इसप्रकार दमन के होने पर वे प्रभु **आ**=समन्तात् **विश्वगूर्तः**=सब उद्यमोंवाले हैं। यह सारा संसार प्रभु की ही रचना है। प्रभु के शासन में ही सारा संसार गतिवाला होता है। ३. वे प्रभु **स्वरिः**=(सु अरिः) उत्तम आक्रान्ता हैं, शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले हैं। **अमत्रः**=(अम त्र) गति के द्वारा सबका रक्षण करनेवाले हैं। ये प्रभु **रणाय**=रमणीय संग्राम के लिए **ववक्षे**=स्तोता को शक्तिशाली बनाते हैं। (वक्ष् to be powerful)।

भावार्थ—प्रभु की महिमा त्रिलोकी से व्याप्त नहीं की जाती। प्रभु स्वराट् हैं। स्तोता को शत्रुओं के साथ युद्ध के लिए शक्तिशाली बनाते हैं।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

श्रवः अभि

अ॒स्येदे॒व शव॑सा शु॒षन्तं॒ वि वृ॑श्च॒द्वज्रे॑ण वृ॒त्रमिन्द्रः॑।
गा न व्रा॒णा अ॒वनी॑रमुञ्चद॒भि श्रवो॑ दा॒वने॒ सचे॑ताः ॥ १० ॥

१. **अस्य इत् एव**=इस प्रभु के ही **शवसा**=बल से **शुषन्तम्**=सूखते-से हुए **वृत्रम्**=ज्ञान के आवरणभूत इस कामदेव को **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप वज्र से **विवृश्चद्**=विशेषरूप से काट डालता है। प्रभु-स्मरण से दुर्बल हुई-हुई वासना को यह क्रियायशीलता के द्वारा नष्ट ही कर डालता है। एवं प्रभु-स्मरणपूर्वक क्रियाशीलता से वासना का विनाश हो जाता है। २. **व्राणाः**=वृत्र से—वासनात्मक काम से आवृत्त हुई-हुई **अवनीः**=रक्षक सोमशक्तियों को यह वासना-विनाश के द्वारा **अमुञ्चत्**=मुक्त करता है। इसप्रकार मुक्त करता है **नः**=जैसेकि **व्राणाः**=बाड़े में घिरी हुई **गाः**=गौओं को कोई मुक्त किया करता है। इस **दावने**=प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले के लिए **सेचताः**=सचेत प्रभु इसे **श्रवः अभि**=ज्ञान व यश की ओर ले-चलते हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण से क्षीण कर दी गई वासना को हम क्रियाशीलता द्वारा विनष्ट कर डालें। वासना-विनाश के द्वारा शक्तिकणों का रक्षण करें। इसप्रकार हम इस योग्य बनें कि प्रभु हमें यश व ज्ञान की ओर ले-चलें।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**।

ज्ञानसिन्धु-प्रवाह

अ॒स्येदु॑ त्वे॒षसा॑ रन्त॒ सिन्ध॑वः॒ परि॒ यद्वज्रे॑ण सी॒मय॑च्छत्।
ई॒शा॒न॒कृद्दा॒शुषे॑ दश॒स्यन्तु॒र्वीत॑ये गा॒धं तु॒र्वणिः॑ कः ॥ ११ ॥

१. **यत्**=जब एक जितेन्द्रिय पुरुष **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा **सीम्**=निश्चय से **परि अयच्छत्**=वासना का सर्वतः नियमन करता है तब **अस्य इत् उ**=इस प्रभु की ही **त्वेषसा**=दीप्ति से **सिन्धवः**=ज्ञान के प्रवाह **रन्त**=हमारे जीवन में रमण करते हैं। वासना ज्ञान-प्रवाह को रोक देती है। वासना-विनाश से यह ज्ञान-प्रवाह फिर से प्रवाहित हो उठता है। २. प्रभु ही इस जितेन्द्रिय पुरुष को **ईशानकृत्**=इन्द्रियों का स्वामी बनाते हैं तथा **दाशुषे**=भोगासक्त न होने के कारण दाश्वान् पुरुषों के लिए **दशस्यन्**=सदा इष्ट धनों को देते हुए ये **तुर्वणिः**=शीघ्रता से धनों का सम्भजन करनेवाले प्रभु **तुर्वीतये**=वासनाओं का संहार करनेवाले पुरुष के लिए **गाधं कः**=प्रतिष्ठा करनेवाले होते हैं। इस तुर्वीति का जीवन अप्रतिष्ठ नहीं होता। यह जीवन में स्थिर

आधार को प्राप्त करके उन्नति-पथ पर आगे बढ़ता है।

भावार्थ—हम क्रियाशील बनकर वासना का नियमन करते हुए प्रभु की दीप्ति से अपने जीवन में ज्ञानप्रवाहों को प्रवाहित करें। ईशान बनकर प्रभु से आवश्यक धनों को प्राप्त करते हुए प्रभुरूप स्थिर आधार को प्राप्त करके जीवन-पथ में आगे बढ़ें।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

गो-पर्व विदारण

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै॥ १२ ॥

१. हे प्रभो! **तूतुजानः**=शीघ्रता से कार्यों को करते हुए अथवा खूब ही शत्रुओं का हिंसन करते हुए **ईशानः**=सबके स्वामी **कियेधाः**=अपरिमित बल को धारण करनेवाले (कियत् धा नि० ६.२०) आप **अस्मै वृत्राय**=इस ज्ञान की आवरणभूत वासना के लिए **इत् उ**=निश्चय से **वज्रं प्रभरा**=वज्र का प्रहार कीजिए। वज्र-प्रहार से इस वृत्र को समाप्त करके हमारे लिए ज्ञान का प्रकाश कीजिए। २. **गोः पर्व न**=गौ के एक एक पर्व की तरह इस वेदवाणीरूप गौ के पर्वों को **विरदा**=विच्छिन्न कीजिए। एक एक शब्द का निर्वचन करते हुए उसके भाव को स्पष्ट कीजिए। हे प्रभो! आप **अर्णांसि**=रेतःकणरूप जलों को **तिरश्चा**=(तिरः अञ्च्) तिरोहित गतिवाले रूप में **इष्यन्**=प्रेरित करते हुए **अपां चरध्यै**=ज्ञान जलों के चरण के लिए हों। प्रभु के अनुग्रह से हमारे शरीर में रेतःकण रुधिर में इसप्रकार व्याप्त रहें जैसेकि दूध में घृतकण रहते हैं। इसप्रकार सुरक्षित रेतःकण बुद्धि को दीप्त करनेवाले हों और हमारे जीवन में ज्ञान की धाराओं का प्रवाह बहे।

भावार्थ—प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट करें। हमें वेद के अन्तर्निहित तत्त्वों को समझने के योग्य बनाएँ। सुरक्षित रेतःकण हमारी बुद्धियों को दीप्त करें और हममें ज्ञानजलों का प्रवाह प्रवाहित हो।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शत्रुसंहार के लिए अस्त्र-प्राप्ति

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून्॥ १३ ॥

१. **अस्य**=इस **तुरस्य**=त्वरा से कार्यों को करनेवाले अथवा शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभु के **इत् उ**=ही निश्चय से **पूर्व्याणि**=पालन व पूरण में उत्तम **कर्माणि**=कर्मों को **प्रब्रूहि**=व्यक्त रूप से कहनेवाला बन। ये प्रभु ही **उक्थैः**=स्तोत्रों के द्वारा **नव्य**=स्तुतिके योग्य हैं। प्रभु का ही स्तवन करना योग्य है। २. वे प्रभु ही **युधे**=वासनाओं के साथ संग्राम के लिए **यत्**=जब **आयुधानि**='ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप आयुधों को **इष्णानः**=प्रेरित करते हैं तब **शत्रून् ऋघायमाणः**=शत्रुओं को हिंसित करते हुए **निरिणाति**=(Drive out, expel) हमारे जीवनों से बाहिर कर देते हैं। प्रभु हमें इन्द्रियाँ, मन व बुद्धिरूप अस्त्रों को प्राप्त कराके इस योग्य बनाते हैं कि हम वासनारूप शत्रुओं को अपने से दूर कर सकें।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ओणिं जोगुवानः

अस्येदु भिया गिरयश्च दृढा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः॥ १४॥

१. **अस्य इत् उ**=इस प्रभु के ही **भिया**=भय से **गिरयः**=ये पर्वत **च**=भी **दृढाः**=अपने स्थान पर स्थित हैं—दृढ़ हैं **च**=और **जनुषः**=उत्कृष्ट प्रादुर्भाववाले प्रभु के भय से ही **द्यावाभूमा**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक **तुजेते**=काँपते हैं। 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः'=प्रभु के भय से ही 'अग्नि, सूर्य, इन्द्र, वायु व मृत्यु' अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। २. **नोधाः**=इन्द्रिय-नवक (अष्टाचक्रानवद्वारा०) को धारण करनेवाला यह स्तोता **वेनस्य**=उस कान्त प्रभु के **ओणिम्**-सब दुःखों का अपनयन करनेवाले रक्षण को **जोगुवानः**=अनेक सूक्तों से स्तुत करता हुआ **वीर्याय**=शक्ति की प्राप्ति के लिए **सद्यः**=शीघ्र **उप उ**=समीप **भुवत्**=होता है। स्तुति के द्वारा प्रभु का यह सान्निध्य स्तोता को भी शक्तिशाली बनाता है।

भावार्थ—पर्वतों व द्यावापृथिवी को शासित करनेवाले प्रभु का स्तवन करता हुआ स्तोता भी शक्ति प्राप्त करता है। हम प्रभु के रक्षण का गायन करें—उस रक्षण को अनुभव करें।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'एतश-स्वश्व-सुष्वि'

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः॥ १५॥

१. **अस्मै इत् उ**=इस प्रभु के लिए ही **एषाम्**=इन स्तोताओं का **यत्**=वह वह कर्म **अनुदायि**=अनुक्रमेण दिया जाता है। 'यत्करोषि पदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष मदर्पणम्' के अनुसार ये स्तोता जो कुछ करते हैं—प्रभु के अर्पण करते चलते हैं। 'कुरु-कर्म, त्यजेति च' करते हैं और कर्तृत्व का अहंकार छोड़कर उसे प्रभु से होता हुआ जानते हैं। **यत्**=चूँकि वस्तुतः **एकः**=वे अद्वितीय प्रभु ही **वव्ने**=सबका विजय करते हैं। वे ही **भूरेः ईशानः**-इन सब पालनात्मक कर्मों के (भृ-धारणपोषणयोः) ईशान हैं। २. वे **इन्द्रः**= सर्वशक्तिमान् प्रभु ही **एतशम्**=(इ, श्येः एति श्यति) गतिशील और गतिशीलता द्वारा मलों को तनूकृत करनेवाले स्तोता को **प्रावत्**=प्रकर्षेण रक्षित करते हैं। प्रभु उसका रक्षण करते हैं, जोकि **सौवश्व्ये**=उत्तम इन्द्रियाश्वों के विषय में **सूर्ये पस्पृधानम्**=सूर्य में स्पर्धावाला है। सप्ताश्व सूर्य के किरणरूप अश्व तो चमक ही रहे हैं। यह स्तोता अपने 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' सप्ताश्वों को भी उसी प्रकार चमकाता है। इसी उद्देश्य से **सुष्विम्**=यह सुष्वि बनता है—सोम का सम्यक् सम्पादन करता है। प्रभु इस सुष्वि का रक्षण करते हैं।

भावार्थ—हम सब कर्मों का प्रभु के प्रति अर्पण करें। गतिशील व वासनाओं का क्षय करनेवाले बनें, उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले बनें, सोम का सम्पादन करें। इसप्रकार प्रभु की रक्षा के पात्र हों।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

धियावसु

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्॥ १६॥

१. हे **हारियोजन**=उत्तम इन्द्रियाश्वों (हरि) को हमारे शरीर-रथ में जोड़नेवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **एवा**=इसप्रकार **गोतमासः**=ये प्रशस्तेन्द्रिय व्यक्ति **सुवृक्तिः**=दोषों का सम्यक् वर्जन करनेवाले **ते**=आपके **ब्रह्माणि**=स्तोत्रों को **अक्रन्**=करते हैं। २. **एषु**=इन स्तोताओं में आप **विश्वपेशसम्**=संसार को सुन्दर रूप देनेवाली **धियम्**=बुद्धि को **आधाः**=स्थापित कीजिए। इन्हें वह बुद्धि दीजिए जो संसार का सुन्दर निर्माण करनेवाली हो। हे प्रभो! हमें **प्रातः**=प्रातः **मक्षु**=शीघ्र ही **धियावसुः**-बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा निवास को उत्तम बनानेवाला व्यक्ति **जगम्यात्**=प्राप्त हो। इनके संग में हम भी 'धियावसु' बन पाएँ।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम इन्द्रियाश्व प्राप्त कराते हैं। हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें उत्तम निर्माणवाली बुद्धि दें। 'धियावसु' पुरुषों का हमें संग प्राप्त हो।

धियावसु पुरुषों के संग में यह 'भरद्वाज' बनता है, शक्ति को अपने में भरनेवाला। यह प्रभु का स्तवन करता है कि—

३६. [षट्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

एकमात्र उपासनीय

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्॥ १॥

१. **यः**=जो **चर्षणीनाम्**=मनुष्यों का **एकः इत्**=एकमात्र ही **हव्यः**=पुकारने योग्य है—आराधना के योग्य है **तं इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **आभिः गीर्भिः**=इन स्तुतिवाणियों से **अभि अर्चे**=पूजित करता हूँ। प्रभु ही पूजनीय हैं—मैं उस प्रभु का स्तवन करता हूँ। २. **यः**-जो प्रभु **पत्यते**=सबके ईश्वर हैं। **वृषभः**=सब कामनाओं के वर्षक हैं। **वृष्ण्यावान्**=सुखों का वर्षण करनेवाली शक्तिवाले हैं। **सत्यः**=सत्यस्वरूप हैं। **सत्वा**=शत्रुओं के बल को विनष्ट करनेवाले हैं, **पुरुमायः**=अनन्त प्रज्ञावाले हैं, **सहस्वान्**=शत्रुमर्षक बलवाले हैं।

भावार्थ—एकमात्र प्रभु ही उपासनीय हैं। वे ही शत्रुओं के बल को विनष्ट करनेवाले हैं। इसप्रकार हमपर सब सुखों का वर्षण करनेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कौन प्रभु को प्राप्त करते हैं?

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्त।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम्॥ २॥

१. **नः**=हममें **ते पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले, **पितरः**=रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त (पा रक्षणे), **नवग्वाः**=स्तुत्यगतिवाले, **सप्तविप्रासः**='कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन स्तोता ऋषियों का अपने में पूर्ण करनेवाले लोग **तम् उ**-उस परमात्मा को ही **अभिवाजयन्तः**=अपने को (गमयन्तः) प्राप्त कराते हैं। इनका लक्ष्य प्रभु प्राप्ति ही होता है। प्रभु को प्राप्त करने के उद्देश्य से ही ये अपना पूरण करते हैं (पूर्वे), रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत होते हैं (पितरः), स्तुत्यगतिवाले बनते हैं (नवग्व) और शरीर में सप्त ऋषियों का पूरण करते हैं (सप्तविप्रासः) ३. उस प्रभु को पाना ये अपना ध्येय बनाते हैं जोकि '**नक्षद्दाभम्**=अभिगमन शत्रुओं का हिंसन करते हैं, **ततुरिम्**=दुस्तर भवसागर से तराते हैं, **पर्वतेष्ठम्**=अपना पूरण करनेवालों में स्थित होते हैं अथवा अविद्या-पर्वत को पाँव तले रोंद डालते हैं, **अद्रोघवाचम्**=द्रोहशून्य ज्ञान की वाणियोंवाले

हैं तथा **मतिभिः**=बुद्धियों के साथ **शविष्ठम्**=अतिशयेन बलवान् हैं। अपने उपासकों को भी प्रभु बुद्धि व बल प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति को ही अपना लक्ष्य बनाकर हम अपने जीवनों को प्रशस्त बनाएँ। प्रभु हमें बुद्धि व शक्ति प्राप्त कराएँगे। हम शत्रुओं का संहार करते हुए भवसागर को पार कर पाएँगे।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कैसा धन?

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्व र्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै॥ ३॥

१. **तम् इन्द्रम्**=उस प्रभु से **अस्य रायः**=इस धन की **ईमहे**=याचना करते हैं जोकि **पुरुवीरस्य**=खूब वीर सन्तानोंवाला है, अर्थात् जिसके विनियोग से हम सन्तानों को वीर बना पाते हैं। **नृवतः**=जो प्रशस्त मनुष्योंवाला है—जिसके विनियोग से सब गृहवासियों का जीवन उत्तम बनता है। **पुरुक्षोः**=जो धन पालक व पूरक अन्नवाला है। २. उस धन को माँगते हैं **यः**=जोकि **अस्कृधोयुः**=अनल्प व अविच्छिन्न है। **अजरः**=(अविद्यमाना जरा यस्मात्) हमें वृद्ध नहीं होने देता—जिसके सद्व्यय से हम सदा युवा-से बने रहते हैं। **स्वर्वान्**=जो धन प्रकाश व सुखवाला है। जिसके द्वारा हमारे ज्ञान व सुख की वृद्धि होती है। हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **तम्**=उस धन को हमें **मादयध्यै**=आनन्दित करने के लिए **आभर**=प्राप्त कराइए।

भावार्थ—प्रभु हमें वह धन प्राप्त कराएँ जो हमारे सन्तानों को वीर बनाए, हमें प्रशस्त जीवनवाला बनाए, पालक अन्न को प्राप्त कराए, अविच्छिन्न हो, हमें जीर्ण होने से बचाए तथा प्रकाशमय जीवनवाला करे।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कः भागः, किं वयः?

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **पुराचित्**=पहले भी **यदि**=यदि **जरितारः**=स्तोता लोग **ते**=आपसे **सुम्नम् आनशुः**=सुख को प्राप्त हुए हैं, **तत्**=तो **नः**=हमारे लिए भी **विवोचः**=उन स्तोत्रों का प्रतिपादन कीजिए जिससे हम भी आपका स्तवन करते हुए सुख के भागी हों। प्रभु-स्तवन सदा सुख का साधन बनता है। इसे अपनाकर हम भी सुखी हों। २. हे **दुध्र**=शत्रुओं से न धारण करने योग्य बलवाले **खिद्वः**=शत्रुओं को खदेड़नेवाले! **पुरुहूत**=बहुतों-से पुकारे गये **पुरूवसो**=पालक व पूरक वसुओंवाले प्रभो! **असुरघ्नः ते**=असुरों का विनाश करनेवाले आपका **कः भागः**=कौन-सा भजनीय स्तोत्र है? किस स्तोत्र द्वारा हम आपको प्रीणित कर सकते हैं? **किं वयः**=कौन-सा हविर्लक्षण अन्न है जिसके द्वारा हम आपके प्रिय बनेंगे? वस्तुतः स्तवन व यज्ञ करते हुए ही हम आपकी प्रीति के पात्र बन सकेंगे।

भावार्थ—प्रभु का स्तोता अवश्य सुखी होता है। प्रभु-स्तोता के आसुरभावरूप शत्रुओं को खदेड़कर तथा उसे पालक व पूरक धन प्राप्त कराके सुखी करते हैं। स्तोत्रों व यज्ञों से हम प्रभु के प्रिय बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु की चर्चा व प्रभु की ओर

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ॥ ५॥

१. **यस्य**=जिस स्तोता की **वेपी**=(वेप-कर्म) यागादि लक्ष्ण कर्मोंवाली—यज्ञशीला **वक्वरी**=प्रभु के गुणों का प्रवचन करनेवाली **गीः**=वाणी **नु**=निश्चय से **तं वज्रहस्तम्**=उस वज्र को हाथ में लिये हुए, **रथेष्ठाम्**=हमारे शरीर रथों में स्थित **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को **पृच्छन्ती**=पूछती हुई होती है, यह स्तोता सदा **गातुम् इषे**=मार्ग को ही चाहता है—सदा सन्मार्ग पर चलने की ही कामना करता है। सदा प्रभु की ही चर्चा करता हुआ यह कुमार्गगामी नहीं होता। २. इसप्रकार सन्मार्ग पर चलता हुआ यह उस प्रभु को ही **अच्छ नक्षते**=आभिमुख्येन प्राप्त होता है जोकि **तुविग्राभम्**=महान् ग्राहक हैं—सारे ही ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर लिये हुए हैं। **तुविकूर्मिम्**=महान् कर्मोंवाले हैं। **रभोदाम्**=बल के दाता है तथा **तुम्रम्**=शत्रु के प्रति आक्रमण करनेवाले हैं।

भावार्थ—हम सदा प्रभु की ही चर्चा करें और सन्मार्ग पर चलते हुए प्रभु की ओर ही जाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु-स्तवन व वृत्रविनाश

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन्॥ ६॥

१. हे **स्वतवः**=स्वायत्तबल! स्वाधीन बलवाले—किसी और से शक्ति को न प्राप्त करनेवाले प्रभो! आप **त्यम्**=उस **ह**=निश्चय से **अया मायया**=इस माया के द्वारा **वावृधानम्**=खूब बढ़ते हुए—संसार के आकर्षणों से वृद्धि को प्राप्त करते हुए वृत्र को—ज्ञान की आवरणभूत वासना को **मनोजुवा**=मन को प्रेरित करनेवाले **पर्वतेन**=(पर्व पूरणे) अपनी न्यूनताओं को दूर करने व पूरण के भाव से **विरुजः**=विनष्ट करते हो। जिस किसी के हृदय में अपने पूरण की भावना का विकास हो जाता है, वह फिर वासना का शिकार नहीं होता। २. हे **स्वोजः**=शोभन बलवाले **विरप्शिन्**=महान् प्रभो! आप **अच्युता चित्**=दूसरों से च्युत न करने योग्य **वीळिता**=बड़ी दृढ़, प्रबल **दृळ्हा**=स्थिर भी शत्रुओं की पुरियों की **धृषता**=शत्रुधर्षक शक्ति से **विरुजः**=विदीर्ण कर देते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही वस्तुतः हमारे मनों में पूरण की भावना को पैदा करके हमें संसारमाया में फँसने से बचाते हैं। प्रभु ही आसुरभावों को विनष्ट करते हैं। 'काम-क्रोध लोभ' की नगरियों का विनाश प्रभु ही करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

दुर्गम भी धर्मपथ का आक्रमण

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि॥ ७॥

१. मैं **तम्**=उस **वः शविष्ठम्**=तुम सबके अतिशयेन बलवाले **प्रत्नम्**=पुरातन प्रभु को **प्रत्नावत्**=अपने से पूर्व के ज्ञानियों के समान **नव्यस्या धिया**=अत्यन्त प्रशस्त बुद्धि के द्वारा

परितंसयध्यै=अपने जीवन में अलंकृत करने में प्रवृत्त होता हूँ। प्रभु ही सर्वशक्तिमान् हैं। वे ही सबकी शक्ति हैं 'बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्'। प्रभु-स्तवन करते हुए हम प्रभु के द्वारा अपने जीवन को अलंकृत करें और प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न बनें। २. **सः**=वे **अनिमानः**=मानरहित—शक्ति से शून्य परिमाणातीत **सुवह्या**-शोभनतया संसार का वहन करनेवाले **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **नः**=हमें **विश्वानि**=सब **दुर्गहाणि**=दुस्तर मार्गों से **अतिवक्षत्**=पार प्राप्त कराएँ। प्रभु हमें इस योग्य बनाएँ कि 'निशित दुरत्यय क्षुरधारा' के समान दुर्गम मार्ग का भी हम अतिक्रमण कर सकें।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन द्वारा प्रभु की भावना से अपने जीवनों को अलंकृत करते हुए हम शक्ति प्राप्त करें और दुर्गम भी धर्म के मार्ग का पूर्ण आक्रमण कर सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

द्रुह्वणे ब्रह्मद्विषे

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च॥ ८॥

१. हे **वृषन्**=शक्तिशालिन् प्रभो! आप **द्रुह्वणे**=द्रोह (जिघांसा) की भावनावाले **जनाय**=पुरुष के लिए **पार्थिवानि**=पृथिवी पर होनेवाले, **दिव्यानि**=द्युलोक में होनेवाले तथा **अन्तरिक्षा**=अन्तरिक्ष में होनेवाले पदार्थों को **आदीपयः**=समन्तात् तपाइए। ये सब पदार्थ द्रोही पुरुष को संताप देनेवाले हों। २. हे वृषन्! आप **विश्वतः**=सब ओर से **तान्**=उन द्रोही जनों को **शोचिषा**=अपनी संतापक शक्ति से **तपा**=संतप्त कीजिए। **ब्रह्मद्विषे**=इस ज्ञान से अप्रीति रखनेवाले पुरुष के लिए **क्षाम्**=पृथिवी को **च**=और **अपः**=जलों को **शोचय**=दीप्त व संतप्त कर डालिए। इन ब्रह्मद्विट् द्रोहियों को ये पदार्थ दुःखद हों।

भावार्थ—संसार के सब पदार्थ द्रोह करनेवाले, ज्ञान में अरुचिवाले पुरुषों के लिए संतापक हों।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'दिव्यस्य जनस्य-पार्थिवस्य-जगतः' राजा

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः॥ ९॥

१. हे **त्वषेसंदृक्**=दीप्त संदर्शन—दीप्त प्रकाश के रूप में दिखनेवाले प्रभो! आप **दिव्यस्य जनस्य**=देववृत्ति के—प्रकाशमय जीवनवाले लोगों के **राजा भुवः**=जीवनों को दीप्त करनेवाले हैं। इनको ज्ञान का प्रकाश व तेजस्विता आप ही प्राप्त कराते हैं। इसीप्रकार **पार्थिवस्य जगतः**=इस पार्थिव जगत् के भी आप ही राजा हैं—यहाँ सब ज्योतिर्मय पिण्डों को आप ही ज्योति प्राप्त कराते हैं। 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।' २. हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **दक्षिणे हस्ते**=दाहिने हाथ में **वज्रं धिष्व**=वज्र को धारण कीजिए। हे **अजुर्य**=कभी जीर्ण न होनेवाले प्रभो! आप उस धारण किये गये वज्र से **विश्वाः**=सब **मायाः**=आसुरी मायाओं को **विदयसे**=विशेषरूप से बाधित करते हैं।

भावार्थ—सब दिव्यजनों को व सूर्य आदि ज्योतिर्मय पिण्डों को दीप्ति देनेवाले प्रभु ही हैं। प्रभु ही वज्र के द्वारा आसुरी माया का बाधन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

दास से आर्य

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि॥ १०॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! आप **नः**=हमारे लिए **शत्रुतूर्याय**=शत्रुओं के विनाश के लिए **बृहतीम्**=वृद्धि की कारणभूत **अमृध्राम्**=हिंसित न होनेवाली **संयतं स्वस्तिम्**=संयमरूप कल्याणकारिणीवृत्ति को **आकरः**=करनेवाले होइए। संयमवृत्ति को अपनाते हुए हम कल्याण को सिद्ध कर सकें। २. **यया**=जिस संयमवृत्ति से आप **दासानि**=उपक्षीण कर्मवाले लोगों को **आर्याणि**=(ऋ गतौ) नियमित गतिवाला **करः**=कर देते हैं, उस संयमवृत्ति को हमारे लिए भी कीजिए। हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! इस संयमवृत्ति के द्वारा ही आप **नाहुषाणि**=मनुष्य सम्बन्धी—मनुष्यों में आ-जानेवाली **वृत्रा**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **सुतुका**=पूर्णरूप से हिंसित कर डालते हैं। इन वासनाओं के विनाश से ही तो हमारा कल्याण होता है।

भावार्थ—प्रभु हमें कल्याणकारिणी संयमवृत्ति को प्राप्त कराके दास से आर्य बना दें तथा वासना-विनाश द्वारा हमें कल्याणभाक् बनाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

न अदेवः वरते, न देवः

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक्॥ ११॥

१. हे **पुरुहूत**=बहुतों-से पुकारे जानेवाले **वेधः**=विधातः! **सः**=वे आप **नः**=हमें **विश्ववाराभिः**=सबसे वरने योग्य **नियुद्भिः**=इन्द्रियाश्वों के साथ **आगहि**=प्राप्त होइए। हमें उन इन्द्रियाश्वों को दीजिए, जिन्हें कि सब चाहें। २. हे **प्रयज्यो**=प्रकर्षेण यष्टव्य (पूज्य) प्रभो! आप हमें उन इन्द्रियाश्वों को दीजिए, **याः**=जिन्हें कि **अदेवः न वरते**-कोई भी आसुरभाव धर्मपथ पर आगे बढ़ने से रोक नहीं पाता और जिन्हें **देवः**='क्रीड़ा, मद व स्वप्न' का भाव भी रोकनेवाला नहीं होता। हे प्रभो! आप **आभिः**=इन इन्द्रियाश्वों से **तूयम्**=शीघ्र ही **मद्र्यद्रिक्**=अस्मदभिमुख दृष्टिवाले होकर **आयाहि**=आइए।

भावार्थ—प्रभु हमें इन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराएँ जो न तो आसुरभावों से आक्रान्त होते हैं और नहीं 'क्रिड़ा, मद व स्वप्न' के वशीभूत हो जाते हैं।

इसप्रकार इन्द्रियाश्वों को पूर्णरूप से वश में करनेवाला व अपने निवास को उत्तम बनानेवाला यह व्यक्ति 'वसिष्ठ' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

३७. [सप्तत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

तिग्मशृंगो वृषभो न भीमः

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्ताऽसि सुष्वितराय वेदः॥ १॥

१. हे इन्द्र! **यः**=जो आप हैं वे **तिग्मशृंगः**=तीक्ष्ण सींगोंवाले **वृषभः न**=बैल के समान **भीमः**=शत्रुओं के लिए भयंकर हैं। **एकः**=आप अकेले ही **विश्वाःकृष्टीः**=सब शत्रुभूत मनुष्यों

को **प्रच्यावयति**=स्थानभ्रष्ट करते हैं। प्रभु को हम हृदय में उपासित करते हैं, प्रभु हमारे शत्रुओं को वहाँ से भगा देते हैं—वहाँ काम-क्रोध आदि का स्थान नहीं रहता। २. हे प्रभो! **यः**=जो आप हैं, वे **अदाशुषः**=अदानशील **शश्वतः**=व्यापारादि के लिए प्लुतगतिवाले-व्यापार में ख़ूब निमग्न पुरुष के **गयस्य**=धन के (Welth) **प्रयन्ता**=(restrain, stop, suppress) निग्रह करनेवाले **असि**=हैं और **सुष्वितराय**=अतिशयेन यज्ञशील पुरुष के लिए **वेदः**=धन को **प्रयन्त असि**=देनेवाले हैं (offer, give)।

भावार्थ—प्रभु हमारे शत्रुओं का विनाश करते हैं। अदानशील पुरुषों के धन का निग्रह करते हैं और यज्ञशील पुरुषों के लिए धन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कुत्स का रक्षण

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन्॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वं ह**=आप निश्चय से **कुत्सम्**=वासनाओं का संहार करनेवाले पुरुष का **आवः**=रक्षण करते हैं। **त्यत्**=तब (तत्) यह **समर्ये**=इस जीवन-संग्राम में **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार के साथ **शुश्रूषमाणः**=सदा गुरुजनों से ज्ञान के श्रवण की कामनावाला होता है। प्रभु से रक्षित व्यक्ति शक्तियों का विस्तार करता है और ज्ञान-प्राप्ति के लिए यत्नशील होता है। २. हे प्रभो! **यत्**=जब **अस्मै**=इस कुत्स के लिए **दासम्**=शक्तियों का उपक्षय कर देनेवाले क्रोध को, **शुष्णम्**=सुखा देनेवाले काम को तथा **कुयवम्**=सब बुराइयों का मिश्रण करनेवाले लोगों को **नि अरन्धय**=पूर्णरूप से वशीभूत करते हैं तब इस **आर्जुनेयाय** (अर्जुनी=श्वेता) अर्जुनी पुत्र के लिए—अत्यन्त श्वेत (शुद्ध) जीवनवाले के लिए **शिक्षन्**=धनों को देनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम वासनाओं के संहार के लिए यत्नशील हों। प्रभु हमारे काम, क्रोध, लोभ का विनाश करेंगे और हमें शुद्ध जीवनवाला बनाकर धन प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वीतहव्य, सुदास, पौरुकुत्सि, त्रसदस्यु, पूरु

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम्॥ ३॥

१. हे **धृष्णो**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले प्रभो! आप **धृषता**=शत्रुधर्षक बल को प्राप्त कराके **वीतहव्यम्**=हव्य का भक्षण करनेवाले—यज्ञशेष का सेवन करनेवाले—यज्ञशील पुरुष को **प्रावः**=प्रकर्षेण रक्षित करते हैं। आप **सुदासम्**=वासना का सम्यक् उपक्षय करनेवाले को (दस् उपक्षये) अथवा दानशील पुरुष को (दा) **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के द्वारा रक्षित करते हैं। २. आप **पौरुकुत्सिम्**=वासनाओं का खूब ही संहार करनेवाले को तथा **त्रसदस्युम्**=जिससे दास्यव वृत्तियाँ भयभीत होकर दूर रहती हैं, उस त्रसदस्यु को **प्र आवः**=प्रकर्षेण रक्षित करते हैं। आप **वृत्रहत्येषु**=संग्रामों में **क्षेत्रसाता**=उत्तम शरीर-क्षेत्र की प्राप्ति के निमित्त **पूरुम्**=अपना पालन व पूरण करनेवाले को रक्षित करते हैं।

भावार्थ—हम 'वीतहव्य-सुदास-पौरुकुत्सि-त्रसदस्यु-व पूरु' बनें और इसप्रकार प्रभु से रक्षणीय हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'दस्यु, चुमुरि, धुनि' का स्वापन

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु॥ ४॥

१. हे **नृमणः**=(नृभिः मननीय) उन्नति पथ पर चलनेवाले पुरुषों से मनन के योग्य, **हर्यश्व**=तेजस्वी इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **देववीतौ**=दिव्यगुणों के प्रापण के निमित्त **नृभिः**=उन्नति पथ पर ले-चलनेवाले माता-पिता व आचार्यों द्वारा **भूरीणि वृत्रा**=बहुत-सी वासनाओं को **हंसि**=विनष्ट करते हैं। २. आप ही **दभीतये**-वासनाओं के संहार में प्रवृत्त मनुष्य के लिए **सुहन्तु**=उत्तम हननसाधन वज्र के लिए **दस्युम्**=शक्तियों को क्षीण करनेवाले क्रोधरूप दस्यु को **चुमुरिम्**=शक्तियों को पी जानेवाली कामवासना को **च**=और **धुनिम्**=सब गुणों को कम्पित करके दूर करनेवाले लोभ को **नि अस्वापयः**=निश्चय से सुला देते हैं। ये 'दस्यु, चुमुरि व धुनि' दबे पड़े रहते हैं। ये प्रबल होकर इस दभीति का विनाश नहीं कर पाते।

भावार्थ—प्रभु ही हमारी वासनाओं का विनाश करते हैं। वे दभीति के लिए 'दस्यु, चुमुरि व धुनि' को सुला-सा देते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

न वृत्र, न नमुचि

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन्॥ ५॥

१. हे **वज्रहस्त**=वज्र को हाथ में लिये हुए प्रभो! **तानि**=वे **च्यौत्नानि**=शत्रुओं को च्युत करनेवाले बल **तव**=आपके ही हैं, **यत्**=जब आप **नव नवतिं च**=शत्रुओं की निन्यानवें पुरियों को **सद्यः**=शीघ्र ही **अहन्**=नष्ट कर डालते हैं। २. असुरों की निन्यानवें नगरियों को नष्ट करके **निवेशने**=उत्तम जीवन के निवेशन की निमित्त **शततमा**=सौवीं पुरी में **अविवेषी**=आप व्याप्त होते हैं **च**=और आप **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **अहन्**=विनष्ट करते ही हैं, **उत**=और **नमुचिम्**=पवित्रात्माओं का भी पीछा न छोड़नेवाली अहंकारवृत्ति को भी **अहन्**=नष्ट करते हैं।

भावार्थ—प्रभु अपनी प्रबल शक्ति से असुरों की निन्यानवें नगरियों का विध्वंस करके हमें उत्तम निवास के लिए सौवीं नगरी को प्राप्त कराते हैं, जिसमें न वृत्र का स्थान हो, न नमुचि का। वस्तुतः यह सौवीं देवपुरी काम व अहंकार से शून्य है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

रातहव्य-दाश्वान्-सुदास्

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम्॥ ६॥

१. हे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ता**=वे **ते**=आपके **भोजनानि**=पालन करनेवाले धन **रातहव्याय**=दत्तहविष्यक—यज्ञशील पुरुष के लिए तथा **दाशुषे**=दानशील पुरुष के लिए तथा **सुदासे**=वासनाओं का सम्यक् उपक्षय करनेवाले के लिए **सना**=सदा से हैं। 'रातहव्य-दाश्वान्-सुदास्' को आप ये धन प्राप्त कराते ही हैं। २. **वृष्णे ते**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले आपके लिए **वृषणा हरी**=शक्तिशाली इन्द्रियाश्वों को **युनज्मि**=इस शरीर-रथ में जोड़ता हूँ, अर्थात् इन इन्द्रियों को मैं ज्ञान-प्राप्ति व यज्ञादि कर्मों में लगाये रखता हूँ। हे **पुरुशाक**=अनन्तशक्तिसम्पन्न

प्रभो! आपके ये उपासक **ब्रह्माणि**=ज्ञान की वाणियों को तथा **वाजम्**=बल को **व्यन्तु**=विशेष रूप से प्राप्त हों। कर्मेन्द्रियाँ इन्हें सबल बनाएँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकाशमय।

भावार्थ—प्रभु यज्ञशील दानी व वासनाओं से ऊपर उठे हुए व्यक्तियों को धन प्राप्त कराते हैं। प्रभु के उपासक सदा इन्द्रियों को कर्त्तव्यकर्मों में लगाये रखकर ज्ञान व शक्ति प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मा अघाय, मा परादै

मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम॥ ७॥

१. हे **सहसावन्**=शत्रुओं को कुचलनेवाले बल से सम्पन्न, **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! हम **ते**=आपके **अस्याम्**=इस **परिष्टौ**=अन्वेषणा में (In search of thee) **अघाय**=पाप के लिए **माभूम**=मत हों। **परादै**=परादान के लिए—आपसे त्यागे जाने के लिए न हों। आपकी खोज में लगे हुए हम न तो पापों में फँसे और न ही आप से परित्यक्त हों। २. आप **नः**=हमें **अवृकेभिः**=बाधा से शून्य (अबाधैः सा०) **वरूथैः**=रक्षणों द्वारा **त्रायस्व**=रक्षित कीजिए। हम **तव प्रियासः**=आपके प्रिय हों और **सूरिषु स्याम**=ज्ञानियों में गिनतीवाले हों—ज्ञान-प्रधान जीवन बिताएँ।

भावार्थ—प्रभु की खोज में लगे हुए हम प्रभु से परित्यक्त न हों—पाप में न फँसे। प्रभु द्वारा रक्षित होकर कर्त्तव्य-कर्मों में लगे हुए हम प्रभु के प्रिय बनें—ज्ञानप्रधान जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रियासः इत् ते

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्॥ ८॥

१. हे **मघवन्**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते अभिष्टौ**=आपके अन्वेषण में—प्रार्थना व आराधना में **प्रियासः इत्**=निश्चय से आपके प्रिय होते हुए, **नरः**=उन्नति-पथ पर चलते हुए (ते) **सखायः**=आपके मित्र बनकर **शरणे**=आपकी शरण में **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें। २. हे प्रभो! आप **तुर्वशम्**=त्वरा से शत्रुओं को वश में करनेवाले उपासक को **निशिशीहि**=खूब तीक्ष्ण कीजिए—इसे तीक्ष्ण-बुद्धि बनाइए। **याद्वम्**=इस यत्नशील मनुष्य को नि (शिशीहि) तीक्ष्ण कीजिए। इसे काम-क्रोध आदि शत्रुओं के लिए भयंकर बनाइए। **अतिथिग्वाय**=अतिथियों के प्रति उनके सत्कार के लिए जानेवाले इस पुरुष के लिए **शंस्यं करिष्यन्**=आप सदा प्रशंसनीय बातों को ही करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु की आराधना करते हुए हम प्रभु के प्रिय बनें। प्रभु के प्रिय बनकर प्रभु की शरण में आनन्द का अनुभव करें। शत्रुओं को वश में करनेवाले, यत्नशील व अतिथिसेवी बनें, प्रभु अवश्य हमारा कल्याण करेंगे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उक्थशासः

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान्वृणीस्व युज्याय तस्मै॥ ९॥

१. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते अभिष्टौ**=आपकी अभ्येषणा (प्रार्थना) में **उक्थशासः**=

स्तोत्रों का शंसन करनेवाले **नरः**=स्तोता लोग **सद्यः चित्**=शीघ्र ही **नु**=निश्चय से **उक्था**=स्तोत्रों को **शंसन्ति**=उच्चरित करते हैं। २. **ये**=जो **ते हवेभिः**=आपकी पुकारों से—आराधनाओं से **पणीन्**=वणिक् वृत्तिवालों को **वि अदाशन्**=दानवृत्तिवाला बना देते हैं, उन **अस्मान्**=हमें **तस्मै युज्याय**=उस अपनी मित्रता के लिए **वृणीष्व**=वरिये। हम आपकी मित्रता में चलें। आपकी आराधना करते हुए हम कृपणों को भी दानशील बनाने का यत्न करें।

भावार्थ—प्रभु की आराधना में हम स्तोत्रों का उच्चारण करें। पवित्र जीवनवाले बनते हुए हम कृपणों को भी दानशील बना पाएँ।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शिवः-सखा-अविता

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम्॥ १०॥

१. हे **नरां नृतम**=नायकों में सर्वोत्तम नायक प्रभो! **एते स्तोमाः**=ये स्तुतिसमूह **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिए हैं। इन स्तोमों द्वारा हम आपको प्राप्त करते हैं। **अस्मद्र्यञ्चो**= हमारे अभिमुख होते हुए ये स्तोम **मघानि ददतः**=ऐश्वर्यों को देते हुए होते हैं। आपका स्तवन करते हुए हम सब आवश्यक ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं। २. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **वृत्रहत्ये**=संग्राम में **तेषां नृणाम्**=उन उन्नति-पथ पर चलनेवाले मनुष्यों का **शिवः**=कल्याण करनेवाले **भूः**=होइए **च**=और **सखा**=उनके मित्र होते हुए **शूरः**=उनके शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले **च**=और **अविता**=रक्षक होइए।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करनेवाला सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है। प्रभु इनके शत्रुओं को शीर्ण करके इनका कल्याण करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'वाजान्+स्तीन्' (उपमिमीहि)

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व।
उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ११॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **स्तवमानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **ऊती**=रक्षा के हेतु से **नु**=निश्चय से **वावृधस्व**=हमारा खूब ही वर्धन कीजिए। **ब्रह्मजूतः**-ज्ञान की वाणियों के द्वारा हृदयों में प्रेरित हुए-हुए आप **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार के हेतु से **(वावृधस्व)**=हमारा खूब ही वर्धन कीजिए। २. **नः**=हमारे लिए **वाजान्**=शक्तियों को **उपमिमीहि**=समीपता से निर्मित कीजिए तथा **स्तीन्**=ज्ञान की वाणीरूप शब्दसमूहों का **उप**=निर्माण कीजिए। **यूयम्**=आप सब देव **सदा**=सदा **नः**=हमें **स्वस्तिभिः**=कल्याणों के द्वारा **पात**=रक्षित कीजिए।

भावार्थ—स्तुति किये जाते हुए प्रभु हमारा रक्षण करें। प्रभु हमारी शक्तियों का विस्तार करें। हमें बल व ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराएँ।

प्रभु-स्तवन करता हुआ यह व्यक्ति 'इरिम्बिठि' बनता है (ऋ गतौ, बिठं-अन्तरिक्षम्) क्रियाशीलता की भावना से युक्त हृदयान्तरिक्षवाला होता है तथा 'मधुच्छन्दाः'=मधुर इच्छाओंवाला बनता है। ये इरिम्बिठि व मधुच्छन्दा ही अगले सूक्त में क्रमशः प्रथम तीन व पिछले तीन मन्त्रों के ऋषि हैं—

३८. [अष्टत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु को हृदय में आसीन करना

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **आयाहि**=आइए। **हि**=निश्चय से **ते**=आपकी प्राप्ति के लिए ही **सुषुम**=हमने इस सोम का सम्पादन किया है। **इमं सोमं पिब**=आप इस सोम का पान (रक्षण) कीजिए। आपके अनुग्रह से ही हम इस सोम को शरीर में सुरक्षित कर पाएँगे। २. आप सदा ही **मम**=मेरे **इदं बर्हिः**=इस वासनाशून्य हृदय में **आसदः**=आसीन होइए। आपके सान्निध्य से ही वासनाओं का यहाँ प्रवेश नहीं होता। वासनाओं के अभाव में ही सोम का पान सम्भव होता है। इस सुरक्षित सोम के द्वारा हम 'सोम' प्रभु को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए हम शरीर में सोम का सम्पादन करते हैं। इसके लिए हृदय में प्रभु का ध्यान करते हैं।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'ब्रह्मयुजा केशिना' हरी

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ब्रह्मयुजा**=ज्ञान के साथ मेलवाले **केशिना**=प्रकाश की रश्मियोंवाले **हरी**=इन्द्रियाश्व **त्वा**=आपको **आवहताम्**=हमारे लिए प्राप्त करानेवाले हों। हम इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान-प्राप्ति में प्रवृत्त हुए-हुए अपने में ज्ञानरश्मियों को बढ़ानेवाले हों। यही प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है। २. हे प्रभो! **उप**=हमें हृदयों में समीपता से प्राप्त हुए-हुए आप **नः**=हमसे किये जानेवाले **ब्रह्माणि**=स्तोत्रों को **शृणु**=सुनिए।

भावार्थ—इन्द्रियों को ज्ञानप्राप्ति में लगाते हुए हम प्रभु के समीप हों। हृदयस्थ प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करें।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

ब्रह्माणः+सोमिनः

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे॥ ३॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयम्**=हम **त्वा युजा**=तुझ साथी के साथ **ब्रह्माणः**=ज्ञानवाले बनते हैं—हम अपने जीवन की साधना इसप्रकार करते हैं कि यह ज्ञान-प्रधान बने। २. **सुतावन्तः**=सोम का सम्पादन करनेवाले हम **सोमपाम्**=सोम का रक्षण करनेवाले ज्ञान को **हवामहे**=पुकारते हैं और **सोमिनः**=सोमी बनते हैं—सोम का रक्षण करनेवाले बनते हैं। इस सुरक्षित सोम ने ही तो हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त करके हमें 'ज्ञानी' (ब्रह्माणः) बनाना है।

भावार्थ—प्रभुरूप मित्र को पाकर हम सोम का रक्षण करते हुए दीप्त ज्ञानाग्निवाले बनें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

गाथिनः-अर्किणः

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत॥ ४॥

१. **गाथिनः**=साम वाणियों का गायन करनेवाले **इत्**=निश्चय से **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **बृहत्**=खूब ही **अनूषत**=स्तुत करते हैं। २. **अर्किणः**=ऋङ्मन्त्रों द्वारा अर्चन करनेवाले

उपासक **अर्केभिः**=ऋचाओं के द्वारा **इन्द्रम्**=उस प्रभु का ही पूजन करते हैं। ३. **वाणीः**=यजूरूप वाणियाँ भी **इन्द्रम्**=उस प्रभु को ही स्तुत करती हैं।

भावार्थ—हम 'ऋग्-यजु-साम' मन्त्रों से प्रभु का ही पूजन करें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वज्री हिरण्ययः

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥

१. **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **इत्**=निश्चय से **हर्योः**=इन इन्द्रियाश्वों का **संमिश्लः**=हमारे साथ मिलानेवाला है। ये ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व **सचा**=परस्पर मेलवाले होते हैं और **वचोयुजा**=शास्त्रवचनों के अनुसार कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले होते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ मिलकर कार्य करती हैं और शास्त्रवचनों का उल्लंघन न करती हुई अपने कार्यों में प्रवृत्त होती हैं। २. **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **वज्री**=वज्रहस्त है—क्रियाशील है। क्रियाशीलता ही वस्तुतः इनका वज्र है। **हिरण्ययः**=ये ज्योतिर्मय हैं—ज्ञानज्योति से दीप्त हैं।

भावार्थ—प्रभु प्रदत्त कर्मेन्द्रियाँ हमें वज्री बनाएँ और ज्ञानेन्द्रियाँ हिरण्यय बनानेवाली हों।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सूर्य व ज्ञानरश्मियाँ

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

१. **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **दीर्घाय चक्षसे**=अन्धकार का विदारण कर देनेवाले विशाल प्रकाश के लिए **सूर्यम्**=सूर्य को **दिवि आरोहयत्**=द्युलोक में आरूढ़ करते हैं। सूर्योदय हुआ और अन्धकार भागा। २. इसी प्रकार हमारे जीवनों में भी वे प्रभु **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों व ज्ञान की रश्मियों से **अद्रिम्**=अविद्यापर्वत को **वि ऐरयत्**=विशिष्ट रूप से कम्पित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही बाह्यजगत् को सूर्य के द्वारा तथा आन्तरिक जगत् को ज्ञानरश्मियों द्वारा प्रकाशमय करते हैं।

इन ज्ञानरश्मियों को पाकर यह पवित्र जीवनवाला व्यक्ति मधुर इच्छाओं को करता हुआ 'मधुच्छन्दा' होता है। यही अगले सूक्त के प्रथम मन्त्र का ऋषि है। शेष मन्त्रों के ऋषि 'गोषूक्ति व अश्वसूक्ति' हैं, जिनकी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ सदा उत्तम कर्मों को करनेवाली हैं—

३९. [एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

केवलः

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥

१. हम **वः इन्द्रम्**=तुम सबके शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु को **विश्वतःपरि**=सब ओर से इन्द्रियों को विषयों से पृथक् करके (परि-वर्जने) **जनेभ्यः**-सब लोगों के हित के लिए **हवामहे**=पुकारते हैं। हम प्रभु-स्तवन करते हैं—प्रभु हमारे अन्दर लोकहित की भावनाओं को भरते हैं। २. वे प्रभु **अस्माकम्**=हमारे **केवलः**=आनन्द में संचार करानेवाले **अस्तु**=हों। (क=सुख, वल् संचरणे)।

भावार्थ—प्रभु का आराधक लोकहित में प्रवृत्त होता है। प्रभु इसे आनन्दमय जीवनवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सोमस्य मदे

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद्वलम्॥ २॥

१. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **सोमस्य मदे**=सोम-रक्षण से जनित उल्लास के होने पर **अन्तरक्षिम्**=हृदयान्तरिक्ष को **रोचना**=ज्ञानदीप्तियों से **व्यतिरत्**=बढ़ाता है। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और हृदय ज्ञान के प्रकाश से दीप्त हो उठता है। २. यह सब तब होता है **यत्**=जब **इन्द्रः**=वे शत्रुविद्रावक प्रभु **वलम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **अभिनत्**=विदीर्ण कर देते हैं।

भावार्थ—प्रभु-कृपा से हमारी वासना विनष्ट हो और हम सोम का रक्षण करते हुए हृदयान्तरिक्ष में ज्ञानदीप्ति का अनुभव करें।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'वल' का अपनोदन

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्॥ ३॥

१. प्रभु **अंगिरोभ्यः**=गतिशील पुरुषों के लिए **गुहासतीः**=अविद्यापर्वत की गुफ़ा में बन्द सी हुई-हुई **गाः**=इन्द्रियों को **आविष्कृण्वन्**=पुनः अज्ञानान्धकार से बाहर लाते हुए **उद् आजत्**=उत्कृष्ट गतिवाला करते हैं। २. इसी उद्देश्य से वे प्रभु **वलम्**=इस वासना के पर्दे को **अर्वाञ्चं नुनुदे**=अधोमुख करके विनष्ट कर डालते हैं। वासनारूप पर्दे के हटने पर ही तो ज्ञान का प्रकाश होगा।

भावार्थ—प्रभु-कृपा से वासना विनष्ट होती है और इन्द्रियाँ प्रकाशमय होकर उत्कृष्ट गतिवाली होती हैं।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

दिवः रोचना

इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे॥ ४॥

१. **इन्द्रेण**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु से **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक के **दृढानि**=बड़े प्रबल **रोचना**=विज्ञान-नक्षत्र **च**=निश्चय से **दृंहितानि**=दृढ़ किये गये हैं। प्रभु अपने उपासक के मस्तिष्क को ज्ञान-नक्षत्रों से दीप्त कर डालते हैं। २. ये विज्ञान-नक्षत्र **स्थिराणि**=बड़े स्थिर होते हैं। **न पुराणुदे**=ये परे धकेले जाने के लिए नहीं होते। कोई भी वासनारूप शत्रु इन्हें विनष्ट नहीं कर पाता।

भावार्थ—उपासक का मस्तिष्करूप द्युलोक विज्ञान-नक्षत्रों से दीप्त हो उठता है।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

मदाः

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते। वि ते मदा अराजिषुः॥ ५॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **अपाम् ऊर्मिः इव**=जलों की तरंग की भाँति **मदन्**=उल्लसित होता हुआ **स्तोमः**=यह स्तवन **अजिरायते**=अत्यन्त शीघ्र गतिवाला होता है। यह स्तोम हमारे मुख से उच्चरित होकर शीघ्रता से आपकी ओर गतिवाला होता है। २. ऐसा होने पर हे प्रभो! **ते मदाः**=आपसे प्राप्त कराये गये उल्लासजनक सोम **वि अराजिषुः**=विशिष्ट रूप से दीप्त होते

हैं। प्रभु-स्तवन से वासनाओं का आक्रमण नहीं होता और सोम-रक्षण होकर आनन्द का अनुभव होता है।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त होते हैं, परिमाणतः हमारा जीवन शक्ति सम्पन्न व उल्लासमय बनता है।

अगले सूक्त का ऋषि 'मधुच्छन्दाः' ही है—उत्तम मधुर इच्छाओंवाला—

४०. [चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

मन्दू समानवर्चसा

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा॥ १॥

१. गतमन्त्र के अनुसार प्रभु स्तवन करनेवाले हे उपासक! तू **अबिभ्युषा**=उस भीतिरहित **इन्द्रेण**=सर्वशक्तिमान् प्रभु से **संजग्मानः हि**=संगत सा हुआ हुआ ही **संदृक्षसे**=सम्यक् दृष्टिगोचर होता है। उपासना उसे प्रभु के समीप लाती हुई प्रभु से मिला-सा देती है। 'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रम्'। २. इसी वृत्ति में ये दोनों उपासक व उपास्य **मन्दू**=आनन्दमय होते हैं। प्रभु तो आनन्दस्वरूप हैं ही, जीव भी उसके आनन्द में भागी बन जाता है। **समानवर्चसा**=ये उपास्य व उपासक समान दीप्तिवाले हो जाते हैं। उपास्य की दीप्ति से उपासक भी दीप्त हो उठता है।

भावार्थ—उपासक प्रभु से संगत होकर निर्भय, आनन्दमय व दीप्तरूपवाला बन जाता है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'प्रशस्त, ज्योतिर्मय, सबल' जीवन

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः॥ २॥

१. **मखः**=एक यज्ञशील पुरुष प्राणसाधना करता हुआ प्राणों के साथ **सहस्वत्**=(बलोपेतं यथा स्यात्तथा सबलम् अर्चति) प्रभु का अर्चन करता है। अर्चना उपासक को सबल बनाती है। २. यह उपासक जिन प्राणों की साधना करता हुआ उपासना करता है वे प्राण **अनवद्यैः**=प्रशस्त हैं—हमें पापों से बचाते हैं, प्राणसाधक से कभी कोई निन्दनीय कर्म नहीं होता। **अभिद्युभिः**=ये ज्ञान ज्योति की ओर ले-जाते हैं। प्राणसाधना से ज्ञान दीप्त हो जाता है। ये प्राण **गणैः**=गणनीय व प्रशंसनीय हैं, **इन्द्रस्य काम्यैः**=जितेन्द्रिय पुरुष की सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं।

भावार्थ—हम प्राणसाधना के साथ यज्ञशील बनते हुए प्रभु का अर्चन करें। यह अर्चना हमें प्रशस्त ज्योतिर्मय व सबल जीवनवाला बनाएगी।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

पुनः गर्भत्वम् ऐरिरे

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम्॥ ३॥

१. **आत्**=गतमन्त्र के अनुसार उपासना करने के एकदम बाद ही **अह**=निश्चय से **स्वधाम् अनु**=आत्मधारणशक्ति के अनुसार, अर्थात् जितना-जितना आत्मधारण करते हैं उतना-उतना **पुनः**=फिर **गर्भत्वम् एरिरे**=परमात्मा की गोद में होने की स्थिति को अपने में प्रेरित करते हैं। अपने को ये प्रभु की गोद में अनुभव करते हैं। इनका जप यही होता है 'अमृतोपस्तरणमसि, अमृतापिधानमसि'=अमृत प्रभो! आप ही हमारे उपस्तरण हो, आप ही अपिधान हो। २. ये उपासक उस प्रभु के **यज्ञियम् नाम**=पवित्र नाम को **दधानाः**=धारण करते हुए होते हैं। यह नाम जप उन्हें प्रेरणा देता है। इस प्रेरणा से वे भी प्रभु-जैसा बनने का प्रयत्न करते हैं।

भावार्थ—उपासक आत्मधारणशक्ति के अनुपात में अपने को प्रभु की गोद में अनुभव करता है। यह प्रभु के पवित्र नामों का जप करता है।

इसप्रकार पवित्र जीवनवाला प्रशस्तेन्द्रिय यह उपासक 'गोतम' होता है—अत्यन्त प्रशस्त इन्द्रियोंवाला यह प्रभु-स्तवन करता है—

४१. [एकचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

दधीचि की अस्थियों से वृत्र का विनाश

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव॥ १ ॥

१. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **दधीचः**=(ध्यानं प्रत्यक्तः) ध्यानी पुरुष की **अस्थभिः**=(असु क्षेपणे) विषयों को दूर फेंकने की शक्तियों से **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **नवतीः नव**=निन्यानवे वार **जघान**=नष्ट करता है। इन वृत्रों के विनाश से ही शतवर्ष तक जीवन पवित्र बना रहता है। २. ध्यान-परायण व्यक्ति ही 'दध्यङ्' है। विषयों को दूर फेंकने की वृत्तियाँ ही अस्थियाँ हैं। वासना ही वृत्र है। यह ध्यानी पुरुष प्रभु के ध्यान द्वारा विषयवासनाओं को परे फेंकनेवाला बनता है। **अप्रतिष्कुतः**=यह प्रतिकूल शब्द से रहित होता है, अर्थात् कोई भी इसका प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहता। यह सब वासनाओं का पराजय करनेवाला बनता है।

भावार्थ—हम प्रभु का ध्यान करते हुए प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न बनकर वासनाओं को दूर फेंकनेवाले बनें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

शर्यणावान् में अश्व के शिर की प्राप्ति

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद्विदच्छर्यणावति॥ २ ॥

१. **पर्वतेषु**=शरीर में मेरुदण्डरूप मेरुपर्वतों पर **अपश्रितम्**=उल्टा करके रखा हुआ (अर्वाग् बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः) **अश्वस्य यत् शिरः**=(अश्नुते) सब विषयों का व्यापन करनेवाला जो सिर है। **तत्**=उसको **इच्छन्**=चाहता हुआ साधक **शर्यणावति विदत्**=वासनाओं का हिंसन करनेवाले व्यक्ति में **विदत्**=प्राप्त करता है। २. यहाँ 'पर्वत' मेरुदण्ड ही है। वासना विनाश के द्वारा सब विषयों का ज्ञान करनेवाला मस्तिष्क ही 'अश्व' का मस्तिष्क है। वासनाओं का हिंसन करनेवाला व्यक्ति 'शर्यणावान्' है।

भावार्थ—यदि हम चाहते हैं कि शरीर में मेरुदण्ड पर उलटा-सा पड़ा हुआ यह हमारा सिर सब विषयों के ज्ञान का व्यापन करनेवाला बने तो हमें चाहिए कि हम वासनाओं का हिंसन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

चन्द्रमा के घर में

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्य म्। इत्था चन्द्रमसो गृहे॥ ३ ॥

१. **अत्र अह**=यहाँ ही, गतमन्त्र के अनुसार अश्व के सिर में ही—सब विषयों का व्यापन करनेवाले मस्तिष्क में **गोः अमन्वत**=ज्ञान की वाणियों का—वेदधेनु का मनन करते हैं। इसी मस्तिष्क में वेद का तत्त्व स्पष्ट होता है। यहाँ ही **त्वष्टुः**=उस निर्माता के **अपीच्यम्**=सर्वत्र अन्तर्हित **नाम**=तेज व यश को भी जान पाते हैं। ये गतमन्त्र के शर्यणावान् पुरुष ही सूर्य आदि

सब पिण्डों को प्रभु की दीप्ति से दीप्त होता हुआ देखते हैं। २. **इत्था**=इसप्रकार वेदज्ञान को व प्रभु के यश को मनन करते हुए ये व्यक्ति **चन्द्रमसः गृहे**=आह्लादमय प्रभु के गृह में निवास करते हैं (चदि आह्लादे)।

भावार्थ—वासनाशून्य पुरुष के दीप्त मस्तिष्क में ही वेदज्ञान व प्रभु के यश का मनन होता है। यह पुरुष ऐसा करता हुआ आनन्दमय प्रभु में ही निवास करता है।

प्रभु के यश का मनन करनेवाला यह व्यक्ति प्रभु स्तवनपूर्वक क्रियामय जीवनवाला होता है, अतः यह 'कुरुसुति' कहलाता है। यह इन्द्र का स्तवन करता है—

४२. [द्विचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**कुरुसुतिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

अष्टापदी वाक्

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम्। इन्द्रात्परि तन्वं ममे ॥ १ ॥

१. प्रभु का स्तवन करता हुआ कुरुसुति कहता है कि **अहम्**=मैं **इन्द्रात्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु से **वाचम्**=वाणी को **परिममे**=अपने अन्दर निर्मित करता हूँ। उस वेदवाणी को जोकि **अष्टापदीम्**=कर्ता, कर्म आदि के पद से आठ पदोंवाली है। **नवस्रक्तिम्**=जो हमारे जीवन का स्तुत्य (नु स्तुतौ) निर्माण करती है और **ऋतस्पृशम्**=सब सत्य विद्याओं के स्पर्शवाली है। २. यह कुरुसुति ज्ञान की वाणी का अपने अन्दर निर्माण करता हुआ **तन्वम्**=शक्तियों के विस्तार को अपने अन्दर निर्मित करता है।

भावार्थ—हम प्रभु के उपासन के द्वारा अपने अन्दर सत्य ज्ञान की वाणियों का निर्माण करते हुए शक्तियों का विस्तार करनेवाले हों।

ऋषिः—**कुरुसुतिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

क्रक्षमाण

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम्। इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ २ ॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **यत्**=जब तू **दस्युहा अभवः**=वासनारूप दास्यव वृत्तियों को नष्ट करनेवाला होता है तब **क्रक्षमाणम्**=शत्रुओं को कुचलनेवाले **त्वा अनु**=तेरे अनुसार **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी—मस्तिष्क व शरीर **अकृपेताम्**=सामर्थ्य सम्पन्न बनते हैं।

भावार्थ—जितना जितना हम काम-क्रोध आदि का विनाश कर पाएँगे, उतना-उतना ही शरीर व मस्तिष्क को शक्तिशाली बना पाएँगे।

ऋषिः—**कुरुसुतिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

शिप्रे अवेपयः

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः। सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **चमू सुतम्**=(चम्वोः द्यावापृथिव्योः) शरीर व मस्तिष्क के निमित्त उत्पन्न किये गये **सोमम्**=सोम को—वीर्यशक्ति को **पीत्वी**=अपने अन्दर ही पीकर **ओजसा सह**=ओजस्विता के साथ **उत्तिष्ठन्**=उन्नत होता हुआ **शिप्रे अवेपयः**=शत्रुओं के जबड़ों को कम्पित कर देता है। २. सोम-रक्षण से शरीर में शक्ति तथा मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति का निवास होता है। इसी स्थिति में हम शत्रुओं से पराभूत नहीं होते।

भावार्थ—सोम-रक्षण द्वारा शक्ति व ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करके उन्नत होते हुए हम शत्रुओं

को कम्पित करनेवाले हों।

सब शत्रुओं को कम्पित करनेवाला यह व्यक्ति—'शरीर, मन व मस्तिष्क' तीनों को दीप्त करके 'त्रिशोक' बनता है। अगला सूक्त इस त्रिशोक का ही है—

४३. [त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**त्रिशोकः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

द्विषः-बाधो-मृधः (परिजहि)

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः। वसु स्पार्हं तदा भर॥ १ ॥

१. **विश्वाः**=सब **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं को **भिन्धि**-विदीर्ण कर दीजिए। हमारे जीवन में द्वेष का साम्राज्य न हो। हम सबके साथ प्रीतिपूर्वक वर्तनेवाले बनें। **बाधः**=उन्नति के मार्ग में बाधक बनी हुई अशुभवृत्तियों को या व्यक्तियों को **परिजहि**=हमसे दूर कीजिए। (हन् गतौ)। इसी प्रकार **मृधः**=हमें मार डालनेवाली दास्यव वृत्तियों को भी हमसे दूर कीजिए। २. द्वेषों को, बाधाओं को व दास्यव वृत्तियों को हमसे पृथक् करके **तत्**=उस **वसु**=निवास के लिए आवश्यक धन को **आभर**=सर्वथा प्राप्त कराइए जोकि **स्पार्हम्**=स्पृहणीय है—सबसे प्राप्त करने के लिए वाञ्छनीय है।

भावार्थ—प्रभु हमसे द्वेषों, बाधाओं व शत्रुओं को पृथक् कर स्पृहणीय धन प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**त्रिशोकः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वीडु-स्थिर-पर्शाने

यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम्। वसु स्पार्हं तदा भर॥ २ ॥

१. **यत्**=जो धन **वीडौ**=दृढ़, सबल शरीरवाले पुरुष में है, हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जो **स्थिरे**=स्थिर-शान्त चित्तवृत्तिवाले पुरुष में है और **यत्**=जो **पर्शाने**=विचारशील पुरुष में **पराभृतम्**=धारण किया गया है। **तत्**=उस **स्पार्हम्**=स्पृहणीय **वसु**=धन को **आभर**=हमारे लिए प्राप्त कराइए।

भावार्थ—हम उस स्पृहणीय धन को प्राप्त करें, जिसे प्राप्त करके हम दृढ़ शरीरवाले, स्थिर चित्तवृत्तिवाले तथा विचारशील बन पाएँ।

ऋषिः—**त्रिशोकः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

विश्वमानुष

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति। वसु स्पार्हं तदा भर॥ ३ ॥

१. **यस्य**=जिस **ते दत्तस्य**=आपसे दिये हुए **भूरेः**=पालन व पोषण के साधनभूत (भृ-धारणपोषणयोः) धन को **विश्वमानुषः**=अपने परिवार में सभी को सम्मिलित करनेवाला—वसुधाकुटुम्बी-पुरुष **वेदति**=प्राप्त करता है, **तत्**=उस **स्पार्हम् वसु**=स्पृहणीय धन को **आभर**=हमारे लिए भी प्राप्त कराइए।

भावार्थ—हम सारे विश्व को अपना परिवार समझते हुए 'विश्वमानुष' बनें। हम प्रभु-प्रदत्त धन के द्वारा सभी के पालन के लिए यत्नशील हों। प्रभु के अनुग्रह से हमें यह 'विश्वमानुष' को मिलनेवाला स्पृहणीय धन प्राप्त हो।

'विश्वमानुष' बनने के लिए क्रियाशीलता नितान्त आवश्यक है। कितना बड़ा बोझ हमारे कन्धों पर आ पड़ा है। अकर्मण्यता से इसे कैसे उठा पाएँगे, अतः क्रियाशीलता के संकल्पवाला

यह व्यक्ति 'इरिम्बिठि' कहलाता है—(बिठम् अन्तरिक्षम्) जिस के हृदय में क्रियाशीलता की भावना है। यह इन्द्र का स्तवन करता है—

४४. [चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सम्राट्–मंहिष्ठ

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः। नरं नृषाहं मंहिष्ठम्॥ १॥

१. **चर्षणीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **सम्राजम्**=जीवनों को सम्यक् दीप्त करनेवाले **नव्यम्**=स्तुति के योग्य **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **गीर्भिः**=इन ज्ञानपूर्वक उच्चारित स्तुतिवाणियों से **प्रस्तोत**=प्रकर्षेण स्तुत करो। यह स्तवन ही हमें श्रमशील व परिणामतः दीप्त जीवनवाला बनाएगा। २. उस प्रभु का स्तवन करो जोकि **नरम्**=हमें उन्नति पथ पर ले-चलनेवाले हैं। **नृषाहम्**=हमारे शत्रुओं का पराभव करनेवाले हैं, **मंहिष्ठम्**=दातृतम हैं—सर्वाधिक दाता हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु ही हमारे जीवनों को दीप्त बनानेवाले हैं, उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाले हैं, हमारे शत्रुओं का पराभव करते हैं और हमें सब-कुछ देते हैं।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

उक्थानि श्रवस्या

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या। अपामवो न समुद्रे॥ २॥

१. उस प्रभु का स्तवन करो **यस्मिन्**=जिस प्रभु में **विश्वानि उक्थानि**=सब स्तोत्र **रण्यन्ति**=रमणीय होते हैं **च**=और उस प्रभु का ही स्तवन करो जिससे **श्रवस्या** (श्रवस्यम्-Glory)=सब यश इसप्रकार रमणीय होते हैं, **न**=जैसेकि **अपाम् अवः**=जलों का प्रवाह **समुद्रे**=समुद्र में। २. सब जल-प्रवाहों का अन्तिम निधान समुद्र है, इसी प्रकार सब स्तोत्रों व यशों का निधान प्रभु हैं।

भावार्थ—हम उस प्रभु का स्तवन करे जो सब स्तोत्रों व यशों का निधान हैं।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

ज्येष्ठराट्–भरे कृत्नु

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्। महो वाजिनं सनिभ्यः॥ ३॥

१. **तम्**=उस **ज्येष्ठराजम्**=सबसे महान् सम्राट्, **भरे कृत्नुम्**=संग्राम में कुशल प्रभु को **सुष्टुत्या**=उत्तम स्तुति से **आविवासे**=पूजित करता हूँ। २. उस प्रभु का मैं पूजन करता हूँ जो **सनिभ्यः**=संभजन करनेवालों के लिए **महः वाजिनम्**=महनीय शक्ति देनेवाले हैं। अपने उपासक को प्रभु महान् शक्ति प्रदान करते हैं।

भावार्थ—प्रभु सबसे बड़े समुद्र हैं, युद्धों में प्रभु ही विजय प्राप्त कराते हैं। उपासकों के लिए शक्ति देनेवाले हैं।

प्रभु से शक्ति प्राप्त करके यह स्तोता वास्तविक सुख का निर्माण करनेवाला होता है—'शुनःशेप' बनता है। यह देवों में दान देनेवाला 'देवरात' भी कहलाता है। यह प्रभु-स्तवन करता हुआ कहता है—

४५. [पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**शुनःशेपो देवरातापरनामा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

क-पोतः

अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे॥ १॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि हे जीव! **अयम्**=यह सोम **उ**=निश्चय से **ते**=तेरा है, तेरे लिए उत्पन्न किया गया है। **सम् अतसि**=तू इसे सम्यक् प्राप्त करता है। यह तेरे लिए **क-पोतः इव**=आनन्द की नाव के समान है। तेरे सारे आनन्दों का निर्भर इसी पर है। २. इस सोम के रक्षण से ही तू **नः**=हमारे **तत् वचः**=उस वेदवाणीरूप ज्ञानवचन को **चित्**=भी **आ ऊहसे**=सम्यक् जाननेवाला होता है जो **गर्भधिम्**=अपने अन्दर सम्पूर्ण सत्य-ज्ञान को धारण करनेवाला है। सोम ही सुरक्षित होकर हमें दीप्त बुद्धिवाला बनाकर इसके समझने के योग्य बनाता है।

भावार्थ—प्रभु ने हमारी उन्नति के लिए सोम का सम्पादन किया है। यह सुख देनेवाला है। दीप्त बुद्धि बनाकर हमें ज्ञान की वाणियों के तत्त्वों को समझने के योग्य बनाता है।

ऋषिः—**शुनःशेपो देवरातापरनामा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

राधानां पते

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता॥ २॥

१. हे **वीर**=शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करनेवाले! **राधानां पते**=सोम-रक्षण द्वारा सफलताओं के स्वामिन्! **गिर्वाहः**=ज्ञान की वाणियों को धारण करनेवाले जीव! **यस्य ते**=जिस तेरा **स्तोत्रम्**=यह प्रभु-स्तवन चलता है, उस तेरी **विभूतिः अस्तु**=विशिष्ट ऐश्वर्यशालिता हो तथा ऐश्वर्य के साथ **सूनृता**=सदा प्रिय, सत्य वाणी हो।

भावार्थ—सोम-रक्षण करनेवाला पुरुष वीर तो बनता ही है। वह जीवन में कभी असफल नहीं होता। यह ज्ञान की वाणियों का धारण करनेवाला बनता है। ऐसा बनकर सदा प्रभु-स्तवन करता है। परिणामतः विशिष्ट ऐश्वर्य प्राप्त करके भी सदा प्रिय, सत्य वाणीवाला—सौम्य स्वभाव होता है।

ऋषिः—**शुनःशेपो देवरातापरनामा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

प्रभु-प्रेरणा से कार्य करें

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै॥ ३॥

१. गतमन्त्र का सौम्य पुरुष प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञानवाले प्रभो! **अस्मिन् वाजे**=इस जीवन-संग्राम में **नः ऊतये**=हमारे रक्षण के लिए **ऊर्ध्वः तिष्ठ**=आप सदा ऊपर स्थित हों—जागरित रहें। हमें सदा आपका रक्षण प्राप्त हो। २. हम **अन्येषु**=जीवन के अन्य सब कार्यों में भी **सं ब्रवावहै**=मिलकर बात कर लें, अर्थात् आपसे पूछकर—अन्तःस्थित आपकी प्रेरणा को लेकर ही हम सब कार्यों को करनेवाले हों।

भावार्थ—सौम्य पुरुष सदा संग्राम में प्रभु से रक्षणीय होता है। यह प्रभु-प्रेरणा से प्रेरित होकर ही सब कार्यों को करता है।

हृदयान्तरिक्ष में सदा क्रियाशीलता की भावनावाला यह 'इरिम्बिठि' कहाता है। यह इस रूप में इन्द्र का स्तवन करता है—

४६. [षट्चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'प्रशस्त मन तथा ज्योति' के कर्ता प्रभु

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु। सासह्वांसं युधामित्रान्॥ १ ॥

१. गतमन्त्र के अनुसार हम अपने अन्दर प्रभु से प्रेरणा का वर्धन करनेवाले हों जो हमें **वस्यः**=प्रशस्त धन की **अच्छा**=ओर **प्रणेतारम्**=ले चलनेवाले हैं तथा **समत्सु**=संग्रामों में **ज्योतिः**=हमारे लिए ज्ञान का प्रकाश **कर्तारम्**=करनेवाले हैं। इस ज्ञान के प्रकाश में ही तो शत्रुभूत वासनाओं के अन्धकार का विलय होता है। २. उन प्रभु को ही हम बढ़ाएँ जोकि **युधा**=युद्ध के द्वारा **अमित्रान्**=हमारे सब शत्रुओं को **सासह्वांसम्**=कुचल देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिए प्रशस्त धन देते हैं। काम क्रोध आदि शत्रुओं के साथ संग्राम में हमारे लिए ज्ञानज्योति प्राप्त कराते हैं। इन शत्रुओं के साथ युद्ध में उन्हें ज्ञानाग्नि में भस्म कर डालते हैं।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

पार होने के लिए द्वेष से दूर

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः। इन्द्रो विश्वा अति द्विषः॥ २ ॥

१. **सः**=वे प्रभु **पप्रिः**=हमारा पूरण करनेवाले हैं—हमारी न्यूनताओं को दूर करते हैं। **नः**=हमें **स्वस्ति**=कल्याणपूर्वक **पारयाति**=इस भवसागर के पार ले-चलते हैं। इसी प्रकार जैसेकि एक नाविक **नावा**=नौका के द्वारा पार ले-जाता है। २. वे **पुरुहूतः**=जिनका आह्वान (आराधन) हमारा पालन व पूरण करनेवाला है; वे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु हमें **विश्वाः**=सब **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं से **अति**=पार ले-जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें द्वेष से दूर करते हुए भवसागर से पार पहुँचानेवाले हैं।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सुम्नं अच्छ

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च। अच्छा च नः सुम्नं नेषि॥ ३ ॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **नः**=हमें **वाजेभिः**=शक्तियों के साथ **दशस्या**=धनों को अवश्य दीजिए **च**=तथा **गातुया**=हमारे लिए उत्तम मार्ग की इच्छा कीजिए (मार्गम् इच्छ) २. इसप्रकार हे प्रभो! आप **नः**=हमें **च**=अवश्य **सुम्नम्**=सुख **अच्छ**=की ओर **नेषि**=ले-चलते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति व धन देते हैं तथा मार्ग का दर्शन कराते हैं। इसप्रकार वे प्रभु हमें सुख की ओर ले-चलते हैं।

प्रभु की शरण में जानेवाला—उत्तम शरणवाला—'सुकक्ष' अगले सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों का ऋषि है। इसकी भावना यह है कि—

४७. [सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**सुकक्षः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वृत्र-हनन व सुख-वर्षण

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत्॥ १ ॥

१. हम **तम् इन्द्रम्**=सब शत्रुओं के संहारक उस प्रभु को **वाजयामसि**=अपने अन्दर गतिवाला करते हैं, अर्थात् उस प्रभु का पूजन करते हैं। वे प्रभु हमारे **महे वृत्राय**=महान् शत्रु वृत्र के **हन्तवे**=विनाश के लिए होते हैं। ज्ञान की आवरणभूत वासना को वे प्रभु ही विनष्ट करते हैं। **सः**=वे प्रभु **वृषा**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले व शक्तिशाली हैं। हमारे शत्रुओं को नष्ट करके हमारे लिए **वृषभः भुवत्**=सुखों का वर्षण करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का पूजन करें। प्रभु हमारे शत्रुओं का विनाश करके हमपर सुखों का वर्षण करेंगे।

ऋषिः—**सुकक्षः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'इन्द्र' का लक्षण

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः। द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः॥ २॥

१. **इन्द्रः सः**=इन्द्र वह है—इन्द्रियों का अधिष्ठाता जीव वह है जो **दामने**=इन्द्रियों के दमन के निमित्त **कृतः**=किया गया है—जिसका ध्येय इन्द्रियों का वशीकरण है। यह **ओजिष्ठः**=ओजस्वितम बनता है—इन्द्रियविजय ही इसे ओजस्वी बनाता है। ओजस्विता के कारण **सः**=वह **मदे**=सोमरक्षण जनित उल्लास में **हितः**=स्थापित होता है। २. यह इन्द्र **द्युम्नी**=सुरक्षित सोम को ज्ञानाग्नि का ईंधन बनाकर दीप्त ज्ञानज्योतिवाला होता है। **श्लोकी**=उत्तम कर्मों को करता हुआ यशस्वी होता है। **सः**=वह यशस्वी होता हुआ भी **सोम्यः**=अत्यन्त शान्त, विनीत स्वभाववाला होता है।

भावार्थ—इन्द्र वह है जो इन्द्रियदमन को अपना ध्येय बनाता है। इन्द्रियदमन द्वारा ओजस्वी बनता है। सोम-रक्षण द्वारा उल्लासमय जीवनवाला होता है। ज्ञानज्योति को प्राप्त करके बड़े यशस्वी जीवनवाला होता है। इस सबके होते हुए अतिविनीत बनता है।

ऋषिः—**सुकक्षः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सबलः अनपच्युतः

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः॥ ३॥

१. **गिरा**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुतिवाणियों के द्वारा **सम्भृतः**=हृदय में सम्यक् धारण किये गये प्रभु **वज्रः न**=वज्र के समान होते हैं। स्तोता के सब काम-क्रोध आदि शत्रुओं का वे संहार करनेवाले होते हैं। **सबलः**=वे प्रभु सदा बल के साथ वर्तमान हैं। **अनपच्युतः**=किन्हीं भी शत्रुओं से स्थान-भ्रष्ट नहीं किये जा सकते। २. वे प्रभु **ऋष्वः**=महान् हैं **अस्तृतः**=अहिंसित हैं। किन्हीं भी शत्रुओं से प्रभु के हिंसित होने का सम्भव नहीं। ये प्रभु **ववक्षे**=उपासक के लिए सब आवश्यक धन आदि पदार्थों के प्राप्त कराने की कामनावाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमारे लिए वज्र के समान होकर शत्रुओं का संहार करेंगे। वे हमें सब आवश्यक धनों को प्राप्त कराते हैं।

अगले तीन मन्त्रों के ऋषि 'मधुच्छन्दाः' हैं—

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'ऋग्-यजु-साम' द्वारा प्रभु का पूजन

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत॥ ४॥

१. **गाथिनः**=साममन्त्रों का गायन करनेवाले उद्गाता **इत्**=निश्चय से **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का **बृहत् अनूषत**=बहुत ही स्तवन करते हैं। **अर्किणः**=ऋचाओं के द्वारा प्रभु का पूजन करनेवाले **अर्केभिः**=इन ऋङ्मन्त्रों के द्वारा **इन्द्रम्**=उस प्रभु का ही पूजन करते हैं। २. हमसे

उच्चरित **वाणी**=यजूरूप वाणियाँ भी उस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही स्तुत करती हैं।

भावार्थ—साम, ऋक् व यजूरूप वाणियाँ उस प्रभु का ही स्तवन व पूजन करती हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वज्री हिरण्ययः

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः॥ ५॥

१. **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **इत्**=निश्चय से **हर्योः**=इन्द्रियाश्वों को **संमिश्लः**=हमारे साथ मिलानेवाले हैं। हमारे शरीर में प्रभु ही ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों को जोतते हैं। ये इन्द्रियाश्व **सचा**=परस्पर मेलवाले हैं, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान के अनुसार कर्मेन्द्रियाँ कर्म करती हैं। ये इन्द्रियाश्व **आ**=सर्वथा **वचोयुजा**=वेदवाणी के अनुसार कर्मों में प्रवृत्त होनेवाले हैं। २. परिणामतः **इन्द्रः**=इन इन्द्रियों का अधिष्ठाता जीव **वज्री**=क्रियाशीलतारूप वज्र को हाथ में लिये हुए होता है और **हिरण्ययः**=ज्योतिर्मय मस्तिष्कवाला होता है। क्रियाशीलता इसे शक्ति-सम्पन्न बनाती है और स्वाध्याय ज्ञान-सम्पन्न।

भावार्थ—हम इस शरीर में कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्मों को करते हुए शक्ति सम्पन्न बनें। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ज्ञान-वृद्धि करते हुए ज्योतिर्मय जीवनवाले हों।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

अविद्या-पर्वत का विदारण

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत्॥ ६॥

१. **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **दीर्घाय चक्षसे**=अन्धकार का विदारण करनेवाले विस्तृत प्रकाश के लिए **सूर्यम्**=सूर्य को **दिवि**=द्युलोक में **आरोहयत्**=आरूढ़ करते हैं। २. जिस प्रकार प्रभु बाह्य अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य को उदित करते हैं, इसी प्रकार **गोभिः**=ज्ञान की रश्मियों के द्वारा **अद्रिम्**=अविद्या-पर्वत को **वि ऐरयत्**=विशिष्टरूप से कम्पित करके विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—प्रभु बाह्य आकाश में सूर्य का उदय करते हैं और अन्तःआकाश (मस्तिष्क) में ज्ञानरश्मियों का।

इन ज्ञानरश्मियों को प्राप्त करके इनके अनुसार अपने कर्त्तव्यपालन में प्रसित पुरुष 'इरिम्बिठि' बनता है। क्रियाशीलता की भावना से युक्त हृदयान्तरिक्षवाला यही अगले तीन मन्त्रों का ऋषि है—

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु को हृदयासन पर बिठाना

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम॥ ७॥

१. **आयाहि**=हे प्रभो! आइए। **हि**=निश्चय से **ते**=आपकी प्राप्ति के लिए **सुषुम**=हमने सोम का सम्पादन किया है। इस सोम-रक्षण के द्वारा ही तो हम आपको प्राप्त कर पाएँगे। हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! आप **इमं सोमं पिब**=इस सोम का पान कीजिए। आपने ही वासना विनाश द्वारा हमें सोम रक्षण के योग्य बनाना है। २. **इदम्**=इस **मम**=मेरे **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदयासन पर **आसदः**=आप विराजिए। आपके हृदय में आसीन होने पर वहाँ ज्ञान के प्रकाश में वासनाओं का अन्धकार विलीन हो जाता है।

भावार्थ—हम सोम-रक्षण द्वारा प्रभु-प्राप्ति के अधिकारी बनें। प्रभु को हृदयासन पर आसीन

करके ही हम वासनान्धकार का विलय कर सकेंगे।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'ब्रह्मयुजा केशिना' हरी

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु॥ ८॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशाली प्रभो! **त्वा**=आपको **हरी**=वे इन्द्रियाश्व **आवहताम्**=हमारे लिए प्राप्त कराएँ, जोकि **ब्रह्मयुजा**=ज्ञान के साथ मेलवाले हैं और अतएव प्रकाश की **केशिना**=रश्मियोंवाले हैं। २. हे प्रभो! आप **उप**=समीपता से **नः**=हमसे उच्चरित **ब्रह्माणि**=ज्ञानपूर्वक स्तुतिवचनों को **शृणु**=सुनिए।

भावार्थ—हम इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हुए प्रकाश की रश्मियों से दीप्त जीवनवाले बनें। हम ज्ञानपूर्वक प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करें। यही प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—**इरिम्बिठिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

ब्रह्माणः (ज्ञानी) सोमिनः (सोमरक्षक) सुतावन्तः (यज्ञशील)

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे॥ ९॥

१. **ब्रह्माणः**=ज्ञान की वाणियोंवाले **वयम्**=हम **युजा**=योग के द्वारा—चितवृत्ति-निरोध के द्वारा **त्वा**=आपको **हवामहे**=पुकारते हैं। हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **सोमिनः**=प्रशस्त सोमवाले—सोम को सुरक्षित करनेवाले हम **सोमपाम्**=सोम के रक्षक आपको पुकारते हैं। २. हे प्रभो! **सुतावन्तः**=प्रशस्त यज्ञोंवाले हम आपको पुकारते हैं।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के तीन साधन हैं (१) ज्ञान को प्राप्त करना (२) सोम का रक्षण व (३) यज्ञशीलता।

अगले तीन मन्त्रों का ऋषि 'मधुच्छन्दाः' है—अत्यन्त मधुर इच्छाओंवाला। यह कहता है—

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'सूर्य, अग्नि, वायु, लोक, नक्षत्र'

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि॥ १०॥

१. उपासक लोग **ब्रध्नं युञ्जन्ति**=अपने मन को (असौ आदित्यौ वै ब्रध्नः) उस महान् आदित्य में लगाते हैं। उस सूर्य में प्रभु की महिमा को देखते हैं तथा अपने मस्तिष्करूप द्युलोक में भी ज्ञान-सूर्य को उदित करने का प्रयत्न करते हैं। २. **अरुषम्**=अपने मन को (अग्निर्वा अरुषः) अग्नि में लगाते हैं। मन में प्रगतिशीलता की भावना को धारण करते हैं। ३. **चरन्तम्**=(वायुर्वै चरन्) मन को वायु में लगाते हैं। वायु की भाँति निरन्तर गतिशील होने का निश्चय करते हैं। ४. **परितस्थुषः**=(इमे लोका वै परितस्थुषः) इन चतुर्दिक अवस्थित लोकों में अपने मन को लगाते हैं। इन लोकों में प्रभु की महिमा को देखते हैं तथा सब लोगों के साथ मिलकर आगे बढ़ने की भावनावाले होते हैं। ५. ये इन **रोचना**=नक्षत्रों में अपने मन को लगाते हैं, जोकि **दिवि रोचन्ते**=आकाश में चमकते हैं। इन नक्षत्रों में ये जहाँ प्रभु की महिमा को देखते हैं, वहाँ अपने अन्दर भी विज्ञान-नक्षत्रों को उदित करने के लिए यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—हम अपने मनों को 'सूर्य-अग्नि-वायुलोक व नक्षत्रों' में लगाने का ध्यान करें। अपने मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञान के सूर्य व विज्ञान के नक्षत्रों को उदित करें। प्रगतिशीलता, निरन्तर गति तथा सर्वलोकहित की भावना को धारण करें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'विपक्षसा नृवाहसा' हरी

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा॥ ११ ॥

१. साधक लोग **रथम्**=शरीररूप रथ में **हरी**=अपने इन्द्रियाश्वों को **युञ्जन्ति**=जोतते हैं, अर्थात् इन्द्रियों को जीवन-यात्रा की पूर्ति का साधन बनाते हैं। इनको केवल चरने के लिए ही हर समय इधर उधर भटकने से रोकते हैं। ये इन्द्रियाश्व **अस्य काम्या**=प्रभु-प्राप्ति की कामनावाले होते हैं। **विपक्षसा**=विशिष्ट परिग्रहवाले होते हैं—एक विशेष उद्देश्य को लिये हुए होते हैं। २. इस विशिष्ट उद्देश्य की ओर निरन्तर बढ़ने से ये **शोणा**=तेजस्वी तथा **धृष्णू**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले बनते हैं और **नृवाहसा**=उन्नति पथ पर चलनेवाले लोगों को लक्ष्य की ओर ले-चलनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम इन्द्रियाश्वों को सदा चरने में ही न लगाएँ रक्खें। शरीर-रथ में जुतकर ये हमें आगे ले चलें। इनके सामने एक विशिष्ट उद्देश्य हो—प्रभु-प्राप्ति की ये कामनावाले हों। तेजस्वी व शत्रुओं का धर्षण करनेवाले हों। हमें लक्ष्य की ओर ले चलें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभुभक्त का जीवन

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः॥ १२ ॥

१. एक साधक **अकेतवे**=अज्ञानी के लिए **केतुं कृण्वन्**=ज्ञान को करनेवाला होता है। इसके जीवन का उद्देश्य ज्ञान-प्रसार हो जाता है। हे **मर्या**=मनुष्यो! यह **अपेशसे**=न (पेशस् brightness, lustre) दीप्तिवाले के लिए **पेशः**=दीप्ति को करनेवाला होता है। यह मनुष्यों को ज्ञान देकर उन्हें ठीक मार्ग पर ले-चलता है, उन्हें प्राकृतिक पदार्थों के यथायोग्य प्रयोग की प्रेरणा देता है तथा प्रीति से चलकर उन्नत होने की प्रेरणा देता हुआ उन्हें दीप्त जीवनवाला बनाता है। २. हे साधक! तू **उषद्भिः**=उषाकालों के साथ **सम् अजायथाः**=उठ खड़ा होता है (जन्-to rise, spring up) सूर्योदय के समय सोये न रहकर तू तेजस्वी बनता है। वह तेजस्विता ही तुझे अथक कार्य करने में समर्थ करती है।

भावार्थ—साधक (१) अज्ञानियों के लिए ज्ञान देनेवाला बनता है (२) अदीप्त जीवनवालों को दीप्त जीवनवाला बनाता है और (३) उषःकाल में जागकर कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है।

यह प्रातःजागरणशील ज्ञानी पुरुष ही 'प्रस्कण्व' है—उत्कृष्ट मेधावी पुरुष है। यही अगले मन्त्रों का ऋषि है—

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

दृशे विश्वाय

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ १३ ॥

१. **केतवः**=ये ज्ञानी पुरुष **त्यम्**=उस **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ **देवम्**=प्रकाशमय प्रभु को **उ**=ही **उद्वहन्ति**=सर्वोपरि धारण करते हैं। इनके जीवन का मुख्य ध्येय प्रभु-प्राप्ति होता है। २. ये उस **सूर्यम्**=सूर्य के समान दीप्त प्रभु को **विश्वाय दृशे**=सबके दर्शन के लिए धारण करते हैं। प्रभु के ज्ञान का ही सर्वत्र प्रसार करते हैं।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष प्रभु का ही धारण करते हैं—प्रभु के ज्ञान का ही प्रसार करते हैं।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सूर्योदय-नक्षत्रविलय

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे॥ १४॥

१. **विश्वचक्षसे**=सबको प्रकाशित करनेवाले **सूराय**=सूर्य के लिए—मानो सूर्य के आगमन के लिए स्थान को रिक्त करने के उद्देश्य से ही—**नक्षत्रा**=नक्षत्र **अक्तुभिः**=रात्रियों के साथ इसप्रकार **अपयन्ति**=दूर चले जाते हैं, **यथा**=जैसेकि रात्रियों के साथ **त्ये तायवः**=वे चोर चले जाते हैं। चोर रात्रि के अन्धकार में ही चोरी करते हैं। अन्धकार विलय के साथ ये चोरी आदि कार्य समाप्त हो जाते हैं। २. हमारे जीवनों में भी ज्ञान-सूर्योदय होता है और वासना-अन्धकार का विलय हो जाता है। वासना-विनाश से ही सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति के इच्छारूप नक्षत्र भी विलीन हो जाते हैं। ये भोग-इच्छाएँ ही तो हमारी शक्तियों का अपहरण करने के कारण चोरों के समान थीं। ज्ञान-सूर्योदय के होते ही ये समाप्त हो जाती हैं।

भावार्थ—जीवनों में ज्ञान-सूर्य के उदय होते ही भोग-इच्छारूप नक्षत्र अस्त हो जाते हैं।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

ज्ञान-सूर्य में बुराइयाँ भस्मसात्

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा॥ १५॥

१. **अस्य**=इस उदित हुए हुए सूर्य की **केतवः**=प्रकाश देनेवाली **रश्मयः**=किरणें **जनान् अनु**=मनुष्यों का लक्ष्य करके **वि अदृशन्**=विशिष्टरूप से इसप्रकार दिखती हैं **यथा**=जैसेकि **भ्राजन्तः अग्नयः**=चमकती हुई अग्नियाँ। २. सूर्य के उदित होने पर जैसे सूर्य की किरणें सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करनेवाली होती है, उसी प्रकार हमारे जीवन में ज्ञान के सूर्य का उदय होता है और जीवन प्रकाशमय हो जाता है। यह प्रकाश देदीप्यमान अग्नि के समान हो जाता है। इसमें सब बुराइयाँ भस्म हो जाती हैं।

भावार्थ—हमारे जीवन में ज्ञान के सूर्य का उदय हो और उसके प्रकाश में सब बुराइयों का अन्धकार विलीन हो जाए।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

तरणिः-ज्योतिष्कृत्

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचन॥ १६॥

१. हे **सूर्य**=सूर्य! तू **तरणि**=उदय होता हुआ रोगकृमियों के विनाश के द्वारा हमें रोगों से तारनेवाला है। **विश्वदर्शतः**=इसप्रकार तू सारे संसार का ध्यान करता है (विश्वं द्रष्टव्यं यस्य दृश् to look after), **ज्योतिष्कृत् असि**=तू सर्वत्र प्रकाश करनेवाला है। **विश्वम् रोचनम्**=सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को **आ भासि**=तू भासित करता है। २. सूर्य रोगकृमियों के विनाश के द्वारा शरीर को स्वस्थ करता है (तरणिः) मस्तिष्क को यह ज्योतिर्मय करता है (ज्योतिष्कृत्) हृदयान्तरिक्ष को सब मलिताओं से रहित करके चमका देता है। एवं, सूर्य के प्रकाश का प्रभाव 'शरीर, मन व मस्तिष्क' तीनों पर पड़ता है। यह इन्हें नीरोग, निर्मल व दीप्त बनाता है।

भावार्थ—उदय होता हुआ सूर्य 'शरीर, मन व मस्तिष्क' के स्वास्थ्य को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

देव व मानव बनकर प्रभु-दर्शन

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः। प्रत्यङ् विश्वं स्व र्दृशे॥ १७॥

१. हे सूर्य! तू **देवानां विशः प्रत्यङ्**=देवों की प्रजाओं के प्रति गति करता हुआ **उदेषि**=उदित होता है, अर्थात् सूर्य का प्रकाश प्रजाओं को दिव्य गुणोंवाला व दैवी वृत्तिवाला बनाता है। सूर्य के प्रकाश में रहनेवाले लोग दिव्य गुणोंवाले बनते हैं। सूर्य का प्रकाश मन पर अत्यन्त स्वास्थ्यजनक प्रभाव डालता है। २. **मानुषीः प्रत्यङ् उदेषि**=मानव प्रजाओं के प्रति गति करता हुआ तू उदित होता है। सूर्य का प्रकाश हमें मानुष बनाता है—'मत्वा कर्माणि सीव्यति'-विचारपूर्वक कर्म करनेवाला बनाता है। सूर्य के प्रकाश में विचरनेवाले व्यक्ति समझकर काम करते हैं। अथवा यह प्रकाश हमें मनुष्य बनाता है (मानुष Human)—अक्रूरवृत्तिवाला बनाता है। सामान्यतः हिंसावृत्ति के पशु व असुर रात्रि के अन्धकार में ही कार्य करते हैं। सूर्य का प्रकाश उनके लिए प्रतिकूल होता है। ३. **स्वःदृशे**=उस स्वयं देदीप्यमान ज्योति 'ब्रह्म' के दर्शन के लिए तू **विश्वं प्रत्यङ्**=सबके प्रति गति करता हुआ उदय होता है। इस उदय होते हुए सूर्य के अन्दर द्रष्टा को प्रभु की महिमा का आभास मिलता है। यह सूर्य उसे प्रभु की विभूति के रूप में दिखता है।

भावार्थ—सूर्य का प्रकाश देव बनाता है, एक सच्चा मानव बनाता है और हमारे लिए यह प्रभु के दर्शन का आधार बनता है।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

पवित्र-निर्द्वेष-लोकहितप्रवृत्त

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु। त्वं वरुण पश्यसि॥ १८॥

१. हे **पावक**=प्रकाश से जीवनों को पवित्र करनेवाले! **वरुण**=सब रोगों व आसुरभावों का निवारण करनेवाले सूर्य! **त्वम्**=तू **जनान् भुरण्यन्तम्**=लोगों का भरण-पोषण करनेवाले को **येन चक्षसा**=जिस प्रकाश से **अनुपश्यसि**=अनुकूलता से देखता है, उसी प्रकाश को हम प्राप्त करें। वही प्रकाश हमसे स्तुत्य हो, जो लोग द्वेष का निवारण करके (वरुण) अपने हृदयों को पवित्र बनाकर (पावक) लोकहितकारी कार्यों में प्रवृत्त होते हैं (भुरण्यन्) उनके लिए सूर्य का प्रकाश सदा हितकारी होता है। वृत्ति के उत्तम होने पर सब लोक हमारे लिए हितकर होते हैं। वृत्तियों के विकृत हो जाने पर आधिदैविक आपत्तियाँ आया करती हैं।

भावार्थ—सूर्य का प्रकाश उनके लिए हितकर होता है जो पवित्र व निर्द्वेष बनकर लोकहित के कार्यों में प्रवृत्त होते हैं।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

दिन-रात्रि का 'पालन-चक्र'

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः। पश्यं जन्मानि सूर्य॥ १९॥

१. हे **सूर्य**=आकाश में निरन्तर सरण करनेवाले आदित्य! तू **द्याम्**=इस विस्तृत द्युलोक में **वि एषि**=विशेषरूप से प्राप्त होता है। द्युलोक में आकर **पृथुरजः**-इस विस्तृत अन्तरिक्षलोक में आगे और आगे बढ़ता है। इस गति के द्वारा **अक्तुभिः**=रात्रियों के साथ **अहः मिमानः**=दिनों का तू निर्माण करनेवाला होता है। २. इसप्रकार अपनी गति के द्वारा दिन-रात का निर्माण करता हुआ यह सूर्य **जन्मानि**=जन्म लेनेवाले प्राणियों को **पश्यन्**=देखता है—उनका पालन करता है

(दृश् to look after)। दिन-रात्रि का यह चक्र हमारा सुन्दर निर्माण करता है। दिनभर की थकावट रात्रि में दूर हो जाती है। अकेला दिन व अकेली रात्रि मृत्यु ही है। दिन-रात्रि के क्रम के द्वारा सूर्य हमारा पालन करता है।

भावार्थ—सूर्य उदय होकर अन्तरिक्ष में आगे बढ़ता हुआ दिन व रात्रि के निर्माण द्वारा हमारा पालन करता है।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः**॥ देवता—**सूर्यः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

देव+विचक्षण

स॒प्त त्वा॑ ह॒रितो॒ रथे॒ वह॑न्ति देव सूर्य। शो॒चिष्के॑शं विचक्ष॒णम्॥ २०॥

१. हे **देव**=द्योतमान—हृदयों को निर्मल करके प्रदीप्त करनेवाले **सूर्य**=निरन्तर सरणशील सूर्य! **त्वा**=तुझे **सप्त हरितः**=सात रंगोंवाली रसहरणशील किरणें **रथे**=रथ में **वहन्ति**=धारण करती हैं। २. उस तुझको धारण करती है जो तू **शोचिष्केशम्**=देदीप्यमान किरणरूप केशोंवाला है तथा **विचक्षणम्**=मस्तिष्क को ज्ञानज्योति से दीप्त करनेवाला है। सूर्य की किरणें सात प्रकार की हैं, अतः सूर्य का नाम ही सप्ताश्व हो गया है। ये सात किरणें सातों प्राणदायी तत्त्वों को हमारे शरीरों में प्रविष्ट कराती हुई हमें नीरोग बनाती हैं। रोग-हरण करने से ये किरणें हरित हैं। रोगकृमियों का संहार करती हुई ये किरणें हमारे शरीरों को शुद्ध कर डालती हैं, इसी से सूर्य 'शोचिष्केश' है।

भावार्थ—सूर्य सप्ताश्व है। यह अपनी सात किरणों के द्वारा सातों प्राणों को हममें पुष्ट करता है। हमारे हृदयों को देव-हृदय बनाता है। मस्तिष्क को विचक्षण करता है।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः**॥ देवता—**सूर्यः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

नप्त्यः-शुन्ध्युवः

अयु॑क्त स॒प्त शु॒न्ध्युव॒: सूरो॒ रथ॑स्य न॒प्त्य॑:। ताभि॑र्याति॒ स्वयु॑क्तिभिः॥ २१॥

१. **सूरः**=सूर्य **रथस्य**=हमारे शरीररूप रथों को **नप्त्यः**=न गिरने देनेवाली **सप्त**=सात **शुन्ध्युवः**=शोधक किरणों को **अयुक्त**=रथ में जोतता है। सूर्य की किरणें सात रंगों के भेद से सात प्रकार की हैं। ये हमारे शरीरों में प्राणशक्ति का संचार करके हमारे शरीरों का शोधन करती हैं और उन शरीरों को गिरने नहीं देतीं। २. यह सूर्य **ताभिः**=उन **स्वयुक्तिभिः**=अपने रथ में जुती हुई किरणरूप अश्वों के साथ **याति**=अन्तरिक्ष में आगे और आगे चलता है।

भावार्थ—सूर्य अपनी किरणों के साथ आगे और आगे चल रहा है। ये किरणें हमारे शरीरों में प्राणशक्ति का संचार करती हैं और उनका शोधन कर डालती हैं।

सूर्य के समान वासनान्धकार का पूर्ण पराजय करनेवाला 'खिलम्' अगले सूक्त का ऋषि है (खिल् to vanquish completely)। यह प्रभु-स्तवन करता हुआ कहता है—

४८. [अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**खिलः**॥ देवता—**सूर्यः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

तेजस्विता व क्रियाशीलता

अ॒भि त्वा॒ वर्च॑सा॒ गिर॒: सिञ्च॑न्ती॒राच॑र॒ण्यव॑:। अ॒भि व॒त्सं न धे॒नव॑:॥ १॥

१. मेरी ये **गिरः**=स्तुतिवाणियाँ **वर्चसा सिञ्चन्तीः**=मुझे तेजस्विता से सींचती हुई हैं, तथा **आचरण्यवः**=मुझे समन्तात् कर्त्तव्यों में चरणशील बनाती हैं। इन स्तुतिवाणियों से मुझे भी वैसा बनने की प्रेरणा मिलती है। यह प्रेरणा मुझे क्रियामय जीवनवाला बनाती है। २. ये स्तुतिवाणियाँ

हे प्रभो! **त्वा अभि**=आपकी ओर इसप्रकार प्रवृत्त होती हैं **न**=जैसेकि **वत्सम् अभि धेनवः**=बछड़े की ओर गौवें। मैं प्रीतिपूर्वक आपका स्तवन करता हूँ।

भावार्थ—हम प्रेम से प्रभु का स्तवन करें, यह स्तवन हमें तेजस्वी व क्रियामय जीवनवाला बनाएगा।

ऋषिः—**खिलः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

शुभ्रता-तेजस्विता-प्रीति

ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः। जातं जात्रीर्यथा हृदा॥ २॥

१. **यथा**=जैसे **जातम्**=उत्पन्न हुए-हुए बच्चों को **जात्रीः**=माताएँ **हृदा**=हृदय से सम्पृक्त करती हैं, इसी प्रकार **ताः**=हमारी वे स्तुतिवाणियाँ, हे प्रभो! आपकी ओर **अर्षन्ति**=गतिवाली होती हैं। हम प्रेम से आपका स्तवन करते हैं। २. ये स्तुतिवाणियाँ **शुभ्रियः**=हमारे जीवनों को बड़ा शुभ्र (स्वच्छ) बनाती हैं। **वर्चसा पृञ्चन्तीः**=हमें तेजस्विता से सम्पृक्त करती हुई होती हैं तथा **प्रियः**=(प्रीणाति) हमें प्रीणित करनेवाली होती हैं।

भावार्थ—प्रेम से उच्चरित प्रभु की स्तुतिवाणियाँ हमें 'शुभ्र, तेजस्वी व प्रीतियुक्त' जीवन प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—**खिलः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

आयुः, घृतं, पयः

वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन्। मह्यमायुर्घृतं पयः॥ ३॥

१. **वज्र आपव-साध्यः**=(वज् गतौ, पू पवने) क्रियाशीलता व पवित्रता के द्वारा सिद्ध होनेवाला **कीर्तिः**=यश **म्रियमाणम्**=युद्ध में प्राणत्याग करनेवाले को **आवहन्**=स्वर्ग में प्राप्त करानेवाला हो। जीवन में हम क्रियाशील बनें तथा पवित्रता को सिद्ध करें। इसप्रकार यशस्वी जीवनवाले हों। इस जीवन-संग्राम में वीरतापूर्वक प्राणत्यागनेवाले हों। वह जीवन हमें स्वर्ग प्राप्त करानेवाला हो २. **मह्यम्**=मुझे इस जीवन में **आयुः**=दीर्घ जीवन प्राप्त हो **घृतम्**=ज्ञान की दीप्ति व मलों का क्षरण, अर्थात् निर्मलता प्राप्त हो (घृ क्षरणदीप्तयोः), **पयः**=मुझे सब शक्तियों का आप्यायन प्राप्त हो।

भावार्थ—मेरा यह जीवन सुन्दर बने तथा परलोक में भी मुझे उत्तम गति प्राप्त हो।

ऋषिः—**उपरिबभ्रवः सार्पराज्ञी वा** ॥ देवता—**गौः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

कुण्डलिनी का जागरण

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥ ४॥

१. **अयम्**=यह **गौः**=जागरित होने पर मेरुदण्ड में ऊपर गति करनेवाली (गच्छति) कुण्डलिनी **पृश्निः** (संस्प्रष्टो भासाम्—नि० २.१४)=ज्योति के साथ सम्पर्कवाली होती है। यह प्राणायाम की उष्णता से **अक्रमीत्**=कुण्डल को तोड़कर आगे गति करती है। २. यह **पुरः**=आगे और आगे बढ़ती हुई **मातरम्**=वेदमाता को (स्तुता मया वरदा वेदमाता) **असदत्**=प्राप्त करती है। इसके जागरण व ऊर्ध्वगत होने पर 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा' ऋत का पोषण करनेवाली प्रज्ञा उत्पन्न होती है। यह प्रज्ञा वेदज्ञान का प्रकाश करती है। ३. **च**=और इस वेदज्ञान का प्रकाश होने पर यह **स्वः**=उस देदीप्यमान **पितरम्**=प्रभुरूप पिता की ओर **प्रयन्**=जानेवाली होती है, अर्थात् यह योगी अन्ततः प्रभु का दर्शन करनेवाला होता है।

भावार्थ—कुण्डलिनी के जागरण से बुद्धि का प्रकाश होता है। वेदार्थ का स्पष्टीकरण होता

है और प्रभु की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**उपरिबभ्रवः सार्पराज्ञी वा**॥ देवता—**गौः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

प्रभु की रोचना

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः। व्यख्यन्महिषः स्वः॥ ५॥

१. गतमन्त्र के अनुसार कुण्डलिनी का जागरण होने पर **अस्य अन्तः**=इस साधक के हृदय में **रोचना चरति**=प्रभु की दीप्ति गतिवाली होती है। इसके हृदयदेश में प्रभु की दीप्ति का प्रकाश होता है। यह रोचना **प्राणात्**=इसके अन्दर प्राणशक्ति का संचार करती है और **अपानतः**=अपान के द्वारा शोधन का कार्य करती है। २. इसप्रकार प्राण व अपान के कार्य के ठीक से होने पर यह **महिषः**=प्रभु का पुजारी **स्वः**=स्वयं देदीप्यमान ज्योति प्रभु को **व्यख्यत्**=विशेषरूप से देखता है। इस पुजारी का हृदय प्रकाश से दीप्त हो उठता है।

भावार्थ—साधना से साधक का हृदय प्रभु की दीप्ति से दीप्त हो उठता है। उसकी प्राणापान शक्ति ठीक से कार्य करती हुई इसे प्रभु-दर्शन के योग्य बनाती है।

ऋषिः—**उपरिबभ्रवः सार्पराज्ञी वा**॥ देवता—**गौः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

तीसों धाम

त्रिंशद्धामा वि राजति वाक्पतङ्गो अशिश्रियत्। प्रति वस्तोरहर्द्युभिः॥ ६॥

१. यह साधक **त्रिंशत् धाम**=तीसों स्थानों में **विराजति**=चमकता है। दिन की तीसों घड़ियों में वा महीने के तीसों दिनों में दीप्तिवाला होता है। इसकी **वाक्**=वाणी **पतङ्गः**=उस सूर्यसम ज्योतिवाले ब्रह्म को **अशिश्रियत्**=सेवित करती है, अर्थात् यह वाणी से प्रभु का ही गुणगान करता है। २. यह साधक **प्रतिवस्तोः**=प्रतिदिन **अहः** (एव)=निश्चय से **द्युभिः**=ज्ञान-ज्योतियों से उपलक्षित होता है। इसका ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है।

भावार्थ—हम सदा प्रभु के नाम का जप करें और अपने को ज्ञान-ज्योति से दीप्त करें।

अगले सूक्त में भी ऋषि पूर्ववत् ही है—

४९. [एकोनपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**खिलः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

शक्र+देव

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः। स देवा अमदन्वृषा॥ १॥

१. **यत्**=जब **अन्तरिक्षं सिषासथः**=हृदयान्तरिक्ष का सेवन करने की इच्छावाले, अर्थात् हमारे हृदयों में निवास करनेवाले प्रभु **वाचम्**=वाणी को **शक्राः**=शक्तिशाली पुरुष **आरुहन्**=आरुढ़ करते हैं, अर्थात् जब हृदयास्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनते हैं अथवा वेदवाणी का अध्ययन करते हैं तब **देवाः**=ये देववृत्ति के पुरुष **वृषाः**=सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभु के साथ **सममदन्** (सम् अमदन्) आनन्द का अनुभव करते हैं। २. प्रभु सर्वव्यापक हैं, परन्तु भक्तों के हृदय प्रभु के सर्वोत्तम निवास-स्थान हैं। सर्वव्यापक होने पर भी प्रभु का दर्शन हृदय में ही होता है। हृदय ही वह स्थान है, जहाँ आत्मा व परमात्मा—ज्ञाता व ज्ञेय दोनों की स्थिति है। इस हृदय में स्थित प्रभु की वाणी को हम सुनते हैं तो सब वासनाओं से ऊपर उठकर शक्तिशाली बनते हुए हम देववृत्ति के बन पाते हैं।

भावार्थ—हम हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनें। यही मार्ग है जिससे हम 'शक्र व देव' बनेंगे।

ऋषिः—**खिलः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

मंहिष्ठ

शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि। मंहिष्ठ आ मदर्दिवि॥ २॥

१. **शक्रः**=वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **वाचम्**=अपनी वाणी को **अधृष्टाय**=वासनाओं से पराजित न होनेवाले के लिए देते हैं। प्रभु की वाणी को वही सुन पाता है जोकि काम-क्रोध आदि वासनाओं से अभिभूत नहीं होता। २. हे उपासक! तू भी **उरुवाचः**=प्रभु की विशाल, ज्ञान परिपूर्ण इन वेदवाणियों का **अधृष्णुहि**=धर्षण करनेवाला न हो, अर्थात् इन वाणियों को अनसुना न कर दे। जहाँ हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनने का प्रयत्न करे वहाँ वेदवाणियों का भी तू अध्ययन कर—इसमें प्रमाद न कर। ३. **मंहिष्ठः**=दातृतम—उदार—दानशील बनता हुआ तू **दिवि**=ज्ञान-ज्योति में—प्रकाश में **आमदः**=हर्ष अनुभव करनेवाला हो।

भावार्थ—हम प्रभु की वाणी को सुनते हुए दानशील बनें और ज्ञान ज्योति में ही आनन्द लेने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—**खिलः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

धाम+धर्म

शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन्विराजति। विमदन्बर्हिरासरन्॥ ३॥

१. हे जीव! **शक्रः**=शक्तिशाली बनता हुआ तू **वाचम्**=हृदयस्थ प्रभु की वाणी का **अधृष्णुहि**=धर्षण करनेवाला न हो। इस वाणी को तू सदा अप्रमत्त होकर अपनानेवाला हो। २. इस वाणी को सुननेवाला व्यक्ति **विमदन्**=विशिष्ट आनन्द को अनुभव करता हुआ **बर्हिः आसरन्**=हृदयान्तरिक्ष में गति करता हुआ **धामधर्मन्**=तेज व धारणात्मक कर्मों में **विराजति**=विशिष्ट दीप्तिवाला होता है।

भावार्थ—हम प्रभु की वाणी को सुनने में कभी प्रमाद न करें। यह प्रभुवाणी-श्रवण हमें तेजस्वी बनाएगा, धर्मप्रवण करेगा, आनन्दमय जीवनवाला बनाएगा तथा हमें हृदयान्तरिक्ष की ओर गतिवाला, अर्थात् आत्मनिरीक्षण की वृत्तिवाला बनाएगा।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (समाबृहती+विषमा-सतोबृहती)** ॥

'दस्म' प्रभु

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे॥ ४॥

१. **तम्**=उस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **गीर्भिः**=स्तुतिवाणियों से **नवामहे**=स्तुत करते हैं, जोकि **वः दस्मम्**=तुम्हारे दुःखों के दूर करनेवाले हैं, **ऋतीषहम्**=आर्ति (पीड़ा) के नाशक हैं तथा **वसोः अन्धसः मन्दानम्**=निवास के कारणभूत सोम के द्वारा आनन्दित करनेवाले हैं। २. **स्वसरेषु** (स्वः आदित्यः एतान् सारयति) दिनों में—दिन के निकलने पर **नः**=जैसे **धेनवः**=गौवें **वत्सम् अभि**=बछड़े का लक्ष्य करके हम्भारव करती हैं, उसी प्रकार हम प्रभु का स्तवन करते हैं।

भावार्थ—हम प्रतिदिन प्रातः प्रभु का स्मरण करें। यह स्मरण ही हमारे सब कष्टों को दूर करेगा और सोम-रक्षण द्वारा हमारे आनन्द का साधक होगा।

ऋषिः—**नोधाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (समाबृहती+विषमा-सतोबृहती)**॥

'द्युक्ष सुदानु' प्रभु

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे॥ ५॥

१. हम उस प्रभु से **मक्षू**=शीघ्र **वाजम्**=बल को **ईमहे**=माँगते हैं, जो बल **क्षुमन्तम्**=प्रभु के स्तवन से युक्त है (क्षु शब्दे), **शतिनम्**=सौ-के-सौ वर्ष तक स्थिर रहता है अथवा शतवर्ष के जीवन को प्राप्त कराता है। **सहस्रिणम्** (सहस्)=जीवन को आनन्दयुक्त रखता है तथा **गोमन्तम्**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाला है। २. उन प्रभु से हम बल की याचना करते हैं जोकि **द्युक्षम्**=ज्ञानज्योति में निवास करनेवाले हैं। **सुदानुम्**=ज्ञान के द्वारा वासनाओं का खण्डन करनेवाले हैं। **तविषीभिः आवृतम्**=बलों से आवृत्त हैं—बल के पुञ्ज हैं। ये प्रभु शक्ति प्राप्त कराके हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान व शक्ति के पुञ्ज हैं। प्रभु से हम भी उस बल की याचना करते हैं, जो ज्ञान व स्तवन से युक्त है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (समाबृहती+विषमा-सतोबृहती)**॥

सुवीर्य+ब्रह्म

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ॥ ६॥

१. हे प्रभो! **त्वा**=आपसे **तत्**=उस **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **यामि**=माँगता हूँ, और **तत् ब्रह्म**=उस ज्ञान को **पूर्वचित्तये**=पालक व पूरक चेतना के लिए (पृ पालनपूरणयोः) चाहता हूँ **येन**=जिस सुवीर्य व ब्रह्म के द्वारा **यतिभ्यः**=(संन्यासियों) संयमी पुरुषों के लिए तथा **भृगवे**=ज्ञान से अपना परिपाक करनेवाले के लिए **आविथ**=आप रक्षण करते हो। २. मैं उस सुवीर्य व ब्रह्म की याचना करता हूँ जिससे **हिते धने**=हितकर धन के निमित्त **आ प्रस्कण्वम्**=मेधावी पुरुष का **आविथ**=रक्षण करते हो।

भावार्थ—प्रभु हमें वह सुवीर्य व ब्रह्म (ज्ञान) प्राप्त कराएँ जिससे हम संयमी, ज्ञानी व मेधावी बनकर प्रभु-रक्षण के पात्र हों।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (समाबृहती+विषमा-सतोबृहती)**॥

वृष्णि शवः

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे॥ ७॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **ते शवः तत्**=आपका बल वह है **येन**=जिससे **समुद्रम्**=समुद्र को **असृजः**=आप उत्पन्न करते हैं। **महीः**=पृथिवियों को तथा **अपः**=जलों को उत्पन्न करते हैं। आपका यह बल इन सब लोक-लोकान्तरों का निर्माण करता हुआ **वृष्णि**=सुखों का वर्षण करनेवाला है। २. **अस्य**=इन प्रभु की **सः महिमा**=वह महिमा **सद्यः**=शीघ्र **न सन्नशे**-हमसे प्राप्त करने योग्य नहीं होती (नश् to reach), **यम्**=जिस महिमा को **क्षोणीः**=ये पृथिवियाँ **अनुचक्रदे**=ऊँचे-ऊँचे कह रही हैं। 'यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः' ये हिमाच्छादित पर्वत, समुद्र व पृथिवी उस प्रभु की महिमा को कह रही हैं।

भावार्थ—प्रभु अपनी शक्ति की महिमा से समुद्र आदि की सृष्टि करते हैं। ये सब लोक हमारे लिए सुख का वर्षण करनेवाले हैं।

प्रभु स्तवन करता हुआ प्रभु की ओर चलनेवाला यह 'मेध्यातिथि' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

५०. [पञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

प्रभु की 'महिमा-इन्द्रिय-स्वः' का आनन्त्य

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्व र्गृणन्त आनशुः॥ १॥

१. **अतसीनाम्**=परिव्राजकों की (निरन्तर गतिशील संन्यासियों की) **तुरः**=वासनाओं का संहार करनेवाले उस प्रभु की **नव्यः मर्त्यः**=स्तुति करने में उत्तम मनुष्य भी **कत् गृणीत**=कैसे स्तुति करे। प्रभु के गुणों व सामर्थ्यों का वर्णन कर सकना उसकी शक्ति से परे की बात है। कुशल-से-कुशल स्तोता भी प्रभु का स्तुति के द्वारा व्यापन नहीं कर सकता। २. **गृणन्तः**=स्तुति करते हुए व्यक्ति **नु**=निश्चय से **अस्य**=इस प्रभु की **महिमानम्**=महिमा को **इन्द्रियम्**=बल को व **स्वः**=प्रकाश को **नहि आनशुः**=व्याप्त करनेवाले नहीं होते। प्रभु की महिमा बल व प्रकाश अनन्त हैं। सान्त शक्ति व ज्ञानवाले जीवों के लिए प्रभु का पूर्ण यशोगान सम्भव नहीं है।

भावार्थ—मनुष्य प्रभु की 'महिमा, बल व प्रकाश' को अपनी स्तुति द्वारा व्यक्त नहीं कर पाता।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

सुन्वतः स्तुवतः

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः॥ २॥

१. हे प्रभो! **सतुवन्तः**=स्तुति करनेवाले लोग **उ**=निश्चय से **कत्**=कैसे **ऋतयन्त**=ऋत की कामनावाले होते हैं। प्रभु के सच्चे स्तोता अवश्य अपने जीवन को ऋतवाला बनाते हैं। **कः**=कोई विरला ही **देवता**=दिव्यगुणोंवाला, **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा **विप्रः**=अपना पूरण करनेवाला ज्ञानी **ओहते**= आपका विचार करता है। २. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन्! **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **कदा**=कब **सुन्वतः**=इस यज्ञशील पुरुष की **हवम्**=पुकार को आप सुनते हैं।

भावार्थ—प्रभु का स्तोता ऋत का आचरण करता है। ज्ञानीदेव प्रभु का विचार करते हैं। प्रभु यज्ञशील स्तोताओं की पुकार को सुनते हैं।

यह प्रभु का स्तोता 'प्रस्कण्व' मेधावी बनता है। यह पुष्ट इन्द्रियोंवाला 'पुष्टिगु' होता है। यह प्रस्कण्व ही अगले सूक्त के १-२ मन्त्रों का ऋषि है, ३-४ मन्त्रों का पुष्टिगु। ये कहते हैं कि—

५१. [एकपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

मघवा-पुरूवसुः

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति॥ १॥

१. **सुराधसम्**=उत्तम सफलता देनेवाले **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु का ही **प्र वः**=प्रकर्षेण वरण करनेवाला बन। **यथा विदे**=यथार्थ ज्ञान के लिए उस प्रभु को ही **अभि अर्च**=प्रातः-सायं पूजित कर। २. **यः**=जो **मघवा**=यज्ञशील **पुरूवसुः**=पालक व पूरक धनोंवाले प्रभु हैं, वे **जरितृभ्यः**=स्तोताओं के लिए **सहस्रेण इव शिक्षति**=हज़ारों के रूप में देने की कामना करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का वरण करें, प्रभु का अर्चन करें। यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति का यही मार्ग है। वे प्रभु स्तोताओं के लिए सब आवश्यक धनों को देते हैं।

ऋषिः—**प्रस्कण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

हन्ति वृत्राणि दाशुषे

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः॥ २॥

१. **शत-अनीका इव**=सैकड़ों सैन्यों के समान ये प्रभु **प्रजिगाति**=आगे बढ़ते हैं और **धृष्णुया**=अपनी धर्षण-शक्ति से **दाशुषे**=आत्मार्पण करनेवाले पुरुष के लिए **वृत्राणि हन्ति**=वासनाओं को विनष्ट करते हैं। हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें—प्रभु हमारे शत्रुओं का विनाश करेंगे। २. अब शत्रुविनाश के बाद **अस्य पुरुभोजसः**=इस अनन्त पालक धनोंवाले प्रभु के **दत्राणि**=दान **पिन्विरे**=इसप्रकार हमें सिक्त व प्रीणित करनेवाले होते हैं, **इव**=जैसेकि **गिरेः**=पर्वत के **रसाः**=रस। पर्वतों से बहनेवाले जल जैसे प्रीति का कारण बनते हैं, इसीप्रकार प्रभु से दिये गये धन हमपर सुखों का सेचन करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु अपने अनन्त सामर्थ्य से हमारे शत्रुओं को विनष्ट करते हैं और इस प्रभु के दान हमें सुखों से सिक्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**पुष्टिगुः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

काम्यं वसु

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते॥ ३॥

१. उस **सुश्रुतम्**=उत्तम ज्ञानवाले, **सुराधसम्**=उत्तम ऐश्वर्योंवाले **शक्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को **अभिष्टये**=इष्ट-प्राप्ति के लिए अथवा वासनारूप शत्रुओं पर आक्रमण के लिए (अभिष्टि=attack) **प्र अर्च**=प्रकर्षेण पूजित कर। प्रभु की अर्चना से वासनारूप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके हम भी उत्तम ज्ञान-ऐश्वर्य व शक्तिवाले बनेंगे। २. उस प्रभु का तू पूजन कर जोकि **सुन्वते**=यज्ञशील **स्तुवते**=स्तोता के लिए **काम्यं वसु**=कमनीय (चाहने योग्य) धन को **सहस्रेण इव**=हज़ारों के रूप में **मंहते**=देते हैं।

भावार्थ—प्रभु-पूजन से वासनाओं का विजय करके हम उत्तम ज्ञान-ऐश्वर्य व शक्ति को

प्राप्त करें। ऐश्वर्य को प्राप्त करके हम यज्ञशील स्तोता बनें। इसप्रकार हम प्रभु के काम्य वसुओं की प्राप्ति के पात्र होंगे।

ऋषिः—**पुष्टिगुः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)** ॥

दुष्टरा हेतयः समिषो महीः

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः॥ ४॥

१. **अस्य इन्द्रस्य**=इस सर्वशक्तिमान् शत्रु-विद्रावक प्रभु के **शतानीका**=सैकड़ों बलोंवाले **हेतयः**=हनन-साधन-आयुध **दुष्टराः**=कठिनता से तैरने योग्य हैं। इनसे बच निकलना किसी के लिए सम्भव नहीं। इस इन्द्र की **सम् इषः**=उत्तम प्रेरणाएँ भी **महीः**=महनीय व पूजनीय हैं। प्रभु की प्रेरणाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। २. **यत्**=जब **ईम्**=निश्चय से **सुताः**=(सुतं अस्य अस्ति इति) सोम का सम्पादन करनेवाले यज्ञशील पुरुष **अमन्दिषु**=(to praise) उस प्रभु का स्तवन करते हैं तब ये प्रभु **मघवत्सु**=उन यज्ञशील पुरुषों में **पिन्वते**=धनों का सेचन करते हैं। प्रभु उनके लिए **गिरिः न**=(गुरुः न) एक उपदेष्टा के समान होते हैं और **भुज्मा**=उनका पालन करनेवाले होते हैं। गुरु शिष्य को गर्भ में धारण करता हुआ उसका रक्षण करता है। ये यज्ञशील पुरुष भी प्रभु से रक्षणीय होते हैं।

भावार्थ—प्रभु के आयुध दुष्टर हैं। उनकी प्रेरणाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। प्रभु यज्ञशील स्तोता को उचित प्रेरणा देते हुए उसे पालित करते हैं।

यह यज्ञशील स्तोता 'मेध्यातिथि' बनता है—निरन्तर पवित्र प्रभु की ओर गतिवाला। यह स्तवन करता हुआ कहता है—

५२. [द्विपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

सुतावन्तः-वृक्तबर्हिषः

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते॥ १॥

१. हे **वृत्रहन्**=वासनाविनाशक प्रभो! **वयम्**=हम **घ**=निश्चय से **सुतावन्तः**=सोम का सम्पादन करनेवाले व यज्ञशील बनकर **आपः न**=जलों के समान निरन्तर शान्तभाव से कर्मों में प्रवाहित होते हुए **वृक्तबर्हिषः**=वासनाशून्य हृदयान्तरिक्षवाले **स्तोतारः**=स्तोता बनकर **त्वा परि आसते**=आपका सेवन करनेवाले हों। २. आपकी उपासना करते हुए हम **पवित्रस्य**=ज्ञान के (नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते) **प्रस्रवणेषु**=प्रवाहों में अपने को पवित्र कर पाते हैं। आपकी उपासना हमें ज्ञान-जलों में स्नान के द्वारा पवित्र करनेवाली होती है।

भावार्थ—हम सोम का सम्पादन करते हुए प्रभु का उपासन करते हैं। ज्ञान-जलों के प्रवाहों में अपने को पवित्र करते हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

स्वब्दीव वंसगः

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः॥ २॥

१. हे प्रभो! **नरः**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले लोग **सुते**=सोम का सम्पादन होने पर **स्वरन्ति**=आपका स्तवन करते हैं। आपका स्तवन ही वस्तुतः उन्हें सोमसम्पादन के योग्य बनाता है। हे **वसो**=उत्तम निवास देनेवाले प्रभो! ये नर **निरेके**=(रेकृ शंकायाम्) शंकाओं से शून्य हृदय में—आपके प्रति पूर्ण श्रद्धायुक्त हृदय के होने पर **उक्थिनः**=स्तोत्रोंवाले होते हैं—आनन्दपूर्वक आपके स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **कदा**=कब आप **तृषाणः**=चाहते हुए **सुतम्**=आपके पुत्रभूत मुझे **ओकः आगमः**=यहाँ घर में प्राप्त होंगे! आप **इव**=जैसे **स्वब्दी**=(सु+अप्+द) उत्तम ज्ञान-जल को प्राप्त कराते हैं, उसी प्रकार **वंसगः**-मननीय—सेवनीय-पदार्थों के प्राप्त करानेवाले हैं। ज्ञानपूर्वक इन पदार्थों का ठीक उपयोग करता हुआ ही तो मैं 'अभ्युदय व निःश्रेयस' को सिद्ध कर पाता हूँ।

भावार्थ—हम प्रभु का ही स्तवन करें। श्रद्धायुक्त हृदय में प्रभु के गुणों का गायन करें। प्रभु-प्राप्ति की कामनावाले हों। प्रभु से ज्ञान व साधनभूत पदार्थों को प्राप्त करके उन्नति को सिद्ध करें।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बृहती**॥

वह बल!

कण्वैभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम्।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे॥ ३॥

१. हे **धृष्णवो**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले प्रभो! आप **कण्वेभिः**=मेधावी पुरुषों के द्वारा—उत्तम समझदार माता, पिता व आचार्य द्वारा **वाजम्**=बल को **आदर्षि**=प्राप्त कराते हैं जोकि **धृषद्**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाला है तथा **सहस्रिणम्**=(स हस् अथवा सहस्र) हमारे जीवन को आनन्दमय बनानेवाला है अथवा दीर्घजीवन का साधक है। २. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन्! **विचर्षणे**=सर्वद्रष्टा प्रभो! हम आपसे **मक्षु**=शीघ्र उस जीवन की **ईमहे**=याचना करते हैं, जोकि **पिशंगरूपम्**=तेजस्वीरूपवाला व **गोमन्तम्**=प्रशस्त ज्ञानन्द्रियोंवाला है।

भावार्थ—हे प्रभो! आप उत्तम माता, पिता व आचार्यों द्वारा हमें उस बल को प्राप्त कराइए जिससे हम वासनारूप शत्रुओं का धर्षण करते हुए आनन्दमय जीवनवाले हों—तेजस्वी व प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाले बनें।

अगले सूक्त का ऋषि भी मेध्यातिथि ही है—

५३. [त्रिपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मेध्यातिथिः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बृहती**॥

पुरः विभिनत्ति

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः॥ १॥

१. **कः**=कोई विरला पुरुष ही **ईम्**=निश्चय से **सुते**=सोम का सम्पादन होने पर—शरीर में सोम का रक्षण होने पर **सचा**=अपने में समवेत होनेवाले—सदा साथ रहनेवाले **पिबन्तम्**=सोम का पान करनेवाले—सोम को शरीर में ही व्याप्त करनेवाले उस प्रभु को **वेद**=जानता है। प्रभु को जानकर **कत्**=(कं तनोति) आनन्द का विस्तार करनेवाले **वयः**=आयुष्य को **दधे**=धारण करता है। २. **अयम्**=यह **यः**=जो **मन्दानः**=उस प्रभु का शंसन करनेवाला होता है, **अन्धसः**=सोम के हेतु से—वीर्यरक्षण के हेतु से **शिप्री**=उत्तम हनुओं व नासिकावाला बनता है, अर्थात् सात्त्विक

भोजन को चबाकर खाता है और प्राणसाधना में प्रवृत्त होता है, वह **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **पुरःविभिनत्ति**=असुरों की पुरियों का विदारण करनेवाला होता है। 'पुरन्दर' बनता है। यह काम-क्रोध-लोभ की पुरियों का विदारण करके उत्तम शरीर (इन्द्रियों), मन व बुद्धिवाला बनता है। काम के विनाश से इसकी इन्द्रियशक्तियाँ जीर्ण नहीं होतीं, क्रोधविनाश से इसका मन शान्त रहता है तथा लोभ को दूर करने से यह अविकल बुद्धिवाला होता है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्मरण करते हुए सोम-रक्षण द्वारा आनन्दमय जीवनवाले बनें। 'प्रभु स्तवन, सात्त्विक भोजन को चबाकर खाने तथा प्राणायाम' द्वारा सोम-रक्षण करते हुए ओजस्वी बनें तथा 'काम-क्रोध-लोभ' की नगरियों का विनाश करें।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

पुरुत्रा चरथं दधे

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा॥ २॥

१. **दाना**=(दाप् लवने) वासनाओं के लवन (काटने) के हेतु से यह **मृगः न**=सिंह के समान होता है। शेर जैसे शिकार को चीर फाड़ देता है, इसी प्रकार यह वासनाओं को चीर फाड़ देता है (मृग=a wild beast), इसप्रकार यह **वारणः**=सब वासनाओं का निवारण करनेवाला होता है। **पुरुत्रा**=पालन व पूरण के दृष्टिकोण से **चरथं दधे**=इस शरीर-रथ को धारण करता है। भोग ही उसके जीवन का लक्ष्य नहीं बन जाते। २. ऐसी स्थिति में **त्वा**=तुझे **नकिः नियमत्**=कोई भी वासना बाँध नहीं पाती **सुते**=सोम के सम्पादन में **आगमः**-तू सर्वथा गतिवाला होता है। सब प्रकार से सोम का रक्षण करता है। अब **महान्**=(मह पूजायाम्) प्रभु की वृत्तिवाला होता हुआ तू **ओजसा चरसि**=ओजस्विता के साथ सब कर्त्तव्यों को करनेवाला होता है।

भावार्थ—वासनाओं के वशीभूत न होकर सोम-रक्षण करते हुए हम ओजस्वी बनें और कर्त्तव्य-कर्मों का पालन करें।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

न योषति, आगमत्

य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत्॥ ३॥

१. **यः**=जो प्रभु **उग्रः सन्**=तेजस्वी होते हुए **अनिष्टृतः**-कभी स्थानभ्रष्ट व हिंसित नहीं होते। वे प्रभु **स्थिरः**=स्थिर हैं—अविनाशी हैं। **रणाय संस्कृतः**=रमणीयता के लिए अथवा वासनाओं के साथ संग्राम के लिए सदा हृदयों में योगिजनों से संस्कृत होते हैं। हृदयों में योगिजन प्रभु को देखने का प्रयत्न करते हैं—प्रभु इनके जीवन को रमणीय व विजयी बनाते हैं। २. ये **मघवा**=ऐश्वर्यशाली प्रभु **यदि**=यदि **स्तोतुः**=स्तोता की **हवम्**=पुकार को **शृणवत्**=सुनते हैं तो **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **न योषति**=अलग नहीं रहते। **आगमत्**=वे अवश्य आते ही हैं। हमारी आराधना को सुनते ही प्रभु प्राप्त होते हैं। वे प्रभु हमारे शत्रुओं के विनाश का कारण बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु तेजस्वी होते हुए अहिंसित हैं। वे स्थिर प्रभु शत्रुसंहार द्वारा हमारे जीवनों को रमणीय बनाते हैं। हमारी आराधना सुनते ही हमें प्राप्त होते हैं।

यह प्रभु-स्तवन करनेवाला 'रेभः' अगले सूक्त का ऋषि है—

५४. [चतुष्पञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**रेभः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अतिजगती** ॥

इन्द्रं ततक्षुः जजनुः च राजसे

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम्॥ १॥

१. **विश्वाः पृतनाः**=सब शत्रु-सैन्यों को **अभिभूतरम्**=अतिशयेन अभिभूत करनेवाले, **नरम्**=और इसप्रकार उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाले **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सजूः**=मिलकर प्रीतिपूर्वक उपासना के द्वारा (जुषी प्रीतिसेवनयोः) **ततक्षुः**=(form in the mind) मन में निर्मित करते हैं **च**=और **जजनुः**=उसे प्रादुर्भूत करते हैं। ध्यान द्वारा प्रभु की कल्पना करते हैं और उसका विकास करते हैं—प्रभु का अधिकाधिक साक्षात्कार करने के लिए यत्नशील होते हैं। जितना-जितना साक्षात्कार कर पाते हैं उतना उतना ही **राजसे**=दीपन के लिए होते हैं—उनका जीवन उतना ही अधिक दीप्त हो उठता है। २. उस प्रभु का ध्यान करते हैं जो **क्रत्वा**=शक्ति व प्रज्ञान से **वरिष्ठम्**=अत्यन्त विशाल हैं। **वरे**=श्रेष्ठ कार्यों के निमित्त **आमुरिम्**=समन्तात् शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं, **उत**=और **उग्रम्**=अत्यन्त तेजस्वी हैं। **ओजिष्ठम्**=ओजस्वी है, **तवसम्**=बलवान् हैं और **तरस्विनम्**=अतिशयेन वेगवान् हैं।

भावार्थ—हम मिलकर घरों में प्रभु की उपासना करते हुए हृदयों में प्रभु को प्रादुर्भूत करें। इसप्रकार हमारा जीवन दीप्त व शक्तिशाली बनेगा। शत्रु-संहार करते हुए हम उन्नति-पथ पर आगे बढ़ेंगे।

ऋषिः—**रेभः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती** ॥

'धृतव्रत' प्रभु

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।
स्वः पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः॥ २॥

१. **रेभासः**=स्तोता लोग **ईम्**=निश्चय से **सोमस्य पीतये**=सोम का शरीर में ही रक्षण के लिए **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सम् अस्वरन्**=संस्तुत करते हैं। प्रभु-स्मरण से वासनाओं को दूर भगाते हुए ये स्तोता सोम को शरीर में सुरक्षित करने में समर्थ होते हैं, २. उस प्रभु का स्तवन करते हैं जो **स्वःपतिम्**=प्रकाश के स्वामी हैं। **यत्**=चूंकि वे प्रभु **ईम्**=निश्चय से **वृधे**=स्तोता की वृद्धि के लिए होते हैं, वे प्रभु **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **हि**=निश्चय से **ऊतिभिः**=रक्षणों से **सम्** (वृधे)=हमारे वर्धन के लिए होते हैं। ये प्रभु **धृतव्रतः**=हमारे व्रतों का धारण करनेवाले हैं। प्रभु से रक्षित होकर ही हम व्रतों का पालन कर पाते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन द्वारा शक्तिशाली बनकर वासनाओं का संहार करते हुए व्रतमय जीवन बिता पाते हैं और सोम का शरीर में रक्षण कर सकते हैं।

ऋषिः—**रेभः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती** ॥

अद्रुहः अपि कर्णे तरस्विनः

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः॥ ३॥

१. **विप्रः**=ज्ञानी लोग **चक्षसा**=ज्ञान के हेतु से **नेमिम्**=सब शत्रुओं को झुका देनेवाले उस

प्रभु को **नमन्ति**=नमस्कार करते हैं। **मेषम्**=सुखों से सिक्त करनेवाले उस प्रभु को **अभिस्वरा**=प्रातः सायं स्तवन के द्वारा (स्वृ शब्दे) (नमन्ति) नमस्कार करते हैं। २. ये स्तोता ब्राह्मण **वः**=तुम्हारे **सुदीतयः**=उत्तम दीपन करनेवाले होते हैं—स्वयं ज्ञानदीप्त होते हुए औरों के लिए ज्ञान देनेवाले होते हैं। **अद्रुहः**=किसी का द्रोह नहीं करते। **अपि**=द्रोहशून्य होते हुए भी कर्णे (कृ विक्षेपे)=शत्रुओं के विक्षेपरूप कार्य में **ऋक्वभिः सम्**=ऋचाओं से—प्रभुस्तोत्रों से संगत हुए हुए **तरस्विनः**=अतिशयेन वेगवान् होते हैं। द्रोहशून्य होते हुए भी ये लोग वासनाशून्य शत्रुओं को विनष्ट करने में सबसे तीव्र गतिवाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। दीप्त व द्रोहशून्य जीवनवाले बनकर वासनारूप शत्रुओं को विकीर्ण करनेवाले हों।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'रेभ' ही है—

५५. [पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**रेभः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अतिजगती** ॥

राये विश्वा सुपथा कृणोतु

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री॥ १॥

१. **तम्**=उस **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् व परमैश्वर्यशाली प्रभु को **जोहवीमि**=पुकारता हूँ, जोकि **मघवानम्**=सब ऐश्वर्यों के स्वामी हैं, **उग्रम्**=तेजस्वी हैं, **सत्रा**=सदा **शवांसि दधानम्**=बलों का धारण करनेवाले हैं, **अप्रतिष्कुतम्**=प्रतिशब्द से रहित हैं—जिनका युद्ध में कोई आह्वान नहीं कर सकता। २. वे प्रभु **मंहिष्ठः**=सर्वमहान् दाता हैं **च**=और **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों से उपासना के योग्य हैं। ये प्रभु **आववर्तत्**=सर्वत्र वर्तमान हैं। **वज्री**=ये वज्रहस्त प्रभु **राये**=ऐश्वर्य के लिए **नः**=हमारे **विश्वा**=सब **सुपथा**=उत्तम मार्गों को **कृणोतु**=करें।

भावार्थ—हम उन प्रभु को पुकारें जो ऐश्वर्यशाली-तेजस्वी-बल के धारक व अद्वितीय योद्धा हैं। हम उस सर्वप्रद प्रभु को पूजें। प्रभु हमें सत्पथ से ऐश्वर्य की ओर ले चलें।

ऋषिः—**रेभः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

'असुरः स्तोता, वृक्तबर्हिष्'

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः॥ २॥

१. हे **स्वर्वान्**=प्रकाश व आनन्द से युक्त **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **याः भुजः**=जिन भोग-साधन धनों को **असुरेभ्यः आभरः**=(असवः प्राणाः, तेषु रमन्ते) प्राणसाधक लोगों के लिए प्राप्त कराते हैं। हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **स्तोतारम् इत्**=स्तोता को निश्चय से **अस्य वर्धय**=इसके द्वारा (अनेन) बढ़ाइए। प्राणसाधना करनेवाले जिन धनों को प्राप्त करते हैं, वे धन इन स्तोताओं को भी प्राप्त हों। २. **ये च**=और जो **त्वे**=आपमें निवास करते हुए **वृक्तबर्हिषः**=हृदय क्षेत्र को पापों से रहित करते हैं, उन्हें इन धनों के द्वारा बढ़ाइए।

भावार्थ—हम 'प्राणसाधक, स्तोता व निष्पाप' बनते हुए उन ऐश्वर्यों को प्राप्त करें जो हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनानेवाले हैं।

ऋषिः—**रेभः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

'यजमान, सुन्वन्, दक्षिणावान्'

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम्।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन्तं धेहि मा पणौ॥ ३॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **यम्**=जिस **अश्वं गाम्**=कर्मेन्द्रियसमूह तथा ज्ञानेन्द्रियसमूह को तथा **अव्ययं भागम्**=(अवि अय्) विविध योनियों में भटकने का कारण न बननेवाले भजनीय धन को **यजमाने**=यज्ञशील पुरुष में, **सुन्वति**=सोम का सम्पादन करनेवाले पुरुष में तथा **दक्षिणावति**=दानशील पुरुष में **दधिषे**=धारण करते हैं, **तस्मिन्**=उसी 'गौ, अश्व व अव्ययभाग' में **तम्**=उस स्तोता को **धेहि**=धारण कीजिए। २. उस 'गौ, अश्व व अव्ययभाग' को **मा**=मत दीजिए जिसे हम **पणौ**=वणिक् वृत्तिवाले कृपण पुरुष में देखते हैं। कृपण-पुरुष का धन भी **अव्यय**=(अ-व्यय) दान आदि में व्ययित न होकर गढ़ा ही रहता है।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हम यज्ञशील, सोम का सम्पादन करनेवाले व दानशील बनें। ऐसे बनकर उत्तम कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों व प्रशस्त धनोंवाले हों। कृपण न बनें।

यह प्रशस्तेन्द्रियोंवाला स्तोता 'गोतम' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

५६. [षट्पञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

मदाय-शवसे

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत्॥ १॥

१. **नृभिः**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले लोगों से **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **शवसे**=बल की प्राप्ति के लिए तथा **मदाय**=आनन्द के उल्लास के लिए **वावृधे**=बढ़ाया जाता है। ये नर प्रभु का उपासन करते हैं जिससे बल व आनन्द प्राप्त कर सकें। ये प्रभु **वृत्रहा**=वासना का विनाश करनेवाले हैं **तम् इत्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **महत्सु**=बड़े-बड़े **आजिषु**=संग्रामों में **उत ईम्**=और निश्चय से **अर्भे**=छोटे छोटे संग्रामों में **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु के द्वारा ही विजय की प्राप्ति होती है। २. **सः**=वे प्रभु **वाजेषु**=संग्रामों में **नः**=हमारा **प्र अविषत्**=प्रकर्षेण रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु का उपासन हमें बल व आनन्द प्राप्त कराता है। प्रभु हमारी वासनाओं का विनाश करते हैं। प्रभु ही बड़े-छोटे सब संग्रामों में हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

'सेन्य-परादादि-वृध' प्रभु

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादृदिः।
असि दुभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥ २॥

१. हे **वीर**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **सेन्यः असि**=हमारी सेनाओं के उत्तम संचालक हैं और इसप्रकार **भूरिपरादुदिः असि**=शत्रुओं को खूब ही परादान—पराजित करके दूर भगा देनेवाले हैं। २. **दभ्रस्य**=अल्प के **चित्**=भी—कम सेनावाले उपासक के भी **वृधः असि**=बढ़ानेवाले हैं। कम सेनावाला भी उपासक अधिक सेनावाले अनुपासक को

जीत लेता है। २. **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **शिक्षसि**=आप सदा देते हैं। **सुन्वते**=शरीर में सोम का सम्पादन करनेवाले के लिए **भूरि**=खूब ही ते **वसु**=आपका धन होता है। इस सुन्वन् को आप पालक व पोषक धन प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारी सेनाओं के उत्तम संचालक—शत्रुओं का परादान करनेवाले व हमारा वर्धन करनेवाले हैं। हम यज्ञशील व सोम का सम्पादन करनेवाले बनें। प्रभु हमारा रक्षण करेंगे।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

धृष्णवे धीयते धना

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना।

युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः॥ ३॥

१. **यत्**=जब **आजयः**=संग्राम **उदीरत**=उठ खड़े होते हैं तब **धृष्णवे**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले के लिए **धना धीयते**=धन धारण किये जाते हैं। संग्राम में विजेता ही धनों का पात्र बनता है। २. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **मदच्युता**=आनन्द को क्षरित करनेवाले, आनन्द को प्राप्त करानेवाले **हरी**=इन्द्रियाश्वों को **युक्ष्व**=हमारे शरीर रथ में युक्त कीजिए। आप **कम्**=किसी विरले ही उपासक को **हनः** (हन् गतौ) प्राप्त होते हैं। **कम्**=किसी विरले को ही **वसौ दधः**=वसुओं में धारण करते हैं। हे प्रभो **अस्मान्**=हमें तो आप अवश्य ही **वसौ दधः**=वसुओं में धारण कीजिए।

भावार्थ—संग्राम में विजयी को ही धन प्राप्त होते हैं। इस अध्यात्म संग्राम में विजय के लिए प्रभु हमें प्राप्त हों। प्रभु हमारे शरीर रथों में उत्तम इन्द्रियाश्वों को युक्त करें और हमें वसुओं में स्थापित करें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

उभया हस्त्या वसु आभर

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः।

सं गृभाय पुरू शतोभया हस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर॥ ४॥

१. **ऋजुक्रतुः**=ऋजुता से सब कर्मों को करनेवाले ये प्रभु **मदे मदे**=उल्लास के जनक सोम का रक्षण होने पर **हि**=निश्चय से **नः**=हमारे लिए **गवां यूथा**=इन्द्रियों के समूहों को **ददिः**=देनेवाले होते हैं। २. हे प्रभो! आप **उभया हस्त्या**=दोनों हाथों से **पुरूशता**=बहुत सैकड़ों—अनेक **वसु**=धनों को **संगृभाय**=ग्रहण कीजिए। **शिशीहि**=हमारी बुद्धियों को तीव्र बनाइए और **रायः आभर**=हमारे लिए ऐश्वर्यों को प्राप्त कराइए।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम इन्द्रियाँ दें। धनों को प्राप्त कराएँ। धनों का सद्विनियोग करते हुए हम तीक्ष्ण बुद्धि बनें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

'पुरूवसु' प्रभु

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे।

विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव॥ ५॥

१. हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **सुते**=सोम का सम्पादन होने पर **सचा**=मेल के द्वारा—हमें अपना सान्निध्य प्राप्त कराने के द्वारा **मादयस्व**=आनन्दित कीजिए। इसप्रकार आप

हमारे **शवसे**=बल के लिए होइए तथा **राधसे**=सफलता व सिद्धि के लिए होइए। आपके मेल से हम शक्ति-सम्पन्न बनें और सब कार्यों को सिद्ध कर सकें। २. हम **त्वा**=आपको **हि**=निश्चय से **पुरूवसुम्**=अनन्त ऐश्वर्यवाला **विद्म**=जानते हैं। हम **उप**=आपकी उपासना में **कामान्**=अभिलाषाओं को **संसृज्महे**=उत्पन्न करते हैं। आपके समीप ही सब इच्छाओं को प्रकट करते हैं। **अथा**=अब आप **नः**=हमारे **अविता**=सब भागों का दोहन (प्रपूरण) करनेवाले **भव**=होइए। हमारे लिए सब भजनीय धनों को देनेवाले होइए।

भावार्थ—प्रभु का सान्निध्य ही 'आनन्द, शक्ति, सफलता व ऐश्वर्य' का साधक होता है।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

एते ते इन्द्र जन्तवः

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर॥ ६ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **एते जन्तवः**=ये सब प्राणधारी प्राणी **ते**=आपके हैं। आपके होते हुए ये **विश्वम्**=सब **वार्यम्**=वरणीय धन को **पुष्यन्ति**=प्राप्त करते हैं। २. आप **हि**=निश्चय से **जनानाम्**=सब लोगों के **अन्तः**=अन्दर होते हुए **ख्यः**=उनके सब आन्तरभावों को देखते हैं। **अर्यः**=आप ही स्वामी हैं। **अदाशुषाम्**=अदानशीलों—कृपणों के **वेदः**=धन को भी आप देखते हैं। **तेषां वेदः**=उनके धन को भी **नः आभर**=हमारे लिए प्राप्त कराइए। हम इस धन का दान करते हुए प्राजापत्ययज्ञ में अपनी आहुति देनेवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु ही सब वरणीय धनों के देनेवाले हैं। प्रभु अन्तरस्थित होते हुए हमारे सब भावों को जानते हैं। आप कृपणों के धनों को दाश्वान् पुरुषों में प्राप्त करानेवाले हैं।

दान की वृत्तिवाले बनकर हम सदा 'मधुच्छन्दा' बनें—मधुर इच्छाओंवाले। यह 'मधुच्छन्दा' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

५७. [सप्तपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'सुरूपकृत्नु' प्रभु

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि॥ १ ॥

१. हम अपने **ऊतये**=रक्षण के लिए उस प्रभु को **द्यवि द्यवि**=प्रतिदिन **जुहूमसि**=पुकारते हैं, जो प्रभु **सुरूपकृत्नुम्**=उत्तम रूप को करने में कुशल हैं। प्रभु हमें उत्तम रूप प्राप्त कराते हैं। २. इसी प्रकार हम इस 'सुरूपकृत्नु' प्रभु को पुकारते हैं, **इव**=जैसेकि **गोदुहे**=एक गोधुक् के लिए **सुदुघाम्**=सुखसंदोह्य गौ पुकारा जाता है। जैसे एक ग्वाले की यही कामना होती है कि मुझे सुखसंदोह्य गौ प्राप्त हो, इसी प्रकार हमारी प्रार्थना का स्वरूप यही हो कि हमें सुरूपकृत्नु प्रभु प्राप्त हों।

भावार्थ—हम अपने रक्षण के लिए प्रतिदिन प्रभु का आराधन करें। प्रभु हमें उत्कृष्ट जीवनवाला बनाते हुए 'सुरूप' प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सवन+सोमपान+दान

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः॥ २ ॥

१. हे प्रभो! **नः सवना उप आगहि**=हमारे यज्ञों में आप समीपता से प्राप्त होइए। आपने ही तो इन यज्ञों को पूर्ण करना है। **सोमपाः**=सोम का रक्षण करनेवाले प्रभो! आप **सोमस्य पिब**=सोम का पान कीजिए। आप ही वासना-विनाश द्वारा हमारे जीवन में सोम का रक्षण करेंगे। २. **रेवतः**-एक धनी पुरुष का **मदः**=वास्तविक हर्ष **इत्**=निश्चय से **गोदाः**=गौओं को देनेवाला है। यज्ञमय जीवनवाला धनी पुरुष निश्चय से दानशील होता है। वस्तुतः यह दानशीलता ही उसके हर्ष का कारण बनती है।

भावार्थ—हम यज्ञों को करानेवाले हों, सोम का रक्षण करें और सम्पन्न होकर दानशील बनें। देने में हम आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

अन्तम सुमतियों की प्राप्ति

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि॥ ३॥

१. हे प्रभो! **अथा**=अब **ते**=आपकी **उन्तमानाम्**=अत्यन्त अन्तिकतम—आपके समीप प्राप्त करानेवाली **सुमतीनाम्**=कल्याणी मतियों को **विद्याम**-प्राप्त करें। इन सुमतियों को प्राप्त करके हम आपके समीप पहुँचनेवाले बनें। २. हे प्रभो! आप **नः**=हमें **मा अति ख्यः**=छोड़कर ज्ञान देनेवाले न होइए, अर्थात् हम सदा आपके ज्ञानों के पात्र बनें। **आगहि**=आप हमें अवश्य प्राप्त होइए।

भावार्थ—हम उन कल्याणी-मतियों को प्राप्त करें, जोकि हमें प्रभु तक ले-जानेवाली हैं। हम सदा प्रभु से दिये जानेवाले ज्ञान के पात्र हों।

ऋषिः—४-७ **विश्वामित्रः**; ८-१० **गृत्समदः**; ११-१६ **मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—४-६, ८-१० **गायत्री**; ७ **अनुष्टुप्**; ११-१६ **बृहती** ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो॥ ४॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे॥ ५॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत्ते शुष्मं तिरामसि॥ ६॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि॥ ७॥
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः॥ ८॥
इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः॥ ९॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून्विचर्षणिः॥ १०॥
देखो व्याख्या अथर्व० २०.२०.१-७

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः॥ ११॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा॥ १२॥
य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत्॥ १३॥
देखो व्याख्या अथर्व० २०.५३.१-३

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते॥ १४॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः॥ १५॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम्।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे॥ १६॥

देखो व्याख्या अथर्व० २०.५२.१-३

ज्ञान और शक्ति को प्राप्त करके मानव हित में तत्पर 'नृ-मेध' अगले सूक्त के प्रथम दो मन्त्रों का ऋषि है। इसी उद्देश्य से स्वास्थ्य का पूर्ण ध्यान करनेवाला 'जमदग्नि' (जमत् अग्नि=जिसकी जाठराग्नि मन्द नहीं) तीसरे व चौथे मन्त्र का ऋषि है—

५८. [अष्टपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

श्रायन्त इव सूर्यम्

श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम॥ १॥

१. **सूर्यम् इव**-सूर्य की भाँति, अर्थात् जैसे सूर्य कभी विश्राम नहीं लेता, इसी प्रकार **श्रायन्तः** (श्रायति to sweat)=श्रम के कारण पसीने से निरन्तर तर-बतर होते हुए **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **विश्वा इत् वसूनि**=सब वसुओं (धनों) को **भक्षत**=उपभुक्त करो। विना श्रम के खाना पाप समझो। सब धनों को प्रभु का ही जानो। २. **ओजसा**=बल से—ओजस्विता से **जाते**= उत्पन्न हुए-हुए तथा **जनमाने**=आगे उत्पन्न होनेवाले धन में **भागं न**=अपने भाग के समान वसु को **प्रतिदीधिम**=प्रतिदिन धारण करें। हम श्रम से—बल से धनों का अर्जन करें और उन्हें अपने-अपने भाग के अनुसार बाँटकर खानेवाले बनें।

भावार्थ—श्रम से—पसीने से तर-बतर होकर हम धनों को कमाएँ और उन्हें अपने-अपने भाग के अनुसार बाँटकर खानेवाले बनें।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

'अनर्शराति' प्रभु

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन्॥ २॥

१. उस **अनर्शरातिम्**=निष्पाप दानवाले (Asinless donor) **वसुदाम्**=धनों के दाता प्रभु को **उपस्तुहि**=उपस्तुत कर। **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **रातयः**=दान **भद्राः**=कल्याणकर हैं। २. **सः**=वे प्रभु **अस्य विधतः**=इस-[प्रभु]-की पूजा करनेवाले की—उपासक की **कामम्**= अभिलाषा को **न रोषति**=हिंसित नहीं करते। प्रभु उपासक की अभिलाषा को पूर्ण करते हैं और **मनः**=उपासक के मन को **दानाय**=दान के लिए **चोदयन्**=प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—वसुओं के दाता प्रभु का हम स्तवन करें। प्रभु स्तोता की कामना को पूर्ण करते हैं और उसके मन को दान के लिए प्रेरित करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

सूर्य-आदित्य

वण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि॥ ३॥

१. हे **सूर्य**=सम्पूर्ण जगत् के उत्पादक प्रभो! आप **वट्**=सचमुच **महान् असि**=महान् हैं। हे **आदित्य**=प्रलय के समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर ले लेनेवाले (आदानात्) प्रभो! आप **वट्**=सचमुच **महान् असि**=पूजनीय हैं। २. **महः सतः ते**=महान् होने हुए आपकी **महिमा**=महत्ता **पनस्यते**=हमसे स्तुत होती है। हम आपकी महिमा का गायन करते हैं। हे **देव**=सब-कुछ देनेवाले, ज्ञानदीप्त व उपासकों को दीप्त करनेवाले प्रभो! आप **अद्धा**=सचमुच ही **महान् असि**=महान् हैं।

भावार्थ—सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करनेवाले प्रभु 'सूर्य' हैं। अन्त में सारे ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर ले-लेनेवाले प्रभु 'आदित्य' हैं। उस महान् प्रभु की महिमा का हम सदा गायन करें।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

'विभु आदभ्य' ज्योति

बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥ ४॥

१. हे **सूर्य**=सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करनेवाले प्रभो! आप **वट्**=सचमुच ही **अवसा**=ज्ञान के हेतु से **महान् असि**=पूजनीय हैं। आपके ज्ञान की पूर्णता के कारण आपका बनाया हुआ यह संसार भी पूर्ण है। हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! आप **सत्रा**=सचमुच ही **महान् असि**=महान् हैं। २. आप अपनी **मह्ना**=महिमा से **देवानाम् असुर्यः**=देवों के अन्दर प्राणशक्ति का सञ्चार करनेवाले हैं। **पुरोहितः**=सृष्टि बनने से पूर्व ही विद्यमान हैं (समवर्तताग्रे) अथवा सब जीवों के लिए हित के उपदेष्टा हैं। आप तो एक **विभु**=व्यापक **अदाभ्यम्**=कभी हिंसित न होनेवाली **ज्योतिः**=ज्योति हैं। आपके उपासकों को भी यह ज्योति दीप्त अन्तःकरणवाला बनाती है।

भावार्थ—प्रभु अपने ज्ञान के कारण महान् हैं—वे एक पूर्ण सृष्टि का निर्माण करते हैं। अपनी महिमा से देवों के अन्दर प्राणशक्ति का सञ्चार करते हैं और उन्हें हितकर प्रेरणा देते हैं। प्रभु एक व्यापक अहिंस्य ज्योति हैं।

इस 'विभु अदाभ्य' ज्योति की ओर चलनेवाला 'मेध्यातिथि' अगले सूक्त के प्रथम दो मन्त्रों का ऋषि है। पवित्र जीवनवाला 'वसिष्ठ' तीसरे व चौथे मन्त्र का ऋषि है—

५९. [एकोनषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव॥ १॥

कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमानशुः।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्॥ २॥

देखो व्याख्या अथर्व० २०.१०.१-२

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

इन्द्रः-हरिवान्-सोमी

उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि॥ ३॥

१. **जिग्युषः धनं न**=विनयशील पुरुष के धन के समान **अस्य**=इस पुरुष का **यः**=जोकि **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय बनता है, उस जितेन्द्रिय पुरुष का **अंशः**=अंश **नु**=अब **इत्**=निश्चय से **उत् रिच्यते**=उद्रिक्त होता चलता है—इसका अंश बढ़ता ही जाता है। पिता की सम्पत्ति में भाग को 'अंश' कहते हैं। प्रभु पिता हैं। उनकी सम्पत्ति में इस जितेन्द्रिय पुरुष का भाग बढ़ता ही जाता है, अर्थात् इसका जीवन अधिक और अधिक दिव्य होता चलता है। २. (यः)=जो **हरिवान्**=जितेन्द्रियता द्वारा सोम-रक्षण करता हुआ प्रशस्त इन्द्रियोंवाला बनता है, **तम्**=उस प्रशस्तेन्द्रियाश्वोंवाले पुरुष को **रिपः न दभन्ति**=शत्रु हिंसित नहीं करते। यह रोग व वासनारूप शत्रुओं का शिकार नहीं होता। वे प्रभु **सोमिनि**=इस सोमरक्षक पुरुष में **दक्षं दधाति**=बल की स्थापना करते हैं।

भावार्थ—जो जितेन्द्रिय बनता है—उसमें प्रभु की दिव्यता का अंश बढ़ता जाता है। जो प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाला बनता है उसे रोग व वासनाएँ हिंसित नहीं कर पातीं। सोमरक्षक पुरुष में बल का वर्धन होता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

'अखर्व' ज्ञान

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भवत्॥ ४॥

१. हे जीवो! **यज्ञियेषु**=यज्ञात्मक कर्मों के होने पर **मन्त्रम् आदधात**=इस प्रभु से दिये गये मन्त्रात्मक ज्ञान को धारण करो, जोकि **अखर्वम्**=खर्व—अल्प नहीं है, **सुधितम्**=जो 'अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा' ऋषियों के हृदयों में सम्यक् स्थापित किया जाता है तथा **सुपेशसं**=जो हमारे जीवनों का उत्तम निर्माण करनेवाला है। इस ज्ञान के अनुसार कर्म करने पर जीवन बड़ा सुन्दर बनता है। २. **यः**=जो **कर्मणा**=कर्मों के द्वारा **इन्द्रे भवत्**=सदा प्रभु में वास करता है, **तम्**=उसकी **पूर्वीः प्रसितयः**=पालन व पूरण करनेवाले व्रतों के बन्धन **चन**=निश्चय से **तरन्ति**=इस भवसागर से तरानेवाले होते हैं। प्रभु-स्मरणपूर्वक कर्मों को करनेवाला अपने को सदा व्रतों के बन्धन में बाँधकर चलता है। ये व्रतबन्धन उसे इस भवसागर में विषयों की चट्टानों से टकराकर नष्ट नहीं होने देते।

भावार्थ—वेदज्ञान के अनुसार कर्म करने पर जीवन का बड़ा सुन्दर निर्माण होता है। प्रभु-स्मरणपूर्वक कर्म करने पर हमारा जीवन व्रतमय बना रहता है और हम संसार के विषयों में फँसते नहीं।

प्रभु में निवास करनेवाला अथवा सोम का रक्षण करता हुआ यह 'सुतकक्ष' बनता है—सुत को ही—सोम को ही यह अपनी शरण बनाता है। अगले मन्त्रों में ये 'सुकक्ष सुतकक्ष' ही ऋषि हैं। ४ से ६ तक ऋषि मधुच्छन्दा है—उत्तम मधुर इच्छाओंवाला—

६०. [षष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**सुतकक्षः सुकक्षो वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

शूर-स्थिर

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः। एवा ते राध्यं मनः॥ १॥

१. **एवा**=इसप्रकार, अर्थात् गतमन्त्र के अनुसार प्रभु-स्मरणपूर्वक कर्म करने पर तू **हि**=निश्चय से **वीरयुः असि**=वीरता की भावना को अपने साथ जोड़नेवाला है। **एवा**=इसप्रकार तू **शूरः**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला **उत**=और **स्थिरः**=स्थिरवृत्ति का बनता है। २. **एवा**=इसप्रकार **ते**=तेरा **मनः**-मन **राध्यम्**-सिद्धि व सफलता से पूर्ण बनता है (to be successful) अथवा तेरा मन पूर्णता को प्राप्त होता है (to be accomplished), न्यूनताओं से रहित होता है।

भावार्थ—प्रभु-स्मरणपूर्वक कर्म करते हुए हम 'वीर, शूर व स्थिर' बनें। हम अपने मनों को न्यूनताओं से रहित कर पाएँ।

ऋषिः—**सुतकक्षः सुकक्षो वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

धाता

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः। अधा चिदिन्द्र मे सचा॥ २॥

१. हे **तुवीमघ**=महान् ऐश्वर्यवाले प्रभो! **एवा**=इसप्रकार, अर्थात् आपके स्मरणपूर्वक कर्म करने के द्वारा **विश्वेभिः**=सब **धातृभिः**=धारणात्मक कर्म करनेवालों से **रातिः धायि**=आपका दान धारण किया जाता है। ये धाता लोग आपसे ऐश्वर्य प्राप्त करके उस ऐश्वर्य का विनियोग धारणात्मक कर्मों में करते हैं। २. **अधा**=अब जबकि मैं ऐश्वर्य का विनियोग धारणात्मक कर्मों में करूँ, हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **चित्**=निश्चय से **मे सचा**=मेरे साथ होनेवाले होइए। आपको साथी के रूप में पाकर ही मैं उत्तम कार्यों को करता रह सकूँगा।

भावार्थ—लोकहित के कर्मों में ऐश्वर्य का विनियोग करनेवाले ही प्रभु से ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं—प्रभु इन्हीं के साथी (मित्र) होते हैं।

ऋषिः—**सुतकक्षः सुकक्षो वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

गोमतः सुतस्य मत्स्वा

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते। मत्स्वा सुतस्य गोमतः॥ ३॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **सुवाजानां पते**=अपनी शक्तियों का सम्यक् रक्षण करनेवाले जीव! **ब्रह्म इव**=शक्तियों का रक्षण करता हुआ तू ब्रह्म की भाँति बन। **मा उ**=मत ही **तन्द्रयुः**=आलस्य को अपने साथ जोड़नेवाला हो। आलस्यशून्य होकर अपने कर्त्तव्यकर्मों को करता हुआ तू **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले व प्रशस्त इन्द्रियों—इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ानेवाले **सुतस्य**=सोम का **मत्स्व**=आनन्द ले। सोम-रक्षण द्वारा जीवन को आनन्दमय बना।

भावार्थ—शक्तियों का रक्षण करते हुए हम प्रभु-जैसा बनने का प्रयत्न करें। आलस्यशून्य हों। इन्द्रियों को प्रशस्त बनानेवाले सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

'सूनृता-मही' वेदवाणी

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे॥ ४॥

१. **एवा**=इसप्रकार गतमन्त्र के अनुसार सोम का रक्षण होने पर हे वेदवाणि! तू **हि**=निश्चय

से **सूनृता**=शुभ, दु:खों का परिहाण करनेवाले ऋत ज्ञान को देनेवाली है। (सु+ऊन+ऋत्)। **विरप्शी**=विविध विज्ञानों का उपदेश देनेवाली **गोमती**=इन्द्रियों को प्रशस्त बनानेवाली व **मही असि**=पूजन में प्रवृत्त करनेवाली है। २. **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिए—तेरे प्रति अपना अर्पण करनेवाले के लिए तू **पक्वा शाखा न**=परिपक्व फलों से लदी हुई वृक्ष की शाखा के समान है, अर्थात् जैसे वह शाखा अनेकविध फलों को प्राप्त कराती है, इसी प्रकार तू इस दाश्वान् के लिए 'शरीर, मन व बुद्धि' के उत्कर्षरूप फलों को देनेवाली है।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करके उस वेदवाणी को प्राप्त करने के पात्र बनते हैं जो विविध विज्ञानों को प्राप्त कराती हुई शरीर, मन व बुद्धि के उत्कर्ष को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

विभूतयः=ऊतयः

एवा हि ते विभूतय ऊतयं इन्द्र मावते। सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे॥ ५॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **एवा**=इसप्रकार—गतमन्त्र के अनुसार वेदवाणी के प्रति अपने को अर्पण करने पर—ज्ञानप्रधान जीवन बिताने पर **हि**=निश्चय से **ते**=आपकी **विभूतयः**=विभूतियाँ—सूर्य-चन्द्र-तारे आदि उत्कृष्ट रचनाएँ **मावते**=ज्ञानलक्ष्मी-सम्पन्न पुरुष के लिए (मा=ज्ञानलक्ष्मी) **ऊतयः**=रक्षक **सन्ति**=हो जाती हैं। प्रभु की सब विभूतियाँ ज्ञानी पुरुष का रक्षण करनेवाली होती हैं। २. ये विभूतियाँ **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिए—ज्ञान के प्रति अपने को दे डालनेवाले के लिए **चित्**=निश्चय से **सद्यः**=शीघ्र ही प्राप्त होती हैं। प्रभु की इन विभूतियों से रक्षण प्राप्त करके यह सचमुच उत्तम लक्ष्मीवाला बनता है।

भावार्थ—प्रभु की सब विभूतियाँ ज्ञानी पुरुष के लिए रक्षण का साधन बन जाती हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

काम्या-शंस्या

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये॥ ६॥

१. **एवा**=इसप्रकार **हि**=निश्चय से **अस्य**=इस प्रभु के **काम्या**=कमनीय पदार्थ—सुन्दर रचनाएँ **स्तोमः**=प्रभु का स्तवन बन जाते हैं। इन पदार्थों के अन्दर एक जितेन्द्रिय पुरुष प्रभु की महिमा को देखता है **च**=और **शंस्या**=प्रभु के सब शंसनीय कर्म **उक्थम्**=ऊँचे से गायन के योग्य होते हैं। एक जितेन्द्रिय पुरुष प्रभु की महिमा का गायन करता है। २. ये सब स्तोम और उक्थ **इन्द्राय**=एक जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **सोमपीतये**=सोम-रक्षण का साधन होते हैं। इन स्तोमों और उक्थों को उच्चरित करता हुआ यह वासनाओं से आक्रान्त नहीं होता और सोम को अपने ही अन्दर सुरक्षित कर पाता है।

भावार्थ—हम प्रभु से रचित कमनीय पदार्थों को देखते हुए प्रभु का स्तवन करें। प्रभु के शंसनीय कर्मों का ऊँचे से गायन करें। इसप्रकार वासनाओं से अनाक्रान्त होते हुए सदा सोम का रक्षण कर पाएँ।

इस सोम-रक्षण से हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ सदा उत्तम कर्मों में ही प्रवृत्त होंगी। हम 'गोषूक्ती व अश्वसूक्ती' बनेंगे। ये ही अगले सूक्त के ऋषि हैं—

६१. [एकषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'लोककृत्नु-हरिश्री' मद

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम्। उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम्॥ १॥

१. हे प्रभो! **ते**=आपके द्वारा जिसकी व्यवस्था की गई है **तम्**=उस सोम के रक्षण से उत्पन्न **मदम्**=उल्लास की **गृणीमसि**=हम प्रशंसा करते हैं। यह मद **वृषणम्**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला है। **पृत्सु**=संग्रामों में **सासहिम्**=शत्रुओं का पराभव करनेवाला है। २. **उ**=और निश्चय से यह मद हमारे जीवनों में **लोककृत्नुम्**=प्रकाश करनेवाला है (लोक=आलोक)। हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! यह मद (उल्लासजनक सोम) ही **हरिश्रियम्**=इन्द्रियों की श्री का कारण होता है। एवं, इन्द्रियाँ इसी से दीप्त होती व शक्ति प्राप्त करती हैं।

भावार्थ—प्रभु के उपासन से वासना-विनाश के द्वारा सोम-रक्षण होकर हमें उल्लास प्राप्त होता है जो हमें शक्तिशाली बनाकर संग्राम में विजयी करता है, प्रकाश को प्राप्त कराता है और इन्द्रियों की श्री को बढ़ाता है।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

आयवे-मनवे

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ। मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि॥ २॥

१. हे प्रभो! **येन**=जिस सोमपान-जनित मद से आप **आयवे**=गतिशील व्यक्ति के लिए **च**=और **मनवे**=विचारशील व्यक्ति के लिए **ज्योतींषि**=ज्योतियों को **विवेदिथ**=प्राप्त कराते हैं, **अस्य**=इस **बर्हिषः**=वृद्धि के कारणभूत सोम का **विराजसि**=विशेष रूप से दीपन करते हैं। इस सोम के दीपन से ही **मन्दानः**=आप इन जीवों को आनन्दित करते हैं। २. सोम-रक्षण के लिए आवश्यक है कि हम 'आयु' बनें, 'मनु' बनें। उत्तम कर्मों में लगे रहना और स्वाध्यायशील होना ही हमें सोम-रक्षण के योग्य बनाता है। यह रक्षित सोम ही सब वृद्धियों का कारण बनता है। यही जीवन में आनन्द का भी हेतु होता है।

भावार्थ—हम गतिशील व विचारशील बनकर सोम का रक्षण करें। यह सुरक्षित सोम वृद्धि व आनन्द का कारण बनेगा।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'वृषपत्नीः अपः' जय

तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा। वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे॥ ३॥

१. हे प्रभो! **अद्या चित्**=आज भी **पूर्वथा**=पहले की भाँति—इस सृष्टि में भी उसी प्रकार जैसेकि पूर्व सृष्टि में **उक्थिनः**=स्तोता लोग **ते**=आपके **तत्**=उस सोमपानजनित् बल व उल्लास का **अनुष्टुवन्ति**=स्तवन करते हैं। यह सोमरक्षण -जनित मद वस्तुतः प्रशस्यतम है। यही सब वृद्धियों व उन्नतियों का मूल है। २. हे प्रभो! आप हमारे लिए **दिवे-दिवे**=प्रतिदिन **अपः**=रेतःकण रूप जलों का **जया**=विजय कीजिए। ये रेतःकणरूप जल ही **वृषपत्नीः**=हमारे जीवनों में धर्म का ('वृषो हि भगवान् धर्मः—मनु०') रक्षण करनेवाले हैं। वे ही हमें शक्तिशाली बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ने सोम रक्षण से उत्पन्न होनेवाले बल व मद की अद्भुत ही व्यवस्था की है। प्रभु के अनुग्रह से हम इन रेतःकणरूप जलों का विजय करें। ये रेतःकणरूप जल ही सब शक्तिशाली पुरुषों से रक्षणीय हैं—ये ही हमारे जीवनों में धर्म का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

प्रभु-गायन, प्रभु-पूजन

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत॥ ४॥

१. **तम्**=उस **पुरुहूतम्**=बहुतों-से पुकारे जानेवाले **पुरुष्टुतम्**=खूब ही स्तुति किये जानेवाले प्रभु का **उ**=ही **अभिप्रगायत**=प्रातः-सायं गुणगान करो। यह प्रभु का गुणानुवाद ही आसुरवृत्तियों को दूर भगाने का साधन बनता है। २. उस **तविषम्**=महान्, सर्वशक्तिमान् **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **गीर्भिः**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुतिवाणियों से **आविवासत**=पूजित करो। प्रभु-पूजन ही तो हमें शत्रुओं के आक्रमण से बचाता है।

भावार्थ—हम प्रभु के गुणों का गायन करें—प्रभु का पूजन करें। यह गायन व पूजन ही हमें 'महान्, शक्तिमान् व ऐश्वर्यवान्' बनाएगा।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

सर्वज्ञ+सर्वशक्तिमान्=सर्वाधार

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी। गिरीँरज्राँ अपः स्व[र्] वृषत्वना॥ ५॥

१. **यस्य**=जिस **द्विबर्हसः**=ज्ञान व शक्ति—दोनों दृष्टिकोणों से बढ़े हुए प्रभु का **बृहत् सहः**=महान् बल **रोदसी दाधार**=द्यावापृथिवी का धारण करता है, वे प्रभु ही **वृषत्वना**=अपने वीर्य व सामर्थ्य से **गिरीन्**=पर्वतों को, **अज्रान्**=खेतों को, **अपः**=जलों को तथा **स्वः**=प्रकाश को धारण करते हैं। २. वस्तुतः प्रभु ही सबका धारण करनेवाले हैं। सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् होने से वे प्रभु सब लोक-लोकान्तरों व भूतों का ठीक से धारण कर रहे हैं। प्रभु का उपासक भी ज्ञान व शक्ति को बढ़ाता हुआ अपने जीवन में मस्तिष्क व शरीर दोनों को सुन्दरता से धारित करता है।

भावार्थ—वे सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने सामर्थ्य से सारे ब्रह्माण्ड का धारण कर रहे हैं।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

जैत्र बल-श्रवणीय ज्ञान

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे। इन्द्र जैत्रा श्रवस्या[] च यन्तवे॥ ६॥

१. हे **पुरुष्टुत**=बहुत-से मनुष्यों से स्तुत प्रभो! **सः**=वे आप **राजसि**=सारे ब्रह्माण्ड के शासक हैं। **एकः**=बिना किसी अन्य की सहायता के अकेले ही **वृत्राणि जिघ्नसे**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को नष्ट करते हैं। २. हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप वासनाओं को विनष्ट करके हमारे लिए **जैत्रा**=विजय के साधनभूत बलों को **च**=और **श्रवस्या**=श्रवणीय ज्ञानों को **यन्तवे**=देने के लिए होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का ही स्तवन करें। प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट करके हमारे लिए जैत्र बल व श्रवणीय ज्ञान को प्राप्त कराते हैं।

प्रभु-स्तवन के द्वारा 'जैत्र बल' व 'श्रवणीय ज्ञान' को प्राप्त करके अपना उत्तम भरण करनेवाला 'सौभरि' अगले सूक्त में १-४ मन्त्रों का ऋषि है। ५-७ तक ऋषि 'नृमेध'-मनुष्यों के सम्पर्क में चलनेवाला—सबके साथ उन्नति की कामनावाला है तथा ८-१० का ऋषि 'गोषूक्ती व अश्वसूक्ती' हैं—ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का उत्तम प्रयोग करनेवाले। 'सौभरि' प्रार्थना करता है—

६२. [द्विषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**सौभरिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**काकुभः प्रगाथः (विषमाककुप्+समा-सतोबृहती)**॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः। वाजे चित्रं हवामहे॥ १ ॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।

त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्॥ २ ॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे। सखाय इन्द्रमूतये॥ ३ ॥

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।

आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम्॥ ४॥

देखो व्याख्या अथर्व २०.१४.१-४

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

इन्द्र-विप्र-बृहत्-धर्मकृत्-विपश्चित्-पनस्यु

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे॥ ५ ॥

१. **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिए **साम गायत**=साम (स्तोत्र) का गान करो। **विप्राय**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले **बृहते**=सदा से वर्धमान प्रभु के लिए **बृहत्**=खूब ही गायन करो। २. उस प्रभु के लिए गायन करो, जोकि **धर्मकृते**=धारणात्मक कर्मों को करनेवाले हैं। **विपश्चिते**=ज्ञानी हैं और **पनस्यवे**=स्तुति को चाहनेवाले हैं। जीव को इस स्तुति के द्वारा ही अपने लक्ष्य का स्मरण होता है। यह लक्ष्य का अविस्मरण उसकी प्रगति का साधन बनता है, इसीलिए प्रभु यह चाहते हैं कि जीव का जीवन स्तुतिमय हो।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु के समान ही इन्द्र (जितेन्द्रिय), बृहत् (वृद्धिवाले), विप्र (अपना पूरण करनेवाले), धर्मकृत् (धर्म का कार्य करनेवाले), विपश्चित् (ज्ञानी) व पनस्य (स्तुतिमय जीवनवाले) बनें।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

विश्वकर्मा+विश्वदेवः=महान्

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि॥ ६ ॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **अभिभूः असि**=हमारे सब काम क्रोध आदि शत्रुओं का अभिभव करनेवाले हैं और **त्वम्**=आप ही इन शत्रुओं का विनाश करके हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में **सूर्यम् अरोचयः**=ज्ञानसूर्य को दीप्त करते हैं। बाह्य आकाश में सूर्य आदि का दीपन आपके द्वारा ही हो रहा है। 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'। २. हे प्रभो! आप हो **विश्वकर्मा**=सब कर्मों के करनेवाले हैं। सब कार्यशक्ति आप से ही प्राप्त होती है। आप **विश्वदेवः**=सब दिव्य गुणोंवाले हैं। जैसे सूर्य आदि देवों को देवत्व आपसे ही प्राप्त होता है, इसी प्रकार सब देवपुरुषों को दैवीसम्पत्ति भी आप ही प्राप्त कराते हैं। इसी से आप **महान् असि**=महान् हैं—पूजनीय है।

भावार्थ—प्रभु हमारे सब काम-क्रोध आदि शत्रुओं को अभिभूत करके हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानसूर्य का उदय करते हैं। हम सदा उस 'विश्वकर्मा-विश्वदेव-महान्' प्रभु का पूजन करें।

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥

संयम द्वारा प्रभु-मैत्री की प्राप्ति

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वऽरगच्छो रोचनं दिवः। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे॥ ७॥

१. हे प्रभो! **ज्योतिषा विभ्राजन्**=ज्योति से दीप्त होते हुए आप **स्वः अगच्छः**=सुख को प्राप्त होते हैं, अर्थात् आप सर्वज्ञ हैं और अतएव आनन्दमय हैं। आप ही अपने उपासकों को **दिवः रोचनम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक की ज्ञानदीप्ति को (अगच्छः-अगमय=) प्राप्त कराते हैं। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **ते**=आपकी **सख्याय**=मित्रता के लिए **येमिरे**=अपने को नियमों के बन्धनों में बाँधते हैं। यह संयम ही इन देवों को महादेव का मित्र बनाता है।

भावार्थ—प्रभु प्रकाशमय हैं, अतएव आनन्दमय हैं—उपासकों को भी प्रभु ज्ञान-दीप्ति प्राप्त कराते हैं। संयम-रज्जु में अपने को बाँधकर देववृत्ति के पुरुष महादेव के मित्र बनते हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत॥ ८॥

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी। गिरीँरज्राँ अपः स्व ऽर्वृषत्वना॥ ९॥

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे। इन्द्र जैत्रा श्रवस्या ऽच यन्तवे॥ १०॥

व्याख्या देखो अथर्व २०.६१.४-६

सब लोगों के हित की कामनावाला (भुवनस्य अस्ति इति) 'भुवनः' तथा साधनामय जीवनवाला 'साधनः' अगले सूक्त में प्रथम तीन मन्त्रों का ऋषि है। तृतीय के उत्तरार्ध में 'भरद्वाज' ऋषि है—अपने में शक्ति को भरनेवाला। बीच के तीन मन्त्रों के ऋषि 'गोतम' हैं—प्रशस्तेन्द्रिय। अन्तिम तीन के ऋषि 'पर्वत' हैं—अपना पूरण करनेवाले। 'भुवन' प्रार्थना करते हैं—

६३. [त्रिषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—भुवनः साधनो वा॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

त्रिलोकी के अधिपति

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
यज्ञं च नस्तन्वं ऽच प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति॥ १॥

१. **नु**=अब हम **इमा**=इस **भुवना**=शरीर, मन व मस्तिष्करूप लोकों को **सीषधाम**=सिद्ध करें—इन्हें अपने वश में करते हुए ठीक स्थिति में रक्खें। शरीर, मन व मस्तिष्क पर हमारा पूर्ण आधिपत्य हो। २. इस वशीकरण के होने पर **इन्द्रः च**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **च**=और **विश्वेदेवाः**=सूर्य-चन्द्र-अग्नि आदि सब देव **कम्**=सुख को (सीषधाम=साधयन्त सा०) सिद्ध करें। ३. **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **आदित्यैः सह**=(अदिति=प्रकृति) सूर्य आदि सब प्राकृतिक शक्तियों के साथ **नः**=हमारे **यज्ञम्**=यज्ञों को **चीक्लृपाति**=शक्तिशाली बनाते हैं। **च**=और इन यज्ञों के द्वारा **तन्वम्**=हमारे शरीरों को शक्ति-सम्पन्न करते हैं, **च**=और शरीरों को शक्ति-सम्पन्न बनाने के द्वारा **प्रजाम्**=अपनी सन्तानों को सशक्त करते हैं।

भावार्थ—हम 'शरीर, मन व मस्तिष्क' पर आधिपत्यवाले हों। इससे प्रभु व सब प्राकृतिक देव हमें सुखी करेंगे। ऐसा होने पर हम यज्ञों में प्रवृत्त होंगे। यज्ञों द्वारा नीरोग शरीरवाले व नीरोग

शरीर द्वारा उत्तम प्रजावाले बनेंगे। इन भुवनों पर आधिपत्यवाले हम सचमुच मन्त्र के ऋषि 'भुवन' होंगे।

ऋषिः—**भुवनः साधनो वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शरीर रक्षण-असुरहनन-देवत्वप्राप्ति

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्ववि॒ता तनूनाम्।
हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः॥ २॥

१. हमारे शरीर में सर्वप्रथम 'पृथिवी-जल-तेज वायु-आकाश' का पंचक गण है। फिर 'प्राण-अपान-व्यान-समान व उदान' नामक प्राण पंचक है। तीसरा गण पाँच कर्मेन्द्रियों, चौथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों का तथा अन्तिम गण 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार व हृदय' का है। वह **सगणः**= इन गणों के सहित **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **आदित्यैः**=अदितिः-(प्रकृति)-पुत्रों—सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि के द्वारा तथा **मरुद्भिः**=प्राणों के द्वारा **अस्माकम्**=हमारे **तनूनाम्**=शरीरों का **अविता**=रक्षक **भूतु**=हो। सूर्यादि का सम्पर्क तथा प्राणसाधना शरीर-रक्षा के लिए आवश्यक हैं। २. ये प्रभु से रक्षित व्यक्ति देव बनते हैं। ये **देवाः**=देव **यदा**=जब **असुरान् हत्वाय**=आसुरभावों को नष्ट करके **आयन्**=गति करते हैं तब ये **देवाः**=देव **देवत्वम् अभिरक्षमाणाः**=अपने में देवत्व का रक्षण करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—सूर्य आदि के सम्पर्क में रहते हुए तथा प्राणसाधना करते हुए हम शरीरों का रक्षण करें। आसुरभावों को नष्ट करते हुए देवत्व का अपने में साधन करें। काम-विनाश से स्वस्थ-शरीर बनें, क्रोधविनाश से शान्त मनवाले हों तथा लोभविनाश से दीप्त बुद्धिवाले बनें। स्वस्थ-शरीर, शान्त मन तथा दीप्त बुद्धि ही हमें देव बनाती है।

ऋषिः—**(पूर्वार्धस्य) भुवनः साधनो वा; (उत्तरार्धस्य) भरद्वाजः**॥
देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

इषिरा स्वधा

प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ ३॥

१. गतमन्त्र के 'स्वस्थ-शरीर, शान्त मन व दीप्त बुद्धि' वाले देव **शचीभिः**=प्रज्ञापूर्वक कर्मों से **अर्कम्**=उपास्य प्रभु को **प्रत्यञ्चम् अनयन्**=अपने अभिमुख प्राप्त कराते हैं। अन्तःस्थित प्रभु का ये दर्शन करते हैं और **आत् इत्**=अब शीघ्र ही निश्चय से **स्वधाम्**=उस आत्मधारणशक्ति को **पर्यपश्यन्**=ये देखते हैं—अपने में अनुभव करते हैं, जोकि **इषिराम्**=इन्हें लोकहित के कार्यों में प्रेरित करती है। ये आत्मधारणशक्ति को प्राप्त करके लोकहित के कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। २. हम भी **अया**=(अनया) इस आत्मधारणशक्ति से **देवहितम्**=देवों में स्थापित किये गये **वाजम्**=बल को **सनेम**=प्राप्त करें और **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होते हुए **शतं हिमाः**=शतवर्ष-पर्यन्त **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें। इसप्रकार इस मन्त्रभाग के ऋषि 'भरद्वाज' बनें।

भावार्थ—देव प्रज्ञापूर्वक कर्म करते हुए अन्तःस्थित प्रभु का दर्शन करते हैं—वे आत्मधारण-शक्ति का अनुभव करते हैं जो उन्हें लोकहित के कार्यों में प्रेरित करती हैं। हम भी इस आत्मधारणशक्ति के द्वारा बल प्राप्त करें और सुवीर होते हुए शतवर्षपर्यन्त उत्तम जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'ईशान-अप्रतिष्कुत' इन्द्र

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग॥ ४॥

१. हे **अङ्ग**=प्रिय! **यः**=जो **एकः इत्**=बिना किसी अन्य की सहायता के अकेला ही **दाशुषे मर्ताय**=दाश्वान् (दानशील) पुरुष के लिए **वसु विदयते**=निवास को उत्तम बनाने के लिए साधनभूत वसुओं को प्राप्त कराता है, वही **ईशानाः**=सबका स्वामी है। २. हे प्रिय! यह **अप्रतिष्कुतः**=किसी से कभी युद्ध के लिए न ललकारा गया **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु है।

भावार्थ—वे प्रभु ही 'ईशान व अप्रतिष्कुत' हैं। दाश्वान् पुरुष के लिए वसुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

प्रभु-स्तवन व यज्ञ-साधन

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्। कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग॥ ५॥

१. हे **अङ्ग**=प्रिय! वे प्रभु **कदा**=न जाने कब, अर्थात् शीघ्र ही (In no time) **अराधसम्**=यज्ञ आदि कार्यों को सिद्ध न करनेवाले **मर्तम्**=पुरुष को इसप्रकार **स्फुरत्**=समाप्त कर देते हैं—उसका वध कर देते हैं **इव**=जैसेकि **पदा**=पैर से **क्षुम्पम्**=खुम्ब को परे फेंक दिया जाता है। २. **कदा**=कब **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **नः गिरः**=हमारे स्तुतिवचनों को **शुश्रवत्**=सुनते हैं, अर्थात् कब हम प्रभु का स्तवन करनेवाले बनेंगे। वस्तुतः वही सौभाग्य का दिन होगा जबकि हम प्रभु-स्तवन करते हुए यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को सिद्ध करनेवाले बनेंगे।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें और यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को सिद्ध करने में लगे रहें।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

बहुभ्यः सुतावान्

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति। उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग॥ ६॥

१. हे **अङ्ग**=सारे ब्रह्माण्ड को गति देनेवाले प्रभो! (अगि गतौ) **यः**=जो **चित् हि**=भी निश्चय से **बहुभ्यः**=बहुतों के लिए **सुतावान्**=यज्ञ आदि उत्तम कर्मोंवाला होता हुआ **त्वा**=आपका **आविवासति**=पूजन करता है, वह **तत्**=तब **उग्रं शवः**=तेजस्वी शत्रुविनाशक बल को **पत्यते**=प्राप्त होता है। 'उग्र शव' को प्राप्त होनेवाला यह उपासक **इन्द्रः**=स्वयं इन्द्र हो जाता है। यह शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला इन्द्र बन जाता है।

भावार्थ—हम लोकहित के लिए यज्ञ आदि कर्म करते हुए प्रभु का पूजन करें और इसप्रकार तेजस्वी बनें।

ऋषिः—**पर्वतः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'सोमपातमः' मदः

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति। येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे॥ ७॥

१. हे **शविष्ठ**=अतिशयेन शक्तिशालिन् व क्रियाशील **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यः**=जो **सोमपातमः**=अतिशयेन सोम का पान करनेवाला **मदः**=उल्लास **चेतति**=जाना जाता है, **तम्**=उसको **ईमहे**=हम आपसे माँगते हैं, अर्थात् हम यही चाहते हैं कि क्रियाशील व जितेन्द्रिय बनकर आपकी उपासना करते हुए सोम का रक्षण कर सकें और जीवन को उल्लासमय बना पाएँ। २. इस सोमरक्षण-जनित **तम्**=उस उल्लास को प्राप्त करें **येन**=जिससे

कि आप **अत्रिणम्**=हमें खा जानेवाली इन वासनाओं को **निर्हंसि**=नष्ट कर देते हैं। सोम रक्षण से शरीरस्थ रोगों के नाश की भाँति मन की आधियों का भी विनाश होता है।

भावार्थ—हम सोम रक्षण के द्वारा उल्लासमय जीवनवाले बनें। रोगों व वासनाओं का विनाश कर पाएँ।

ऋषिः—**पर्वतः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

दशग्व-समुद्र

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्व[र्]णरम्। येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ ८ ॥

१. गतमन्त्र में वर्णित **येन**=जिस 'सोमपातम मद' से, हे प्रभो! आप **दशग्वम्**=दसवें दशक तक जानेवाले, अर्थात् सौ वर्ष के दीर्घजीवन को प्राप्त करनेवाले इस आराधक को **आविथ**=रक्षित करते हो **तम् ईमहे**=उस मद को हम आपसे माँगते हैं। सोम-रक्षण द्वारा उल्लासमय जीवनवाले होते हुए हम शतवर्ष जीवी बनें। २. हे प्रभो! हम उस सोमरक्षण-जनित मद को चाहते हैं जिससे कि आप **अध्रिगुम्**=अधृतगमनवाले मार्ग पर चलते समय वासनारूप विघ्नों से न रुक जानेवाले पुरुष को रक्षित करते हो। जिस मद से आप **वेपयन्तम्**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले को रक्षित करते हो और जिससे **स्वर्णरम्**=अपने को प्रकाश की ओर ले चलनेवाले पुरुष को रक्षित करते हो, उस मद को ही हम आपसे माँगते हैं। ३. हम उस मद को चाहते हैं **येन**= जिससे **समुद्रम्** (समुद्) आनन्दित रहनेवाले पुरुष को आप **आविथ**=रक्षित करते हैं। यह सोम रक्षण उसे अन्नमयकोश में 'दशग्व' बनाता है, प्राणमयकोश में 'अध्रिगु', मनोमयकोश में 'वेपयन्', विज्ञानमयकोश में 'स्वर्णर' तथा आनन्दमयकोश में 'समुद्र' बनाता है। इसप्रकार बननेवाला व्यक्ति ही प्रभु का प्रिय होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण-जनित मद हमें दीर्घजीवी, अधृतगमन—शत्रुओं को कम्पित करनेवाला, प्रकाश की ओर चलनेवाला व आनन्दमय मनोवृत्तिवाला बनाता है।

ऋषिः—**पर्वतः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

सोम-रक्षण के लाभ

येन सिन्धुं महीरपो रथाँइव प्रचोदयः। पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

१. **येन**=जिस सोमपान-जनित मद से **सिन्धुम्**=ज्ञाननदी को तथा **महीः**=उपासनावृत्तियों को और **अपः**=कर्मों को, **रथान् इव**=शरीर रथों को जैसे लक्ष्य की ओर, उसी प्रकार **प्रचोदयः**=आप प्रेरित करते हो **तम् ईमहे**=उस मद की हम याचना करते हैं। इस सोमपान जनित मद से हमारे अन्दर ज्ञान नदी प्रवाहित होती है, हमारे अन्दर उपासनावृत्ति जागती है तथा हम महत्त्वपूर्ण कर्मों को करते हैं और हमारा शरीर-रथ लक्ष्य की ओर चलता है। २. हम इसलिए सोमपान जनित मद की याचना करते हैं कि हम **ऋतस्य**=यज्ञ के व सत्य के **पन्थाम् यातवे**=मार्ग पर चलनेवाले हों।

भावार्थ—सोम-रक्षण से ज्ञान की प्राप्ति होती है, उपासनावृत्ति जागती है, हम उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, शरीर-रथ लक्ष्य की ओर बढ़ता है और हम ऋत व सत्य के मार्ग पर चलते हैं।

इस सोम का रक्षण करनेवाला पुरुष 'नृमेध' बनता है—सबके साथ मिलकर चलनेवाला। यही अगले सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों का ऋषि है तथा चार से छह मन्त्रों तक 'विश्वमनाः' ऋषि है—व्यापक मनवाला। यह नृमेध प्रार्थना करता है—

६४. [चतुःषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

सत्राजित्

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः। गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **नः**=हमें **आगधि**=प्राप्त होइए। **प्रियः**=आप प्रीति व आनन्द के जनक हैं। **सत्राजित्**=सदा विजय प्राप्त करानेवाले हैं। **अगोह्यः**=आप किसी से संवृत किये जाने योग्य नहीं। सारे ब्रह्माण्ड को आपने अपने में आवृत किया हुआ है। आपकी महिमा कण-कण में दृष्टिगोचर होती है, आपका प्रकाश सर्वत्र है। २. आप **गिरिः न**=उपदेष्टा के समान हैं। हृदयस्थरूपेण सदा सत्कर्मों की प्रेरणा दे रहे हैं। **विश्वतः पृथुः**=आप सब दृष्टिकोणों से विशाल हैं। आपका ज्ञान, बल व ऐश्वर्य सब अनन्त हैं। आप **दिवः पतिः**=प्रकाश के—ज्ञान के स्वामी हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें विजय प्राप्त कराते हैं। ज्ञानोपदेश द्वारा वे हमारा कल्याण करते हैं।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

सुन्वतो वृधः

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी। इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः॥ २॥

१. हे **सत्य**=सत्यस्वरूप **सोमपाः**=सोम का रक्षण करनेवाले प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को **अभिबभूथ**=अभिभूत करते हो। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपके वश में है। २. हे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यवान् प्रभो! आप **सुन्वतः**=यज्ञशील पुरुष के व सोम का सम्पादन करनेवाले के **वृधः असि**=बढ़ानेवाले हैं। **दिवः**=स्वर्ग के—प्रकाश के **पतिः**=स्वामी हैं। जो भी यज्ञशील बनता है अथवा अपने जीवन में सोम का सम्पादन करता है, उसे आप स्वर्ग व प्रकाश प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु सारे ब्रह्माण्ड के शासक हैं। सोम का सम्पादन करनेवाले के रक्षक हैं। प्रकाश व सुख को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

पुरां दर्ता-मनोर्वृधः

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि। हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः॥ ३॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **त्वं हि**=आप ही **शश्वतीनाम्**=(बह्वीनाम्) अनेक **पुराम्**=काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं की नगरियों के **दर्ता असि**=विदारण करनेवाले हैं। २. इन नगरियों का विध्वंस करके आप **दस्योः**=हमारा उपक्षय करनेवाले के **हन्ता असि**=नष्ट करनेवाले हैं। **मनोः वृधः**=विचारशील पुरुष का वर्धन करनेवाले हैं तथा **दिवः पतिः**=प्रकाश व स्वर्ग के स्वामी हैं।

भावार्थ—शत्रु पुरियों का विद्रावण करके दस्यु-हनन के द्वारा प्रभु विचारशील पुरुष का वर्धन करते हैं और जीवन को प्रकाशमय व स्वर्गवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**विश्वमनाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'वीर सदावृध' प्रभु का कर्मठ उपासक

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः। एवा हि वीर स्तवते सदावृधः॥ ४॥

१. हे **अध्वर्यो**=यज्ञशील पुरुष! तू **इत् उ**=निश्चय से **मध्वः अन्धसः**=माधुर्य का सञ्चार करनेवाले सोम से भी **मदिन्तरम्**=अधिक आनन्दित करनेवाले उस प्रभु को **आसिञ्च**=अपने में सिक्त कर। प्रभु की उपासना का भाव तेरी नस-नस में व्याप्त हो जाए। २. वह **वीरः**=शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करके दूर करनेवाला, **सदावृधः**=सदा से वृद्धि को प्राप्त हुआ-हुआ प्रभु **एवा हि**=गतिशीलता के द्वारा ही **स्तवते**=स्तुति किया जाता है, अर्थात् क्रियाशील पुरुष ही प्रभु का सच्चा उपासक है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम उल्लास का कारण होता है। प्रभु का हृदय में धारण उससे भी अधिक आनन्दित करनेवाला होता है। उस 'वीर, सदावृध' प्रभु का सच्चा उपासक वही है, जो क्रियाशील है।

ऋषिः—**विश्वमनाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

न शवसा, न भन्दना

इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम्। उदानंश शवसा न भन्दना॥ ५॥

१. हे **हरीणां स्थातः**=इन्द्रियाश्वों के अधिष्ठातृभूत **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते**=आपकी **पूर्व्यस्तुतिम्**=पालन व पूरण करनेवाली बातों में सर्वोत्तम इस स्तुति को **नकिः उदानंश**=कोई भी अतिव्याप्त नहीं कर पाता—कोई भी व्यक्ति आपकी स्तुति का अतिक्रमण करने में समर्थ नहीं होता। २. **न शवसा**=कोई भी बल से आपको अतिक्रान्त नहीं कर सकता। **न भन्दना**=कोई भी कल्याण व सुख से आपका उल्लंघन करनेवाला नहीं है। आप अनन्तशक्ति-सम्पन्न व आनन्दस्वरूप हैं। आपके उपासक में भी इस शक्ति व आनन्द की संक्रान्ति होती है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। यह स्तवन हमारी न्यूनताओं को दूर करता है। स्तवन से हमारे अन्दर शक्ति व आनन्द का संचार होता है।

ऋषिः—**विश्वमनाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'शक्तियों के स्वामी, यज्ञों से वर्धनीय' प्रभु

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः। अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम्॥ ६॥

१. **श्रवस्यवः**=ज्ञान व यश की कामनावाले हम **तम्**=उस **वः**=तुम सबके **वाजानां पतिम्**=बलों के स्वामी प्रभु को **अहूमहि**=पुकारते हैं। प्रभु हमारी सब इन्द्रियों के बल का वर्धन करके हमारे ज्ञान व बल का वर्धन करते हैं। इसप्रकार हमारा जीवन यशस्वी बनता है। हम उस प्रभु को पुकारते हैं जो **अप्रायुभिः**=प्रमाद से रहित **यज्ञेभिः**=यज्ञों से **वावृधेन्यम्**=वर्धनीय हैं। जब हम प्रमादशून्य होकर यज्ञों में प्रवृत्त होते हैं तब प्रभु का प्रकाश हममें निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता है।

भावार्थ—प्रभु सब शक्तियों के स्वामी हैं। यज्ञों के द्वारा हममें प्रभु का प्रकाश होता है। ज्ञानी व यशस्वी होने के लिए हम प्रभु को पुकारते हैं।

अगले सूक्त के ऋषि हैं—'विश्वमना'=व्यापक, उदार मनवाले। विश्वमना कहते हैं—

६५. [पञ्चषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वमनाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'स्तोम्य-नर' इन्द्र का स्तवन

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्। कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत्॥ १॥

१. हे **सखायः**=मित्रो! **एत उ**=निश्चय से आओ! **नु**=अब उस **स्तोम्यम्**=स्तुति के योग्य **नरम्**=हमें उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाले **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु का **स्तवाम**=स्तवन करें। यह सम्मिलित आराधन हमें प्रभु के अधिक और अधिक समीप लानेवाला हो। २. हम उस प्रभु का स्मरण करें **यः**=जो **एकः इत्**=अकेले ही **विश्वाः कृष्टीः**=सब मनुष्यों को **अभि अस्ति**=अभिभूत करनेवाले हैं। हमारे सब शत्रुओं का पराजय ये प्रभु ही तो करेंगे।

भावार्थ—हम सब मिलकर प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमारे सब शत्रुओं का अभिभव करके हमें उन्नति-पथ पर ले-चलेंगे।

ऋषिः—**विश्वमनाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'घृत व मधु' से अधिक स्वादिष्ट वचन

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः। घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत॥ २॥

१. **अगोरुधाय (गाः न रुणद्धि)**=ज्ञान की वाणियों को न रोकनेवाले—निरन्तर ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करानेवाले, **गविषे (गो+इष्)**=हमारे लिए उत्तम इन्द्रियों को प्रेरित करनेवाले और इसप्रकार **द्युक्षाय**=प्रकाश में निवास करानेवाले प्रभु के लिए—प्रभु की प्राप्ति के लिए **दस्म्यं वचः**=दुःख का नाश करनेवालों में उत्तम वचन को **वोचत**=बोलो। दुःखियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व दुःखनिवारक वचनों को बोलनेवाला ही उस प्रभु को प्राप्त करता है, जो निरन्तर ज्ञान की वाणियों व उत्तम इन्द्रियों को प्राप्त कराके हमें प्रकाश में निवासवाला बनाते हैं। २. हे मनुष्यो! प्रभु की प्राप्ति के लिए **घृतात् स्वादीयः**=घृत से भी अधिक स्वादिष्ट **च**=तथा **मधुनः**= शहद से भी अधिक मधुर वचन (वोचत) बोलो। कटुवचन दूसरे के हृदय को काटते हुए अन्तःस्थित प्रभु के भी निरादर का कारण होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु प्राप्ति के लिए 'दुःखनाशक, घृत से भी स्वादिष्ट और शहद से भी अधिक मधुर' वचनों को बोलें। प्रभु ज्ञान की वाणियों व उत्तम इन्द्रियों को प्राप्त कराके हमारे लिए प्रकाश को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**विश्वमनाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

अनन्त 'वीर्य-ऐश्वर्य-ज्ञान व दान'-वाले प्रभु

यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे। ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा॥ ३॥

१. **यस्य**=जिस प्रभु के **वीर्या**=वृत्रवध आदि पराक्रम के कार्य **अमितानि**=अगणित व अपरिमित हैं, उस प्रभु का **राधः**-ऐश्वर्य **पर्येतवे न**=चारों ओर से घेरे जाने योग्य नहीं है। उस प्रभु का पराक्रम व ऐश्वर्य अनन्त ही है। २. **ज्योतिः न**=प्रकाश की भाँति **दक्षिणा**=उस प्रभु का दान भी **विश्वम्**=सम्पूर्ण संसार को **अभ्यस्ति**=अभिभूत करनेवाला है। उस प्रभु का ज्ञान व दान निरतिशय है—सर्वातिशायी है—सबसे अधिक है।

भावार्थ—प्रभु का पराक्रम व ऐश्वर्य अनन्त है। वे प्रभु अपनी ज्योति व दक्षिणा से सभी को अभिभूत करनेवाले हैं।

अगले सूक्त के ऋषि भी 'विश्वमनाः' ही हैं—

६६. [षट्षष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वमनाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'अनूर्मि, वाजी, यम' प्रभु का स्तवन

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम्। अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे॥ १॥

१. **व्यश्ववत्**=व्यश्व की भाँति—उत्तम इन्द्रियोंवाले पुरुष की भाँति तू **इन्द्रम्**=उस सर्वशक्तिशाली प्रभु का **स्तुहि**=स्तवन कर, जोकि **अनूर्मिम्**=(ऊर्मि=A human infirmity) शोक, मोह, जरा, मृत्यु व क्षुत्-पिपासारूप ऊर्मियों से रहित हैं 'शोकमोहौ जरामृत्यू क्षुत्पिपासे षडूर्मयः'। उस प्रभु में शोक मोह आदि किसी भी दुर्बलता का निवास नहीं, अतएव **वाजिनम्**=वे प्रभु शक्तिशाली हैं और **यमम्**=सर्वनियन्ता हैं। प्रभु का स्तोता भी दुर्बलताओं से ऊपर उठता है, शक्तिशाली बनता है और संयम की वृत्तिवाला होता है। २. उस प्रभु का हम स्तवन करें जोकि **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिए—प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले पुरुष के लिए **अर्यः**=काम, क्रोध, लोभरूप शत्रुओं के **गयम्**=गृह को **विमंहमानम्**=विशेषरूप से प्राप्त कराते हैं। 'काम' ने आज तक इन्द्रियों में अपना निवास बनाया हुआ था, 'क्रोध' ने मन को अपनाया हुआ था और 'लोभ' ने बुद्धि पर अधिकार किया हुआ था। प्रभु इन सबको दूर करके यह शरीर-गृह दाश्वान् को प्राप्त कराते हैं। उपासक के जीवन में काम, क्रोध, लोभ का निवास नहीं रहता।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से हम शोक-मोह आदि से ऊपर उठते हैं। शक्तिशाली व संयमी बनते हैं। हमारा शरीर काम, क्रोध, लोभ का घर नहीं बना रहता।

ऋषिः—**विश्वमनाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

दशमं नवम्

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम्। सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम्॥ २॥

१. **एवा**=गतिशीलता के द्वारा—कर्त्तव्यकर्मों को करने के द्वारा हे **वैयश्व**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले स्तोता! तू **नूनम्**=निश्चय से **उपस्तुहि**=उस प्रभु का स्तवन कर जोकि **दशमम्** (**दश्यन्ते शत्रवः अनेन**)=हमारे शत्रुओं का विध्वंस करनेवाले हैं और अतएव **नवम्** (**नु स्तुतौ**)= स्तुति के योग्य हैं। २. उस प्रभु का स्तवन कर जोकि **सुविद्वांसम्**=उत्तम ज्ञानी हैं और **चरणीनाम्**= कर्त्तव्य कर्मों के करने में तत्पर मनुष्यों के **चर्कृत्यम्**=फिर फिर नमस्कार करने योग्य हैं। वस्तुतः यह प्रभु नमस्कार ही उन्हें 'चरणि' बनाता है। प्रभु-नमस्कार से शक्ति सम्पन्न बनकर वे कर्त्तव्यकर्म कर पाते हैं।

भावार्थ—हम 'दशम नव-सुविद्वान्—नमस्करणीय' प्रभु का स्तवन करते हुए उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले व शक्ति-सम्पन्न बनकर कर्त्तव्यकर्म करने में तत्पर रहें।

ऋषिः—**विश्वमनाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

निर्ऋति परिवर्जन

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्। अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव॥ ३॥

१. हे **वज्रहस्त**=व्रज को हाथ में लिये हुए प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **निर्ऋतीनाम्**=उपद्रवकारी राक्षसीभावों के **परिवृजम्**=परिवर्जन को—हमसे पृथक् करने को **वेत्थ**=जानते हैं। आपका स्मरण व स्तवन होते ही हमारे हृदयों को राक्षसीभाव छोड़कर चले जाते हैं। २. आप राक्षसीभावों के परिवर्जन को इसी प्रकार जानते हैं, **इव**=जिस प्रकार **शुन्ध्युः**=सब अन्धकार का शोधन कर देनेवाला सूर्य **अहरहः**=प्रतिदिन **परिपदाम्**=आहार के लिए चारों ओर गतिवाले पशु-पक्षियों के स्वस्थान परिवर्जन को जानता है। सूर्योदय होते ही सब पक्षी घोंसलों को छोड़कर इधर-उधर निकल जाते हैं। इसी प्रकार प्रभु स्मरण होते ही राक्षसीभाव हृदयों को छोड़ जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण राक्षसीभावों को दूर भगा देता है। इनको दूर रखने के लिए दिन-

रात प्रभु-स्मरण आवश्यक है। सूर्यास्त होने पर पक्षी जैसे घोंसलों में लौट आते हैं, इसी प्रकार प्रभु-विस्मरण होते ही राक्षसीभावों के लौट आने की आशङ्का होती है।

निर्ऋति परिवर्जन करता हुआ यह व्यक्ति 'परुत्' बनता है—पालन व पूरण करनेवाला। इसप्रकार जीवन का सुन्दर निर्माण करनेवाला यह 'शेप' कहलाता है। यह 'परुच्छेप' अगले सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों का ऋषि है। चार से सात तक ऋषि 'गृत्समद' है (गृणाति माद्यति)-प्रभु-स्तवन करता है व आनन्द में रहता है—

६७. [सप्तषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**परुच्छेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अत्यष्टिः** ॥

'सुन्वन्' का सुन्दर जीवन

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम्॥ १॥

१. **सुन्वन्**=अपने शरीर में सोमरस (वीर्य) का अभिषव करनेवाला व्यक्ति **हि**=निश्चय से **क्षयम्**=(क्षि निवासगत्योः) उत्तम निवास व गतिवाले शरीररूप गृह को **वनोति**=प्राप्त करता है (Wins)। इस सोम के रक्षण से शरीर की शक्तियाँ बनी रहती हैं और क्रियाशीलता में कमी नहीं आती। **सुन्वानः**=सोम का अभिषव करनेवाला यह **हि**=निश्चय से **परीणसः** (परितो नद्धान् सा०)-चारों ओर से बाँधनेवाले—हमपर आक्रमण करनेवाले **द्विषः**=द्वेष आदि शत्रुओं को **अवयजाति**=दूर करता है। **देवानां द्विषः**=दिव्य भावनाओं के दुश्मनों को—दिव्य भावनाओं की विरोधी आसुरभावनाओं को **अव**=अपने से दूर करता है। रोगरक्षण से द्वेष आदि आसुरभावनाएँ दूर होकर मानस पवित्रता का लाभ होता है। २. **सुन्वानः इत्**=सोम का अभिषव करता हुआ ही **वाजी**=शक्तिशाली बनता है, **अवृतः**=द्वेष आदि शत्रुओं से घेरा नहीं जाता और **सहस्रा**=शतशः धनों को **सिषासति**=संभक्त करना चाहता है, अर्थात् यह सुन्वान शतशः धनों को प्राप्त करके उन्हें देने की वृत्तिवाला होता है। ३. **सुन्वानाय**=सोमाभिषव करनेवाले पुरुष के लिए ही **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **आभुवम्**=सर्वतो व्याप्त, अर्थात् अत्यन्त प्रवृद्ध **रयिम्**=धन को **ददाति**=देता है। उस धन को **ददाति**=देता है जोकि **आभुवम्**=समन्तात् भवनशील होता है, अर्थात् सब आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त होता है।

भावार्थ—शरीर में सोम के रक्षण से (क) हमारा शरीररूप गृह उत्तम बनता है (ख) हम यज्ञ से आसुरभावों को दूर कर पाते हैं (ग) शक्तिशाली बनकर शतशः धनों को प्राप्त करते हैं (घ) उन धनों को प्राप्त करते हैं जो हमारी सब आवश्यकताओं को पूर्ण करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**परुच्छेपः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**अत्यष्टिः** ॥

'चित्त-नव्य-अमर्त्य' सोमरूप धन

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः।
यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम्॥ २॥

१. हे **मरुतः**=प्राणो! **वः**=आपके—आपकी साधना से उत्पन्न होनेवाले **तानि**=वे प्रसिद्ध **सना**=संभजनीय—सेवनीय-**पौंस्या**=बल **अस्मत्**=हमसे **उ**=निश्चयपूर्वक **मा सु अभिभूवन्**=

(अपगतानि मा भूवन् सा०) मत ही अलग हों। **उत**=और **द्युम्नानि**=ज्ञान की ज्योतियाँ **मा जारिषुः**=क्षीण न हों। **उत**=और **अस्मत्**=हमारी **पुरा**=ये शरीररूप नगरियाँ **मा जारिषुः**=जीर्ण न हो जाएँ। एवं, प्राणसाधना से (क) शक्ति प्राप्त होती है (ख) ज्ञानज्योति बढ़ती है (ग) शरीर स्वस्थ होता है। २. हे मरुतो! **यत्**=जो **वः**=आपका **चित्रम्**=अद्भुत **युगे-युगे**=जीवन के प्रत्येक काल में—बाल्य, यौवन व वार्धक्य में—**नव्यम्**=स्तुति के योग्य धन है, जो धन **अमर्त्यं घोषात्**=मनुष्य की अमर्त्यता की घोषणा करता है **तत्**=उस धन को **अस्मासु**=हममें **दिधृता**=धारण कीजिए **च**=और उस धन को धारण कीजिए **यत्**=जो **दुष्टरम्**=शत्रुओं से तैरने योग्य नहीं है **यत् च**=और जो सचमुच **दुष्टरम्**=शत्रुओं से तैरने योग्य नहीं। मरुतों का यह धन सोम ही है। प्राणसाधना से इस सोम का शरीर में रक्षण होता है। रक्षित सोमरूप धन (चित्रम्=)अद्भुत है। यह जीवन के प्रत्येक अन्तर (Period) में स्तुत्य परिणामों को पैदा करता है (नव्यम्)। यह हमें अमर्त्य बना देता है—रोगों का शिकार नहीं होने देता। रोगकृमिरूप शत्रुओं से यह सोम दुष्टर होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमें शक्ति प्राप्त होती है, हमारी ज्ञानज्योति बढ़ती है, शरीर क्षीण नहीं होते। इस साधना से सोम-रक्षण द्वारा 'अद्भुत' स्तुत्य-पूर्ण जीवन को प्राप्त करानेवाला—दुष्टर बल प्राप्त होता है।

ऋषिः—**परुच्छेपः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अत्यष्टिः** ॥

जातवेदा अग्नि का उपासन

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ३ ॥

१. मैं **अग्निम्**=उस सर्वाग्रणी—हमारी अग्रगति के साधक प्रभु का **मन्ये**=मनन व विचार करता हूँ जो प्रभु **होतारम्**=सृष्टियज्ञ के महान् होता हैं, **दास्वन्तम्**=सब कुछ देनेवाले हैं, **वसुम्**=निवास के लिए आवश्यक सब धनों को प्राप्त कराके हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले हैं, **सहसः सूनुम्**=बल के पुत्र—शक्ति के पुञ्ज हैं तथा **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ हैं। वे प्रभु **विप्रं न**=जैसा हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले हैं, उसी प्रकार **जातवेदसम्**=(जाते जाते विद्यते) हम सबके अन्दर विद्यमान हैं। अन्तःस्थित होते हुए वे हमारा पूरण कर रहे हैं। २. प्रभु वे हैं **यः**=जो **स्वध्वरः**=उत्तम अहिंसात्मक यज्ञोंवाले **देवः**-प्रकाशमय होते हुए **ऊर्ध्वया**=अत्यन्त उन्नत **देवाच्या** (देवान् अञ्चति)=देवों को प्राप्त होनेवाले **कृपा**=सामर्थ्य से हमारे जीवनों में **घृतस्य**=ज्ञानदीप्ति की **विभ्राष्टिम् अनु**=ज्योति के बाद **शोचिषा**=मन की शुद्धता के साथ **आजुह्वानस्य सर्पिषः**=आहुति दिये जाते हुए घृत की **वष्टिम्**=कामना करते हैं। प्रभु हमारे जीवनों में तीन बातें चाहते हैं (क) ज्ञान की दीप्ति (ख) हृदय की पवित्रता (ग) हाथों से यज्ञों का प्रवर्तन।

भावार्थ—प्रभु 'अग्नि-होता-दास्वान्-सहसः सूनु व जातवेदाः' हैं; उनसे सामर्थ्य प्राप्त करके हम मस्तिष्क में ज्ञानदीप्तिवाले, हृदय में पवित्रतावाले तथा हाथों में यज्ञोंवाले बनें।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

भरतस्य सूनवः

यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामं छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ ४ ॥

१. **नरः**=अपने को उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाले मनुष्यो! **बर्हिः आसद्य**=वासनाशून्य हृदय में आसीन होकर आप **दिवः**=ज्ञान-प्रकाश के हेतु से तथा **पोत्रात्**=पोतृकर्म के हेतु से—अपने जीवन को पवित्र बनाने के दृष्टिकोण से **सोमम् आपिबत**=सोम (वीर्य) का अपने अन्दर ही पान करो। इसप्रकार तुम **भरतस्य सूनवः**=भरत के पुत्र बनो—अपना भरण बड़ी उत्तमता से करनेवाले बनो। २. **यज्ञैः संमिश्लाः**=ये सोमपान करनेवाले यज्ञों से युक्त होते हैं—इनका जीवन यज्ञमय बनता है। ये लोग **यामम्**=इस जीवन-यात्रा के मार्ग में **पृषतीभिः** (पृष् सेचने)=जिनका शक्ति से सेचन किया गया है, ऐसे **ऋष्टिभिः**=आयुधों से—इन्द्रियों, मन व बुद्धिरूप साधनों से **शुभ्रासः**=उज्ज्वल जीवनवाले होते हैं। इनकी इन्द्रिय, मन व बुद्धि सभी चमकते हैं **उत**=और ये सोमरक्षक पुरुष **अञ्जिषु**=आभरणों में **प्रिया**=बड़े प्रिय लगते हैं। स्वास्थ्य, निर्मलता व बुद्धि की तीव्रता ही इनके आभरण होते हैं। इन आभरणों से इनकी शोभा बढ़ जाती है।

भावार्थ—ज्ञान व पवित्रता के उद्देश्य से हम सोम का रक्षण करें। इससे हमारा जीवन यज्ञमय, प्रकाशमय व शक्ति-सम्पन्न होगा।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

सोम-रक्षण से अग्नितत्त्व की उचित स्थिति

आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि॥ ५॥

१. हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले **विप्र**=ज्ञानिन्! **इह**=इस जीवन में **देवान्**=देवों को—दिव्य गुणों को **आवक्षि (आवह)**=प्राप्त कर, **च**=और **उशन्**=प्रभु-प्राप्ति की कामना करता हुआ **यक्षि**=दिव्यगुणों को अपने साथ संगत कर। **त्रिषु योनिषु**=तीनों घरों में **निषद**=तू आसीन हो। स्थूलशरीर में आसीन हुआ-हुआ तू पूर्ण स्वस्थ बन। सूक्ष्मशरीर में आसीन हुआ-हुआ तू ज्ञान को बढ़ानेवाला हो। कारणशरीर में स्थित हुआ-हुआ तू सबके साथ एकत्व का अनुभव कर। २. इस **प्रस्थितम्**=निरन्तर गतिवाले—चलने के स्वभाववाले—**सोम्यं मधु**=सोम-सम्बन्धी मधु का तू **प्रतिवीहि**=भक्षण कर—इसे तू शरीर में ही सुरक्षित कर। **आग्नीध्रात्**=अपने अन्दर अग्नितत्त्व के धारण के उद्देश्य से तू इसे **पिब**=अपने अन्दर पीनेवाला हो। तू **तव**=अपने **भागस्य तृप्णुहि**=इस भजनीय सोम के पान से तृप्ति (प्रीति) का अनुभव कर। इस सोम के पान से तेरा मन सदा प्रसन्न हो।

भावार्थ—सोम-रक्षण से शरीर में अग्नितत्त्व ठीक बना रहता है और मन में प्रसन्नता होती है।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

नृम्ण-सहः-ओजः

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब॥ ६॥

१. **एषः स्यः**=ये जो गतमन्त्रों में वर्णित सोम **ते तन्वः**=तेरे शरीर के **नृम्णवर्धनः**=बल का वर्धन करनेवाला है, इसके द्वारा **प्रदिवि**=प्रकृष्ट ज्ञान होने पर **सहः**=शत्रुमर्षक बल तथा **ओजः**=इन्द्रियशक्तियों का वर्धक बल **बाह्वोः**=तेरी भुजाओं में **हितः**=स्थापित होता है। २. **तुभ्यं सुतः**=तेरे लिए इस सोम को उत्पन्न किया गया है। हे **मघवन्**=यज्ञशील पुरुष! **तुभ्यम्**=तेरे हित के लिए **आभृतः**=यह शरीर में समन्तात् भृत हुआ है। **त्वम्**=तू **ब्राह्मणात्**=ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति

के हेतु से **आतृपत्पिब**=खूब तृप्त होता हुआ इसे पी। इसे तू अपने अन्दर ही व्याप्त करनेवाला बन।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित हुआ सोम बल व सुख को बढ़ानेवाला है। यह रोगकृमिरूप शत्रुओं को कुचलनेवाला है। इन्द्रियशक्तियों का वर्धक है। अन्ततः यह ब्रह्म प्राप्ति का साधन बनता है।

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**द्रविणोदाः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'प्रभु-स्मरण व यज्ञों' में लगे रहना

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ७॥

१. **यम् उ**=जिस प्रभु को ही **पूर्वम् अहुवे**=मैं दिन के प्रारम्भ में पुकारता हूँ **तम् इदं हुवे**=उस प्रभु को ही अब सायं भी पुकारता हूँ। **सः इत् उ**=वह प्रभु ही **हव्यः**=पुकारने योग्य हैं—आराधना के योग्य हैं। **ददिः**=वे ही सब कुछ देनेवाले हैं, **यः**=जो **नाम**=निश्चय से **पत्यते**=सारे संसार के ईश व पति हैं। २. **अध्वर्युभिः**=जीवन-यज्ञ को चलानेवाली इन्द्रियों, मन व बुद्धि से **प्रस्थितम्**= प्रस्थान व गति के स्वभाववाले **सोम्यं मधु**=सोम सम्बन्धी मधु का तू **पिब**=पान कर। यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त इन्द्रियों से ही सोम का रक्षण सम्भव होता है। ३. हे **द्रविणोदः**=धनों को दान करनेवाले यज्ञशील पुरुष! **पोत्रात्**=अपने जीवन को पवित्र बनाने के दृष्टिकोण से **ऋतुभिः सोमं पिब**=समय रहते तू सोम का पान कर। तू युवावस्था में ही सोम को शरीर में सुरक्षित करनेवाला बन।

भावार्थ—हम प्रभु का स्मरण करें—यज्ञों की वृत्तिवाले बनें। यही सोम-रक्षण का मार्ग है।

सोम-रक्षण से हम 'मधुच्छन्दाः'=उत्तम इच्छाओंवाले बनते हैं। यही अगले सूक्त का ऋषि है।

६८. [अष्टषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

व्याख्या देखें अथर्व० २०.५७.१-३

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'विग्र, अस्तृत, विपश्चित्'

परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

१. गतमन्त्रों में वर्णित 'सुमतियों' के प्रापण के लिए प्रभु जीव से कहते हैं—**परेहि**=विषयों व सांसारिक कामनाओं से दूर हो। **विग्रम्**=मेधावी **अस्तृतम्**=काम-क्रोध आदि से अहिंसित पुरुष को प्राप्त हो। इस ज्ञानी व संयमी पुरुष के समीप प्राप्त होकर तू ज्ञान का संग्रह करने में यत्नशील हो। इस **विपश्चितम्**=ज्ञानी पुरुष से **इन्द्रं पृच्छा**=परमात्मा के विषय में पूछनेवाला हो। २. उस विपश्चित् से तू प्रश्न करनेवाला बन, **यः**=जो **ते**=तेरे लिए तथा **सखिभ्यः**=तेरे समान ज्ञान प्राप्त

करने की कामनावाले मित्रों के लिए उस **वरम्**=श्रेष्ठ वरणीय ज्ञानधन को **आ** (नयति) प्राप्त कराता हो।

भावार्थ—हम विषयों से ऊपर उठें और 'विप्र, अस्तृत, विपश्चित्' पुरुषों से आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

व्यर्थ के कार्यों से दूर

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥

१. गतमन्त्र के अनुसार हम ज्ञानी व संयमी पुरुषों के समीप पहुँचकर ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करें ही, **उत**=और इसके साथ हम **निदः**=निन्दाओं को **नो** (न+उ)=न ही **ब्रुवन्तु**=बोलें—हमारे मुख से कभी निन्दात्मक शब्दों का उच्चारण न हो। २. प्रभु कहते हैं कि **अन्यतः**=दूसरे कामों से, अर्थात् अनावश्यक अनुपयोगी कार्यों से **चित्**=निश्चयपूर्वक **निः आरत**=बाहर गति करनेवाले हों। 'ताश खेलते रहना या गपशप मारते रहना' आदि कर्मों से निश्चयपूर्वक बचो। ३. जब भी कभी अवकाश हो, अर्थात् हम घर के कार्यों को कर चुके हों—स्वाध्याय से श्रान्त हो गये हों तब हम **इत्**=निश्चयपूर्वक **इन्द्रे**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में **दुवः**=परिचर्या को **दधानाः**=धारण करनेवाले हों।

भावार्थ—हम निन्दा न करें, व्यर्थ के कार्यों से दूर रहने का ध्यान करें। अवकाश के समय में सदा प्रभु के नाम का जप करें, उसी के अर्थ का भावन करें (तज्जपः, तदर्थभावनम्)

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

इन्द्रस्य शर्मणि

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

१. हे **दस्म**=शत्रुओं का क्षय करनेवाले प्रभो! आपकी कृपा से हमारा जीवन इसप्रकार भद्रता को लिये हुए हो कि **अरिः**=शत्रु भी **नः**=हमें **सुभगान्**=उत्तम भाग्यशाली—उत्तम ज्ञान आदि सम्पन्न **वोचेयुः**=कहें। हमारी भद्रता शत्रुओं के हृदयों को भी प्रभावित करे। २. **उत**=और **कृष्टयः**=कर्षणशील—श्रमशील बनकर हम **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के **शर्मणि**=सुख में—आनन्द में **इत्**=निश्चय से **स्याम**=निवास करनेवाले हों। प्रभु की ओर से आनन्द का लाभ उन्हें ही होता है जो श्रमशील बनते हैं, अकर्मण्यता के साथ आनन्द का सम्बन्ध नहीं है।

भावार्थ—हम क्रोध आदि से दूर होकर भद्र जीवन बिताते हुए शत्रुओं से भी भागयशाली समझे जाएँ तथा श्रमशील बनकर प्रभु के आनन्द में भागी हों।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सोम-रक्षण व शोभामय जीवन

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्। पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

१. **आशवे**=(अशू व्याप्तौ) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में होनेवाले उस प्रभु की प्राप्ति के लिए **ईम्**=निश्चय से **आशुम्**=सम्पूर्ण रुधिर में व्याप्त होनेवाले इस सोम को **आभर**=सब प्रकार से अपने में धारण करने का प्रयत्न कर। २. उस सोम का तू भरण कर जोकि **यज्ञश्रियम्**=यज्ञमय जीवनवाले पुरुष की श्री का कारण है। **नृमादनम्**=यह उन्नतिशील नरों को आनन्दित करनेवाला है। **पतयत्**=(पतयन्तम्=कर्मणि व्याप्नुवन्तम्—सा०) यह सोम कर्मों में व्याप्त होनेवाला है—यह अपने रक्षक को कर्मशूर बनाता है। **मन्दयत्सखम्**=उस आनन्दित करनेवाले प्रभु में यह सोम

सखिभूत है—परमात्म-प्राप्ति का यह प्रमुख साधन बनता है और प्रभु-प्राप्ति द्वारा अद्‌भुत आनन्द को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए सोम-रक्षण आवश्यक है। यह हमें यज्ञों में प्रवृत्त कर शोभावाला बनाता है, हमारी उन्नति को सिद्ध करके आनन्दित करता है। यह हमें कर्मशूर बनाता है, आनन्दित करनेवाले प्रभु का सखिभूत है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सोम-रक्षण व संग्राम-विजय

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः। प्रावो वाजेषु वाजिनम्॥ ८॥

१. हे **शतक्रतो**=अनन्त कर्मों व प्रज्ञानोंवाले प्रभो! आप **अस्य पीत्वा**=इस सोम की रक्षा करके **वृत्राणाम्**=ज्ञान पर आवरण के रूप में आ जानेवाली काम आदि वासनओं के **घनः**=मारनेवाले **अभवः**=होते हैं। सोम रक्षणवाला पुरुष क्रोध आदि का शिकार नहीं होता। २. हे प्रभो! आप **वाजेषु**=इन वासना-संग्रामों में **वाजिनम्**=प्रशस्त अन्नवाले को (वाज-अन्न) **प्रावः**=प्रकर्षेण रक्षित करते हैं। जब एक मनुष्य सात्त्विक अन्न का सेवन करता है तब उसकी बुद्धि व मन भी सात्त्विक बनते हैं। सात्त्विक बुद्धिवाला वासना-संग्राम में अवश्य वियजी बनता है।

भावार्थ—प्रभु नामस्मरण से हम वासनाओं से ऊपर उठते हैं—शरीर में सोम का रक्षण कर पाते हैं। प्रभु हमें शक्तिशाली बनाकर संग्रामों में रक्षित करते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु-पूजन व संग्राम-विजय

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो। धनानामिन्द्र सातये॥ ९॥

१. हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञानों व शक्तियोंवाले प्रभो! **वाजेषु**=काम क्रोध आदि के साथ होनेवाले संग्रामों में **वाजिनम्**=प्रशस्त शक्ति देनेवाले **तं त्वा**=उन आपको हम **वाजयामः**=अर्चित करते हैं। (वाजयति=अर्चति नि०)। प्रभु की उपासना से—प्रभु की शक्ति से शक्ति सम्पन्न होकर ही हम शत्रुओं को पराभूत कर पाते हैं। २. हे **इन्द्र**=सर्वैश्वर्यों के स्वामिन् प्रभो! इन शत्रुओं को जीतकर ही हम **धनानां सातये**=धनों की प्राप्ति के लिए होते हैं। आपने ही शत्रुविजय द्वारा हमें 'स्वास्थ्य-नैर्मल्य-बुद्धि की तीव्रता' रूप ऐश्वर्यों को प्राप्त कराना है।

भावार्थ—प्रभु ही हमें अध्यात्म संग्रामों में विजयी बनाते हैं और धन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'सुपार' प्रभु

यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तस्मा इन्द्राय गायत॥ १०॥

१. **तस्मै इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिए **गायत**=गुणों का गायन करो, **यः**=जोकि **रायः**=धनों के **अवनिः**=रक्षक व स्वामी हैं। **महान्**=वे प्रभु ही पूजनीय हैं। प्रभु अपने उपासकों को आवश्यक धन प्राप्त कराते ही हैं। २. **सु-पारः**=प्रभु ही हमें सब कार्यों के पार ले-चलनेवाले हैं—प्रभु-कृपा से ही सब कार्य पूर्ण होते हैं। **सुन्वतः सखा**=वे प्रभु यज्ञशील पुरुष के मित्र हैं अथवा **सुन्वतः**=सोम का सम्पादन करनेवाले के वे मित्र हैं। प्रभु की प्राप्ति यज्ञशील व सोमरक्षक को ही होती है।

भावार्थ—प्रभु ही धनों के दाता, पूजनीय, कार्यों के साधक व यज्ञशील के मित्र हैं। हम

प्रभु का ही गायन करें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सम्मिलित प्रभु-पूजन

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखाय स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥

१. हे **स्तोमवाहसः**=प्रभु के स्तोत्रों का धारण करनेवाले **सखायः**=मित्रो! **आ तु एत**=आप निश्चय से आइए और आकर **निषीदत**=आपने-अपने आसनों पर नम्रता से बैठिए तथा **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का **अभिप्रगायत**=प्रातः-सायं गायन कीजिए। २. 'स्तोमवाहसः' शब्द से यह भाव स्पष्ट है कि हमें प्रभु के स्तोत्रों को अपने जीवन में अनूदित करना है (वह to carry out)। 'सखायः' का भाव 'तुल्य ख्यानवाले—समान विचारवाले हैं। प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले एकत्र होते हैं' और मिलकर नम्रता से प्रभु का पूजन करते हैं।

भावार्थ—हम प्रतिदिन सम्मिलित होकर नम्रता से प्रभु-पूजन करनेवाले हों।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

पुरूणां पुरूतमम्

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ १२ ॥

१. गतमन्त्र के अनुसार हम मिलकर उस प्रभु का गायन करें, जो **पुरूणां पुरूतमम्**=(पृ पालनपूरणयोः) पालकों में सर्वोत्कृष्ट पालक हैं। अथवा जो हमारे 'पुरून् तमयति ग्लापयति' बहुत भी शत्रुओं को क्षीण बकरनेवाले हैं। शत्रुओं को क्षीण करके ही तो वे प्रभु सब वरणीय धनों को हमें प्राप्त कराते हैं। वे प्रभु **वार्यणाम्**=वरणीय धनों के **ईशानम्**=ईशान हैं। २. **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का **सुते सोमे**=सोम का अभिषव (सम्पादन) करने पर **सचा**=प्रभु से मेल होने पर हम गायन करें। यह सोम हमें उस सोम (प्रभु) से मिलाने का साधन बनता है।

भावार्थ—प्रभु पालकों में सर्वोत्तम पालक हैं। वे हमारे शत्रुओं को क्षीण करते हैं। वरणीय धनों के वे ईशान हैं। उस प्रभु का स्तवन यही है कि हम सोम के रक्षण से बुद्धि को सूक्ष्म करके प्रभु का दर्शन करनेवाले बनें।

अगला सूक्त भी 'मधुच्छन्दाः' का ही है—

६९. [एकोनसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'धन, बुद्धि व शक्ति' के दाता प्रभु

स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्याम्। गमद्वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥

१. **सः**=वे प्रभु **घा**=निश्चय से **नः**=हमारे **योगे**=अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के विषय में **आभुवत्**=साधक होते हैं। प्रभु के अनुग्रह से ही हमें सब आवश्यक वस्तुएँ मिलती हैं। **सः**=वे प्रभु **राये**=धन के लिए (आभुवत्=) सहायक होते हैं। **सः**=वे प्रभु ही **पुरन्ध्याम्**=पालन व पूरण करनेवाली बुद्धि की प्राप्ति में सहायक होते हैं—प्रभु ही हमारे लिए बुद्धि प्राप्त कराते हैं। २. **सः**=वे प्रभु **नः**=हमें **वाजेभिः**=सात्त्विक अन्नों व बलों के साथ **आगमत्**=प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमें सब अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराते हैं। वे ही धन, बुद्धि व शक्ति देते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु को हृदय में आसीन करना

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत॥ २॥

१. **यस्य**-जिसके **संस्थे**=हृदयदेश में स्थित होने पर **शत्रवः**=काम-क्रोध आदि शत्रु **समत्सु**=अध्यात्म-संग्रामों में **हरी**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों को **न वृण्वते**=आक्रमण के लिए नहीं चुनते—इनपर आक्रमण नहीं करते—इनपर आवरण के रूप में नहीं आ जाते। **तस्मा इन्द्राय गायत**=उस प्रभु का मिलकर गायन करो। २. प्रभु-स्मरण हमें काम आदि के आक्रमण से बचाता है। जिस घर में परिवार के सदस्य मिलकर प्रभु का गायन करते हैं, वहाँ शरीर रोगादि से आक्रान्त नहीं होते और मन काम-क्रोध का शिकार नहीं होता।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण होने पर इन्द्रियाँ काम-क्रोध आदि से आक्रान्त नहीं होतीं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'शुचयः-दध्याशिरः' सोमासः

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः॥ ३॥

१. गतमन्त्र के अनुसार जब इन्द्रियों पर वासनाओं का आक्रमण न होगा तब हम सोम की रक्षा कर पाएँगे। **इमे सुताः**=ये उत्पन्न हुए-हुए सोमकण **सुतपाव्ने**=उत्पन्न हुए-हुए सोमकणों की रक्षा करनेवाले के लिए **शुचयः**=पवित्रता करनेवाले होते हैं। सोमकणों का असंयम ही आर्थिक अपवित्रता की ओर ले-जाता है। २. ये सुरक्षित सोमकण **वीतये**=(वी to shine) हमारे जीवन को चमकाने के लिए **यन्ति**=हमें प्राप्त होते हैं। इनके द्वारा ज्ञानाग्नि दीप्त हो उठती है। ये **सोमासः**=सोमकण **दध्याशिरः**=(धत्ते, आशृणाति) हमारे शरीरों को धारण करते हैं और सब दोषों को शीर्ण कर देते हैं।

भावार्थ—हम उत्पन्न सोमकणों का रक्षण करके पवित्र मनवाले (शुच्यः), दीप्त मस्तिष्कवाले (वीतये) व सबल शरीरवाले बनें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सोम-रक्षण द्वारा वृद्धि व ज्येष्ठता की प्राप्ति

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो॥ ४॥

१. हे **सुक्रतो**=उत्तम कर्मसंकल्प व ज्ञानवाले जीव! **त्वम्**=तू **सुतस्य पीतये**=इस उत्पन्न हुए हुए सोम के पान के लिए हो—सोम का तू शरीर में ही रक्षण करनेवाला बन. इस सोम-रक्षण से तू **सद्यः**=शीघ्र **वृद्धः**=बढ़ी हुई शक्तियोंवाला **अजायथाः**=हो जाता है। इससे तेरा शरीर स्वस्थ बनता है, मन **ज्यैष्ठ्याय**=ज्येष्ठता के लिए होता है। ब्राह्मण बनकर तू ज्ञान से ज्येष्ठ बनता है, क्षत्रिय बनकर बल के दृष्टिकोण से ज्येष्ठ होता है और वैश्य के रूप में बढ़े हुए धन धान्यवाला होता है।

भावार्थ—सोम रक्षण ही वृद्धि व ज्येष्ठता का मूल है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

क्रियाशीलता-शान्ति-प्रकृष्ट चेतना

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः। शं ते सन्तु प्रचेतसे॥ ५॥

१. हे **इन्द्र**-जितेन्द्रिय पुरुष! **सोमासः**=ये सोमकण **त्वा आविशन्तु**=तुझमें समन्तात् प्रवेश

करें—तेरे शरीर में व्याप्त हो जाएँ। ये सोमकण **आशवः**=तुझे सदा कर्मों में व्याप्त करनेवाले हैं (अश् व्याप्तौ)। सोमकणों के शरीर में व्याप्त होने पर तुझे अकर्मण्यता नहीं घेर सकती। २. हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों का सेवन करनेवाले पुरुष! ये सुरक्षित हुए-हुए सोमकण **ते शं सन्तु**=तुझे शान्ति देनेवाले हों। **प्रचेतसे**=ये तेरी प्रकृष्ट चेतना के लिए हों। इनके रक्षण से तू सदा आत्म-स्मरणवाला हो। 'मैं कौन हूँ', 'मैं यहाँ क्यों आया हूँ', इन बातों का स्मरण तुझे कभी मार्गभ्रष्ट न होने देगा।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें 'क्रियाशील, शान्तस्वभाव व प्रकृष्ट चेतनायुक्त' बनाता है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

स्तोम+उक्थ-गीः

त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो। त्वां वर्धन्तु नो गिरः॥ ६॥

१. हे **शतक्रतो**=अनन्त कर्मों व प्रज्ञानोंवाले प्रभो! **त्वाम्**=आपको **स्तोमाः**=हम सामगान करनेवालों के स्तोम (स्तुतिसमूह) **अवीवृधन्**=बढ़ानेवाले हों। हम हृदय में भक्ति की भावना से भरित होकर साममन्त्रों से आपके गुणों का गायन करें। २. ज्ञानी पुरुष के **उक्था**=स्तुतिवचन भी **त्वाम्**=आपकी महिमा को ही बढ़ाते हैं। **नः**=हम कर्मकाण्डियों की **गिरः**=वाणियाँ भी **त्वां वर्धन्तु**=आपको ही बढ़ानेवाली हैं।

भावार्थ—भक्तों के स्तोम, ज्ञानियों के उक्थ तथा कर्मकाण्डियों की गिराएँ—सभी प्रभु की महिमा का वर्धन करनेवाली हों।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सात्त्विक अन्न द्वारा बल-वर्धन

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्। यस्मिन्विश्वानि पौंस्या॥ ७॥

१. **अक्षितोतिः**=यह न नष्ट हुए-हुए रक्षणवाला—सोम-रक्षण द्वारा अपनी रक्षा करनेवाला **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **इमम्**=इस **सहस्रिणम्**=(स+हस्) सदा हास्य व प्रसन्नता देनेवाले **वाजम्**=अन्न का **सनेत्**=सेवन करे। **यस्मिन्**=जिस सात्त्विक अन्न में **विश्वानि पौंस्या**=सब बल हैं। २. हम सात्त्विक अन्नों का सेवन करते हुए अपनी शक्ति का वर्धन करें और सदा अपना रक्षण करनेवाले हों।

भावार्थ—हम सात्त्विक अन्न का सेवन करें। इसप्रकार अपने बलों का वर्धन करके अनष्ट रक्षणवाले हों।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

न द्रोह, न वध

मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः। ईशानो यवया वधम्॥ ८॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **नः तनूनाम्**=हमारे शरीरों का—हमसे दिये गये इन शरीरों का **मर्ता**=विषयों के पीछे मरनेवाले मनुष्य **मा अभिद्रुहन्**=द्रोह न करें—वे इन शरीरों को मारने की कामनावाले न हों। विषयासक्ति शरीर-ध्वंस का कारण बनती है। २. हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों का संभजन करनेवाले जीव! **ईशानः**=इन्द्रियों का ईश होता हुआ तू **वधम् यवय**=वध को अपने से पृथक् कर। अपने शरीर का वध न होने दे।

भावार्थ—हम विषयासक्ति से ऊपर उठकर शरीरों से द्रोह न करें। जितेन्द्रिय बनकर वध

को अपने से दूर रखें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ९ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ १० ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥ ११ ॥

देखो व्याख्या, अथर्व० २०.२६.४–६ ॥

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥ १२ ॥

देखो व्याख्या, अथर्व० २०.४०.३ ॥

अगले सूक्त का ऋषि भी 'मधुच्छन्दाः' ही है—

७०. [सप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वासनाविनाश द्वारा ज्ञानरश्मि-प्रादुर्भाव

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=इन्द्रियों को वश में करने के लिए यत्नशील जीव! **वीडु चित्**=अत्यन्त प्रबल भी **गुहा चित्**=कहीं हृदय गुहा में छिपकर बैठी हुई भी इन वासनाओं को **आरुजत्नुभिः**=सब प्रकार से पूर्णतया नष्ट करनेवाले और इसप्रकार **वह्निभिः**=लक्ष्य-स्थान तक ले-जानेवाले इन मरुतों (प्राणों) से युक्त होकर तू **उस्रियाः**=ज्ञानरश्मियों को **अनु अविन्दः**=प्राप्त करता है। २. यहाँ मन्त्र में मरुत् शब्द नहीं है तब भी 'मरुतः' देवता होने से मरुत् शब्द को अर्थ करते समय उपयुक्त कर लिया गया है। ये प्राण ही वासनाओं का भंग करनेवाले व हमें लक्ष्य स्थान पर ले-जानेवाले हैं।

भावार्थ—इन्द्र (जीवात्मा) सेनानी है, मरुत् (प्राण) उसके सैनिक हैं। ये प्राण वासनारूप शत्रुओं का विनाश करते हैं और आवरण को हटाकर ज्ञान रश्मियों का प्रादुर्भाव करते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'देवयन्तः-गिरः'

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः। महामनूषत श्रुतम् ॥ २ ॥

१. **देवयन्तः**=(देवमात्मनमिच्छन्तः) उस प्रभु को प्राप्त करने की कामनावाले **गिरः**=स्तोता लोग **महाम्**=पूजनीय **श्रुतम्**=सर्वज्ञत्व आदि गुणों से प्रसिद्ध प्रभु को **अनूषत**=स्तुत करते हैं। २. उस प्रभु को **अच्छ**=लक्ष्य करके स्तवन करते हैं जो **यथामतिम्**=यथार्थ ज्ञानवाले हैं और **विदद्वसुम्**=सब वसुओं को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से जहाँ यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है, वहाँ निवास के लिए आवश्यक सब धन भी प्राप्त हो जाते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

मन्दू समानवर्चसा

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा ॥ ३ ॥

१. गतमन्त्र के अनुसार प्रभु-स्तवन करता हुआ तू **अबिभ्युषा**=सब प्रकार के भयों से रहित उस **इन्द्रेण**=परमैश्वर्यशाली प्रभु से **संजग्मानः**=संगत होता हुआ **हि**=निश्चय से **संदृक्षसे**=दिखता है। यह प्रभु-संगम तुझे भी भीतिरहित व परमैश्वर्यवाला बनाता है। २. प्रभु संगम के होने पर ये उपास्य-उपासक दोनों **मन्दू**=आनन्दमय व **समानवर्चसा**=समान तेजवाले हो जाते हैं। प्रभु की गोद में पूर्ण निर्भीक यह उपासक भी आनन्दमय हो जाता है और प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। जैसे अग्नि में पड़कर लोहशलाका भी अग्निमय हो जाती है, इसी प्रकार यह उपासक भी प्रभु की भाँति हो जाता है। उपनिषदों के शब्दों में 'ब्रह्म इव'।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से प्रभु से संगत होकर हम भी प्रभु के समान 'आनन्द व शक्ति' का अनुभव करते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'निर्दोष-ज्ञानमय-प्रशंसनीय' जीवन

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ४॥

१. प्रभु की उपासना करनेवाला यह उपासक **मखः** (मख गतौ)=गतिशील—कर्मनिष्ठ होता है। यह मरुतों (प्राणों) के साथ उस प्रभु की **सहस्वत्** (बलोपेतं यथा स्यात्तथा)=सबल **अर्चति**=अर्चना करता है। प्रभु की अर्चना की वस्तुतः पहचान ही यह हैं कि उपासक में 'सहस्' की उत्पत्ति हुई या नहीं। २. जिन प्राणों की साधना करता हुआ इन्द्र प्रभु की अर्चना करता है, वे प्राण **अनवद्यैः**=अवद्य—निन्दनीय पाप से रहित हैं। प्राणसाधना वासना-विनाश द्वारा साधक को निष्पाप बनाती है। **अभिद्युभिः**=ये प्राण प्रकाश की ओर ले-जानेवाले हैं। वासनारूप वृत्र (आवरण) का विनाश करके ये ज्ञान को अनावृत्त कर देते हैं। **गणैः**=ये प्राण संख्यान के योग्य हैं—प्रशंसनीय हैं। (गण् to praise) **इन्द्रस्य काम्यैः**=जीवात्मा के चाहने योग्य हैं। वस्तुतः इन प्राणों के द्वारा ही 'हम निर्दोष-ज्ञानमय-प्रशंसनीय' जीवनवाले बनते हैं।

भावार्थ—यज्ञमय जीवनवाले बनकर प्राणसाधना द्वारा हम प्रभु का अर्चन करें। यह अर्चन हमें 'सहस्वान्' बनाएगा। प्राणसाधना से हम 'निर्दोष-ज्ञानयुक्त-प्रशंसनीय' जीवनवाले बनेंगे।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सर्वत्र प्रभु की महिमा का दर्शन

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि। समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ५ ॥

१. गतमन्त्र का आराधक प्रभु से आराधना करते हुए कहता है कि **परिज्मन्**=हे चारों ओर गये हुए सर्वव्यापिन् प्रभो! **आगहि**=आप हमें प्राप्त होइए। **अतः**=इस पृथिवीलोक से **दिवः वा**=या द्युलोक से **रोचनात् अधि**=इस चन्द्र व विद्युत् की दीप्तिवाले अन्तरिक्ष से (आगहि) आप हमें प्राप्त होइए, अर्थात् पृथिवीस्थ अग्नि आदि देवों का चिन्तन करता हुआ मैं उन देवों में स्थापित किये गये देवत्व का दर्शन करूँ। इसी प्रकार अन्तरिक्ष के देवों में मैं आपकी महिमा का दर्शन करूँ तथा द्युलोक के देवों में मुझे आपका प्रकाश मिले। २. इस प्रकार सर्वत्र प्रभु की महिमा को देखनेवाले **गिरः**=स्तोता लोग **अस्मिन्**=इस परमात्मा में **समृञ्जते**=अपने जीवन को सुभूषित करते हैं। प्रभु के अनुरूप बनने का प्रयत्न करते हुए ये स्तोता लोग सुन्दर जीवनवाले बन जाते हैं।

भावार्थ—हम सर्वत्र प्रभु की महिमा को देखें। प्रभु में स्थित हुए-हुए, प्रभु के अनुरूप बनने का प्रयत्न करते हुए अपने जीवन को सुन्दर बना पाएँ।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'दृढ़ शरीर-उज्ज्वल मस्तिष्क-स्निग्ध हृदय' (आदर्श भक्त)

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि। इन्द्रं महो वा रजसः॥ ६॥

१. **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु से हम **इतः पार्थिवात् अधि**=इस पार्थिवलोक से **सातिम्**=धनदान को **ईमहे**=माँगते हैं। पार्थिवलोक यह शरीर है। इसका धन यही है कि यह वज्र तुल्य दृढ़ हो, अतः हम प्रथम आराधना यही करते हैं कि हमारा शरीर पत्थर के समान दृढ़ हो। २. हम उस प्रभु से **दिवः वा**=इस द्युलोक का धन माँगते हैं। द्युलोक का धन दीप्ति है—हम ज्ञानदीप्ति की याचना करते हैं। ३. **महः रजसः वा**=हम इस महान् अन्तरिक्षलोक से (सातिम् ईमहे) धन-दान माँगते हैं। अन्तरिक्षलोक में जैसे चन्द्रमा शीतल किरणों से ज्योत्स्ना फैला रहा है उसी प्रकार हमारा हृदय प्रेम की स्निग्ध भावना से शीतलता को प्रवाहित करनेवाला हो।

भावार्थ—प्रभुभक्त का आदर्श है 'दृढ़ शरीर, उज्ज्वल मस्तिष्क, स्निग्ध हृदय'।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत॥ ७॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः॥ ८॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत्॥ ९॥

व्याख्या देखो, अथर्व० २०.३८.४-६ या २०.४७.४-६॥

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'वाजों व सहस्रप्रधनों' में विजय

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च। उग्र उग्राभिरूतिभिः॥ १०॥

१. वैदिक साहित्य में छोटे युद्ध 'वाज' कहलाते हैं और अध्यात्म-जीवन को सुन्दर बनाने के लिए काम-क्रोध आदि के साथ चलनेवाले संग्राम 'सहस्रप्रधन' हैं। हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **नः**=हमें **वाजेषु**=युद्धों में **अव**=रक्षित कीजिए। आपकी कृपा से हम धनों का विजय करके 'अभ्युदयशाली' बनें। २. **च**=और आप हमें **सहस्रप्रधनेषु** (सहस्+प्रधन)=आनन्द-प्राप्ति के कारणभूत संग्रामों में भी रक्षित कीजिए। काम को पराजित करके हम 'प्रेम' वाले बनें, क्रोध को पराजित करके 'करुणा' को अपनाएँ तथा लोभ-विनाश से हम 'दया' वाले बनें। इन 'प्रेम, करुणा व दया' ने ही तो हमें 'निःश्रेयस' प्राप्त कराना है। ३. हे **उग्र**=तेजस्विन् प्रभो! आप अपने **उग्राभिः ऊतिभिः**=तेजपूर्ण, प्रबल रक्षणों से इन युद्धों में हमें विजयी बनाइए।

भावार्थ—प्रभु की सहायता से वाजों में विजयी बन हम 'अभ्युदय' को प्राप्त करें तथा सहस्रप्रधनों में विजयी बनकर 'निःश्रेयस' को सिद्ध करें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'महाधन व अर्भ' में विजय

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे। युजं वृत्रेषु वज्रिणम्॥ ११॥

१. **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को हम **महाधने**='दमन-दया व दान' रूप महाधनों की प्राप्ति के निमित्त **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु-कृपा से काम को पराजित करके मैं मन को दान्त

करता हूँ। प्रभु-कृपा से ही क्रोध को पराभूत करके मैं दयावाला बनता हूँ और लोभ को विनष्ट कर मैं दानशील होता हूँ। २. **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही हम **अर्भे**=छोटे धनों के निमित्त—सांसारिक धनों की प्राप्ति के निमित्त **हवामहे**=पुकारते हैं। ३. उस प्रभु को हम पुकारते हैं जोकि **युजम्**=सदा हमारा साथ देनेवाले हैं और **वृत्रेषु**=हमारे ज्ञान पर पर्दा डालनेवाली वासनाओं पर **वज्रिणम्**=वज्र का प्रहार करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर हम छोटे-बड़े सभी संग्रामों में विजयी बनें। प्रभु हमारा साथ न छोड़नेवाले सच्चे मित्र हैं। उनके अनुग्रह से ही हम वासनाओं पर विजय पाकर ज्ञानदीप्त बन पाते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'चरु-अपावरण'

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि। अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः॥ १२॥

१. हे **वृषन्**=संग्रामों में विजय प्राप्त कराके सुखों का वर्षण करनेवाले **सत्रादावन्**=सदा धनों व ज्ञानों को देनेवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिए **अमुं चरुम्**=अपने उस ज्ञान के कोश को **अपावृधि**=खोलिए। 'ब्रह्मचर्य' शब्द में ज्ञान के चरण का संकेत हैं, 'आचार्य' इस ज्ञान के चरण को करानेवाले हैं, ब्रह्मचारी इस चरण को करनेवाला है। इस चरु का प्रकट करना ही इसका अपावरण है। 'यस्मात् कोशादुभराम वेदम्' इन शब्दों में ज्ञान एक कोश है, उस कोश को प्रभु-कृपा से ही हम खोल पाएँगे। २. हे प्रभो! **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए आप **अप्रतिष्कुतः**=प्रतिशब्द से रहित हो—आप हमारे लिए 'न' इस शब्द का उच्चारण कीजिए ही नहीं। हमारी प्रार्थना सदा आपसे सुनी जाए।

भावार्थ—प्रभु हमारी प्रार्थना को सदा सुनें। हमारे लिए वे ज्ञान के कोश को खोल दें। हमपर सदा सुखों का वर्षण करें, हमारे लिए इष्ट धनों को देनेवाले हों।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

अनन्त दान-सान्त स्तवन

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः। न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्॥ १३॥

१. **तुञ्जे तुञ्जे**=प्रत्येक दान के कर्म में **ये**=जो उस **वज्रिणः**=काम, क्रोध, लोभ आदि पर वज्र का प्रहार करनेवाले **इन्द्रस्य**=शत्रुओं के विद्रावक परमैश्वर्यशाली प्रभु के **उत्तरे स्तोमाः**=उत्कृष्ट स्तवन होते हैं, उन स्तवनों द्वारा **अस्य**=इस प्रभु की **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को न **विन्धे**=(न विन्दामि) नहीं प्राप्त करता हूँ। २. प्रभु के दान अनन्त है, मेरी स्तुति तो सान्त ही है। मैं कितना भी प्रभु का स्तवन करूँ, प्रभु के दान उस स्तवन से अधिक ही होते हैं। प्रभु के दान समाप्त नहीं होते, मेरी स्तुति समाप्त हो जाती है।

भावार्थ—प्रभु के अनन्त दानों का स्तवन करना हमारे सामर्थ्य से बाहर है। दान अनन्त हैं, हमारी शक्ति तो सान्त ही है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

हम 'गौएँ' हों, प्रभु हमारे 'गोपाल'

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा। ईशानो अप्रतिष्कुतः॥ १४॥

१. वे प्रभु **वृषा**=शक्तिशाली हैं, हमपर सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। वे हमें इसप्रकार प्राप्त होते हैं **इव**=जैसेकि **वंसगः**=वननीय (सुन्दर) गतिवाला गडरिया **यूथा**=भेड़ों के झुण्डों को

प्राप्त होता है। वे प्रभु **कृष्टीः**=श्रमशील मनुष्यों को **ओजसा इयर्ति**=ओजस्विता के साथ प्राप्त होते हैं। हमें प्रभु ओजस्वी बनाते हैं। २. **ईशानः**=वे प्रभु ईशान हैं—सब ऐश्वर्यों के स्वामी हैं और **अप्रतिष्कुतः**=प्रति शब्द से रहित हैं—कभी न करनेवाले नहीं है। प्रभु के दरबार में 'हमारी प्रार्थना कभी अस्वीकृत होगी', ऐसी सम्भावना नहीं है।

भावार्थ—हमें चाहिए कि हम प्रभु के निर्देश में इसप्रकार चलें जैसे भेड़ें गडरिये के निर्देश में चलती हैं। प्रभु का यह निरन्तर सम्पर्क हमें ओजस्वी बनाएगा। प्रभु हमें सब-कुछ देते हैं, 'न' नहीं करते।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

चर्षणीनाम्-वसूनाम्

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति। इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम्॥ १५॥

१. प्रभु वे हैं **यः**=जो **एकः**=अकेले ही **चर्षणीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के व **वसूनाम्**=सब धनों के **इरज्यति**=ईश हैं। 'श्रमशील मनुष्य' भी प्रभु के हैं, 'वसु' भी प्रभु के। प्रभु इन श्रमशील मनुष्यों को सब वसु प्राप्त कराते हैं। श्रमशील मनुष्य ही प्रभु को प्रिय हैं। इनसे भिन्न मनुष्य प्राकृतिक भोगों में फँस जाते हैं। २. **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **पञ्च क्षितीनाम्**=पाँचों मनुष्यों के स्वामी हैं। मानव-समाज पाँच भागों में बँटा है, 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व निषाद'। प्रभु इन सबके स्वामी हैं। सभी का हित करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु अपनी सर्वशक्तिमत्ता से सब मनुष्यों के ईश हैं। श्रमशील मनुष्यों के लिए सब वसुओं—धनों को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः॥ १६॥

देखो व्याख्या, अथर्व० २०.३९.१॥

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

उत्कृष्ट धन

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर॥ १७॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **रयिं आभर**=हमें ऐश्वर्य प्राप्त कराइए। उस रयि को जोकि **सानसिम्**=संभजनीय है—समविभागपूर्वक सेवनीय है। हम इस धन को अकेले न खाएँ। 'केवलाघो भवति केवलादी' इस बात का स्मरण रखें कि अकेला खाना तो पाप को ही खाना है। यह धन **सजित्वानम्**=विजयशील हो। हमारी सब आवश्यकताओं को पूर्ण करता हुआ हमें वासनाओं में फँसानेवाला न हो। **सदासहम्**-सदा वासनाओं का पराभव करनेवाला हो। यह धन वासनापूर्ति का साधन न बन जाए। ३. **वर्षिष्ठम्**=यह धन सदा बढ़ा हुआ हो—हमारे जीवनों में सुखों की वर्षा करनेवाला हो। इस धन को **ऊतये**=हमारे रक्षण के लिए प्राप्त कराइए। जीवन यात्रा की पूर्ति के लिए साधन बनता हुआ यह धन हमारा रक्षक हो।

भावार्थ—प्रभु हमें वह धन प्राप्त कराएँ जिसे हम बाँटकर खाएँ, जो हमें विजयी बनाए, वासनाओं का पराभव करे, सब आवश्यक साधनों को प्राप्त कराने के लिए पर्याप्त हो। यह धन हमारा रक्षक हो।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

धन का राष्ट्ररक्षा में विनियोग

नि येन॑ मुष्टिह॒त्यया॒ नि वृ॒त्रा रु॒णधा॑महै। त्वोता॑सो॒ न्यर्व॑ता ॥ १८ ॥

१. हमें वह धन प्राप्त कराइए **येन**=जिसके द्वारा अपने सैनिकों के **मुष्टिहत्यया**= (मुष्टिप्रहारेण) मुक्कों के प्रहारों से **नि**=निश्चितरूप से **वृत्रा**=शत्रुओं को—राष्ट्र को घेर लेनेवाले दुश्मनों को **निरुणधामहै**=निरुद्ध कर दें। उनको राष्ट्र पर आक्रमण करने से रोक सकें। २. हे प्रभो! **त्वा ऊतासः**=आपसे रक्षित हुए-हुए हम **अर्वता**=अपने घोड़ों से शत्रुओं को **नि** (रुणधमहै)= रोकनेवाले बनें। धन का विनियोग इस पदातिसैन्य व अश्वसैन्य के संग्रह में करके हम राष्ट्र का रक्षण करनेवाले हों।

भावार्थ—हमें प्रभु 'वर्षिष्ठ' धन दें, जिससे उचित संख्या में सैन्यसंग्रह द्वारा राष्ट्र का रक्षण सम्भव हो।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

धन द्वारा शस्त्रास्त्र संग्रह

इन्द्र॒ त्वोता॑स॒ आ व॒यं वज्रं॑ घ॒ना द॑दीमहि। जये॑म॒ सं यु॒धि स्पृधः॑ ॥ १९ ॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **त्वा ऊतासः**=आपसे रक्षित हुए-हुए **वयम्**=हम **घना**=दृढ़ **वज्रम्**=वज्र को—शस्त्रास्त्रसमूह को **आददीमहि**=सब प्रकार से ग्रहण करें। राष्ट्ररक्षा के लिए शस्त्रास्त्र की कमी न हो। सैनिकों के लिए उपकरण होंगे तभी तो विजय प्राप्त होगी। २. इस अस्त्र-संग्रह द्वारा हम **युधि**=युद्ध में **स्पृधः**=शत्रुओं को **संजयेम**=सम्यक् पराजित कर सकें।

भावार्थ—हम धन से सैन्यसंग्रह के साथ शस्त्रास्त्र संग्रह करके शत्रुओं का पराभव करनेवाले हों।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रमरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

रक्षणात्मक युद्ध

व॒यं शूरे॑भि॒रस्तृ॑भि॒रिन्द्र॒ त्वया॑ यु॒जा व॒यम्। सा॒स॒ह्याम॑ पृतन्यतः ॥ २० ॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावणकुशल प्रभो! **वयम्**=हम **शूरेभिः**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले वीर **अस्तृभिः**=अस्त्रों के फेंकने (चलाने) में कुशल सैनिकों के द्वारा तथा **त्वया युजा**=आपको साथी पाकर, अर्थात् धर्मयुक्त रक्षणात्मक युद्ध करते हुए, **पृतन्यतः**=हमपर सेनाओं द्वारा आक्रमण करनेवाले शत्रुओं को **सासह्याम**=खूब ही पराभूत करनेवाले हों।

भावार्थ—हम नाना शस्त्र-प्रहरण में प्रवीण वीर सैनिकों के द्वारा, प्रभु के आशीर्वाद से हमारे राष्ट्र पर आक्रमण करनेवाले शत्रुओं को कुचल सकें।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'मधुच्छन्दाः' ही है—

७१. [एकसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'महान् परः' इन्द्रः

म॒हाँ इन्द्रः॑ प॒रश्च॒ नु म॑हि॒त्वम॑स्तु व॒ज्रिणे॑। द्यौर्न प्र॑थि॒ना शवः॑ ॥ १ ॥

१. वे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **महान्**=महान् हैं—पूजनीय हैं और **नु च**=अब निश्चय से

परः=सर्वोत्कृष्ट हैं। उस प्रभु की महिमा अनन्त है, उनकी महिमा का वर्णन शब्दों से परे है। **वज्रिणे**=उस वज्रहस्त प्रभु के लिए **महित्वम् अस्तु**=हमारे हृदयों में पूजा का भाव हो। २. उस प्रभु का **शवः**=बल **द्यौः न प्रथिना**=आकाश के समान सर्वत्र फैला हुआ है। आकाश में सर्वत्र प्रभु की शक्ति दृष्टिगोचर होती है।

भावार्थ—सर्वत्र प्रभु की शक्ति को कार्य करता हुआ देखते हुए हम प्रभु का पूजन करें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

विजय किनको मिलती है

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ। विप्रासो वा धियायवः ॥ २ ॥

१. संग्राम में विजय **वा**=या तो उन्हें प्राप्त होती है **ये**=जो **समोहे**=संग्राम में **आशत**=शक्ति के कार्यों को करनेवाले इन्द्र को स्तुति से व्याप्त करते हैं। २. तथा जो **नरः**=उन्नति पर चलनेवाले सब व्यक्ति **तोकस्य**=(तु=पूर्तौ) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक धनों को **सनितौ**=प्राप्त करने में लगते है (आशत) ३. **वा**=तथा **धियायवः**=प्रज्ञा की कामनावाले **विप्रासः**= अपना पूरण करनेवाले होते हैं। वे प्रभु-स्तवन करते हुए विजयी होते हैं।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन करते हुए क्षत्रिय संग्राम विजय को, वैश्य धनवृद्धि को तथा ब्राह्मण ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

कर्मवीर, न कि वाग्वीर

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्रइव पिन्वते। उर्वीरापो न काकुदः ॥ ३ ॥

१. **यः कुक्षिः**=जो उदर **सोमपातमः**=अधिक-से-अधिक सोम का पान करनेवाला होता है, अर्थात् सोम को अपने में पूर्णतया सुरक्षित करता है, वही **समुद्रः इव**=अन्तरिक्ष के समुद्र की भाँति **पिन्वते**=सेचन करनेवाला होता है। समुद्र जैसे मेघरूप होकर सबपर सुखों की वर्षा करनेवाला होता है, इसी प्रकार यह संयमी पुरुष भी सभी को सुखी करने का प्रयत्न करता है। २. इस संयमी पुरुष के **आपः**=कर्म **उर्वी**=विशाल होते हैं। 'उदारं धर्ममित्याहुः' उदारता व विशालता ही तो कर्मों को धर्म बनाती है। संकुचित मनोवृत्ति से किये जानेवाले कर्म पाप होते हैं। **न काकुदः**=यह कर्मवीर पुरुष बहुत बोलता नहीं। (काकुद=वाणी)। यह वीर कर्म पर ही बल देता है, बोलने पर नहीं।

भावार्थ—हम सोम रक्षण करते हुए अन्तरिक्षस्थ मेघ की भाँति सबपर सुखों का वर्षण करनेवाले हों, उदार (विशाल) कार्यों को करनेवाले बनें, बोलें कम।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सूनृता, मही, पक्वा शाखा न (वेदवाणी)

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥

१. **एवा**=गतमन्त्र के अनुसार सोमपायी बनने पर **हि**=निश्चय से **अस्य**=इस ज्ञानरूप परमैश्वर्यवाले प्रभु की **सूनृता**=(सु ऊन ऋत) उत्तम, दुःखों का परिहाण करनेवाली तथा सत्यज्ञान देनेवाली वेदवाणी **विरप्शी**=विविध सत्यविद्याओं का प्रतिपादन करनेवाली होती है (रप्=व्यक्तायां वाचि)। **गोमती**=यह वेदवाणी प्रशस्त इन्द्रियोंवाली है। अध्ययन करनेवाले की इन्द्रियों को निर्मल बनाती है। **मही**=(मह पूजायाम्) अपने उपासक की मनोवृत्ति को पूजावाली बनाती है। वेदवाणी का उपासक ज्ञानपूर्ण मस्तिष्कवाला—यज्ञादि कर्मों में लगी हुई प्रशस्त

इन्द्रियोंवाला तथा मन में पूजा की वृत्तिवाला होता है। २. यह वेदवाणी **दाशुषे**=दाश्वान् के लिए—दानशील के लिए **पक्वा शाखा न**=परिपक्व शाखा के समान होती है। यह उसके लिए परिपक्व शाखा के समान विविध फलों को प्राप्त करानेवाली होती है। इस वेदवाणी से इसे 'क्षीर, सर्पि, मधु, उदक (सामवेद १२९९) पुण्यभक्ष व अमृतत्व (१३०३ साम) प्राप्त होता है। यह उसे 'आयु-प्राण-प्रजा-पशु-कीर्ति-द्रविण व ब्रह्मवर्चस्' (अथर्व) प्राप्त कराती है।

भावार्थ—वेदवाणी सब सत्यविद्याओं की प्रतिपादक है। यह धनों को देनेवाली है। पूजा की वृत्ति को प्राप्त कराती है तथा इष्टफलों को देनेवाली है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

मावान्-दाश्वान्

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे॥ ५॥

१. **एवा**=इसप्रकार **हि**=निश्चय से हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते विभूतयः**=आपके ऐश्वर्य हैं। ये ऐश्वर्य **मावते**=(प्रमावते) ज्ञानवाले पुरुष के लिए, **ऊतयः**=रक्षा के साधन होते हैं। ज्ञान के द्वारा इनका ठीक प्रयोग करते हुए हम जीवन को 'सत्य शिव व सुन्दर' बना पाते हैं। २. ये ऐश्वर्य **दाशुषे**=दाश्वान्—दानशील—लोभरहित पुरुष के लिए **चित्**=निश्चय से **सद्यः**=शीघ्र **सन्ति**=प्राप्त होते हैं। त्यागशील पुरुष ही इनसे लाभान्वित हो पाता है।

भावार्थ—हम ज्ञानवान् व त्यागशील बनकर प्रभु के सब पदार्थों का ठीक व मात्रा में प्रयोग करते हुए अपने कल्याण को सिद्ध करें—अपने जीवन को सुरक्षित बनाएँ।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

स्तोम व उक्थ

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये॥ ६॥

१. **एवा**=इसप्रकार **हि**=निश्चय से **अस्य**=इन ऐश्वर्यों व रक्षणोंवाले इन्द्र के **स्तोमः**=साम-मन्त्रों द्वारा स्तवन **च**=और **उक्थम्**=ऋचाओं द्वारा महिमा का प्रतिपादन **काम्या**=कामयितव्य है—चाहने योग्य है और **शंस्या**=शंसन के योग्य है। सामन्त्रों द्वारा हम प्रभु के गुणों का कीर्तन करें तथा ऋङ्मन्त्रों द्वारा सृष्टि के पदार्थों में रचना-सौन्दर्य-दर्शन से प्रभु की महिमा का शंसन करें। २. ये स्तोम व उक्थ—भक्तिप्रधान व विज्ञानप्रधान स्तवन हृदय व मस्तिष्क से होनेवाला उपासन **इन्द्राय**=परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिए होगा और **सोमपीतये**=सोम के रक्षण के लिए होगा। प्रभु-स्तवन द्वारा वासनाओं का विनाश होकर सोम का रक्षण सम्भव होता है। सोम-रक्षण द्वारा यह स्तवन हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु का गुणस्तवन व महत्त्वकथन ही हमारे लिए कामयितव्य व शंसनीय हो। यही मार्ग परमैश्वर्य की प्राप्ति का साधक है और सोम-रक्षण में सहायक है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सोम-रक्षण व महत्त्व-प्राप्ति

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महाँ अभिष्टिरोजसा॥ ७॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **इन्द्र**=इन्द्रियों के अधिष्ठातः जीव! तू **इहि**=मेरी ओर आ। **अन्धसः**=इस सोम के द्वारा तू **मत्सि**=आनन्द का अनुभव कर। इन **विश्वेभिः**=सब **सोमपर्वभिः**=सोम के शरीर में ही पूरणों के द्वारा **महान्**=तू बड़ा बनता है। सोम-रक्षण द्वारा मनुष्य उन्नत होता हुआ अन्ततः ब्रह्म को प्राप्त होता है। २. इसप्रकार महान् बनकर **ओजसा अभिष्टिः**=ओजस्विता

के साथ शत्रुओं का अभिभविता बन। (शत्रूणामभिभविता)। सोम-रक्षण से ही 'तेज, बल, ओज, व सहस्' प्राप्त होते हैं और हम शत्रुओं को कुचलने में समर्थ होते हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना करते हुए हम सोम का रक्षण करनेवाले बनें। यही महत्त्व प्राप्ति का मार्ग है। इसी से हम ओजस्वी बनकर शत्रुओं का अभिभव करनेवाले बनेंगे।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

मन्दी+चक्रि (स्तोता क्रियाशील)

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने। चक्रिं विश्वानि चक्रये॥ ८॥

१. **ईम्**=निश्चय से **सुते**=उत्पन्न होने पर **एनम्**=इस सोम को **आ सृजता**=(पुनः अभ्युन्नयत सा०) शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला करने का प्रयत्न करो। ऊर्ध्वरेता बनना ही जीव का मूल कर्त्तव्य है। २. यह सोम **मन्दिने**=(मन्दतेः स्तुतिकर्मणः) स्तुति करनेवाले **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **मन्दिम्**=आनन्द व हर्ष का देनेवाला है। यही **विश्वानि चक्रये**=सब कर्त्तव्य कर्मों को करने के स्वभाववाले जीव के लिए **चक्रिम्**=क्रियाशीलता को उत्पन्न करनेवाला है।

भावार्थ—शरीर में उन्नीत सोम हमें नीरोगता प्राप्त कराके आनन्दित करता है और शक्ति की वृद्धि द्वारा अनथक कार्य करनेवाला बनाता है।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'सुशिप्र' बनना

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे। सचैषु सवनेष्वा॥ ९॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं—हे **सुशिप्र** (हनू नासिके वा नि० ६.२७)-शोभन हनुओं व नासिका-छिद्रोंवाले जीव! हनुओं द्वारा भोजन को खूब चबाकर खानेवाले तथा नासिका छिद्रों से प्राणसाधना करनेवाले पूर्ण नीरोग व निर्दोष जीवनवाले जीव! तू **मन्दिभिः**=आनन्द देनेवाले **स्तोमेभिः**=प्रभु-स्तवनों से **मत्स्व**=एक मस्ती का अनुभव कर—तेरा हृदय प्रभु स्तवन द्वारा आनन्द से परिपूर्ण हो जाए। खूब चबाकर खाने से भोजन का सम्यक् परिपाक होकर वीर्य आदि धातुओं का उत्तम निर्माण होगा। प्राणसाधना से इस वीर्य की ऊर्ध्वगति होगी। प्रभु-स्तवन भी इस कार्य में सहायक होगा। अब जीवन में एक मस्ती का अनुभव होगा। २. हे **विश्वचर्षणे**=सब मनुष्यों का ध्यान करनेवाले स्तोता! **एषु सवनेषु**=जीवन के 'प्रातः-माध्यन्दिन व सायन्तन' सवनों में **सचा**=सदा सोम के साथ रहता हुआ (सह) अथवा सोम का शरीर में ही समवाय (षच् समवाये) करता हुआ **आ** (गच्छ)=तू हमारे प्राति आ।

भावार्थ—हम खूब चबाकर भोजन करते हुए वीर्य का सुन्दर निर्माण करें। प्राणसाधना द्वारा वीर्य की ऊर्ध्वगतिवाले हों। प्रभु-स्तवन में एक मस्ती का अनुभव करें। लोकहित में रत हुए-हुए सदा सोम-रक्षण द्वारा प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'सुखों के वर्षक व पालक' प्रभु

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत। अजोषा वृषभं पतिम्॥ १०॥

१. हे **इन्द्र**=मेरे सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **ते गिरः असृग्रम्**=आपके स्तुतिवचनों का निर्माण करता हूँ। ये स्तुतिवचन **त्वाम् प्रति**=आपके प्रति **उद् अहासत**=उद्गत होकर प्राप्त होते हैं। २. ये मेरे स्तुतिवचन **वृषभम्**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले **पतिम्**=सबके रक्षक आपको **अजोषा**=प्रिय हों—आपकी प्रीति का कारण बनें। मै कर्मशील बनकर इन

स्तुतिवचनों से आपको आराधित कर पाऊँ।

भावार्थ—हम कर्मों के द्वारा प्रभु का स्तवन करें। प्रभु को ही सुखों का वर्धक व पालक जानें। ये हमारी स्तुतियाँ हमें प्रभु का प्रीतिपात्र बनाएँ।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'चित्र-वरेण्य-विभु' राधस्

सं चौदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम्। असदित्ते विभु प्रभु॥ ११॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **राधः**=उस कार्य-साधक ऐश्वर्य को **अर्वाक् संचोदय**-हमारे अभिमुख प्रेरित कीजिए जोकि **चित्रम्**-ज्ञान का वर्धक है (चित्+र) तथा **वरेण्यम्**=वरने के योग्य है—श्रेष्ठ है—श्रेष्ठ साधनों से कमाया गया है। २. हे प्रभो! **ते**=आपकी कृपा से ही वह धन **असत्**=प्राप्त होता है जोकि **विभु**=आवश्यक योग्य वस्तुओं के जुटाने के लिए पर्याप्त है और **प्रभु**=प्रभावजनक है। **इत्**=निश्चय से हे प्रभो! वह धन **ते**=आपका ही है।

भावार्थ—प्रभु हमें 'चित्र-वरेण्य-विभु-प्रभु' धन प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

रभस्वतः-यशस्वतः

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः। तुविद्युम्न यशस्वतः॥ १२॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **अस्मान्**=हमें **तत्र**=वहाँ **राये**=ऐश्वर्य के लिए **सुचोदय**=सम्यक् प्रेरित कीजिए। उन हमें प्रेरित कीजिए जोकि **रभस्वतः**=उद्योगवाले हैं। हम श्रम द्वारा ही धन को प्राप्त करें और धन को प्राप्त करके भी श्रमशील बने रहें। आराम करनेवाले न बन जाएँ। २. हे **तुविद्युम्न**=महान् धनवाले प्रभो! हम **यशस्वतः**=यशस्वी जीवनवालों को ऐश्वर्य के लिए प्रेरित कीजिए। धन का अर्जन करके, महाधन बनकर, हम उस धन का यज्ञ आदि उत्तम कार्यों में विनियोग करें, जिससे यशस्वी हों। इस धन से भोगविलास में फँसकर हम अपयश व विनाश के मार्ग पर न चल दें।

भावार्थ—श्रम द्वारा धन का अर्जन करते हुए हम उसे यज्ञ आदि उत्तम कार्यों में विनियुक्त करते हुए यशस्वी बनें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'विश्वायु-अक्षित' धन

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्। विश्वायुर्धेह्यक्षितम्॥ १३॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अस्मे**=हमारे लिए उस **श्रवः**=यशस्वी धन को **संधेहि**=धारण कीजिए जोकि **गोमत्**=प्रशस्त गौओंवाला हो—जिस धन के द्वारा हम घरों में गौवों को रख सकें। **वाजवत्**=प्रशस्त अन्नवाले धन को धारण कीजिए। धन के द्वारा हम शक्तिवर्धक अन्नों को जुटा सकें। यह धन **पृथु**=विस्तारवाला व **बृहत्**=वृद्धिवाला हो। इस धन के विनियोग से हम शक्तियों का विस्तार करते हुए वृद्धि को प्राप्त हों। २. यह धन हमें **विश्वायुः**=पूर्ण जीवन देनेवाला हो। इस धन से हमारे शरीरों में शक्ति का वर्धन हो, मनों में पवित्रता बढ़े, अर्थात् हम यज्ञादि की प्रवृत्तिवाले बनें न कि भोगवृत्तिवाले तथा ज्ञान के साधनों को जुटाते हुए हम दीप्त मस्तिष्कवाले बनें। यह धन **अक्षितम्**=किसी भी प्रकार से हमें क्षीण न करे।

भावार्थ—प्रभु हमें 'गोमान्-वाजवान्-पृथु-बृहत्-विश्वायु-अक्षित' धन प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

द्युम्नं, श्रवः, रथिनी, इषः

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्। इन्द्र ता रथिनीरिषः॥ १४॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अस्मे**=हमारे लिए **श्रवः**=श्रवणीय—यशस्वी धन को **धेहि**=धारण कीजिए, जो धन **बृहत्**=वृद्धि का कारण बने, **द्युम्नम्**=ज्ञान की ज्योतिवाला हो, **सहस्रसातमम्**=सहस्रों के साथ संविभागपूर्वक सेवनीय हो—जिस धन को हम अकेले ही नहीं खा जाते। २. हे प्रभो! हमारे लिए **ताः**=उन **इषः**=अन्नों को प्राप्त कराइए, जोकि **रथिनीः**=उत्तम शरीररूप रथोंवाले हैं—जिनके द्वारा शरीररूप रथ उत्तम बनता है।

भावार्थ—प्रभु हमें यशस्वी व ज्ञानज्योति को बढ़ानेवाला धन दें तथा उन उत्तम अन्नों को प्राप्त कराएँ जिनके द्वारा हम शरीर-रथ को उत्तम बना सकें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वसुपतिं-ऋग्मियम्

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्। होम गन्तारमूतये॥ १५॥

१. हम **गीर्भिः गृणन्तः**=यज्ञरूप वाणियों से प्रभु का स्तवन करते हुए **वसोः ऊतये**=धनों से आवश्यकताओं की पूर्ति के द्वारा आभरण के लिए उन **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **होम**=पुकारते हैं, जो **वसुपतिम्**=सब धनों के स्वामी हैं तथा **ऋग्मियम्**=विज्ञानात्मक ऋचाओं का निर्माण करनेवाले हैं (ऋचौ मिमीते—सा०)। वस्तुतः ऋचाओं द्वारा विज्ञान को प्राप्त करके ये वैज्ञानिक सब पदार्थों में प्रभु की महिमा को देखते हुए प्रभु का स्तवन करते हैं। २. हम उन प्रभु को (ऊतये) अपने रक्षण के लिए पुकराते हैं जो **गन्तारम्**=स्तोता को अवश्य प्राप्त होते ही हैं।

भावार्थ—प्रभु सब धनों के स्वामी व ऋचाओं द्वारा ज्ञान देनेवाले हैं। हम प्रभु का स्तवन करते हैं। हम प्रभु को पुकराते हैं, प्रभु हमें धन व ज्ञान प्राप्त कराके हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

शत्रु-शोषक बल की अर्चना

सुतेसुते न्यो∫कसे बृहद् बृहत एदरिः। इन्द्राय शूषमर्चति॥ १६॥

१. **बृहत्**=वृद्धि को प्राप्त करनेवाला **अरिः** (इयर्ति)-क्रियाशील व्यक्ति **सुते-सुते**=प्रत्येक सोम-सम्पादन का कार्य होने पर **न्योकसे**=निश्चितरूप से हममें निवास करनेवाले **बृहते**=सदा से वृद्ध **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिए—प्रभु की प्राप्ति के लिए—**शूषम्**=शत्रु-शोषक बल को **अर्चति**=पूजित करता है। २. प्रभु को वही प्राप्त करता है जोकि वृद्धिशील है—क्रियामय जीवनवाला है, सोम का रक्षण करता है और बल का सम्पादन करता है।

भावार्थ—हम सोम का सम्पादन करें, वर्धनशील व क्रियामय जीवनवाले बनें, शक्ति की अर्चना करें, कामादि शत्रुओं का शोषण करके प्रभु को प्राप्त हों।

यह शक्ति की अर्चना करनेवाला अंग-प्रत्यंग में—प्रत्येक पर्व में शक्तिशाली बनता हुआ 'परुच्छेपः' कहलाता है=पर्व-पर्व में शक्तिवाला। यह इन्द्र की अर्चना करता हुआ कहता है—

७२. [द्विसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**परुच्छेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अत्यष्टिः** ॥

यज्ञ+स्तोम+प्रभु-दर्शन

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक्स्वः सनिष्ययवः पृथक्। तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि। इन्द्रं यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः॥ १॥

१. हे प्रभो! **वृषमण्यवः**=आपको ही सब सुखों का वर्षक जाननेवाले लोग **हि**=निश्चय से **विश्वेषु**=सब **सवनेषु**=यज्ञों में **त्वा**=आपके प्रति **तुञ्जते**=अपने को दे डालते हैं। इन सब यज्ञों को आपसे ही होता हुआ वे देखते हैं। ये सब **पृथक्**=अगल-अलग **स्वः सनिष्यवः**=सुख व प्रकाश को प्राप्त करने की कामनावाले लोग **पृथक्**=अगल-अलग होते हुए भी **समानम्**=सबके प्रति समान **एकम्**=अद्वितीय आपके ही प्रति अपने को दे देनेवाले होते हैं। आपके प्रति अर्पण करते हुए आपकी शक्ति से अपने यज्ञ आदि कर्मों को सिद्ध करनेवाले होते हैं। २. **नावं न पर्षणिम्**=नाव के समान इस भवसागर से पार लगानेवाले **तं त्वा**=उन आपको ही **शूषस्य धुरि**=सब सुखों व बलों के अग्रभाग में **धीमहि**=धारण करते हैं। आप ही सब शक्तियों के देनेवाले हैं, आप ही इन शक्तियों के द्वारा सुखों को प्राप्त कराते हैं। ३. **आयवः**=क्रियाशील मनुष्य **यज्ञैः**=देवपूजा-संगतिकरण व दानरूप धर्मों से **इन्द्रं न** (नःएव)=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **चितयन्तः**=अपने में चेताने के लिए यत्नशील होते हैं। **आयवः**=ये क्रियाशील मनुष्य **स्तोमेभिः**=स्तुतिसमूहों से **इन्द्रम्**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु को अपने हृदयों में प्रबुद्ध करते हैं। यज्ञों व स्तोत्रों से अपने को प्रभु-दर्शन के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—यज्ञों को करना और उन्हें प्रभु के प्रति अर्पित करना ही मोक्ष व सुख-प्राप्ति का साधन है। प्रभु ही हमें शक्तियों व सुखों को प्राप्त कराते हैं। वे ही भवसागर से तराते हैं। यज्ञों व स्तोत्रों से हम प्रभु-दर्शन के पात्र बनते हैं।

ऋषिः—**परुच्छेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अत्यष्टिः** ॥

क्रियामय जीवन व प्रभु-पूजन

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि। आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम्॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अवस्यवः**=रक्षण की कामनावाले **मिथुनाः**=छन्दों के रूप में रहनेवाले पति-पत्नी **त्वा**=आपका लक्ष्य करके **विततस्रे**=वासनाओं को विनष्ट करते हैं। (**वितस्**=to reject)। २. **गव्यस्य व्रजस्य**=इस इन्द्रियसमूह के **साता**=प्राप्ति के निमित्त **निःसृजः**=ये निश्चय से त्याग की वृत्तिवाले होते हैं अथवा पापों को अपने से निर्गत करनेवाले होते हैं (पापं निर्गमयन्तः)। हे इन्द्र! **सक्षन्त**=आपका सेवन करते हुए ये **निःसृजः**=पाप को अपने से दूर करते हैं। ३. **यत्**=जब **गव्यन्ता**=वेदवाणी की कामना करते हुए **द्वा जना**=दो लोगों को—अर्थात् पति-पत्नी को **स्वर्यन्ता**=स्वर्ग की ओर जाते हुओं को—जो अपने घर को स्वर्ग बना रहे हैं उनको **समूहसि**=आप सम्यक् धारण करते हो तब आप हे **इन्द्र**=प्रभो! **सचाभुवम्**= सदा साथ रहनेवाले **वृषणम्**=शक्ति देनेवाले अथवा सुखों का वर्षण करनेवाले **वज्रम्**= क्रियाशीलतारूप वज्र को **आविष्करिक्रत्**=प्रकट करते हुए होते हो। उस क्रियाशीलता को जोकि सदा साथ रहती

है (सचाभुवम्)। इस क्रियाशीलता के द्वारा ही हम ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं—अपनी शक्ति का वर्धन करनेवाले होते हैं और इसप्रकार अपने जीवन को स्वर्गोपम सुखवाला बनाते हैं।

भावार्थ—पति पत्नी का मूल कर्त्तव्य प्रभु की उपासना के द्वारा जीवन को पवित्र रखना है। ज्ञान की रुचिवाले बनकर वे अपने घर को स्वर्गोपम बनाएँ। उसका जीवन सतत क्रियामय हो।

ऋषिः—**परुच्छेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अत्यष्टिः** ॥

प्रातः जागरण—ध्यान व हवन

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः॥ ३॥

१. प्रभु कहते हैं कि मनुष्य **उत उ**=निश्चय से **नः**=हमारी **अस्याः उषसः**=इस उषा का **जुषेत**=प्रीतिपूर्वक सेवन करे, अर्थात् हम प्रातःकाल जाग जाएँ। यह प्रातःजागरण हमें प्रभु का प्रिय बनाएगा। **हि**=निश्चय से **अर्कस्य**=स्तुतिमन्त्रों को **बोधि**=जानें। हम प्रभु स्तवन की वृत्तिवाले बनें। **हवीमभिः**=प्रभु पुकारों के साथ **हविषः**=हवि को **बोधि**=जानें, अर्थात् हम प्रभु की प्रार्थना के साथ अग्निहोत्र करनेवाले बनें। २. हे **इन्द्र**=शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! आप **हवीमभिः**=हमारी प्रार्थनाओं के साथ **स्वर्षाता**=स्वर्ग प्राप्ति की साधनभूत हवियों को जानिए। हम स्तुति के साथ अग्निहोत्र अवश्य करें। **वृषा**=शक्तिशाली **वज्रिन्**=क्रियाशीलतारूप वज्रवाले प्रभो! आप **मृधः**=शत्रुओं को **हन्तवे चिकेतसि**=मारने के लिए जानते हो। आप **नवीयसः**=अतिशयेन स्तवन करनेवाले **वेधसः मे**=मेधावी मेरे **मन्म**=स्तोत्र को **आश्रुधि**=सर्वथा श्रवण कीजिए। **नवीयसः**=नवतर जीवनवाले मेरे स्तवन को अवश्य ही सुनिए।

भावार्थ—हम प्रातः जागें, प्रभु स्तवन में प्रवृत्त हों, अग्निहोत्र करें। प्रभु हमारे काम आदि शत्रुओं का संहार करेंगे। हम मेधावी व नमनशील बनकर स्तोत्रों का उच्चारण करें।

इसप्रकार उत्तम जीवनवाले हम 'वसिष्ठ' होंगे। यह वसिष्ठ अगले सूक्त में प्रथम तीन मन्त्रों का ऋषि है। काम आदि शत्रुओं का संहार करके उत्तम वसुओं को प्राप्त करनेवाले (क्रामति गच्छति) 'वसुक्र' होंगे। ४-६ तक यही ऋषि है—

७३. [त्रिसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥

सवना ब्रह्माणि

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधाऽसि॥ १॥

१. हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **इमा**=ये **विश्वा**=सब **सवना**=यज्ञ **तुभ्य इत्**=आपके लिए ही हैं—आपकी प्राप्ति के लिए ही ये यज्ञ किये जाते हैं। **तुभ्यम्**=आपकी ही **वर्धना**=महिमा का वर्धन करनेवाले इन **ब्रह्माणि**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तोत्रों को **कृणोमि**=करता हूँ। आपकी महिमा का स्तवन करता हुआ मैं आपके प्रकाश को अपने में बढ़ा पाता हूँ। २. हे प्रभो! **त्वम्**=आप **नृभिः**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले मनुष्यों से **विश्वधा**=सब प्रकार से **हव्यः असि**=पुकारने योग्य हैं। आपका आराधन करता हुआ ही मनुष्य वासनाओं से बचकर उन्नति-पथ पर आगे बढ़ता है।

भावार्थ—हम यज्ञों-स्तोत्रों व आराधनों को करते हुए आगे बढ़ते चलें और प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥

अनन्त 'महिमा-पराक्रम व ऐश्वर्य'

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दुस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र।
न वीर्य ॒मिन्द्र ते न राधः॥ २॥

१. हे **उग्र**=तेजस्विन् **दस्म**=दर्शनीय प्रभो! **मन्यमानस्य**=सब-कुछ जानते हुए **ते**=आपकी **महिमानम्**=महिमा को **नू चित् नु**=न ही कोई **उत् अश्नुवन्ति**=व्याप्त करने में समर्थ होते हैं। आपकी अनन्त महिमा को यह सारा ब्रह्माण्ड भी व्याप्त नहीं कर पाता। यह तो आपके एक देश में ही है 'एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः'। २. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **न**=नहीं **ते**=आपके **वीर्यम्**=पराक्रम को और न **राधः**=न ही ऐश्वर्य को कोई नाप सकता है। आपका पराक्रम व ऐश्वर्य अनन्त है, वह मापा नहीं जा सकता।

भावार्थ—प्रभु की 'महिमा, पराक्रम व ऐश्वर्य' अनन्त हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥

स्तवन+सुमति

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः॥ ३॥

१. हे मनुष्यो! उस **महे**=महान्, **महिवृधे**=महान् वृद्धि करनेवाले प्रभु के लिए **प्रभरध्वम्**=स्तुति का भरण करो। **प्रचेतसे**=उस प्रकृष्ट ज्ञानवाले प्रभु के लिए **सुमतिम्**=कल्याणीमति को **प्रकृणुध्वम्**=प्रकर्षेण करनेवाले बनो। यह स्तुति व सुमति ही तुम्हें प्रभु की ओर ले-चलेगी। २. हे प्रभो! आप **पूर्वीः**=पालन व पूरण करनेवाली **विशः**=प्रजाओं में **प्रचरः**=गतिवाले होते हो। वस्तुतः **चर्षणिप्राः**=आप ही इन श्रमशील मनुष्यों का पूरण करते हो। जितना-जितना मैं प्रभु का भाव जागरित करूँगा उतना-उतना ही उन्नत होता जाऊँगा।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए हम स्तवन की वृत्तिवाले बनें, सुमति का सम्पादन करें, अपना पालन व पूरण करने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'हिरण्य-वज्र'

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः॥ ४॥

१. **यदा**=जब **वज्रम्**=(वज् गतौ) हमारी क्रिया **हिरण्यम्**=हित-रमणीय (स्वर्णीय) होती है, अथवा जब हमारी सब क्रियाएँ स्वर्णीय मध्य से होती हैं, अर्थात् जब हम जागने व खाने-पीने आदि सारी क्रियाओं में मध्यमार्ग का अवलम्बन करते हैं, **अथा**=तब **इत्**=निश्चय से **रथम्**=हमारे शरीर-रथ को **हरी**=इन्द्रियाश्व **यमस्य वहतः**=उस नियन्ता प्रभु की ओर ले-चलते हैं। २. उस समय **मघवा**=ऐश्वर्यों व यज्ञोंवाला होकर **सनश्रुतः**=सनातन वेदज्ञानवाला होता हुआ **विसूरिभिः**=विशिष्ट ज्ञानियों के साथ **आतिष्ठति**=सर्वथा स्थित होता है। यही व्यक्ति **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय बनता है और **वाजस्य**=बल का तथा **दीर्घश्रवसः**=तामस् व राजस् वासनाओं के विदारक ज्ञान

का **पतिः**=स्वामी होता है।

भावार्थ—प्रभुभक्त हितरमणीय क्रियाओंवाला होता है। बल व ज्ञान का पति बनता है। जितेन्द्रिय होता है।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

सुक्षयम् (उत्तम गृह)

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम्॥ ५॥

१. **स उ**=और वह **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **चित् नु**=निश्चय से अब **वृष्टिः**=सबपर सुखों की वृष्टि करनेवाला होता है। प्रभुभक्त सर्वभूतहितेरत होता ही है। यह **स्वा यूथ्या**=अपने समूह में होनेवाले ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राण व अन्तःकरण के पञ्चकों को **सचा**=उस प्रभु से मेलवाला करता है। २. **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **श्मश्रूणि**=शरीर में (श्म) आश्रित (श्रि) 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' को **हरिता**=सब मलों का हरण करनेवाले सोमकणों से **अभिप्रुष्णुते**=सींचता है। यह सोम इन्द्रियों को सशक्त, मन को निर्मल व बुद्धि को तीव्र बनाता है। इसप्रकार यह **सुक्षयम्**=उत्तम शरीररूप गृह को **अववेति**=आभिमुख्येन प्राप्त होता है। **सुते**=सोम के उत्पन्न होने पर **मधु**=यह सारभूत सोम **इत्**=निश्चय से **उत् धूनोति**=सब मलों को इसप्रकार कम्पित कर देता है **यथा**=जैसे **वातः वनम्**=वायु वन को। वायु पत्रों को हिलाकर उनके मल को दूर कर देता है, इसी प्रकार सोम 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' को निर्मल कर देता है।

भावार्थ—सोम शरीर में सुरक्षित होकर निर्मलता का साधक होता है।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—**अभिसारिणीत्रिष्टुप्** ॥

न विवाचः, न मृध्रवाचः

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः॥ ६॥

१. **यः**=जो **वाचः**=वेदवाणी के द्वारा **विवाचः**=विरुद्ध वाणीवाले अथवा बहुत बोलनेवाले तथा **मृध्रवाचः**=हिंसायुक्त वाणीवाले, अर्थात् कटुभाषी **पुरू सहस्रा**=अनेक हज़ारों **अशिवा**=अकल्याणकर शत्रुओं को **जघान**=नष्ट करते हैं। वेदवाणी द्वारा उपदेश देकर प्रभु मनुष्यों को 'बहुत बोलने से तथा कड़वा बोलने से' रोकते हैं। बहुत बोलने व कड़वा बोलनेवाले व्यक्ति कर्मवीर नहीं हुआ करते। २. कर्मवीर बनने के लिए हम **अस्य**=इस प्रभु के **तत् तत्**=उस उस **पौंस्य**=वीरतायुक्त कर्म का **इत्**=निश्चय से **गृणीमसि**=स्तवन करते हैं। इस स्तवन के द्वारा हम भी वीरतापूर्ण कर्मों को करने की प्रेरणा करते हैं। उस समय वे प्रभु **पिता इव**=हमारे पिता की भाँति होते हैं, **यः**=जोकि **तविषीम्**=हमारे बलों को तथा बल के द्वारा **शवः**=क्रियाशीलता को **वावृधे**=बढ़ाते हैं।

भावार्थ—हम असंगत व बहुत प्रलापों को तथा हिंसायुक्त वाणियों को छोड़कर वीरतापूर्ण कर्मों में प्रवृत्त हों। प्रभु हमारे रक्षक होंगे, वे हमें बल व क्रियाशीलता प्राप्त कराएँगे।

कर्मवीर बनकर हम सुख निर्माण करनेवाले 'शुनःशेप' बनेंगे। 'शुनःशेप' ही अगले सूक्त के ऋषि हैं—

७४. [चतु:सप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषि:—**शुन:शेप:** ॥ देवता—**इन्द्र:** ॥ छन्द:—**पङ्क्ति:** ॥

प्रशस्त, न कि अनाशस्त

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ताइव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ॥ १॥

१. हे **सत्य**=सत्यस्वरूप **सोमपा**=हमारे सोम का रक्षण करनेवाले प्रभो! **यत्**=जो हम **चित्**=निश्चय से **अनाशस्ता: इव**=अप्रशस्त से जीवनवाले **स्मसि**=हैं, अत: हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवाले प्रभो! आप **न:**=हमें **तु**-तो **आ**=सब प्रकार से **शुभ्रिषु**=शुद्ध व **सहस्रेषु (स हस्)**=मन:प्रसाद से युक्त **गोषु**=ज्ञानेन्द्रियों में तथा **अश्वेषु**=कर्मेन्द्रियों में **शंसय**=प्रशस्त बनाइए। २. हे प्रभो! आप **तुवीमघ**=महान् ऐश्वर्यवाले हैं। आपके ऐश्वर्य में भागी बनकर हम भी प्रशस्त व आनन्दमय जीवनवाले बनें। हे प्रभो! आप 'सत्य' हैं, मैं भी सत्य के द्वारा पवित्र मनवाला बनूँ। आप 'सोमपा:' हैं—मन को पवित्र करके मैं भी सोम का रक्षण करनेवाला बनूँ। 'इन्द्र' नाम से आपका स्मरण करता हुआ मैं भी जितेन्द्रिय बनूँ। यह जितेन्द्रियता ही तो मुझे 'त्रिभुवन-विजेता' व 'तुवीमघ' बनाएगी।

भावार्थ—वे 'सत्य, सोमपा इन्द्र' मेरे जीवन को शुभ व मेरी इन्द्रियों को निर्मल बनाने की कृपा करें। मैं अनाशस्त से प्रशस्त बन जाऊँ।

ऋषि:—**शुन:शेप:** ॥ देवता—**इन्द्र:** ॥ छन्द:—**पङ्क्ति:** ॥

स्वकर्मों द्वारा (तव दंसना)

शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ॥ २॥

१. जीव की प्रार्थना पर प्रभु जीव से कहते हैं कि **शिप्रिन्**=उत्तम हनुओं व नासिकावाले! सात्त्विक पदार्थों को चबाकर खाने के द्वारा उत्तम जबड़ोंवाले तथा प्राणसाधना द्वारा उत्तम नासिकावाले! सात्त्विक भोजन व प्राणायाम द्वारा **वाजानां पते**=शक्तियों के स्वामिन्! तथा **शचीव:**=उत्तम प्रज्ञा व कर्मोंवाले **इन्द्र**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव! **तव दंसना**=तेरे कर्मों से ही तूने 'तुवीमघ' बनना है। २. तेरे कर्मों से ही तू **न:**=हमारी—हमसे दी गई इन **शुभ्रिषु**=शुद्ध व **सहस्रेषु**=प्रसन्न **गोषु**=ज्ञानेन्द्रियों में तथा **अश्वेषु**=कर्मेन्द्रियों में **आशंसय**=अपने जीवन को प्रशंसनीय बना। वस्तुत: हमारे कर्म ही हमें 'तुवीमघ' बनाएँगे। सबसे प्रथम तो हम (क)(शिप्रिन्) उत्तम सात्त्विक भोजन को चबाकर खाएँ तथा नियमित रूप से प्राणसाधना करनेवाले हों। (ख) (वाजानां पते) सात्त्विक भोजन व प्राणायाम द्वारा शक्तियों का रक्षण करें। (ग) (शचीव:) उत्तम प्रज्ञा व कर्मोंवाले बनें।

भावार्थ—हम 'शिप्री, वाजानां पति व शचीवान् तथा इन्द्र' बनकर शुद्ध, प्रशस्त इन्द्रियोंवाले व अत्यन्त प्रशस्त जीवनवाले बनें।

ऋषि:—**शुन:शेप:** ॥ देवता—**इन्द्र:** ॥ छन्द:—**पङ्क्ति:** ॥

आत्मालोचन व स्वाध्याय

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ॥ ३॥

१. **मिथूदृशा**=एक-दूसरे को ही देखनेवालों को **निःष्वापया**=निश्चितरूप में सुला दीजिए, अर्थात् हम एक दूसरे के ही दोषों को देखने में न लगे रहें, प्रत्युत् अपने ही जीवन का आलोचन करके अपने दोषों को दूर करनेवाले बनें। २. **अबुध्यमाने**=जो प्रतिदिन स्वाध्याय के द्वारा अपने बोध को बढ़ाते नहीं वे **सस्ताम्**=समाप्त हो जाएँ (सस् cease)। हम नैत्यिक स्वाध्याय के द्वारा अपने ज्ञान को बढ़ानेवाले बनें। प्रभु से कहते हैं कि हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आत्मालोचन व स्वाध्याय करनेवाले **नः**=हमें आप **शुभ्रेषु**=शुद्ध व **सहस्त्रेषु**=आनन्दयुक्त **गोषु**=ज्ञानेन्द्रियों में तथा **अश्वेषु**=कर्मेन्द्रियों में **आशंसय**=प्रशंसायुक्त जीवनवाला बनाइए। **तुवीमघ**=आप तो महान् ऐश्वर्यवाले हैं—हमें भी अपने ही समान ऐश्वर्ययुक्त कीजिए।

भावार्थ—हम आत्मालोचन व स्वाध्याय के द्वारा प्रशस्त इन्द्रियोंवाले बनें।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

अराति-स्वप्न, राति-जागरण

स॒सन्तु॒ त्या अरा॑तयो॒ बोध॑न्तु शूर रा॒तयः॑।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥ ४ ॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आपकी कृपा से **त्या**=वे **अरातयः**=न दान की वृत्तियाँ **ससन्तु**=हमारे जीवन में समाप्त हो जाएँ और **शूर**=हे सब शत्रुओं का हिंसन करनेवाले प्रभो! **रातयः**=दानवृत्तियाँ **बोधन्तु**=जाग उठें। वस्तुतः यह दानवृत्ति ही सब बुराइयों का खण्डन करके (दाप् लवने) हमारे जीवन को शुद्ध बनाती हैं। (दैप् शोधने)। २. हे **इन्द्र** (शत्रुओं के विद्रावक प्रभो)! आप इस दानवृत्ति से **नः**=हमें **शुभ्रिषु**=शुद्ध व **सहस्त्रेषु**=आनन्दयुक्त **गोषु अश्वेषु**=ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों में **आशंसय**=सर्वतः प्रशंसनीय बना दीजिए। **तुवीमघ**=आप महान् ऐश्वर्यशाली हैं। जीवन को शुद्ध बनाकर हम भी आपके ऐश्वर्य में भागी बनें।

भावार्थ—हम अदानवृत्ति से दूर हों। दान की वृत्ति हमारे जीवन को शुद्ध बना दे।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

'गर्दभ' न बनना

समि॑न्द्र गर्द॒भं मृ॑ण नु॒वन्तं॑ पा॒पया॑मु॒या।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥ ५ ॥

१. हे **इन्द्र**=सब इन्द्रियों के ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **अमुया पापया**=उस पापयुक्त सदा अशुभ शब्दों को बोलनेवाली वाणी से **नुवन्तम्**=शब्द करते हुए—बकवास करते हुए **गदर्भम्**=इस गधे को—नासमझ को **संमृण**=सम्यक्, पूर्णतया नष्ट कर दे (मृण हिंसायाम्), अर्थात् प्रभु-कृपा से हम कभी भी अशुभ शब्दों के बोलनेवाले न हों। गधे न बनें। समझदार बनकर सदा शुभ ही शब्द बोलें। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **नः**=हमें **शुभ्रिषु**=शुद्ध व **सहस्त्रेषु**=सदा प्रसन्न **गोषु अश्वेषु**=ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों में **आशंसय**=प्रशंसनीय जीवनवाला बना दीजिए। **तुवीमघ**=आप महान् ऐश्वर्यवाले हैं। मैं भी औरों की निन्दा न करता हुआ अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाता हुआ आपके समान ही 'तुवीमघ' बनने का प्रयत्न करूँ।

भावार्थ—वह वाणी पापमय है, जो औरों की निन्दा ही करती रहती है। हम ऐसे नामसझ न बनें कि हमारी वाणी पाप-कीर्तन ही करती रहे।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

'कुटिलता, क्रूरता व क्रोध' से दूर

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ॥ ६॥

१. **कुण्डृणाच्या**=(कुडि दाहे, ऋण् गतौ, अञ्च गतौ) दहनात्मक कुटिल गति से चलनेवाली **वातः**=वायु **वनात् अधि दूरम्**=वन से अधिक दूर होकर **पताति**-चलती है, अर्थात् हमारे जीवन से यह कोसों दूर रहती है। हमारे मस्तिष्कों में ऐसी हवा नहीं भर जाती जिसमें दहनात्मकता है—'कुटिलता, क्रूरता व क्रोध' है। हमारी वाणी आँधी की भाँति औरों का हिंसन करनेवाली नहीं होती। २. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **तु**=तो **नः**=हमें **शुभ्रिषु**=शुद्ध व **सहस्रेषु**=संप्रसादवाली **गोषु अश्वेषु**=ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों में **आशंसय**=सब प्रकार से प्रशस्त जीवनवाला बनाइए। **तुवीमघ**=हे महान् ऐश्वर्यवाले प्रभो! मैं भी इन्द्रियों को प्रशस्त बनकर अध्यात्म ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—कुटिल गति से चलनेवाली दहनात्मक हवा हमसे दूर रहे। हम 'कुटिल-क्रूर-व क्रोधी' न बनें।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

'परिक्रोश' से दूर

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्व [म्।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ॥ ७॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! **सर्वम्**=सब **परिक्रोशम्**=गालियों को **जहि**=विनष्ट कर दीजिए। हम किसी के लिए अपशब्दों का प्रयोग न करें। निन्दात्मक वचन हमसे दूर ही रहें। **कृकदाश्वम्**=(कृक=The throat; दाश्नोति kill) गला काटने की वृत्ति को **जम्भया**=नष्ट कर दीजिए। हम कभी भी किसी की हिंसा करनेवाले न बनें। २. हे **इन्द्र**=शत्रु-नाशक प्रभो! आप **तु**=निश्चय से **नः**=हमें **शुभ्रिषु**=शुद्ध व **सहस्रेषु**=संप्रसादयुक्त **गोषु**=ज्ञानेन्द्रियों व **अश्वेषु**=कर्मेन्द्रियों में **आशंसय**=प्रशंसनीय जीवनवाला कीजिए। **तुवीमघ**=आप अनन्त ऐश्वर्यवाले हैं। हम भी इसी प्रकार क्रोध व क्रूरता को दूर करके अध्यात्म-सम्पत्तिवाले बनें।

भावार्थ—हम अभिशाप के शब्द न बोलते रहें, औरों का गला न काटते फिरें।

पवित्र जीवनवाला अंग-प्रत्यंग में शक्तिवाला होता हुआ 'परुच्छेप' अगले सूक्त का ऋषि है—

७५. [पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**परुच्छेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अत्यष्टिः** ॥

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः
सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद्गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम्॥ १॥

व्याख्या अथर्व० २०.७२.२ पर देखिए।

ऋषिः—**परुच्छेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अत्यष्टिः** ॥

इन्द्र का महान् पराक्रम

विदुष्टे अस्य वीर्य॑स्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः
सासहानो अवातिरः। शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ २ ॥

१. **पूरवः**=अपना पालन व पूरण करनेवाले लोग, हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **ते**=आपके **अस्य वीर्यस्य**=इस पराक्रम का **विदुः**=ज्ञान रखते हैं **यत्**=कि आप **सासहानः**=शत्रुओं का पराभव करते हुए **शारदीः**=हमारी शक्तियों को शीर्ण करनेवाली **पुरः**=आसुर पुरियों को **अवातिरः**=विध्वस्त कर देते हैं और **अवातिरः**=अवश्य विध्वस्त कर देते हैं। काम की नगरी हमारी इन्द्रियशक्तियों को शीर्ण करती है, क्रोधनगरी मन को तथा लोभनगरी बुद्धि को शीर्ण कर देती है। इन शारदी पुरियों को प्रभु ही विध्वस्त करते हैं। २. हे **शवसस्पते**=सब शक्तियों के स्वामिन्! **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **तम्**=उस **अयज्युम्**=अयज्ञशील **मर्त्यम्**=मनुष्य को **शासः**=निगृहीत करते हो। यज्ञ आदि कर्मों में लगे रहने पर हम काम क्रोध आदि के शिकार नहीं होते। ३. हे प्रभो! अपने पुत्रों की यज्ञशीलता से **मन्दसानः**=प्रसन्नता का अनुभव करते हुए आप **महीं पृथिवीम्**=इस महनीय पृथिवी को तथा **इमाः अपः**=इन जलों को **अमुष्णाः**=(surpass) लाँघ जाते हो। आपकी महिमा को यह विशाल पृथिवी तथा अत्यन्त व्यापक रूप को धारण करनेवाले जल भी नहीं व्याप्त कर सकते। **इमाः अपः**=ये जल वस्तुतः आपकी महिमा से ही महत्त्व को धारण करते हैं। इनमें रस-रूप से आप ही निवास करते हो 'रसोऽहमप्सु कौन्तेय'। पृथिवी भी आपकी महिमा से ही महिमान्वित होती है 'पुण्यो गन्धः पृथिव्याञ्च'। हमारे शत्रुओं को नष्ट करके इस शरीररूप पृथिवी व रेतःकणरूप जलों को भी आप ही उत्तम गन्ध व रसवाला बनाते हो।

भावार्थ—प्रभु की महिमा को पृथिवी व जल व्याप्त नहीं कर पाते। उपासित हुए-हुए ये प्रभु ही हमारे शत्रुओं का विध्वंस करके हमारे शरीर व शरीरस्थ रेतःकणों को सुरक्षित करते हैं।

ऋषिः—**परुच्छेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अत्यष्टिः** ॥

'उशिक् सखीयन्' पुरुषों का विलक्षण ऐश्वर्य

आदित्ते अस्य वीर्य॑स्य चक्रिरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ते अन्यामन्यां नद्यं॑ सनिष्णत श्रवस्यन्तः
सनिष्णत ॥ ३ ॥

१. हे **वृषन्**=शक्तिशालिन् प्रभो! **यत्**=जब आप **उशिजः**=मेधावी पुरुषों को **आविथ**=रक्षित करते हो, **यत्**=जब, **सखीयतः**=आपके मित्रत्व की कामना करते हुए इनको **आविथ**=आप रक्षित करते हो तब ये लोग **आत् इत्**=शीघ्र ही **मदेषु**=उल्लासों की प्राप्ति के निमित्त **ते अस्य वीर्यस्य**=आपकी इस शक्ति का **चक्रिरन्**=अपने अन्दर प्रक्षेप करते हैं। आपकी उपासना से आपकी शक्ति को अपने में संचरित करते हैं। २. हे प्रभो! आप **एभ्यः**=इन 'उशिक्, सखीयन्' पुरुषों के लिए **पृतनासु प्रवन्तवे**=संग्रामों में शत्रुओं को जीतने के लिए **कारं चकर्थ**=क्रियाशीलता का निर्माण करते हैं। इनके जीवनों को क्रियाशील बनाकर आप इन्हें शत्रुविजय में समर्थ करते हैं। ३. **ते**=वे क्रियाशील पुरुष **अन्याम् अन्याम्**=विलक्षण व प्रतिविलक्षण **नद्यम्**=समृद्धि को (नदि समृद्धौ)

सनिष्णत=प्राप्त करते हैं। **श्रवस्यन्तः**=आपका यशोगान करते हुए ये **सनिष्णत**= समृद्धि प्राप्त करते हैं। कामविध्वंस द्वारा शरीर का स्वास्थ्य प्राप्त करते हैं, क्रोध नाश से मानस शान्ति को पाते हैं तथा लोभ-विलय से ये बुद्धि की सूक्ष्मतावाले बनते हैं।

भावार्थ—मेधावी पुरुष प्रभु की शक्ति से अपने को शक्ति-सम्पन्न करते हैं। क्रियाशीलता द्वारा काम आदि शत्रुओं का विध्वंस करते हैं। इसप्रकार ये 'स्वास्थ्य, मानसशान्ति व बुद्धि सूक्ष्मता' रूप ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं।

इसप्रकार 'मेधाविता व प्रभुमित्रता' के द्वारा वसुओं का क्रमण (प्राप्ति) करनेवाला यह 'वसुक्र' (वसूनि क्रामति) बनता है। 'वसुक्र' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

७६. [षट्सप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

नृ-तमः

वने न वा यो न्यधायि चाकं छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान्॥ १॥

१. मन्त्र का ऋषि 'वसुक्र' वह है **यः**=जो **चाकन्**=कामना करता हुआ—प्रभु की मित्रता को चाहता हुआ **वने न**=उपासनीय के समान उस प्रभु में **वा**=निश्चय से **न्यधायि**=स्थापित होता है। प्रभु को यह अपना आधार बनाता है, इसीलिए **शुचिः**=पवित्र जीवनवाला होता है। २. हे **भुरणौ**=धारण व पोषण करनेवाले प्राणापानो! **वाम्**=आपका **स्तोमः**=स्तवन **अजीगः**=इस वसुक्र को प्राप्त होता है। यह आपके स्तवन से आपके महत्त्व को जानता हुआ आपकी साधना में प्रवृत्त होता है। २. यह वसुक्र वह है **यस्य**=जिसका **इन्द्रः इत्**=परमात्मा ही **पुरुदिनेषु**=इन जीवन के लम्बे (बहुत) दिनों में **होता**=जीवन-यज्ञ को चलानेवाला है। यह वसुक्र प्रभु की कृपा से ही जीवन-यात्रा को पूर्ण होता हुआ देखता है, इसीलिए यह निरभिमान बना रहता है। **नृणां नर्यः**= मनुष्यों में सर्वाधिक नरहितकारी कर्मों को करनेवाला होता है। **नृतमः**=अतिशयेन उत्तम मनुष्य बनता है। **क्षपावान्**=(क्षप् to fast, to be an abstinent) भोजन में बड़ा संयमी होता है। इस संयम पर ही सब उन्नतियाँ निर्भर हैं।

भावार्थ—जो भोजन में संयमवाला होता है, वह उत्तम मनुष्य बनता है। यह प्राणसाधना करता हुआ प्रभु में स्थित होता है।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

त्रिशोक

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान्॥ २॥

१. **ते**=आपकी **अस्याः उषसः**=इस उषाकाल के तथा **अपरस्या**=आनेवाली भी उषा के **प्रनृतौ**=प्रकृष्ट नयन में **प्रस्याम**=प्रकर्षेण हों। आप प्रत्येक उषाकाल में जिधर भी हमें ले-चलनेवाले हों हम उधर ही चलें। आप जो नाच नचाएँ, वही हमें रुचिकर हो। आप **नृणां नृतमस्य**=मनुष्यों के सर्वोत्तम नेता हैं—आपका नेतृत्व ही हमारा संचालक हो। २. **अनु**=ऐसा होने पर ही इसके बाद ही **कुत्सेन**=सब बुराइयों के संहार से (कुथ हिंसायाम्) **त्रिशोकः**='शरीर मन व बुद्धि' तीनों की दीप्ति **नॄन्**=मनुष्यों को **शतम् आवहत्**=सौ वर्ष तक ले-चलनेवाली होती है। ३. **यः रथः**=इसप्रकार जो भी उत्तम शरीररूप रथवाला व्यक्ति (रथः अस्य अस्ति इति रथः)

असत्=होता है, वह **ससवान्**=सस्य को ही खानेवाला होता है। वानस्पतिक भोजन ही सात्त्विक है, अतः यही उपादेय है।

भावार्थ—हम प्रभु की आज्ञा में चलें। सस्यभोजी बनें। इसप्रकार 'शरीर, मन व बुद्धि' को दीप्त करनेवाले 'त्रिशोक' बनें।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

रन्त्यः मदः

कस्ते मद॑ इन्द्र रन्त्यो॑ भूद्दुरो गिरो॑ अ॒भ्यु१॒ग्रो वि धा॑व।
कद्वाहो॑ अ॒र्वागुप॑ मा मनी॒षा आ त्वा॑ शक्यामुप॒मं राधो॒ अन्नैः॑ ॥ ३ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते मदः**=आपकी प्राप्ति का मद **कः**=अनिर्वचनीय आनन्द देनेवाला है और **रन्त्यः भूत्**=रमणीय है। प्रभु को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति एक अवर्णनीय सुख का अनुभव करता है और उसे सारा संसार सुन्दर-ही-सुन्दर प्रतीत होता है। २. **अभि उग्रः**=आप अतिशयेन तेजस्वी हो। **दुरः**=मेरे इन्द्रिय द्वारों को तथा **गिरः**=ज्ञानवाणियों को **विधाव**=विशेषरूप से शुद्ध कर दीजिए। आपकी तेजस्विता मेरी सब मलिनताओं को नष्ट कर दे। ३. हे प्रभो! **कत्**=मुझे कब **वाहः**=इधर-उधर भटकानेवाला यह मन **अर्वाक्**=अन्तर्मुख होगा और **कत्**=कब **मा**=मुझे **मनीषा**=बुद्धि **उप**=आपके समीप पहुँचानेवाली होगी। ४. हे प्रभो! आप 'इन्द्रियशुद्धि, मन की अन्तर्मुखीवृत्ति तथा मनीषा की प्राप्ति' के द्वारा मुझे इस योग्य बनाइए कि **उपमम्**=अन्तिकतम—अत्यन्त समीप हृदय में ही निवास करनेवाले **त्वा**=आपको **आशक्याम्**=प्राप्त होने में समर्थ होऊँ और **अन्नैः**=अन्नों के साथ **राधः**=कार्यसाधक धन को भी प्राप्त कर सकूँ। अन्न व धन को प्राप्त करके मैं मार्ग पर आगे बढ़ूँगा तथा आपका स्मरण मुझे मार्गभ्रष्ट होने से बचाएगा।

भावार्थ—हम प्रभु प्राप्ति के लिए यत्नशील हों। प्रभु हमारी इन्द्रियों को शुद्ध करें, मन को अन्तर्मुख करें तथा हमें बुद्धि सम्पन्न बनाएँ। अन्न व धन को प्राप्त करके हम आगे बढ़ें और प्रभु-प्राप्ति के मार्ग पर चलनेवाले हों।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु-जैसा बनना

कदु॑ द्युम्नमि॑न्द्र त्वाव॑तो॒ नॄन्कया॑ धि॒या क॑रसे॒ कन्न॒ आग॑न्।
मि॒त्रो न स॒त्य उ॑रुगाय भृ॒त्या अन्ने॑ सम॒स्य यदस॑न्मनी॒षाः ॥ ४ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **कत् उ**=कब निश्चय से **द्युम्नम्**=ज्योति को आप **करसे**=करते हैं और कब **कया**=आनन्द को देनेवाली **धिया**=ज्ञानपूर्वक क्रियाओं से **नॄन्**=हम मनुष्यों को **त्वावतः**=अपने-जैसा करते हैं। **कत्**=कब **नः**=हमें **आगन्**=आप प्राप्त होंगे। आप जैसा बनकर ही तो मैं आपको प्राप्त होने का अधिकारी होता हूँ। २. हे **उरुगाय**=खूब ही स्तवन करने योग्य प्रभो! आप **मित्रः न**=मित्र के समान हैं। **सत्यः**=सत्यस्वरूप हैं। आप ही **भृत्यै**=हमारे भरणपोषण के लिए होते हैं। **यत्**=आपने यह भी अद्भुत व्यवस्था की है कि **समस्य**=सबकी **मनीषाः**=बुद्धियाँ **अन्ने**=अन्न में **असन्**=हैं। जैसा अन्न कोई खाता है, वैसा ही उसकी बुद्धि बन जाती है। 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'=आहार की शुद्धि पर ही अन्तःकरण की शुद्धि निर्भर करती है।

भावार्थ—बुद्धिपूर्वक अन्नों का प्रयोग करते हुए हम ज्ञानपूर्वक क्रियाओं से प्रभु-जैसा

बनकर, प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

भवसागर के पार

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधाइव ग्मन्।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५ ॥

१. हे प्रभो! आप **सूरः न**=सूर्य के समान हैं—आप हमारे हृदयाकाशों को प्रकाशित करनेवाले हैं और हमें कर्मों की प्रेरणा देनेवाले हैं। आप **अर्थं प्रेरयः**=' धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष' रूप पुरुषार्थों की हमें प्रेरणा दीजिए। **पारम्**=आप हमें इस भवसागर के पार प्राप्त कराइए। आपकी प्रेरणा से धर्मपूर्वक धनों का अर्जन करते हुए और उनके द्वारा उचित आनन्दों का उपभोग करते हुए हम मोक्ष के अधिकारी हों। २. हे प्रभो! आप उन्हें भवसागर से पार कीजिए **ये**=जो **अस्य**=इन आपकी **कामम्**=इच्छा को **जनिधा इव**=विकास को धारण करनेवाले की भाँति **ग्मन्**=प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रभु की कामना के अनुसार कार्यों को करते हुए जीवन में शक्तियों का विकास करते हैं और इसप्रकार प्रभु के प्रिय बनकर ये मोक्ष को प्राप्त होते हैं। ३. हे **तुविजात**=महान् विकास को प्राप्त करानेवाले **इन्द्र**=प्रभो! **ये च नरः**=और जो लोग **ते**=आपकी **पूर्वीः**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली अथवा हमारे जीवनों का पूरण करनेवाली **गिरः**=वेदवाणियों को **अन्नैः**=सात्त्विक अन्नों के द्वारा शुद्ध अन्तःकरणवाले होकर **प्रतिशिक्षन्ति**=एक-एक करके सीखते हैं, इन लोगों को आप अवश्य भवसागर के पार प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम सात्त्विक अन्नों के सेवन के द्वारा शुद्ध अन्तःकरणवाले होकर, वेदवाणियों का प्रकाश प्राप्त करें। उनके अनुसार कर्त्तव्यकर्मों को करते हुए भवसागर से पार हो जाएँ।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'क्षीणमल-दीप्तज्ञान व मधुरस्वभाव' वाला जीवन

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६ ॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं—हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **मात्रे ते**=अपने जीवन का निर्माण करनेवाले तेरे लिए **मज्मना काव्येन**=जीवन को शुद्ध बनानेवाले वेदरूप काव्य के साथ **द्यौः पृथिवी**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक **नु**=निश्चय से **सुमिते**=उत्तमता से बनाये गये हैं। ये **पूर्वी**=तेरा पूरण व पालन करनेवाले हैं। वेदज्ञान के अनुसार चलनेवाले पुरुष के लिए ये सारा ब्रह्माण्ड कल्याण-ही-कल्याण करनेवाला है। २. हे **स्वाद्मन्**=(सु आ अद्मन्) सदा उत्तम भोजन करनेवाले जीव! **वराय** (वृ)=ठीक चुनाव करनेवाले तेरे लिए—भोग की अपेक्षा योग को, प्रेय की अपेक्षा श्रेय को, अनित्य की अपेक्षा नित्य को चुननेवाले तेरे लिए **सुतासः**=सात्त्वि आहार से उत्पन्न सोमकण **घृतवन्तः**=मलों के क्षरणवाले तथा ज्ञानदीप्ति को बढ़ानेवाले **भवन्तु**=हों। ये सोमकण **पीतये**=रक्षण के लिए हों। **मधूनि** (भवन्तु)=ये हमारे स्वभाव में माधुर्य उत्पन्न करने का कारण बनें। इस सोम के रक्षण से द्वेष के स्थान में प्रेमवाले हों, ईर्ष्या को छोड़कर मुदितावाले हों दूसरों की उन्नति में प्रसन्न हों, क्रोध को छोड़कर करुणावाले बनें।

भावार्थ—वेदज्ञान के अनुसार चलने पर यह संसार हमारा पूरण व पालन करनेवाला होता है।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'क्रतु+पौंस्य' द्वारा 'नर्य' बनना

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च॥ ७॥

१. **अस्मा इन्द्राय**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिए इस **पूर्णम् अमत्रम्**=सब प्रकार की कमियों से रहित शरीररूप पात्र को **मध्वः**=मधु से—सोम से **असिचन्**=सिक्त करते हैं। इस शरीर में प्रभु ने उन्नति के लिए आवश्यक सब साधनों को जुटाया है। (अम) गति के द्वारा (त्र) इसका रक्षण होता है, अतः इसे 'अम-त्र' नाम दिया गया है। इसमें आहार की सारभूत वस्तु 'मधु'-सोम है। इसके रक्षण से ही 'शरीर, मन व मस्तिष्क' में स्वस्थ बनकर हम प्रभु-दर्शन के योग्य बनते हैं। २. इस सोम का रक्षण करनेवाला **सः**=वह पुरुष **हि**=निश्चय से **सत्यराधाः**=सत्य सम्पत्तिवाला होता है। **सः**=वह **पृथिव्याः**=पृथिवी के **वरिमन्**=विस्तार में **आवावृधे**=सब प्रकार से बढ़ता है। यह शरीररूप पृथिवी की सब शक्तियों का विस्तार करनेवाला होता है। यह **नर्यः**-नरहितकारी पुरुष **अभि**=दोनों ओर—अन्दर और बाहर—अन्दर तो **क्रत्वा**=प्रज्ञान व शक्ति से **च**=तथा बाहर **पौंस्यैः**=वीरतापूर्ण कर्मों से बढ़ता हुआ होता है। ऐसा बनकर ही यह प्रभु को प्राप्त करता है।

भावार्थ—हम शरीर को वीर्य से सिक्त करें। सोम-रक्षण द्वारा इसे प्रज्ञान व शक्ति से परिपूर्ण करके नरहितकारी कार्यों में प्रवृत्त हों। यही प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—**वसुक्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभुरूप सारथि द्वारा विजय-प्राप्ति

व्यानडिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे॥ ८॥

१. गतमन्त्र के अनुसार सोम रक्षण के द्वारा **स्वोजाः**=उत्तम ओजवाला **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **पृतनाः**=शत्रुसैन्यों को **व्यानट्**=विशेषरूप से घेरनेवाला—उन्हें पराभूत करनेवाला बनता है। काम, क्रोध के परिभव के द्वारा **पूर्वीः**=अपना पूरण करनेवाले लोग **अस्मै सख्याय**=इस प्रभु की मित्रता के लिए **आयतन्ते**=सर्वथा प्रयत्न करते हैं। २. ये प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि **न**=जैसे **पृतनासु**=संग्रामों में **रथम्**=रथ पर सारथि स्थित होता है, उसी प्रकार हे प्रभो! आप भी **स्म**=निश्चय से (रथम्) **आतिष्ठ**=हमारे इस शरीर-रथ पर स्थित होइए। उस रथ पर स्थित होइए **यम्**=जिसको कि आप **भद्रया सुमत्या**=कल्याणी सुमति से **चोदयासे**=प्रेरित करते हैं। इस कल्याणी मति को प्राप्त कराके ही प्रभु हमें विजयी बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु मेरे शरीर-रथ के सारथि हों। मैं अपनी जीवन-दिशा को प्रभु के निर्देश से निश्चित करूँ।

प्रभु के निर्देश से चलनेवाला व्यक्ति 'वामदेव'-सुन्दर दिव्य गुणोंवाला बनता है। यह प्रार्थना करता है कि—

७७. [सप्तसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सोमपान द्वारा 'इन्द्र' बनकर 'महेन्द्र' को पाना

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः॥ १॥

१. **सत्यः**=सत्यस्वरूप, **मघवान्**=ऐश्वर्यशाली, **ऋजीषी**=ऋजुता की प्रेरणा देनेवाला—कुटिलता को दूर करनेवाला (ऋजु+इष्) प्रभु **आयातु**=हमें प्राप्त हो। **अस्य**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **हरयः**=इन्द्रियाश्व **नः उपद्रवन्तु**=हमें समीपता से प्राप्त हों। ये इन्द्रियाँ हमें प्रभु की ओर ही ले जानेवाली हों। २. **तस्मा इत्**=उस प्रभु की प्राप्ति के लिए ही **अन्धः**=सोम को **सुषुम**=हम उत्पन्न करते हैं। यह सोम **सुदक्षम्**=उत्तम बल को प्राप्त करानेवाला है। हमें बल-सम्पन्न बनाकर ही यह सोम हमें प्रभु-प्राप्ति का पात्र बनाता है। ये प्रभु **इह**=इस जीवन में **गृणानः**=स्तुति किये जाते हुए **अभिपित्वम्**=हमारे अभिमत की प्राप्ति को **करते**=करते हैं। प्रभु का स्तवन यही है कि हम प्रभु से उत्पादित इस सोम का रक्षण करें। सोम-रक्षण से शक्तिशाली इन्द्र बनकर उस 'महान् इन्द्र' का सच्चा उपासन करते हैं।

भावार्थ—हमारी इन्द्रियाँ हमें उस सत्यस्वरूप, ऐश्वर्यशाली, ऋजुता की प्रेरणा देनेवाले प्रभु की ओर ले-चलें। प्रभु-प्राप्ति के उद्देश्य से ही सोम का रक्षण करते हुए हम प्रभु को प्राप्त करें। प्रभु ही सब इष्टों को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अश्व-मोचन

अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्या ∫ य मन्म॥ २॥

१. हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **अध्वनः अन्ते न**=जिस प्रकार मार्ग की समाप्ति पर अश्वों को खोलते हैं, उसी प्रकार आप **नः**=हमारे **अस्मिन् सवने**=इस जीवन-यज्ञ में **अद्य**=आज **मन्दध्यै**=आनन्द की प्राप्ति के लिए **अव स्य**=इन्द्रियाश्वों को विषयों के बन्धन से मुक्त कीजिए। २. **उशना इव**=सर्वहित की कामना करते हुए उपासक के समान यह भक्त **उक्थम्**=स्तोत्रों का शंसन करता है। **वेधा**=ज्ञानी बनकर **चिकितुषे**=उस सर्वज्ञ **असुर्याय**=प्राणशक्ति का संचार करनेवालों में उत्तम प्रभु के लिए **मन्म**=मननीय ज्ञान को प्राप्त करता है। जितना-जितना ज्ञान प्राप्त करता चलता है, उतना-उतना प्रभु के समीप होता जाता है।

भावार्थ—हम यही चाहते हैं कि प्रभु हमारी इन्द्रियों को विषयबन्धन से मुक्त करें, जिससे हम जीवन-यात्रा को ठीक से पूर्ण करते हुए तथा ज्ञान को बढ़ाते हुए प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान के सात दीपक

कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात्।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः॥ ३॥

१. **कविः न निण्यम्**=जैसे एक कान्तदर्शी पुरुष अन्तर्हित—गूढ़ तत्त्वार्थ को जान लेता है,

इसी प्रकार **विदथानि**=ज्ञानों को **साधन्**=सिद्ध करता हुआ **वृषा**=शक्तिशाली पुरुष **यत्**=जब **सेकम्**=शरीर में सेचनीय सोम को **विपिपानः**=विशेषरूप से पीता हुआ—शरीर में ही वीर्य को सुरक्षित करता हुआ **अर्चात्**=प्रभु की उपासना करता है। प्रभु से दी गई इस सर्वोत्तम धातु का रक्षण प्रभु का अर्चन ही हो जाता है। २. **इत्था**=इसप्रकार वीर्यरक्षण के द्वारा सप्त-'दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व जिह्वा' इन सातों को **दिवः कारून्**=प्रकाश (ज्ञान) का उत्पन्न करनेवाला **जीजनत्**=बनाता है और **अह्ना चित्**=एक ही दिन में, अर्थात् अति शीघ्र ही **गृणन्तः**=स्तुति करते हुए ये लोग **वयुना चक्रुः**=अपने में प्रज्ञानों को उत्पन्न करनेवाले होते हैं। सुरक्षित वीर्य ज्ञानाग्नि का ईंधन बन ज्ञान को दीप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—स्वाध्याय में प्रवृत्त होने से वीर्य का रक्षण सम्भव होता है। वीर्यरक्षण ही प्रभु का सच्चा समादर है। यह सुरक्षित वीर्य सब ज्ञानेन्द्रियों को शक्तिशाली बनाता है और शीघ्र ही हमारी ज्ञानाग्नि की दीप्ति का कारण बनता है।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान-प्रकाश व वासना-विलय

स्वर्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ॥ ४॥

१. **अर्कैः**=अर्चना के साधनभूत मन्त्रों के द्वारा **यत्**=जब **सुदृशीकम्**=उत्तम दर्शनीय **स्वः**=प्रकाश **वेदि**=जाना जाता है—प्राप्त किया जाता है। **यत्**=जब **ह**=निश्चय से **वस्तोः**=निवास को उत्तम बनाने के उद्देश्य से **महि ज्योतिः**=महनीय व महान् ज्योति में ही **रुरुचुः**=रुचिवाले होते हैं। उस समय **नृतमः**=वह सर्वोत्तम नेता प्रभु **नृभ्यः**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले इन लोगों के लिए **अभिष्टौ**=वासनाओं पर आक्रमण के निमित्त **अन्धा तमांसि**=घने अन्धकारों को **दुधिता चकार**-(नाशितानि सा०) नष्ट कर देते हैं और **विचक्षे**=उन लोगों के लिए विशेष रूप से मार्गदर्शन के लिए होते हैं। २. प्रभु की उपासना से प्रकाश प्राप्त होता है। इसी से हमारी रुचि ज्ञान-प्राप्ति की ओर होती है। उस समय प्रभु हमारे घने अज्ञानान्धकारों को नष्ट करते हैं। ज्ञान के प्रकाश में वासनान्धकार का विलय हो जाता है।

भावार्थ—प्रभु उपासक को ज्ञान का वह प्रकाश प्राप्त कराते हैं, जिसमें वासनान्धकार विलीन हो जाता है।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'सर्वत्र व्याप्त-अनन्त' प्रभु

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव॥ ५॥

१. **ऋजीषी**=ऋजुता (सरलता) की प्रेरणा देनेवाले **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **अमितं ववक्ष**=असीम वृद्धिवाले होते हैं, (वक्ष to grow)। वे **महित्वा**=अपनी महिमा से **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को **आपप्रौ**=पूरित कर लेते हैं। २. वास्तव में तो **अतः चित्**=इन द्यावापृथिवी से भी **अस्य महिमा**=इन प्रभु की महिमा **विरेचि**=अतिरिक्त होती है। ये द्यावापृथिवी प्रभु की महिमा को अपने में समा लेने में समर्थ नहीं होते। प्रभु तो वे हैं **यः**=जोकि **विश्वा भुवना**=सब भुवनों को **अभिबभूव**=अभिभूत किये हुए हैं। उन्होंने इस सारे ब्रह्माण्ड को अपने एक देश में लिया हुआ है।

भावार्थ—द्यावापृथिवी उस प्रभु की महिमा को प्रकट कर रहे हैं। प्रभु इनसे महान् हैं, ये द्यावापृथिवी तो प्रभु के एक देश में ही स्थित हैं।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अपः सखिभिः रिरेच

विश्वानि शुक्रो नर्याणि विद्वानुपो रिरेच सखिभिर्निकामैः।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥

१. **शक्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **विश्वानि**=सब **नर्याणि विद्वान्**=नरहित साधनभूत बातों को जानता हुआ **निकामैः**=प्रभु-प्राप्ति की प्रबल कामनावाले **सखिभिः**=मित्रभूत जीवों के साथ **अपः रिरेच**=वीर्यकणों को मिलाता है (रिच्=to mix, to join) वस्तुतः इन वीर्यकणों के द्वारा ही सब हित सिद्ध होते हैं। जीवन-भवन की नीव ये वीर्यकण ही हैं। २. **ये**=जो उपासक **वचोभिः**=स्तुतिवचनों के द्वारा **अश्मानं चित्**=पत्थर के समान दृढ़ भी वासना को **विभिदुः**=विदीर्ण करते हैं, वे **उशिजः**=मेधावी—प्रभु की कामनावाले पुरुष **गोमन्तम्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले **व्रजम्**=बाड़े को **विवव्रुः**=वासना के आच्छादन से रहित करते हैं, अर्थात् इन्द्रियों को वासनाओं से मुक्त करते हैं। अपने को वासनाओं से मुक्त करके ही तो वे वीर्यरक्षण कर पाते हैं।

भावार्थ—हमारे जीवनों को मंगलमय बनाने के लिए प्रभु हमारे साथ वीर्यकणों को जोड़ते हैं। इन वीर्यकणों के रक्षण के लिए प्रभु की उपासना नितान्त आवश्यक है।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पृथिवी+सचेताः

अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥

१. **अपः**=रेतःकणों को **वव्रिवांसम्**=आवृत कर लेनेवाले **वृत्रम्**=कामरूप इस शत्रु को **पर्यहन्**=आप सुदूर विनष्ट करते हो। **सचेता**=चेतनावाला—समझदार **पृथिवी**=अपनी शक्तियों का विस्तार करनेवाला मनुष्य **ते**=आपके दिये हुए **वज्रं प्रावत्**=क्रियाशीलता रूप वज्र को प्रकर्षेण रक्षित करता है। सदा क्रियाशील बने रहकर यह वृत्र के आक्रमण से अपने को बचाये रखता है। २. हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले **धृष्णो**=धर्षकशक्ति से युक्त प्रभो! आप **शवसा**=अपने बल के द्वारा **पतिःभवन्**=हमारे रक्षक होते हुए **समुद्रियाणि**=ज्ञानैश्वर्य के आधारभूत वेदरूप समुद्रों के **अर्णांसि**=ज्ञान-जलों को **प्रऐनोः**=प्रकर्षेण प्रेरित करते हैं। कर्मशक्ति व ज्ञान देकर ही तो आप हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ—समझदार पुरुष क्रियाशील बनकर वासना से बचा रहता है। वासना-विनाश से शक्ति व ज्ञान का वर्धन करके यह ज्ञानसमुद्र के रत्नों को पानेवाला बनता है।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अविद्या-पर्वतों का भेदक प्रभु

अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥

१. हे **पुरुहूत**=पालक व पूरक है पुकार जिसकी, ऐसे प्रभो! आप **यत्**=जब **अपः**=हमारे वीर्यकणों का लक्ष्य करके **अद्रिम्**=अविद्यापर्वत को **दर्दः**=विदीर्ण करते हैं तब **पूर्व्यम्**=सर्वप्रथम

ते=आपकी **सरमा**=सब विषयों में चलनेवाली बुद्धि **आविर्भुवत्**=प्रकट होती है। अविद्या-विनाश से वीर्य का रक्षण होता है, इससे हममें सूक्ष्मबुद्धि का प्रादुर्भाव होता है। २. **सः**=वे **नः**=हमारे **नेता**=प्रणयन करनेवाले आप **भूरिम्**=पालन व पोषण करनेवाले **वाजम्**=बल व अन्न को **आदर्षि**=प्राप्त कराते हैं। **अंगिरोभिः**=अपने अंगों को रसमय बनानेवाले पुरुषों से **गृणानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **गोत्रा**=अविद्यापर्वतों का **रुजन्**=विदारण करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त हों। प्रभु ही हमारे अविद्यापर्वत का विदारण करेंगे और हमें पालक व पोषक बलों को प्राप्त कराएँगे।

ज्ञान व बल को प्राप्त करनेवाला यह उपासक अपने साथ शान्ति को जोड़नेवाला 'शंयु' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

७८. [अष्टसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**शंयुः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

उस सर्वज्ञ+सर्वशक्तिमान् का गायन

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने। शं यद्गवे न शाकिने॥ १॥

१. **वः**=तुम **सुते**=शरीर में सोम का सम्पादन करने पर **सचा**=मिलकर **पुरुहूताय**=पालक व पूरक पुकारवाले—जिसकी प्रार्थना हमारा पालन व पूरण करती है, उस **सत्वने**=शत्रुओं के सादयिता (नाशक) प्रभु के लिए **तद् गाय**=उन स्तोत्रों का गायन करो। २. **गवे**=उस (गमयति अर्थान्) वेदवाणी के द्वारा सब अर्थों के ज्ञापक **न**=(न-च) और **शाकिने**=सर्वशक्तिमान् प्रभु के लिए उस स्तोत्र का गायन करो **यत्**=जो **शम्**=शान्ति देनेवाला हो। प्रभु को सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् के रूप में सोचते हुए हम भी ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करने की प्रेरणा लेते हैं और इसप्रकार जीवन में शान्ति प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हम सोम-रक्षण करते हुए मिलकर घरों में प्रभु का गायन करें। यह गायन हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा देता है और हमारे जीवनों को शान्त बनाता है।

ऋषिः—**शंयुः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु-स्तवन से ज्ञान व शक्ति की प्राप्ति

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः। यत्सीमुप श्रवद्गिरः॥ २॥

१. **यत्**=जब **वसुः**=सबके बसानेवाले वे प्रभु **गिरः**=हमारी स्तुतिवाणियों को **सीम्**=निश्चय से **उपश्रवत्**=सुनते हैं तब **घा**=निश्चय से **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले **वाजस्य**=शक्ति के **दानम्**=दान को **न**=नहीं **नियमते**=उपरत करते, अर्थात् हमें ज्ञान व बल को प्राप्त कराते ही हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले हैं। इसी उद्देश्य से वे हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त कराते हैं, अतः हम सदा प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**शंयुः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

कुवित्स को प्रभु की प्राप्ति

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्। शचीभिरप नो वरत्॥ ३॥

१. **दस्युहा**=दास्यव (राक्षसी) वृत्तियों को विनष्ट करनेवाले प्रभु **कुवित्सस्य** (षोऽन्तकर्मणि)= शत्रुओं को खूब ही विनष्ट करनेवाले उपासक के **हि**=निश्चय से **गोमन्तम्**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले

व्रजम्=इस शरीररूप गोष्ठ को **गमत्**=प्राप्त होते हैं, अर्थात् 'कुवित्स' आवश्य प्रभु को प्राप्त करता है। २. यहाँ हम कुवित्सों को प्राप्त होकर वे प्रभु **नः**=हमारी इन इन्द्रियरूप गौओं को **शचीभिः**=अपने प्रज्ञानों व बलों से **अपवरत्**=वासना के आवरण से रहित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे दास्यवभावों को विनष्ट करके हमारी इन्द्रियों को अज्ञान के आवरण से रहित करते हैं।

प्रभु के उपासन से उत्तम निवासवाला बनकर यह 'वसिष्ठ' बनता है, शक्ति का पुत्र होने से 'शक्ति' कहलाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

७९. [एकोनशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—(**पूर्वार्धस्य**) **शक्तिः**; (**उत्तरार्धस्य**); **वसिष्ठः** (**ताण्डके**)॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः** (**बृहती+सतोबृहती**)॥

जीवन-शक्ति व ज्योति

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमारे लिए इसप्रकार **क्रतुम्**=प्रज्ञान व शक्ति को **आभर**=प्राप्त कराइए, **यथा**=जैसे पिता **पुत्रेभ्यः**=पिता पुत्रों के लिए प्राप्त कराता है। हम आपके पुत्र हैं, आप हमारे पिता हैं। आपने ही तो हमें प्रज्ञान व शक्ति प्राप्त करानी है। १. हे **पुरुहूत**=पालक व पूरक पुकारवाले प्रभो! **नः**=हमें **अस्मिन् यामनि**=इस जीवन-मार्ग में **शिक्षा**=शक्तिशाली बनाइए अथवा शिक्षित कीजिए। **जीवाः**=जीवनशक्ति से परिपूर्ण हुए हुए हम—सबल होते हुए हम **ज्योतिः अशीमहि**=ज्ञानज्योति को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभु-कृपा से हम शक्ति व प्रज्ञान से परिपूर्ण होते हुए सुन्दरता से जीवन-यात्रा को परिपूर्ण करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** (**शाट्यायनके**), **वसिष्ठः** (**ताण्डके**)॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः** (**बृहती+सतोबृहती**)॥

'न पाप, न चिन्ता, न अशुभ'

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि॥ २॥

१. हे प्रभो! **नः**=हमें **अज्ञाता वृजना**=अज्ञान में हो जानेवाले पाप व **दुराध्यः**=दुःखदायी आधियाँ—मानस चिन्ताएँ **मा अवक्रमुः**=मत आक्रान्त करें। **अशिवासः**=अकल्याणकर विचार **नः**=हमें अभिभूत करनेवाले न हों। २. हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **त्वया**=आपके द्वारा—आपकी शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर **प्रवतः** (precipice, decling) इस जीवन-मार्ग की ढलानों तथा **शश्वतीः अपः**=सनातन व तीव्र गति से बहते हुए भवसागर के जलों को **अति तरामसि**=पार कर जाएँ। आपके बिना पग-पग पर फिसलने की व बह जाने की आशंका है। आपने ही हमें बचाना है।

भावार्थ—प्रभु स्मरण करते हुए हम 'पापों, आधियों व अशिवों' से आक्रान्त न हों। प्रभु की सहायता से हम ढलानों पर फिसल न जाएँ और विषय-जलों में डूब न जाएँ।

पापों, आधियों व अशिवों से ऊपर उठकर हम शान्त जीवनवाले 'शंयु' बनें। शंयु ही अगले सूक्त का ऋषि है—

८०. [अशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**शंयुः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

'ज्येष्ठ, ओजिष्ठ, पपुरि, श्रव'

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः॥ १॥

१. **इन्द्र**=हे सर्वशक्तिमन् प्रभो! **नः**=हमारे लिए **ज्येष्ठम्**=प्रशस्यतम **ओजिष्ठम्**=अत्यन्त ओजस्वी **पपुरि**=पालक व पूरक **श्रवः**=ज्ञान को **आभर**=प्राप्त कराइए। २. हे **चित्र**=चायनीय—पूजनीय—**वज्रहस्त**=वज्र हाथ में लिये हुए प्रभो! दुष्टों को दण्ड देनेवाले **सुशिप्र**=उत्तम हनू व नासिका को प्राप्त करानेवाले प्रभो! उस ज्ञान को हमें प्राप्त कराइए, **येन**=जिससे कि **इमे उभे**=इन दोनों **रोदसी**=द्यावापृथिवी को—शरीर व मस्तिक को **आप्रा**=आप पूरित करते हैं। यहाँ 'सुशिप्र' सम्बोधन इस भाव को व्यक्त कर रहा है कि हम खूब चबाकर खाएँ (हनु) और प्राणायाम में प्रवृत्त हों (नासिका) जिससे शरीर के रोगों व मन के दोषों को दूर करते हुए हम उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकें। प्रभु सुशिप्र हैं। प्रभु से उत्तम हनु व नासिका को प्राप्त करके भोजन को चबाकर खाते हुए और प्राणसाधना करते हुए हम उस ज्ञान को प्राप्त करें जो हमें 'प्रशस्त, ओजस्वी व न्यूनतारहित' जीवनवाला बनाए।

भावार्थ—प्रभु ही वह प्रशस्त ज्ञान दें, जिससे कि हमारा जीवन 'प्रशस्त, ओजस्वी व पूर्ण सा' बन सके। वह ज्ञान हमारे शरीर को सबल बनाए—मस्तिष्क को दीप्त।

ऋषिः—**शंयुः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

शत्रु-विजय

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान्कृधि॥ २॥

१. हे **देवेषु राजन्**=सूर्य आदि सब देवों में दीप्त होनेवाले, अर्थात् सूर्य आदि को दीप्ति प्राप्त करानेवाले प्रभो! **उग्रम्**=तेजस्वी **चर्षणीसहम्**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले **त्वाम्**=आपको **अवसे**=रक्षण के लिए **हूमहे**=हम पुकारते हैं। आपकी शक्ति व दीप्ति से ही तो हमारा रक्षण होना है। २. हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **नः**=हमारे **विश्वा पिब्दना**=सब (पेष्टुमर्हाणि शत्रुसैन्यानि) पीस देने योग्य शत्रुओं को **सुविथुरा**=अच्छी प्रकार व्यथित व बाधित **कृधि**=कीजिए। **अमित्रान्**=हमारे शत्रुभूत जनों को **सुषहान्**=सुगमता से जीते जाने योग्य कीजिए। हम शत्रुओं को सुगमता से जीत सकें।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करते हैं। प्रभु हमारे लिए शत्रुओं को पराजित करते हैं।

प्रभु की उपासना से शत्रुओं का खूब ही हनन करता हुआ यह व्यक्ति 'पुरुहन्मा' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

८१. [एकाशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**पुरुहन्मा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

ज्यायान् एभ्यः लोकेभ्यः

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यद्**=यदि **द्यावः**=ये द्युलोक **शतं स्युः**=सैकड़ों हों तो भी ये **ते**=तेरा **न** (अश्नुवन्ति)=व्यापन नहीं कर सकते। उत और **शतं भूमीः**=सैकड़ों भूमियाँ भी तेरा व्यापन नहीं कर सकतीं। २. हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **त्वा**=आपको **सहस्रं सूर्याः**=हज़ारों भी सूर्य **न**=प्रकाशित नहीं कर पाते। (न तत्र सूर्यो भाति)। **जातम्**=सृष्टि से पहले ही, सदा से प्रादुर्भूत हुए-हुए आपको **रोदसी**=ये द्यावापृथिवी **न अनु अष्ट**=व्याप्त करनेवाले नहीं होते।

भावार्थ—प्रभु को हज़ारों द्युलोक, पृथिवीलोक व सूर्य भी व्याप्त नहीं कर पाते। प्रभु इनसे महान् हैं।

ऋषिः—**पुरुहन्मा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

बल से आपूरण

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा।
अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिं चित्राभिरूतिभिः॥ २॥

१. हे **वृषन्**=सुखों का वर्षण करनेवाले **शविष्ठ**=अतिशयेन शक्तिशालिन् प्रभो! आप **वृष्ण्या**=सुखों का वर्षण करनेवाली **महिना**=अपनी महिमा से **विश्वा**=सबको **शवसा**=बल से **आ पप्राथ**=आपूरित करते हैं। प्रभु को जो भी धारण करता है, वह प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न बनता है। २. हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त! **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **अस्मान्**=हमें **गोमति व्रजे**=इस इन्द्रियरूप गौओंवाले शरीररूप बाड़े में **चित्राभिः ऊतिभिः**=अद्भुत रक्षणों के द्वारा **अव**=रक्षित कीजिए।

भावार्थ—वह प्रभु ही हमें शक्ति से प्रपूरित करते हैं। प्रभु के अनुग्रह से ही हमरा शरीररूप व्रज प्रशस्त इन्द्रियरूप गौओंवाला होता है।

शक्ति-सम्पन्न व प्रशस्तन्द्रिय बनकर यह उत्तम निवासवाला 'वसिष्ठ' बनता है। यह वसिष्ठ ही अगले सूक्त का ऋषि है—

८२. [द्व्यशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

धन से पुण्य वृद्धि

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=यदि **यावतः**=जिसने धन के **त्वम्** (ईशीय)=आप ईश हैं, **एतावत्**=इतने धन का **अहम्**=मैं **ईशीय**=स्वामी होऊँ तो **इत्**=निश्चय से **स्तोतारम्**=प्रभु के स्तोता का ही **दिधेषेय**=मैं धारण करूँ। २. हे **रदावसो**=सब धनों के देनेवाले प्रभो! मैं **पापत्वाय**=पाप की वृद्धि के लिए **न रासीय**=कभी भी देनेवाला न होऊँ। मेरा धन उत्तम कार्यों के विस्तार का ही कारण बने। मेरे धन से कभी पापवृद्धि न हो।

भावार्थ—यदि मैं प्रभु के अनुग्रह से धनों का स्वामी बनूँ तो सदा स्तोतृजनों के लिए—न कि पापियों के लिए उस धन का देनेवाला बनूँ।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहतीसतोबृहती)** ॥

प्रभु ही पिता हैं, प्रभु ही बन्धु हैं

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन॥ २॥

१. **कुहचिद् विदे** (यत्र कुत्र चिद् विद्यमानाय)=जहाँ कहीं भी (किसी भी देश में) निवास करनेवाले **महयते**=प्रभु के पूजक के लिए **दिवे-दिवे**=प्रतिदिन **इत्**-निश्चय से **रायः**-धनों को **आशिक्षेयम्**=सर्वथा देनेवाला बनूँ। २. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वद् अन्यत्**=आपसे भिन्न **नः**=हमारा **आप्यम्**=बन्धु **नहि अस्ति**=नहीं है। आपसे भिन्न **वस्यः**=प्रशस्त **पिता चन**= पिता भी नहीं है। प्रभु ही हमारे पिता हैं, प्रभु ही बन्धु हैं। प्रभु-प्रदत्त धनों को हम प्रभु के उपासकों के लिए ही देनेवाले हों।

भावार्थ—दैशिक भेदभावों को छोड़कर हम सब प्रभु के उपासकों के लिए धनों को देनेवाले हों। प्रभु को ही पिता व बन्धु जानें। प्रभु को ही सब धनों का दाता समझें।

प्रभु को पिता व बन्धु जाननेवाला यह व्यक्ति शान्त जीवनवाला 'शंयु' होता है। यह प्रभु का उपासन करता हुआ कहता है—

८३. [त्र्यशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहतीसतोबृहती)** ॥

उत्तम गृह

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **मघवद्भ्यः**=(मघ-मखम्) यज्ञशील पुरुषों के लिए **शरणम्**=गृह **यच्छ**=दीजिए। जो घर **त्रिधातु**=बालक, युवा व वृद्ध तीनों को धारण करनेवाला हो। **त्रिवरूथम्**='शीत, आतप व वर्षा' तीनों का निवारण करनेवाला हो। **स्वस्तिमत्**=कल्याणकर हो। **छर्दिः** (छदिष्यत्)=उत्तम छतवाला हो। २. **च**=और इसप्रकार के गृहों को प्राप्त कराके **मह्यम्**=मेरे लिए **एभ्यः**=इन गृहों से **दिद्युम्**=खण्डनकारिणी विद्युत् को **यावया**=पृथक् कीजिए। इन घरों पर विद्युत्-पतन का भय न हो।

भावार्थ—हम उत्तम घरों को बनाकर स्वस्थ मन से उनमें निर्भयतापूर्वक रहते हुए उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़नेवाले हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहतीसतोबृहती)** ॥

तनूपाः-अन्तमः

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव॥ २॥

१. गतमन्त्र के अनुसार उत्तम घरों में रहते हुए हम वे बनें **ये**=जो **गव्यता मनसा**=ज्ञान की वाणियों को अपनाने की कामनावाले मन से **शत्रुम् आदभुः**=कामरूप शत्रु को हिंसित करते हैं और **धृष्णुया**=शत्रुधर्षण शक्ति के द्वारा **अभिप्रघ्नन्ति**=इन वासनारूप शत्रुओं का समन्तात् विनाश करते हैं। २. **अध**=अब हे **मघवन् इन्द्र**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! शत्रु-विद्रावक प्रभो! आप **स्म**=निश्चय से **नः**=हमारे होइए—हम आपकी ओर झुकाववाले हों। हे **गिर्वणः**=ज्ञान की

वाणियों से सम्भजनीय प्रभो! आप हमारे **तनूपाः**=शरीरों के रक्षक **अन्तमः**=अन्तिकतम मित्र **भव**=होइए।

भावार्थ—हम ज्ञान की वाणियों की कामनावाले होते हुए शत्रुओं का धर्षण करें। प्रभु के मित्र बनें। प्रभु हमारे रक्षक व अन्तिकतम मित्र हों।

प्रभु की मित्रता में शत्रुओं का धर्षण करनेवाला होते हुए हम मधुर इच्छाओंवाले 'मधुच्छन्दाः' बनें। मधुच्छन्दा ही अगले सूक्त का ऋषि है—

८४. [चतुरशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु-साक्षात्कार

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **आयाहि**=आप आइए। हे **चित्रभानो**=(चित् र) ज्ञान देनेवाली दीप्तिवाले प्रभो! **इमे**=ये **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए सोमकण **त्वायवः**=आपकी कामनावाले हैं। ये सोमकण ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर उसे दीप्त कर रहे हैं। इसप्रकार ये सोमकण हमें आपके दर्शन के योग्य बनाते हैं। २. ये सोमकण **अण्वीभिः**=सूक्ष्म बुद्धियों के साथ **तना**=सदा **पूतासः**=पवित्रता को सिद्ध करनेवाले हैं। सोम की रक्षा से जहाँ बुद्धि सूक्ष्म बनती है, वहाँ हृदय भी पवित्र होता है। इसप्रकार ये सोमकण हमें प्रभु प्राप्ति के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! हम सोम की रक्षा के द्वारा बुद्धि को सूक्ष्म बनाएँ। इस सोम-रक्षण से ही हृदयों को भी पवित्र करें। इस प्रकार प्रभु दर्शन के पात्र बनते हुए प्रभु के अद्‌भुत प्रकाश का साक्षात्कार करें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

धिया-इषितः विप्रजूतः

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

१. गतमन्त्र में की गई जीव की प्रार्थना पर प्रभु कहते हैं कि हे **इन्द्र**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव! तू **धिया इषितः**=बुद्धि से प्रेरित होता है—सारे कार्यों को बुद्धिपूर्वक करता है। **विप्रजूतः**=ज्ञानी आचार्यों से प्रेरित होता है—उनकी प्रेरणा में चलता हुआ तू भी उनकी भाँति ही ज्ञानी बनता है। २. तू **सुतावतः**=सोम का सम्पादन करनेवाले—संयम द्वारा सोम की रक्षा करनेवाले **वाघतः**=मेधावी पुरुष के—ज्ञान का वहन करनेवाले विद्वान् व्यक्ति के **ब्रह्माणि**=ज्ञानों को **उप**=समीप रहकर प्राप्त करने के लिए यत्नशील होता है।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि (१) हम बुद्धि से प्रेरित हों (२) ज्ञानी पुरुषों से प्रेरणा प्राप्त करें (३) संयमी विद्वान् पुरुषों के समीप रहकर ज्ञान-प्राप्ति के लिए यत्नशील रहें।

ऋषिः—**मधुच्छन्दाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सात्त्विक अन्न सेवन

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **तूतुजानः**=शीघ्रता करता हुआ अथवा (तुन् हिंसायाम्) सब वासनाओं की हिंसा करता हुआ **आयाहि**=मेरे समीप प्राप्त हो। हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियरूप

घोड़ोंवाले! तू **ब्रह्माणि उप**=सदा ज्ञानों के समीप रहनेवाला हो—ज्ञान-प्राप्ति की रुचिवाला बन। इस ज्ञान के द्वारा ही तू वासनाओं को दग्ध करके पवित्र हृदय में प्रभु का दर्शन कर पाएगा। २. **सुते**=सोम की उत्पत्ति के निमित्त **नः**=हमारे दिये हुए **चनः**=इस अन्न को **दधिष्व**=तू धारण करनेवाला बन। यह अन्न ही तेरा भोजन हो। मांस की ओर तेरा झुकाव न हो जाए। मांस भोजन से राजसवृत्तिवाला बनकर तू विषयों की ओर झुक जाएगा।

भावार्थ—हम सात्त्विक भोजन करें। सात्त्विक भोजन से सात्त्विक बुद्धिवाले बनें। सात्त्विक बुद्धि से दीप्त ज्ञानाग्निवाले बनकर वासनाओं को दग्ध कर दें, तभी हम प्रभु-दर्शन कर पाएँगे।

सात्त्विक अन्न से सात्त्विक बुद्धिवाला बनकर यह प्रभु का गायन करनेवाला 'प्रगाथ' होता है तथा यह मनुष्य 'मेधातिथि' बनता है—बुद्धि की ओर चलनेवाला। सात्त्विक बुद्धिवाला बनकर यह 'मेध्य' प्रभु की ओर चलनेवाला मेधातिथि बनता है। ये ही अगले सूक्त के ऋषि हैं—

८५. [पञ्चाशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रगाथः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

प्रभु का ही शंसन

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥ १॥

१. प्रगाथ अपने मित्रों से कहता है कि **सखायः**=हे मित्रो! **अन्यत्**=प्रभु से भिन्न किसी अन्य का **मा चिद् विशंसत**=मत ही शंसन व स्तवन करो। सदा प्रभु का स्मरण करते हुए तुम **मा रिषण्यत**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं से हिंसित न होओ। २. हे मित्रो! **सुते**=इस उत्पन्न जगत् में **सचा**=साथ मिलकर **वृषणम्**=उस शक्तिशाली **इन्द्रम् इत्**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु को ही **स्तोत**=स्तुत करो **च**=और **मुहुः**=बारम्बार **उक्था**=ऊँचे से गाने योग्य स्तोत्रों का **शंसत**=शंसत करो। यह प्रभु-स्तवन ही तुम्हें सबल बनाएगा और तुम वासनाओं व रोगों से हिंसित न होओगे।

भावार्थ—प्रभु का शंसन हमें 'काम, क्रोध' के आक्रमण से बचाता है, इसप्रकार यह शंसन हमें हिंसित नहीं होने देता।

ऋषिः—**प्रगाथः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

'उभयंकर-उभयावी' प्रभु

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम्।
विद्वेषणं संवननोऽभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम्॥ २॥

१. गतमन्त्र के अनुसार उस प्रभु का मिलकर स्तवन करो जोकि **अवक्रक्षिणम्**=शत्रुओं का अवकर्षण करनेवाले हैं। **यथा**-जैसे **वृषभम्**-शक्तिशाली हैं, उसी प्रकार **अजुरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले—अहिंसित हैं। **गां न**=एक वृषभ के समान **चर्षणीसहम्**=हमारे शत्रुभूत मनुष्यों का पराभव करनेवाले हैं। प्रभु हमारे आन्तर व बाह्य दोनों प्रकार के शत्रुओं का हिंसन करते हैं। २. **विद्वेषणम्**=(विगत-द्विष्) वे प्रभु हमारे जीवनों को द्वेष से शून्य बनाते हैं और **संवननम्**=सम्यक् विजय प्राप्त करानेवाले हैं। **उभयंकरम्**=इहलोक के अभ्युदय व परलोक के निःश्रेयस् को प्राप्त करानेवाले हैं। **मंहिष्ठम्**=वे प्रभु दातृतम हैं—सर्वोपरि दाता है। हमारे लिए सब आवश्यक वस्तुओं को देनेवाले हैं। **उभयाविनम्**='शरीर में शक्ति व मस्तिष्क में ज्ञान' दोनों को वे देनेवाले हैं। प्रभु सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् होते हुए उपासकों के लिए शक्ति व ज्ञान प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से आन्तर व बाह्य शत्रुओं का विनाश होता है—अभ्युदय व निःश्रेयस्

की प्राप्ति होती है और हमारा जीवन ज्ञान व शक्ति से युक्त बनता है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

ज्ञानीभक्त, न कि आर्तभक्त

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम्॥ ३॥

१. **यत्**=जो **चित् हि**=निश्चय से **इमे**=ये **नाना जनाः**=विविध वृत्तियोंवाले लोग हैं, वे सब **ऊतये**=अपने रक्षण के लिए **त्वा हवन्ते**=आपको पुकारते हैं। पीड़ा के आने पर सब प्रभु को याद करते ही हैं, परन्तु पीड़ा के दूर होने पर प्रभु के ये आर्तभक्त प्रभु को भूल भी जाते हैं, २. परन्तु हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अस्माकम् इदं ब्रह्म**=हमसे किया गया यह स्तवन **ते**=आपके लिए **विश्वा च अहा**=सब दिनों में **वर्धनम्**=यश का वर्धन करनेवाला **भूतु**=हो। हम आपके ज्ञानीभक्त बनें और सब कार्यों को आपके स्मरण के साथ ही करें। इसप्रकार हमारे सब कर्म पवित्र हों और हमारा जीवन बड़ा यशस्वी बने।

भावार्थ—हम केवल पीड़ा के आने पर ही प्रभु के भक्त न बनें। प्रभु के ज्ञानीभक्त बनकर हम सदा प्रभु का स्मरण करनेवाले हों। यह प्रभु का सतत स्मरण ही हमारे जीवनों को यशस्वी बनाएगा।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

पुरुरूप वाज

वि तर्तूर्यन्ते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम्।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये॥ ४॥

१. हे **मघवन्**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **विपश्चितः**=सब वस्तुओं को सूक्ष्मता से देखकर चिन्तन करनेवाले विद्वान् **अर्यः**=(ऋ गतौ) शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले वीर तथा **जनानां विपः**=तत्त्वज्ञान की प्रेरणा से लोगों को कम्पित कर देनेवाले—उन्हें एक बार हिला देनेवाले लोग **वितर्तूर्यन्ते**=सब कष्टों को तैर जाते हैं। २. हे प्रभो! आप **नेदिष्ठम् उपक्रमस्व**=हमें समीपता से प्राप्त होइए। हम आपके अधिक-से-अधिक समीप हों। आप हमें **ऊतये**=रक्षण के लिए **पुरुरूपम्**=अनेक रूपोंवाले **वाजम्**=बल को **आभर**=प्राप्त कराइए। शरीर, इन्द्रियों, मन व बुद्धि के विविध बलों को प्राप्त करके हम अपना रक्षण करने में समर्थ हों।

भावार्थ—हम ज्ञानी व वीर बनकर आपत्तियों को तैरनेवाले हों। प्रभु के समीप होते हुए अनेकरूपा शक्ति को प्राप्त करके अपने रक्षण के लिए समर्थ हों।

यह प्रभु के समीप रहनेवाला व्यक्ति सबका मित्र 'विश्वामित्र' बनता है, और प्रार्थना करता है कि—

८६. [षडशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

जीवन-संग्राम में विजय व ब्रह्म-प्राप्ति

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम्॥ १॥

१. **ब्रह्मयुजा**=ब्रह्म से इस शरीर-रथ में युक्त किये गये हे प्रभो! **ते हरी**=आपके इन

इन्द्रियाश्वों को **ब्रह्मणा**=ज्ञान से **युनज्मि**=युक्त करता हूँ। ये इन्द्रियाश्व ही **सखाया**=मेरे मित्र हैं और **सधमादे**=इस जीवन-संग्राम में **आशू**=व्याप्त होनेवाले हैं। इनके द्वारा ही मैंने जीवन संग्राम को लड़ना है और विजय पाकर आपके साथ आनन्द का अनुभव करना है। 'सधमाद' शब्द का अर्थ संग्राम भी है—वहाँ वीर सैनिक एकत्र होकर हर्ष का अनुभव करते हैं और अन्ततः मोक्षलोक भी 'सधमाद' है, इसमें आत्मा परमात्मा के साथ आनन्द का अनुभव करता है। ३. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **स्थिरम्**=इस स्थिर—दृढ़ अंगोंवाले **सुखम्**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले (सु+ख) **रथम् अधितिष्ठन्**=शरीर-रथ पर स्थित होता हुआ, **प्रजानन्**=संसार के स्वरूप को ठीक से समझता हुआ, **विद्वान्**=उस आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करनेवाला तू **सोमम् उपयाहि**=शान्त प्रभु को समीपता से प्राप्त होनेवाला है।

भावार्थ—इन्द्रियाश्वों को शरीर-रथ में ठीक से जोतकर, जीवन-संग्राम में विजय करते हुए हम ज्ञानी बनकर प्रभु को प्राप्त हों।

वह जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करनेवाला व्यक्ति 'वसिष्ठ' बनता है और कहता है—

८७. [सप्ताशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'सुतसोम का प्रिय' प्रभु

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम्।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन्॥ १ ॥

१. हे **अध्वर्यवः**=यज्ञशील पुरुषो! **क्षितीनाम्**=मनुष्यों पर **वृषभाय**=सुखों का सेचन करनेवाले प्रभु के लिए—प्रभु की प्राप्ति के लिए इस **अरुणम्**=तेजस्वी **दुग्धम्**=ओषधियों से छोड़े गये—भोजन के रूप में सेवित ओषधियों से प्राप्त कराये गये **अंशुम्**=सोम को **जुहोतन**= अपने जीवन में आहुत करो। इस सोम को अपने अन्दर ही सुरक्षित करने का प्रयत्न करो। २. **गौरात्**=(Pure) पवित्र जीवनवाले पुरुष से **अवपानम्**=शरीर के अन्दर ही सोम के पान को **वेदीयान्**=अतिशयेन प्राप्त करनेवाला **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **सुतसोमम् इच्छन्**=सुतसोम पुरुष को चाहता हुआ **विश्वाहा इत्**=सदा ही **याति**=प्राप्त होता है। पवित्र जीवनवाला व्यक्ति सोम को अपने अन्दर सुरक्षित करता है। इस सोमरक्षक को ही प्रभु प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—हे यज्ञशील पुरुषो! प्रभु-प्राप्ति के लिए सोम का रक्षण करो। सोमरक्षक पुरुष को ही प्रभु प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सात्त्विक अन्न का सेवन व प्रभु का उपासन

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान्॥ २ ॥

१. **यत्**=जब **प्रदिवि**=प्रकृष्ट ज्ञान के निमित्त **चारु अन्नम्**=सुन्दर सात्त्विक अन्न को **दधिषे**=धारण करता है, तब **दिवे-दिवे**=प्रतिदिन **अस्य**=इस सोम की **पीतिम्**=शरीर में रक्षा को **वक्षि**=प्राप्त करता है। सात्त्विक अन्न का सेवन हमें सोम-रक्षण के योग्य बनाता है। २. **उत**=और **हृदा**=हृदय से श्रद्धापूर्वक, **उत**=और मन से—प्रबल इच्छापूर्वक **जुषाणः**=प्रीतिपूर्वक सेवन किये जाते हुए हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **उशन्**=हमारे हित को चाहते हुए आप **प्रस्थितान्**=(प्र-स्थितान्) शरीर में सर्वत्र गतिवाले **सोमान् पाहि**=सोमकणों को सुरक्षित कीजिए। प्रभु की

उपासना से ही, वासना-विनाश द्वारा, सोमकणों का रक्षण सम्भव होता है।

भावार्थ—सात्त्विक अन्न के सेवन व प्रभु के उपासन से हम शरीर में सोमकणों का रक्षण करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सोम-रक्षण-प्रभुमहिमा-दर्शन=ज्ञानधन-प्राप्ति

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ॥ ३॥

१. हे प्रभो! **जज्ञानः**=हमारे हृदयों में प्रादुर्भाव होते हुए आप **सहसे**=हमारे बल के लिए **सोमं पपाथ**=सोम का रक्षण करते हो। हृदय में प्रभु का प्रादुर्भाव होने पर, वासना का विनाश हो जाता है और इसप्रकार सोम का रक्षण सम्भव होता है। हे प्रभो! आपके हृदय में प्रादुर्भूत होने पर ही **माता**=यह वेदमाता **ते महिमानम्**=आपकी महिमा को **प्र-उवाच**=प्रकर्षेण प्रतिपादित करती है। हृदय के निर्मल होने पर वेदार्थ स्पष्ट होता है और हमें प्रभु की महिमा का ज्ञान होता है। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप ही **उरु अन्तरिक्षम्**=इस विशाल अन्तरिक्ष को **आपप्राथ**=अपने तेज से प्रपूरित करते हो। आप ही **युधा**=युद्ध के द्वारा **देवेभ्यः**=देवों के लिए **वरिवःचकर्थ**=धन देते हैं। युद्ध में विजय प्राप्त करके काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जीतनेवाले ये देव वास्तविक ऐश्वर्य को—ज्ञानरूप धन को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु सोम-रक्षण द्वारा हमें शक्ति देते हैं। प्रभु ही सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को तेज से आपूरित करते हैं। अध्यात्म-संग्राम में विजयी बनाकर प्रभु ही हमें ज्ञानधन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्राणसाधना+प्रभु-स्मरण=विजय

यद्योधया महतो मन्यमानान्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान्।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **यत्**=जब **महतः मन्यमानान्**=अपने को बड़ा माननेवाले शत्रुओं के साथ **योधया**=हमें युद्ध कराते हैं तब हम **तान्**=उन **शाशदानान्**=हिंसन करते हुए शत्रुओं को **बाहुभिः**=बाहुओं से **साक्षाम**=अभिभूत करते हैं। प्रभु-स्मरणपूर्वक युद्ध करते हुए हम शत्रुओं को पराजित करते हैं। २. **यद्वा**=अथवा **नृभिः वृतः**=हमें उन्नत करनेवाले (नृ नये) इन प्राणों से आवृत (घिरे) हुए-हुए आप **अभियुध्याः**=हमारे शत्रुओं से युद्ध करते हैं तब हम **त्वया**=आपके द्वारा **तम्**=उस **सौश्रवसम्**=उत्तम यश के हेतुभूत **आजिम्**=युद्ध को **जयेम**=जीतनेवाले होते हैं। 'प्राणों से आवृत्त हुए-हुए प्रभु' का भाव यही है कि हम प्राणसाधना के साथ प्रभु-स्मरण करनेवाले बनें। 'प्राणसाधना+प्रभु-स्मरण=विजय' इस सूत्र को हम न भूलें।

भावार्थ—हम प्रभु की सहायता से अभिमानी शत्रुओं का पराजय कर पाते हैं। प्राणसाधना व प्रभु-स्मरण हमें यशस्वी व विजय प्राप्त करानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु-कीर्तन से आसुरी माया का पराभव

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य॥ ५॥

१. मैं **इन्द्रस्य**=बल के सब कर्मों को करनेवाले प्रभु के **प्रथमा**=अतिशयेन विस्तारवाले व मुख्य **कृतानि**=कर्मों का **प्रवोचम्**=प्रतिपादन करता हूँ। **या**=जिन **नूतना**=अतिशयेन स्तुत्य कर्मों को **मघवा**=यह ऐश्वर्यशाली प्रभु **चकार**=करते हैं, उन कर्मों का मैं गायन करता हूँ। २. इस प्रभु कीर्तन द्वारा **यदा इत्**=जब यह उपासक **अदेवीः**=आसुरी **मायाः**=मायाओं को **असहिष्ट**=पराभूत करता है, **अथ**=तब वह **केवलः**=आनन्द में संचार करानेवाला **सोमः**=सोम **अस्य अभवत्**=इसका होता है। आसुरभावों को जीतकर यह सोम का रक्षण कर पाता है और सोम रक्षण से आनन्द को प्राप्त करता है।

भावार्थ—हम प्रभु के विशाल व प्रशस्त कर्मों का कीर्तन करें। यह कीर्तन हमें आसुरभावों से बचाएगा। आसुरभावों के विनाश से हम सोम का रक्षण कर पाएँगे। यह सोम रक्षण हमारे उल्लास का कारण बनेगा।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पशव्यं विश्वम्

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥

१. **इदम्**=यह **अभितः**=चारों ओर फैला हुआ **पशव्यम्**=सब द्विपात्-चतुष्पात् प्राणियों के लिए हितकर **विश्वम्**=जगत् **तव**=आपका ही है। **यत्**=जिस जगत् को आप **सूर्यस्य चक्षसा**=सूर्य के प्रकाश से **पश्यसि**=प्रकाशित करते हैं। २. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! आप **कः इत्**=अकेले ही **गवां गोपतिः असि**=सब गौओं के स्वामी हैं। 'गो' शब्द ऐश्वर्य का प्रतीक है—सब ऐश्वर्यों के स्वामी आप ही हैं। हे प्रभो! **ते**=आपके द्वारा **प्रयतस्य**=(प्रदत्तस्य) दिये हुए **वस्वः**=धन का **भक्षीमहि**=हम उपभोग करें।

भावार्थ—प्रभु का यह संसार सबका हितकर है। प्रभु इसे सूर्यकिरणों द्वारा प्रकाशित करते हैं। सब ऐश्वर्यों के स्वामी हैं। प्रभु-प्रदत्त धन का हम उपभोग करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्राबृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्' प्रभु

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

१. हे **बृहस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! आप **इन्द्रः च**=और सर्वशक्तिमान् प्रभु **युवम्**=आप दोनों क्रमशः **दिव्यस्य वस्वः**=मस्तिष्करूप द्युलोक के ज्ञानधन को **उत**=तथा **पार्थिवस्य**=शरीररूप पृथिवी के शक्तिरूप धन के **ईशाथे**=ईश हैं। वस्तुतः 'बृहस्पति व इन्द्र' प्रभु के ही दो रूप हैं—प्रभु ही सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् हैं। २. **स्तुवते**=स्तुति करनेवाले **कीरये**=(कॄ विक्षेपे) वासनाओं को विदीर्ण कर देनेवाले स्तोता के लिए **चित्**=निश्चय से **रयिं धत्तम्**=ऐश्वर्य को धारण कीजिए। **यूयम्**=हे देवो! आप **स्वस्तिभिः**=कल्याणों के द्वारा **सदा**=सदा **नः पात**=हमारा रक्षण कीजिए।

भावार्थ—बृहस्पति व इन्द्र के रूप में प्रभु की आराधना करते हुए हम ज्ञान व शक्ति प्राप्त करें। हे प्रभो! स्तवन करनेवालों के लिए आप ऐश्वर्य प्राप्त कराएँ।

ज्ञान व शक्ति प्राप्त करके यह 'वामदेव' बनता है—सुन्दर दिव्य गुणोंवाला। यह प्रभु की आराधना निम्न शब्दों में करता है—

८८. [अष्टाशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ऋषयः-दीध्यानाः-विप्राः

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम्॥ १॥

१. **यः**=जो **ज्मः अन्तान्**=पृथिवी के अन्तों को—दसों दिशाओं को **सहसा**=शक्ति से **वितस्तम्भ**=थामता है, **बृहस्पतिः**=जो ब्रह्मणस्पति है—सब ज्ञानों का स्वामी है। **रवेण**=ज्ञान-कर्म व उपासना की वाणियों से **त्रिषधस्थः**=पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक में स्थित है, अर्थात् सर्वत्र इन वाणियों का प्रसार कर रहा है। २. **तम्**=उस **मन्द्रजिह्वम्**=अत्यन्त मधुर जिह्वावाले—मधुरता से ज्ञानोपदेश करनेवाले प्रभु को **पुरःदधिरे**=अपने सामने धारण करते हैं। प्रभु को आदर्श के रूप में अपने सामने स्थापित करके तदनुसार अपने जीवन को बनाने का प्रयत्न करते हैं। एक तो **प्रत्नासः ऋषयः**=पुराणे, अर्थात् बड़ी आयु के तत्त्वज्ञानी पुरुष; दूसरे **दीध्यानाः**=ज्ञानदीप्ति से दीप्त होनेवाले पुरुष तथा **विप्राः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले पुरुष, उस प्रभु को ही अपने सामने स्थापित करते हैं—उसके अनुसार ही अपने जीवन को बनाने का यत्न करते हैं।

भावार्थ—ऋषि, ध्यानी व विप्र प्रभु को अपने सामने स्थापित करते हैं। उसे अपने जीवन में धारण करने के लिए यत्नशील होते हैं।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्वाध्याय व दोष-निवारण

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम्॥ २॥

१. हे **बृहस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! **ये**=जो **नः**=हममें से **धुनेतयः**=(धुना ईतिर्येषाम्) शत्रुओं को कम्पित करनेवाली गतिवाले **सुप्रकेतम् मदन्तः**=उत्कृष्ट ज्ञान के साथ आनन्द का अनुभव करते हुए **अभिततस्रे**=प्रातः-सायं दोनों समय दोषों को अपने से दूर फेंकते हैं। (तस् reject, cast)। **अस्य**=इस मनुष्य के **योनिम्**=बुराइयों के अमिश्रण व अच्छाइयों के मिश्रण के प्रयत्न की **रक्षतात्**=आप रक्षा करें। २. यह योनि ही **पृषन्तम्**=सब सुखों का सेचन करनेवाली है। **सृप्रम्**=अग्रगति की साधक है, **अदब्धम्**=इसे हिंसित नहीं होने देती और **ऊर्वम्**=विशाल है। प्रातः-सायं दोषनिवारण के कार्य से ही इसका जीवन सुखसिक्त, अग्रगतिवाला, अहिंसित तथा विशाल बनता है।

भावार्थ—हम प्रातः-सायं स्वाध्याय में आनन्द लेते हुए दोष-निवारण के लिए यत्नशील हों। प्रभु-कृपा से हमारा यह कार्य सुखवर्षक, उन्नतिकारक, अहिंसक व हमें विशाल बनानेवाला होगा।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

यज्ञशीलता व स्वर्गप्राप्ति

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्त्यभितो विरप्शम्॥ ३॥

१. हे **बृहस्पते**=सर्वोच्च दिशा के अधिपते परमात्मन्! **या**=जो **ते**=आपके **परावत् परमा**=सुदूर

से सुदूर देश से भी उत्कृष्ट स्थान है, उनमें **ऋतस्पृशः** (ऋत=यज्ञ)=यज्ञों के सम्पर्कवाले—यज्ञशील पुरुष **आनिषेदुः**=आसीन होते हैं। पृथिवीलोक से ऊपर अन्तरिक्षलोक, अन्तरिक्षलोक से ऊपर द्युलोक तथा द्युलोक से ऊपर (दिवो नाकस्य पृष्ठात्०) स्वर्गलोक है। यहाँ यज्ञशील पुरुष ही पहुँचते हैं। २. **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिए ही **अद्रिदुग्धाः**=(आदृ=to adore, दुह प्रपूरणे) उपासना के द्वारा अपने में पूरित हुए-हुए **मध्वः**=सोमकण **अभितः विरप्शम्**=दोनों ओर महान् शब्दराशि को **श्चोतन्ति**=क्षरित करते हैं। अपराविद्या की शब्दराशि ही प्रकृतिविद्या है, पराविद्या की शब्दराशि आत्मविद्या है। जब हम सोमकणों का रक्षण करते हैं तब ये दोनों ही विद्याएँ हमें प्राप्त होती हैं। एक इहलोक को सुन्दर बनाती है तो दूसरी परलोक को! 'अभितः' शब्द इसीभाव का द्योतक है। ये सोमकण **खाताः अवताः**=खोदे गये कुओं के समान हैं। जैसे ये कुएँ जलराशि को प्राप्त कराते हैं, इसी प्रकार ये सोमकण ज्ञान की जलराशि को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—यज्ञशील बनकर हम स्वर्ग में स्थित होते हैं। शरीर में सुरक्षित सोमकण हमें ज्ञान जल-राशि को प्राप्त कराते हैं। उसमें स्नान करके हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'सप्तास्य-सप्तरश्मि' प्रभु

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्यो॒मन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि॥ ४॥

१. **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **परमे व्योमन्**=उत्कृष्ट हृदयाकाश में **महःज्योतिषः**=महान् ज्ञानज्योति से **प्रथमं जायमानः**=विस्तार के साथ प्रादुर्भूत होता हुआ **रवेण**=ज्ञान की वाणियों के उच्चारण से **तमांसि**=अज्ञानान्धकारों को **वि अधमत्**=विनष्ट करता है। हृदय में प्रभु का प्रकाश होते ही सब अन्धकार नष्ट हो जाता है। २. ये प्रभु **सप्तास्यः**=सात छन्दों से बनी हुई वेदवाणीरूप सात मुखोंवाले हैं। **तुविजातः**=महान् प्रादुर्भाववाले हैं—प्रभु-उपासक में महान् गुणों का विकास करते हैं। **सप्तरश्मिः**=सात रश्मियोंवाले सूर्य की भाँति ये प्रभु सात छन्दों से बनी वेदवाणीरूप सात रश्मियोंवाले हैं। इन सात रश्मियों से ही ये प्रभु 'भूः-भुवः-स्वः-महः-जनः तपः-सत्यम्' नामक सातलोकों को प्रकाशित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ज्योतिर्मय हैं। सप्त छन्दोमयी वेदवाणियाँ ही प्रभु के सात मुख हैं। ये ही प्रभुरूप सूर्य की सात रश्मियाँ हैं। इनके द्वारा प्रभु हमारे अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'वल व फलिगं' का विनाश

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत्॥ ५॥

१. **सः**=वे **बृहस्पतिः**=ज्ञान के स्वामी प्रभु **सुष्टुभा**=उत्तम स्तुतियोंवाले **गणेन**=मन्त्रसमूह से तथा **सः**=वे प्रभु **ऋक्वता**=ऋचाओंवाले—विज्ञानवाले (गणेन) मन्त्रसमूह से **वलम्**=ज्ञान के आवरणभूत (Vail) इस वल नामक असुर को **रुरोज**=विनष्ट करते हैं। **रवेण**=हृदयस्थरूपेण इन ज्ञान की वाणियों के उच्चारण से **फलिगम्**=विशीर्णता की ओर ले जानेवाली (वल विशरणे) आसुरीवृत्ति को विनष्ट करते हैं। २. **बृहस्पतिः**=वे ज्ञान के स्वामी प्रभु **हव्यसूदः**=सब हव्य पदार्थों को—पवित्र यज्ञिय पदार्थों को प्राप्त करानेवाली **वावशतीः**=हमारा अत्यन्त हित चाहती हुई

उस्त्रियाः=ज्ञान की रश्मियों को **उदाजत्**=हममें उत्कर्षेण प्रेरित करते हैं। इन ज्ञानरश्मियों को प्राप्त करके ही हम इस संसार में अयज्ञिय बातों से दूर रहकर अपना हित सिद्ध कर पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान की वाणियों के द्वारा ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करते हैं और सब विदीर्ण करनेवाली आसुरवृत्तियों को दूर करते हैं। अब हव्य पदार्थों की ओर हमारा झुकाव होता है।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'यज्ञैः नमसा हविर्भिः'

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ६॥

१. गतमन्त्र के अनुसार वलासुर को विनिष्ट करके हम **एवा**=सचमुच उस **पित्रे**=पालक **विश्वदेवाय**=सब दिव्य गुणों के पुञ्ज **वृष्णे**=शक्तिशाली व सुखवर्षक प्रभु के लिए **यज्ञैः**=श्रेष्ठतम कर्मों से **नमसा**=उन कर्मों के अहंकार को छोड़कर नम्रभाव से और **हविर्भिः**=सदा दानपूर्वक अदन से **विधेम**=पूजा करें। २. हे **बृहस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! इसप्रकार 'यज्ञों नमन व हवियों' से आपका पूजन करते हुए **वयम्**=हम **सुप्रजाः**=उत्तम प्रजाओंवाले व **वीरवन्तः**=वीरत्व की भावनावाले तथा **रयीणां पतयः**=धनों के स्वामी—न कि धनों के दास **स्याम**=हों।

भावार्थ—'यज्ञों, नमन व हवियों' से प्रभु-पूजन करते हुए हम 'उत्तम सन्तान, वीरता व धनों के स्वामित्व' को प्राप्त करें। यज्ञों से उत्तम प्रजा को, प्रभु के प्रति नमन से वीरता को तथा हवियों (दान) से धनों के स्वामित्व को प्राप्त करनेवाले हों।

'उत्तम प्रजा, वीरता व धन स्वामित्व' को अपनी ओर आकृष्ट करनेवाला यह 'कृष्ण' बनता है और इन्द्र का इसप्रकार आराधन करता है—

८९. [एकोननवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'विद्याभ्यसनं व्यसनं, हरिपादसेवनं व्यसनम्'

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम्॥ १॥

१. **अस्ता इव**=शत्रुओं पर अस्त्र फेंकनेवाले पुरुष की भाँति (असु क्षेपणे) **सुप्रतरम्**=अत्यन्त प्रवृद्ध **लायम्**=लय (विनाश) के कारणभूत अस्त्र को **अस्यन्**=फेंकता हुआ और इसप्रकार **भूषन् इव**=अपने को सद्गुणों से अलंकृत करता हुआ **अस्मै**=इस प्रभु के लिए **स्तोमम्**=स्तुति को **प्रभर**=भरण करनेवाला तू बन। काम-क्रोध आदि शत्रुओं के विनाश के लिए प्रभु-स्तवन ही सर्वोत्तम अस्त्र है। २. **विप्राः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले हे लोगो! **वाचा**=प्रभु की दी हुई ज्ञान की वाणियों से **तरत**=तुम इन शत्रुओं को तैर जाओ। **अर्यः**=(ऋ गतौ) सर्वत्र गतिवाले प्रभु की **वाचम्**=वाणी को **निरामय**=अपने अन्दर रमा लो। इन ज्ञान की वाणियों का तुम्हें व्यसन लग जाए और हे **जरितः**=प्रभु का स्तवन करनेवाले **सोम**=सौम्यस्वभाव जीव! तू **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को अपने में रमा ले। प्रभु-उपासन का भी तू व्यसनी बन जा। ये 'विद्या व प्रभु की उपासना' के व्यसन तुझे अन्य सब व्यसनों से बचानेवाले होंगे।

भावार्थ—शत्रुओं को शीर्ण करने का सर्वोतम प्रकार यही है कि हम जीवन में 'विद्या व उपासना' के व्यसनी बन जाएँ।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

गोदोहन–इन्द्र प्रबोधन

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम्।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम्॥ २॥

१. **गां दोहेन**=वेदवाणीरूप गौ के दोहन से, अर्थात् ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा तू **सखायम्**=उस सनातन मित्र प्रभु को **उपशिक्षा**=समीपता से जाननेवाला हो। ज्ञानीभक्त बनकर तू प्रभु को आत्मतुल्य प्रिय हो 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'। २. इस ज्ञान के द्वारा **जरितः**=स्तवन करनेवाले जीव! तू **जारम्**=विषय-वासनाओं को जीर्ण करनेवाले **इन्द्रम्**=उस असुरों के संहारक प्रभु को **प्रबोधय**=अपने हृदय में जागरित कर। इस प्रभुरूप सूर्य के उदय के साथ सब वासनान्धकार विलीन हो जाएगा। ३. ये प्रभु **कोशं न पूर्णम्**=एक पूर्ण कोश के समान हैं—प्रभु की प्राप्ति से तेरी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाएँगी। **वसुना**=निवास के लिए आवश्यक सब धनों से **न्यृष्टम्**=ये प्रभु निश्चय से युक्त हैं। सम्पूर्ण वसु उस प्रभु की ओर ही प्रवाहवाले हैं (ऋष् to flow)। प्रभु को प्राप्त कर लेने पर इनकी प्राप्ति तो हो ही जाती है, इसलिए तू **शूरम्**=सब धनों के विजेता तथा सब बुराइयों को शीर्ण करनेवाले उसे प्रभु को **मघदेयाय**=ऐश्वर्यों के देने के लिए **आच्यावय**=अपने अभिमुख कर। प्रभु की प्राप्ति में ही सब धनों की प्राप्ति है।

भावार्थ—हम ज्ञानधेनु का दोहन करें। प्रभु के प्रकाश को हृदय में प्राप्त करने का प्रयत्न करें। प्रभु ही सब धनों के कोश हैं—प्रभु प्राप्ति में सब धनों की प्राप्ति है।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'शिशय' का, न कि 'भोज' का स्मरण

किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः॥ ३॥

१. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन्! **अङ्ग**=सर्वत्र गतिमय (अगि गतौ) प्रभो! **त्वा**=आपको **किम्**=क्यों **भोजनम्**=सब भोजनों को प्राप्त कराके पालन करनेवाला **आहुः**=कहते हैं। मैं तो भोजनों की प्रार्थना न करके यही चाहता हूँ कि आप **मा**=मुझे **शिशीहि**=तीक्ष्ण बुद्धिवाला कर दें। मैं **त्वा**=आपको **शिशयम्**=बुद्धि को तीव्र करनेवाले के रूप में **शृणोमि**=सुनता हूँ। २. साथ ही हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! आपकी कृपा से **मम धीः**=मेरी बुद्धि **अप्नस्वती**=कर्मोंवाली **अस्तु**=हो और हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **नः**=हमारे लिए **वसुविदम्**=निवास के लिए आवश्यक सब तत्त्वों को प्राप्त करानेवाले **भगम्**=भजनीय धन को **आभर**=सर्वथा प्राप्त कराइए। वस्तुतः प्रभु बुद्धि देकर मुझे इस योग्य बना दें कि मैं निवास के लिए आवश्यक तत्त्वों को जुटाने में समर्थ हो जाऊँ। मैं बुद्धिवाला होऊँ और मेरी बुद्धि कर्म से युक्त हो।

भावार्थ—मैं भोजन की प्रार्थना न करके क्रियायुक्त बुद्धि की याचना करूँ। 'हम प्रभु को 'शिशय' के रूप' स्मरण करें, न कि 'भोज' के रूप में।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

हविष्मान्, न कि असुन्वत्

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना वि ह्वयन्ते समीके।,
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**-शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **समीके**=संग्राम में **सन्तस्थानाः**=सम्यक् स्थित हुए-हुए **जनः**=लोग **मम सत्येषु**='मेरा पक्ष सत्य है, मेरा पक्ष सत्य है' इसप्रकार के विचारवाले संग्रामों में **त्वाम्**=आपको **विह्वयन्ते**=पुकारते हैं। दोनों ही पक्ष अपने को सत्य पर आरूढ़ समझ रहे होते हैं। दोनों में कोई भी अपने को ग़लती पर नहीं समझता। २. **अत्र**=इसप्रकार के विचारवाले इन संग्रामों के उपस्थित होने पर **यः**=जो **हविष्मान्**=हविवाला होता है—त्यागपूर्वक अदन करनेवाला होता है, वही उस प्रभु को **युजं कृणुते**=अपना साथी बना पाता है। **शूरः**=सब शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभु **असुन्वता**=अयज्ञशील पुरुष के साथ **सख्यम्**=मित्रता को **न वष्टि**=नहीं चाहते हैं। त्याग की वृत्ति ही मनुष्य को असत्य से दूर करती है, प्रभु इस सत्य के पक्षवाले को ही विजयी करते हैं। संग्रामों में विजय उन्हीं की होती है, जो हविष्मान् बनते हैं। जिस जाति में त्याग की भावना नहीं होती, वह पराजित ही होती है।

भावार्थ—हम हविष्मान् बनें, हम तभी प्रभु की मित्रता में विजयी बनेंगे।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'प्रयस्वान्' बनना

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान्।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम्॥ ५॥

१. **यः**=जो भी पुरुष **प्रयस्वान्**=(प्रयस्=हवि) हविष्मान्=त्याग की वृत्तिवाला बनकर **अस्मै**=इस प्रभु के लिए—इस प्रभु की प्राप्ति के लिए **धनम्**=धन को **स्पन्द्रं न**=जोकि चञ्चल-सा है—अस्थिर है तथा **बहुलम्**=जीवन के लिए कृष्णपक्ष के समान है—जीवन को अन्धकारमय बना देता है—उस धन को **आसुनोति**=यज्ञ के लिए विनियुक्त करता है और जो प्रयस्वान् (प्रयस्=food) प्रशस्त भोजनवाला बनकर **तीव्रान्**=शक्तिशाली—रोगकृमियों व मन की मैल का संहार करनेवाले **सोमान्**=सोमकणों को **आसुनोति**=अपने शरीर में उत्पन्न करता है, **तस्मै**=उस पुरुष के लिए वे प्रभु **अह्नः प्रातः**=दिन का प्रारम्भ होते ही **शत्रून्**=काम आदि शत्रुओं को **सुतुकान्**=(सुप्रेरणान् सा०) पूरी तरह से भाग जानेवाला करते हैं और **स्वष्ट्रान्**=(उत्तमायुधान् अष्ट्रा=goad) उत्तम शस्त्रोंवाले इन शत्रुओं को **नियुवति**=निश्चय से पृथक् कर देते हैं। इसप्रकार **वृत्रं हन्ति**=वे प्रज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट कर डालते हैं। २. (क) त्यागवाले बनकर हम धनों को यज्ञों में विनियुक्त करें। ये धन अस्थिर हैं—इनमें ममता क्या करनी? ये धन हमारी अवनति का कारण बनते हैं—जीवन में ये कृष्णपक्ष के समान हैं। (ख) उत्तम अन्नों का सेवन करते हुए हम शरीर में सोम का उत्पादन करें, वह हमें नीरोग व निर्मल बनाएगा। (ग) ऐसा होने पर हमारे ये काम आदि शत्रु भाग खड़े होंगे। इन शत्रुओं के अस्त्र हमारे लिए कुण्ठित हो जाएँगे—हमारी शत्रुभूत वासनाओं का विनाश हो जाएगा।

भावार्थ—हम धनों को यज्ञों में लगाएँ, सोम (वीर्य) का अपने में उत्पादन करें। यही शत्रु-विनाश का मार्ग है।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

जन्य, (द्युम्न), धन

यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्य स्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम्॥ ६॥

१. **यस्मिन् इन्द्रे**=जिस परमैश्वर्यशाली प्रभु में **वयम्**=हम **शंसम्**=स्तुति को **दधिम**=धारण

करते हैं और **यः मघवा**-जो ऐश्वर्यशाली प्रभु **अस्मे**=हममें **कामम्**=काम को **शिश्राय** (to use, employ)=हमारी उन्नति के लिए विनियुक्त करते हैं। इस काम के द्वारा ही तो वेदाध्ययन व यज्ञ आदि उत्तम कर्म हुआ करते हैं। **अस्य शत्रुः**=इस पुरुष का नाश करनेवाला काम **आरात् चित् सन्**=दूर भी होता हुआ **भयताम्**=डरता ही रहे। इसके पास फटकने का इसे स्वप्न भी न हो और अब **अस्मै**=इस प्रभु के स्तोता के लिए **जन्या**=मनुष्य का हित साधनेवाले **द्युम्ना**=धन **नमन्ताम्**=निश्चय से प्रह्वीभूत हों। इसे इन जन्य धनों की प्राप्ति हो। २. जब हम प्रभु का स्तवन करते हैं तब इसका सर्वमहान् लाभ यह होता है कि हमारे जीवनों में काम शत्रु न बनकर मित्र की भाँति कार्य करता है। प्रभु इस 'काम' को हमारी उन्नति के लिए विनियुक्त करते हुए उन धनों को प्राप्त करते हैं जो जनहित के साधक होते हैं।

भावार्थ—प्रभु के स्तवन से काम हमारा शत्रु न होकर मित्र हो जाता है और हम लोकहित-साधक धनों को प्राप्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**कृष्णः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

रमणीय शक्ति व बुद्धि

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम्॥ ७॥

१. हे **पुरुहूत**=बहुतों-से पुकारे जानेवाले प्रभो! **यः**=जो आपका **उग्रः**=तीव्र **शम्बः**=वज्र है, **तेन**=उस शत्रुओं को शान्त (शंब) करनेवाले वज्र से **आरात् शत्रुम्**=इस समीप आनेवाले शत्रु को **दूरम्**=सुदूर **अपबाधस्व**=विनष्ट करनेवाले होइए। वस्तुतः प्रभु ने हमें यह क्रियाशीलतारूप वज्र दिया है। इसी से हमने काम आदि शत्रुओं को दूर भगाना है। २. हे प्रभो! **अस्मे**=हमारे लिए आप **यवमत्**=जौवाले व **गोमत्**=गौओंवाले, अर्थात् गोदुग्ध से युक्त अन्न को **धेहि**=धारण कीजिए। जौ इत्यादि अन्नों से हममें प्राणशक्ति का वर्धन होगा और गोदुग्ध से हमें सात्त्विक बुद्धि प्राप्त होगी। ३. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **जरित्रे**=स्तोता के लिए **वाजरत्नाम्**=रमणीय शक्तियोंवाली **धियम्**=बुद्धि को **कृधि**=कीजिए। आपका स्तोता जहाँ बुद्धि को प्राप्त करे, वहाँ उसे रमणीय शक्तियाँ भी प्राप्त हों। शक्तियों की रमणीयता इसी में है कि वह रक्षा के कार्य में विनियुक्त होती है—ध्वंस के कार्य में नहीं।

भावार्थ—हम क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा वासना को नष्ट करें। जौ व गोदुग्ध का प्रयोग करते हुए रमणीय शक्ति व बुद्धि को प्राप्त करें।

ऋषिः—**कृष्णः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

बहुलान्त सोम

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम्।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम्॥ ८॥

१. **यम् इन्द्रम्**=जिस जितेन्द्रिय पुरुष को **तीव्राः**=रोगकृमिरूप शत्रुओं के लिए उग्र **बहुलान्तासः**=मानव-जीवन में कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष को लानेवाले **वृषसवासः**=शक्तिशाली पुरुष को जन्म देनेवाले **सोमाः**=सोमकण **अन्तःअग्मन्**=अन्दर प्राप्त होते हैं, अर्थात् जिस जितेन्द्रिय पुरुष के शरीर में ये सोमकण व्याप्त होते हैं उस **दामानम्**=कटिबन्धनवाले (दामन् girdle), नियमित जीवनवाले पुरुष को **अह**=निश्चय से **मघवा**=ऐश्वर्यशाली प्रभु **न नियंसत्**=क़ैद में नहीं डालते, अर्थात् यह पुरुष बारम्बार बन्धन में नहीं पड़ता। यह सोम-रक्षण जहाँ उसे शक्तिशाली

व नीरोग बनाता है, वहाँ उसे उज्ज्वल जीवनवाला भी बनाता है। शुक्लमार्ग से चलता हुआ यह व्यक्ति उस लोक को प्राप्त करता है, जहाँ से इसे फिर इस मानव आवर्त्त के बन्धन में नहीं आना पड़ता। २. **सुन्वते**=इस सोमाभिषव करनेवाले पुरुष के लिए **भूरि**=पालन-पोषण के लिए पर्याप्त **वामम्**=सुन्दर धन **निवहति**=निश्चय से प्राप्त कराते हैं। सोम-रक्षण से जहाँ परलोक में निःश्रेयस की प्राप्ति होती है, वहाँ यह सोम-रक्षण इस लोक के अभ्युदय को भी प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सोम-रक्षण 'अभ्युदय व निःश्रेयस' दोनों का साधक है।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

देवकाम (न धना रुणद्धि)

उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित्तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥ ९ ॥

१. **अतिदीवा**=प्रभु की अतिशयेन स्तुति करनेवाला यह सोमरक्षक पुरुष **प्रहाम्**=प्रकर्षेण विनाश करनेवाली, 'मार' नामवाली इस कामवासना को **जयति**=जीत लेता है, २. **उत**=और **इव**=जैसे **श्वघ्नी**=कल की चिन्ता न करनेवाला 'कितव' (जुआरी) **काले**=अवसर पर **कृतम्**=द्यूतोपार्जित सम्पूर्ण धन को **विचिनोति**=बखेर देता है, इसी प्रकार **यः**=जो **देवकामः**=प्रभु-प्राप्ति की कामनावाला **धनम्**=धनों को **न रुणद्धि**=रोकता नहीं है, अपितु यज्ञों में विनियुक्त कर डालता है, **तम्**=उस देवकाम पुरुष को **स्वधावान्**=सम्पूर्ण (स्व) धनों को धारण करनेवाला प्रभु **रायः**=धन से **इत्**=निश्चयपूर्वक **संसृजति**=संसृष्ट करता है। देवकाम पुरुष को यज्ञादि की पूर्ति के लिए धनों की कमी नहीं रहती।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन द्वारा काम को पराजित करें। उदारता से धनों का यज्ञों में विनियोग करें। प्रभु हमें सब आवश्यक धन प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अरिष्टासः

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीवः कृणोतु ॥ ११ ॥

व्याख्या अथर्व० २०.१७.१०-११ पर देखिए।

सूचना—अथर्व० २०.१७.१० पर '**विश्वे**' के स्थान पर '**विश्वा**' णः है। वहाँ यह 'क्षुधम्' का विशेषण है। यहाँ यह 'वयम्' का। **विश्वे वयं तरेम**=हम सब तैर जाएँ। **आरिष्टासो वृजनीभिः**=के स्थान में '**अस्माकेन वृजनेना**' ऐसा पाठ है। यहाँ अर्थ है 'अहिंसित' होते हुए पाप-वर्जनों के द्वारा।

पापवर्जन द्वारा ही यह 'भरद्वाज' बनता है और प्रार्थना करता है कि—

९०. [नवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'अद्रिभित्' प्रभु

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान्।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति॥ १॥

१. **यः**=जो प्रभु **अद्रिभित्**=हमारे अविद्यापर्वत का विदारण करनेवाले हैं, **प्रथमजाः**=सृष्टि से पूर्व ही विद्यमान हैं, **ऋतावाः**=ऋतवाले हैं—प्रभु के तीव्र तप से ही तो ऋत की उत्पत्ति होती है 'ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत', **बृहस्पतिः**=(ब्रह्मणस्पतिः) वेदज्ञान के रक्षक हैं। **अङ्गिरसः**=उपासकों के अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाले हैं, **हविष्मान्**=प्रशस्त हविवाले हैं। प्रभु ही सृष्टियज्ञ के महान् होता हैं। २. **द्विबर्हज्मा**=दोनों लोकों में प्रवृद्ध गतिवाले हैं (द्वि-बर्ह-ज्मा) द्युलोक व पृथिवीलोक में सर्वत्र प्रभु की क्रिया विद्यमान है। **प्राघर्मसत्**=प्रकृष्ट तेज में आसीन होनेवाले हैं—तेज पुञ्ज हैं—तेज-ही तेज हैं। **नः पिता**=हम सबके पिता हैं। **वृषभः**=ये सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभु **रोदसी**=इन द्यावापृथिवी में **आरोरवीति**=खूब ही गर्जना करते हैं। इन लोकों में स्थित मनुष्यों के हृदयों में स्थित होकर उन्हें कर्त्तव्याकर्त्तव्य का उपदेश करते हैं। अच्छे कर्मों में उत्साह व बुरे कर्मों में भय प्रभु ही तो प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—ज्ञान के स्वामी प्रभु ही हमारे अविद्यापर्वत का विदारण करते हैं। हमें तेजस्वी बनाते हैं। हृदयस्थरूपेण कर्त्तव्य की प्रेरणा देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयं छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन्॥ २॥

१. **यः बृहस्पतिः**=जो ज्ञान के स्वामी प्रभु हैं, वे **ईवते जनाय**=गतिशील-आलस्यशून्य मनुष्य के लिए **चित्**=पूर्ण निश्चय से **देवहूतौ**=यज्ञों में **लोकम्**=स्थान को **चकार**=करते हैं, अर्थात् वे ज्ञानस्वरूप प्रभु पुरुषार्थी मनुष्य को यज्ञ की रुचिवाला बनाते हैं। २. इसप्रकार यज्ञरुचि बनाकर प्रभु **वृत्राणि घ्नन्**=इसकी वासनाओं को नष्ट करते हुए **पुरः विदर्दरीति**=काम, क्रोध, लोभ की नगरियों का विदारण कर देते हैं। इसके **शत्रून्**=इन काम आदि शत्रुओं को **जयन्**=जीतते हुए **पृत्सु**=संग्रामों मे **अमित्रान्**=द्वेष आदि अमित्रभूत भावनाओं को **साहन्**=पराभूत करते हैं।

भावार्थ—प्रभु आलस्यशून्य मनुष्य को यज्ञशील बनाते हैं। इसके आसुरभावों का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अर्कों द्वारा अमित्र-हनन

बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान्गोमतो देव एषः।
अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः॥ ३॥

१. **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **वसूनि**=निवास के लिए आवश्यक सब धनों को हमारे लिए **समजयत्**=जीतते हैं। **एषः देवः**=ये हमारे लिए शत्रुओं को पराजित करने की कामनावाले प्रभु (दिव् विजिगीषायाम्) **महः**=महत्त्वपूर्ण **गोमतः**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **व्रजान्**=बाड़ों को (cow-shed) हमारे लिए जीतते हैं, अर्थात् प्रभु सब वसुओं को प्राप्त कराते हैं और हमें प्रशस्त

इन्द्रियोंवाला बनाते हैं। २. **अप्रतीतः**=ये किसी से भी प्रतिगत न होनेवाले—न रोके जानेवाले प्रभु **अपः**=रेत:कणरूप जलों को तथा **स्वः**=प्रकाश को **सिषासन्**=हमारे साथ संभक्त करने की कामनावाले हैं। **बृहस्पतिः**=ये ज्ञान के स्वामी प्रभु **अर्कैः**=अर्चना के साधकभूत मन्त्रों के द्वारा **अमित्रम्**=हमारा विनाश करनेवाली द्वेष आदि की भावनाओं को **हन्ति**=नष्ट करते हैं।

भावार्थ—ज्ञान के स्वामी प्रभु हमें वसुओं को प्राप्त कराते हैं, प्रशस्त इन्द्रियाँ देते हैं। रेत:कणों को व प्रकाश को प्राप्त कराते हुए ये ज्ञान के स्वामी प्रभु मन्त्रों द्वारा द्वेष आदि अमित्रभूत भावनाओं को विनष्ट करते हैं।

वसुओं, प्रशस्त इन्द्रियों तथा रेत:कणों व प्रकाश को प्राप्त करता हुआ यह उपासक 'अयास्य' बनता है—यह शत्रुओं से खिन्न नहीं किया जाता। यह शत्रुओं से अजय्य (invincible) होता है। अयास्य ही अगले सूक्त का ऋषि है। यह अयास्य प्रार्थना करता है कि—

९१. [एकनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

तुरीयावस्था में पहुँचना

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत्।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्यं उक्थमिन्द्राय शंसन्॥ १ ॥

१. **इमां धियम्**=इस कर्मों व बुद्धि का धारण करनेवाली—हमारे कर्त्तव्यों का प्रतिपादन करनेवाली तथा ज्ञान को बढ़ानेवाली **सप्तशीर्ष्णीम्**=गायत्री आदि सात छन्दोंरूप सिरोंवाली **ऋत प्रजाताम्**=ऋत के लिए प्रादुर्भूत हुई-हुई, यज्ञ आदि उत्तम कर्मों के प्रतिपादन के लिए उत्पन्न हुई-हुई **बृहतीम्**=वृद्धि की कारणभूत इस वेदवाणी को **पिता**=हम सबके पिता प्रभु ने **नः**=हमारे लिए **अविन्दत्**=प्राप्त कराया (अवेदयत)। २. इस वेदज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य **विश्वजन्यः**=सब लोगों के हित को करनेवाला होता है। **अयास्यः**=अनथक श्रमवाला होता है। **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिए **उक्थम्**=स्तोत्रों का **शंसन्**=उच्चारण करनेवाला होता है। इसप्रकार जीवन को उत्तम बनाता हुआ **स्वित्**=निश्चय से **तुरीयम्**=तुरीयावस्था को **जनयत्**=अपने में विकसित करता है। इस अवस्था में यह 'वैश्वानर-तैजस-व प्राज्ञ' बनकर 'शान्त-शिव अद्वैत' स्थिति में पहुँचता है।

भावार्थ—हम प्रभु से दी गई वेदवाणी को प्राप्त करें—इसके अनुसार लोकहित में प्रवृत्त हों, अनथकरूप से कार्य करें, प्रभु का स्तवन करें और समाधि की स्थिति तक पहुँचने को अपना लक्ष्य बनाएँ।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

असुरस्य वीराः (प्रभु के पुत्र)

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त॥ २ ॥

१. गतमन्त्र के अनुसार तुरीयावस्था की ओर चलनेवाले लोग **ऋतं शंसन्तः**=सदा ऋत का ही शंसन करते है—इनके जीवन से अनृत का उच्चारण नहीं होता। **ऋजु दीध्यानाः**=ये सदा सरलता से कल्याण का ही ध्यान करनेवाले होते हैं—कभी किसी के अमंगल का विचार नहीं करते। **दिवः-पुत्रासः**=ज्ञान के द्वारा ये अपने जीवन को पवित्र बनाते हैं और आधि-व्याधियों से इसका रक्षण करते हैं (पुनाति त्रायते)। **असुरस्य वीराः**=ये उस (असून् राति) प्राणशक्ति

को देनेवाले प्रभु के वीर सन्तान बनते हैं। प्रभु से शक्ति को प्राप्त करके सब बुराइयों को विनष्ट करनेवाले होते हैं। २. **अंगिरसः**=अंग प्रत्यंग में रसवाले ये वीर पुरुष **विप्रं परम्**=विशेषरूप से अपना पूरण करनेवाले (वि प्रा) सर्वोच्च स्थान को **दधानाः**=धारण करने के हेतु से **यज्ञस्य**=उस यज्ञरूप प्रभु के **प्रथमं धाम**=सर्वोत्कृष्ट तेज का **मनन्त**=मनन करते हैं। प्रभु के तेज को अपना लक्ष्य बनाकर ये भी अपने जीवन को यज्ञमय बनाते हैं और उन्नति को प्राप्त करते हुए 'विप्र पद' को धारण करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—ऋत का शंसन करते हुए और प्रभु के तेज का स्मरण करते हुए हम उन्नत होने के लिए यत्नशील हों। ऊपर-और-ऊपर उठते हुए हम 'शूद्र से वैश्य', 'वैश्य से क्षत्रिय' व 'क्षत्रिय-पद से विप्र-पद' को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पाषाणमय बन्धनों' का भेदन

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तोदुच्च विद्वाँ अगायत्॥ ३ ॥

१. **बृहस्पतिः**=वेदज्ञान का पति बननेवाला ज्ञानी पुरुष **अश्मन्मयानि**=पत्थरों से बने हुए पाषाणतुल्य दृढ़ **नहना**=बन्धनों को **व्यस्यन्**=दूर फेंकने के हेतु से **वावदद्भिः**=प्रभु-स्तोत्रों का खूब ही उच्चारण करनेवाले **हंसैः सखिभिः**=हंस-तुल्य मित्रों के साथ **गाः**=इन वेदवाणियों का **अभिकनिक्रदत्**=प्रातः-सायं उच्चारण करता है। काम, क्रोध, लोभरूप आसुरवृत्तियाँ क्रमशः इन्द्रियों, मन व बुद्धि में अपने अधिष्ठानों को दृढ़ बनाती हैं, ये ही असुरों की तीन पुरियाँ कहलाती हैं। बड़ी दृढ़ होने से ये पुरियाँ 'अश्मन्मयी' हैं। इन पुरियों को ज्ञानाग्नि ही भस्म करनेवाली होती है। इसी उद्देश्य से बृहस्पति अपने मित्रों के साथ ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करता है। ये प्रिय हंसों के समान हों—शुभ का ग्रहण करनेवाले, सरल चाल से चलनेवाले व निरभिमान। ऐसे मित्रों का संग ही हमें उत्थान की ओर ले-जाता है। २. यह बृहस्पति आसुर पुरियों के विध्वंस के उद्देश्य से ही **प्रास्तौत्**=प्रकर्षेण प्रभु का स्तवन करता है। **उत**=और **विद्वान्**=ज्ञानी बनकर **उदगायत् च**=अवश्य प्रभु के गुणों का गायन करता है। यह गुणगान उसे उन गुणों के धारण के लिए प्रेरित करता है। इन गुणों के धारण से काम क्रोध लोभ का विलय ही हो जाता है।

भावार्थ—हम ज्ञान की प्रवृत्तिवाले बनकर उत्तम मित्रों के साथ ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करें और प्रभु स्तवन करते हुए 'काम, क्रोध, लोभ' के दृढ़ बन्धनों को शिथिल कर डालें।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

एक, दो व तीन

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः॥ ४ ॥

१. **बृहस्पतिः**=ज्ञान का पति यह विद्वान् **द्वाभ्याम् अव उ**=काम, क्रोधरूप दोनों शत्रुओं से दूर ही रहता है। काम, क्रोध से दूर होकर **एकया**=अद्वितीय वेदवाणी से यह **परः**=उत्कृष्ट जीवनवाला बनता है। २. ज्ञान-प्राप्ति से पूर्व **गुहा तिष्ठन्तीः**=अज्ञानान्धकाररूप गुहा में ठहरी हुई और अतएव **अनृतस्य सेतौ** (तिष्ठन्तीः)=अनृत के बन्धन में पड़ी हुई **गाः**=इन्द्रियों को **उद्**

आवः=अज्ञानान्धकार से बाहर करता है। ज्ञान प्राप्त करने पर इसकी इन्द्रियाँ विषयों में ही नहीं फँसी रहतीं। २. **बृहस्पतिः**=यह ज्ञान की वाणी का पति बनता है। **तमसि**=इस संसार के विषयान्धकार में **ज्योतिः इच्छन्**=यहाँ आत्मप्रकाश की प्राप्ति की इच्छा करता है। इसी उद्देश्य से **उस्राः**=ज्ञान की किरणों को (उद् आवः) अपने जीवन में प्रमुख स्थान प्राप्त कराता है। ज्ञानविरोधी किसी भी व्यवहार को यह नहीं करता। इसप्रकार **हि**=निश्चय से **तिस्रः**=तीनों ज्योतियों को **वि आवः**=विशेषरूप से प्रकट करता है। 'त्रीणि ज्योतींषि सचेत स षोडशी' इस मन्त्रभाग में इन्हीं तीन ज्योतियों का संकेत है। शरीर में ये ज्योतियाँ तेजस्विता (अग्नि), आह्लाद (चन्द्र) व ज्ञान (सूर्य) के रूप में हैं। यह बृहस्पति शरीर में तेजस्वितावाला होता है, मन में आह्लादमय तथा मस्तिष्क में ज्ञानरूप सूर्यवाला होता है।

भावार्थ—हम काम, क्रोध से दूर हो, वेदवाणी के द्वारा उत्कृष्ट जीवनवाले बनें तथा 'तेजस्विता, आह्लाद व ज्ञान' रूप ज्योतियों को अपने में जगाएँ।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'उषसं-सूर्यं गाम् अर्कम्' (विवेद)

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत्।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥

१. शरीर में 'काम, क्रोध, लोभ' रूप असुरों की क्रमशः 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' में पुरियाँ बन जाती हैं। ये पुरियाँ 'अपाची' (अप अञ्च)=हमें प्रभु से दूर ले-जानेवाली हैं। आसुरवृत्तियों के कारण हम संसार के विषयों में फँस जाते हैं और प्रभु को भूल जाते हैं। यदि हम इन्द्रियों को शान्त कर पाते हैं तो इन आसुर पुरियों को विदीर्ण करने में समर्थ हो जाते हैं। **शयथा**=(शी=tranquility) शान्ति के द्वारा अथवा हृदय में शयन (निवास) के द्वारा—अन्तर्मुखी वृत्ति के द्वारा **अपाचीम्**=प्रभु से हमें दूर ले-जानेवाली **पुरम्**=इस वासनात्मक आसुर पुरी का **ईम् विभिद्या**=निश्चय से विदारण करके, यह विदारण करनेवाला पुरुष **उदधेः साकम्**=(कामो हि समुद्रः) अनन्त विषयरूप जलवाले 'काम' के साथ **त्रीणि**='काम, क्रोध, लोभ' इन तीनों को **निः अकृन्तत्**=निश्चय से काट डालता है। इनको नष्ट करके ही तो यह प्रभु की ओर चलता है। २. यह **बृहस्पतिः**=ज्ञानी व शान्तवृत्तिवाला पुरुष **उषसम्**=उषा को, **सूर्यम्**=सूर्य को, **गाम्**=गौ को **अर्कम्**=अर्क को **विवेद**=विशेषरूप से प्राप्त करता है। 'उषस्' शब्द 'उष दाहे' धातु से बनकर दोष-दहन का प्रतीक है 'सृ गतौ' से बना 'सूर्य' शब्द निरन्तर गति व क्रियाशीलता का संकेत करता है। 'गौ' शब्द 'गमयति' इस व्युत्पत्ति से अर्थों का ज्ञान देनेवाली वाणी का वाचक है और 'अर्च पूजायाम्' से बना अर्क शब्द पूजा व उपासना का वाचक है। बृहस्पति के जीवन में ये चारों वस्तुएँ बड़ी सुन्दरता से उपस्थित होती हैं। यह दोषों का दहन करता है—निरन्तर क्रियाशील होता है—वेदवाणी के अध्ययन से ज्ञान को बढ़ाता है और प्रभु के पूजन की वृत्तिवाला होता है। ३. ऐसा बनकर यह **स्तनयन् इव द्यौः**=गर्जना करते हुए द्युलोक के समान होता है। द्युलोकस्थ सूर्य की भाँति सर्वत्र प्रकाश फैलाता है, परन्तु जैसे गर्जते हुए मेघों के कारण सूर्य सन्तापकारी नहीं होता, उसी प्रकार यह बृहस्पति भी गर्जते हुए मेघ के समान ज्ञान-जल का वर्षण करता है। वर्षण से यह लोकों के सन्ताप को हरता है। सन्तापहरण के उद्देश्य से ही यह ज्ञान-प्रसार के कार्य को बड़ी मधुरता से करता है।

भावार्थ—आसुर पुरियों का विदारण करके हम प्रभु-प्रवण वृत्तिवाले बनें। ज्ञान-प्रसार के कार्य को अहिंसा व माधुर्य के साथ करनेवाले हों।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

करेण+रवेण

इन्द्रो॑ व॒लं र॑क्षि॒तारं॒ दुघा॑नां क॒रेणे॑व॒ वि च॑कर्ता॒ रवे॑ण।
स्वेदा॑ञ्जिभिरा॒शिर॑मि॒च्छमा॑नोरो॑दयत्प॒णिमा गा अ॑मुष्णात्॥ ६ ॥

१. 'वल' वृत्र है—ज्ञान को यह आवृत्त कर लेनेवाला (वल vail) वासना का पर्दा है। इस वृत्र के प्रबल होने से ज्ञानेन्द्रियाँ अपना कार्य ठीक से नहीं करतीं। मानो यह 'वृत्र' उन्हें चुरा ले जाता है और कहीं गुफा में छिपा देता है। ज्ञान का दोहन करनेवाली (दुघानां) ज्ञानेन्द्रियों को वल छिपा रखता है (रक्षितारम्)। **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष वल को नष्ट करके इन इन्द्रियरूप गौओं को फिर वापस ले-आता है। वल के नष्ट करने का साधन 'करेण+रवेण' है—कर्मशील बनना और प्रभु के नामों का उच्चारण करना। क्रियाशीलता के अभाव में अशुभवृत्तियाँ पनपती हैं और प्रभु-स्मरण के अभाव में किये जानेवाले उत्तम कर्मों के गर्व होने का भय बना रहता है। अहंकार भी 'वल' का ही दूसरा रूप है। यह भी ज्ञान का विरोधी है। **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **दुघानाम्**=ज्ञान-दुग्ध का दोहन करनेवाली इन्द्रियरूप गौओं के **रक्षितारम्**=चुराकर कहीं गुफा में रखनेवाले **वलम्**=वृत्रासुर को **करेण इव रवेण**=कर से, अर्थात् क्रियाशीलता से और इसी प्रकार रव से, अर्थात् प्रभु के नामोच्चारण से **विचकर्त**=काट डालता है। प्रभु-स्मरण के साथ क्रियाओं को करता हुआ यह वासनाओं से इन्द्रियों को आक्रान्त नहीं होने देता। २. यह **स्वेदाञ्जिभिः**=(अञ्जि=आभरण) पसीनेरूप आभरण से **आशिरम्** (आश्रयिणं, श्रियं)=श्री को **इच्छमानः**=चाहता हुआ **पणिम्**=लोभवृत्ति को (बनिये की) वृत्ति को **अरोदयत्**-रुलाता है और **गाः**=ज्ञानेन्द्रियरूप गौओं को **अमुष्णात्** (आजहार सा०) फिर वापस ले-जाता है। लोभवृत्ति में मनुष्य कम-से-कम श्रम से अधिक-से-अधिक धन लेना चाहता है। इसप्रकार लोभ से इसकी बुद्धि मलिन हो जाती है, इसीलिए मन्त्र का ऋषि 'अयास्य' गाढ़े पसीने की कमाई को ही चाहता है—स्वेद उसका आभूषण ही बन जाता है। यह लोभवृत्ति को नष्ट कर डालता है, मानो उसे रुलाता है। श्रम से धन की कामना करता हुआ यह अपनी इन्द्रियों को स्वस्थ रखता है।

भावार्थ—वासना हमारी इन्द्रियरूप गौओं को चुरा लेती है। श्रम से ही धनार्जन करते हुए हम ज्ञानेन्द्रियों को स्वस्थ रखते हैं।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उत्तम मित्र

स ईं स॒त्येभिः॒ सखि॑भि शु॒चद्भि॒र्गोधा॑यसं॒ वि ध॑न॒सैर॑दर्दः।
ब्रह्म॑ण॒स्पति॒र्वृष॑भिर्व॒राहै॑र्घ॒र्मस्वे॑देभि॒र्द्रवि॑णं॒ व्या॑नट्॥ ७ ॥

१. **सः**=वह **ईम्**=सचमुच **सत्येभिः**=सत्य का पालन करनेवाले **शुचद्भिः**=अपने मनों को पवित्र बनानेवाले **धनसैः**=धनों का संविभाग करनेवाले, अर्थात् सारे-का-सारा स्वयं न खा जानेवाले **सखिभिः**=मित्रों के साथ **गोधायसम्**=इन्द्रियरूप गौओं को चुराकर कहीं अज्ञानान्धकार में छुपाकर रखनेवाले वल (वृत्र=वासना) को **वि अदर्दः**=विदीर्ण करता है। संसार में मित्रों का संग ही हमें बनाता व बिगाड़ता है। अच्छे मित्रों के साथ हम अच्छे बन जाते हैं, बुरों के साथ बिगड़ जाते हैं। यहाँ हमारे मित्र 'सत्य, शुचि व धनों' का संविभाग करनेवाले हैं। इनसे और उत्तम मित्र हो ही क्या सकते हैं? २. यह उत्तम मित्रों के साथ वल का विदारण करनेवाला व्यक्ति **ब्रह्मणस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी बनता है और **वृषभिः**=पुण्यों से—पुण्यात्मक कर्मों से

वराहैः=(वरं आहन्ति=गच्छति) शुभ उपायों के अवलम्बन से तथा **घर्मस्वेदेभिः**=स्वेद के क्षरण से (घृ=क्षरणे)—पसीना बहाने के द्वारा **द्रविणम्**=धन को **व्यानट्**=प्राप्त करता है। ज्ञानी बनकर यह धन को पुण्यात्मक कर्मों से—शुभ उपायों से तथा खूब मेहनत से पसीना बहाकर ही कमाता है।

भावार्थ—हमारे मित्र सत्यवादी, पवित्र व निःस्वार्थी हों। हम पुण्य व शुभ श्रमयुक्त उपायों से ही धनार्जन करें।

ऋषिः—**अयास्यः**॥ देवता—**बृहस्पतिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'अवद्यम+स्वयुक्' इन्द्रियाँ

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्त्रिया असृजत स्वयुग्भिः॥ ८॥

१. **ते**=वे **सत्येन मनसा**=सच्चे दिल से **गोपतिम्**=सब इन्द्रियों के स्वामी प्रभु को तथा **गाः**=इन्द्रियों को **इयानासः**=प्राप्त करने के लिए जाते हुए (अभिगच्छन्तः) **धीभिः**=ज्ञानयुक्त कर्मों से **इषणयन्त**=उन्हें प्राप्त करना चाहते हैं। जब हममें किसी पदार्थ के प्राप्त करने की सच्ची कामना होती है तभी हम उसे प्राप्त कर पाते हैं। ज्ञानयुक्त कर्मों से जहाँ हम इन इन्द्रियों को प्राप्त करते हैं, वहाँ इन्द्रियों के स्वामी प्रभु को भी प्राप्त करनेवाले होते हैं। २. **बृहस्पतिः**=वह ज्ञानी पुरुष **मिथः**=आपस में **अवद्यपेभिः**=अशुभ से एक-दूसरे से बचानेवाली **स्वयुग्भिः**=आत्मतत्त्व से मेल करानेवाली ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों से **उस्त्रियाः**=प्रकाश की किरणों को **उत्**=उत्कर्षेण **असृजत**=उत्पन्न करता है। ३. कर्मेन्द्रियाँ कर्म द्वार ज्ञान-प्राप्ति में सहायक होती हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान के द्वारा कर्मों को पवित्र करती हैं। इसप्रकार ये एक-दूसरे को अपवित्रता से बचाए रखती हैं। अपवित्रता से अपने को बचाकर ये आत्मा के साथ हमारा मेल करानेवाली होती हैं। इन इन्द्रियों से ही प्रकाश की किरणों की सृष्टि होती है।

भावार्थ—हममें प्रभु-प्राप्ति व इन्द्रिय-विजय की सच्ची कामना हो। हम ज्ञानेन्द्रियों को सुरक्षित करते हुए प्रकाशमय जीवनवाले हों।

ऋषिः—**अयास्यः**॥ देवता—**बृहस्पतिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ज्ञान+शक्ति=विजय

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम्॥ ९॥

१. **शिवाभिः**=कल्याणी **मतिभिः**=मतियों से हम **ते**=उस प्रभु का **वर्धयन्तः**=वर्धन करते हुए **अनुमदेम**=उसकी अनुकूलता में हर्ष का अनुभव करें। हम अपनी मति को सदा शुभ बनाए रक्खें, वस्तुतः मति का शुभ बनाए रखना ही प्रभु का सर्वोत्तम आराधन है—संसार में किसी के अशुभ का विचार न करना। २. उस प्रभु का हम वर्धन करें, जो **सधस्थे**=जीवात्मा व परमात्मा के साथ-साथ रहने के स्थान 'हृदय' में **सिंहम् इव**=शेर की भाँति **नानदतम्**=गर्जन कर रहे हैं। 'तिस्रो वाच उदीरते हरिरेति कनिक्रदत्'=हृदयस्थ प्रभु 'ज्ञान, भक्ति व कर्म' की ऊँचे-ऊँचे प्रेरणा दे रहे हैं। ३. **बृहस्पतिम्**=ज्ञान के स्वामी **वृषणम्**=शक्तिशाली **शूरसातौ**=शूरों से संभजनीय (सेवनीय) **भरे-भरे**=प्रत्येक संग्राम में **जिष्णुम्**=विजय प्राप्त करानेवाले प्रभु को **अनुमदेम**=अनुकूल करते हुए हर्ष का अनुभव करें। सब विजय प्रभु की शक्ति व ज्ञान से ही होती है 'जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्' सब विजयों को प्रभु के प्रति अर्पण करके हम अहंकारशून्य

होकर सदा आनन्दमय बने रहें।

भावार्थ—शुभमति के हेतु से हम प्रभु का वर्धन करें। वे प्रभु हमें निरन्तर प्रेरणा दे रहे हैं। वे प्रभु ही शक्ति व ज्ञान के स्रोत हैं—सब विजयों को प्राप्त करानेवाले हैं। प्रभु की अनुकूलता में हम हर्ष का अनुभव करें।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उत्तर सद्म का आरोहण

यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा॥ १०॥

१. गतमन्त्र के अनुसार प्रभु की अनुकूलता में **यदा**=जब मनुष्य **विश्वरूपम्**='तेज वीर्य-ओजस्, बल, मन्यु व सहस्' इन सब रूपोंवाले **वाजम्**=बल को **असनत्**=प्राप्त करता है, तब यह व्यक्ति **द्याम् अरुक्षत्**=प्रकाशमय लोक का आरोहण करता है, **उत्तराणि सद्म**=उत्कृष्ट गृहों का आरोहण करता है। पृथिवीलोक से ऊपर उठकर यह अन्तरिक्षलोक में पहुँचता है, अन्तरिक्ष से द्युलोक में, द्युलोक से ऊपर उठकर हम ब्रह्मलोक में पहुँचते हैं। यह ब्रह्मलोक ही 'उत्तर सद्म' है। २. इस समय हम **बृहस्पतिम्**=ज्ञान के स्वामी **वृषणम्**=शक्तिशाली प्रभु को **वर्धयन्तः**=बढ़ाते हुए होते हैं। उस ब्रह्म का सतत स्मरण करते हुए सबमें उस ब्रह्म की सत्ता को अनुभव करते हुए—उनके साथ एकत्व का अनुभव करते हैं। इस अनुभव से **नाना सन्तः**=उन अनेक रूपों में होते हुए **आसा**=मुख से **ज्योतिः बिभ्रतः**=प्रकाश का धारण करते हुए होते हैं। उस समय हम सर्वत्र ज्ञान का प्रचार करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम तेजस्विता का धारण करें, प्रकाशमयलोक में आरूढ़ हों। प्रभु का वर्धन करते हुए भी सबके साथ एकत्व का दर्शन करें और ज्ञान का प्रसार करें।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सत्या आशीः

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे॥ ११॥

१. हे देवो! **वयोधै**=उत्तम जीवन के धारण व स्थापन के लिए **आशिषम्**=इच्छाओं को **सत्याम्**=सत्य **कृणुत**=करो। इच्छाएँ सत्य होगीं तो जीवन भी उत्तम बनेगा। २. **कीरिम्**=इस स्तोता को **चित् हि**=निश्चय से **स्वेभिः एवैः**=अपने कर्मों के द्वारा **अवथ**=रक्षित करते हो। यह स्तोता क्रियाशील बनता है और इसके ये कर्म इसके रक्षण का साधन बनते हैं। ३. **पश्चा**=अब इस क्रियाशीलता के होने पर—क्रियाशीलता के पीछे **विश्वाः**=सब **मृधः**=काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रु **अपभवन्तु**=हमसे दूर हों। हम काम-क्रोध आदि के शिकार न हों। **तत्**=हमारी इस प्रार्थना को **विश्वमिन्वे**=सब संसार को प्रीणित करनेवाले **रोदसी**=द्युलोक व पृथिवीलोक **शृणुतम्**=सुनें। हमारी इस प्रार्थना को क्रियान्वित करने के लिए सारा संसार अनुकूल हो।

भावार्थ—हमारी इच्छाएँ सत्य हों। हम स्तोताओं का कर्मों के द्वारा रक्षण हो। काम, क्रोध व लोभ हमसे दूर हों। हमारी यह कामना सम्पूर्ण संसार की अनुकूलता द्वारा पूर्ण हो।

ऋषिः—**अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अर्बुद के मूर्धा का विभेदन

इन्द्रो म॒ह्ना म॑ह॒तो अ॑र्ण॒वस्य॒ वि मू॒र्धान॑मभिनदर्बु॒दस्य॑।
अह॒न्नहि॒मरि॑णात्स॒प्त सिन्धू॑न्दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥ १२ ॥

१. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **महतः अर्णवस्य**=महान् ज्ञानसमुद्र की **मह्ना**=महिमा से **अर्बुदस्य**=वासनारूप मेघ के **मूर्धानम्**=शिखर को **वि अभिनद्**=विशेषरूप से विदीर्ण कर देता है। ज्ञान अल्प हो तो वासना से आवृत्त होकर समाप्त हो जाता है, परन्तु ज्ञानसमुद्र में वासना का ही विलय हो जाता है। प्रचण्ड ज्ञानाग्नि में वासना भस्म हो जाती है। २. यह इन्द्र **अहिम्**=ज्ञान को नष्ट करनेवाली वासना को **अहन्**=नष्ट कर देता है और **सप्त सिन्धूम्**=सप्तर्षियों से प्रवाहित होनेवाले सात ज्ञान नदियों को (कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्) **अरिणात्**=गतिमय करता है। वासना के विनाश से ज्ञान-प्रवाह ठीक से होने लगता है। इस ज्ञान का प्रवाह होने पर **द्यावापृथिवी**=ज्ञानदीप्त मस्तिष्करूप द्युलोक तथा दृढ़ शरीररूप पृथिवी—ये दोनों **देवैः**=दिव्यगुणों के द्वारा **नः**=हमें **प्रावतम्**=प्रकर्षेण रक्षित व प्रीणित करनेवाले हों। दीप्त मस्तिष्क व शरीर के दृढ़ होने पर हममें दिव्य गुणों का विकास हो। ज्ञान के अभाव में दिव्यगुणों के विकास का प्रश्न ही नहीं पैदा होता और अस्वस्थ शरीर में भी चिड़चिड़ापन व क्रोध आदि की वृत्ति आ जाती है।

भावार्थ—ज्ञानवृद्धि से हम वासना का उन्मूलन करके ज्ञानप्रवाहों को और अधिक प्रवाहित करनेवाले हों। इसप्रकार स्वस्थ शरीर व दीप्त मस्तिष्क से हम दिव्यगुणों का विकास करें।

यह ज्ञान की रुचिवाला 'प्रियमेध' अगले सूक्त में १-१५ तक मन्त्रों का ऋषि है। १६-२१ तक 'पुरुहन्मा' ऋषि है—अच्छी तरह वासनारूप शत्रुओं का हनन करनेवाला। प्रियमेध कहता है कि—

९२. [द्विनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

अ॒भि प्र गोप॑तिं गि॒रेन्द्र॑मर्च॒ यथा॑ वि॒दे। सू॒नुं स॒त्यस्य॒ सत्प॑तिम् ॥ १ ॥
आ हर॑यः ससृ॒ज्रिरेऽरु॑षी॒रधि॑ ब॒र्हिषि॑। यत्रा॒भि सं॒नवा॑महे ॥ २ ॥
इन्द्रा॑य॒ गाव॑ आ॒शिरं॑ दुदु॒ह्रे व॒ज्रिणे॒ मधु॑। यत्सी॑मुपह्व॒रे वि॒दत् ॥ ३ ॥

देखिए व्याख्या अथर्व० २०.२२.४-६ पर।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सख्युः पदे

उद्यद् ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपं॑ गृ॒हमिन्द्र॑श्च॒ गन्व॑हि।
मध्वः॑ पी॒त्वा स॑चेवहि॒ त्रिः स॒प्त सख्यु॑ः प॒दे ॥ ४ ॥

१. घर में पत्नी यह कामना करती है कि मैं **च**=और **इन्द्रः**=मेरा यह जितेन्द्रिय पति हम दोनों ही **उत्**=उत्कृष्ट **यत्**=जो **ब्रध्नस्य विष्टपम्**=सूर्य के तापशून्य अथवा विशिष्ट रूप से दीप्त **गृहे**=गृह को **गन्वहि**=जाएँ, अर्थात् हमारे घर में सूर्य की किरणें व प्रकाश बहुत ही अच्छी तरह आएँ। सूर्यकिरणें इस गृह को तापशून्य व नीरोग बनानेवाली हों। २. **मध्वः पीत्वा**=इस गृह में रहते हुए हम सोम का पान करके **सख्युः पदे**=परमसखा उस प्रभु के चरणों में **त्रिःसप्त**=इक्कीस

शक्तियों को **सचेवहि**=प्राप्त करें।

भावार्थ—हमारे घर सूर्यकिरणों से प्रकाशित हों। इनमें हम प्रभु का स्मरण करते हुए सोमरक्षण द्वारा शरीर की सब शक्तियों को स्थिर रखें।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रियमेध का प्रभु-पूजन

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत। अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत॥ ५॥

१. **अर्चत**=उस प्रभु का पूजन करो, **प्रार्चत**=खूब ही पूजन करो। **प्रियमेधासः**=हे यज्ञप्रिय लोगो! इन यज्ञों के द्वारा उस प्रभु का **अर्चत**=पूजन करो। २. **उत**=और **पुत्रकाः**=(पुनाति, त्रायते) अपने जीवन को पवित्र करनेवाले व अपना त्राण करनेवाले लोग उस प्रभु का **अर्चन्तु**= पूजन करें। उस प्रभु का **अर्चत**=पूजन करो, जोकि **पुरं न**=पालन व पूरण करनेवाले के समान हैं तथा **धृष्णु**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—वे प्रभु हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं, हमारे शत्रुओं का धर्षण करनेवाले हैं। उस प्रभु का यज्ञों के द्वारा हम पूजन करें।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रभु-स्मरणपूर्वक युद्ध

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्। पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम्॥ ६॥

१. **गर्गरः**=युद्ध का नगारा **अवस्वराति**=अतिशयेन भयानक शब्द कर रहा है। **गोधा**=हस्तघ्न **परिसनिष्वणत्**=चारों ओर आवाज़ को फैला रहे हैं। हस्तघ्नों पर होनेवाले डोरी के प्रहारों से शब्द उठ रहे हैं। **पिङ्गा**=पिंगलवर्णवाली ज्या **परिचनिष्कदत्**=चारों ओर गति कर रही है—चारों ओर आक्रमण कर रही है। २. एवं चारों ओर युद्ध का भयंकर वातावरण है। इस युद्ध में **इन्द्राय**=उस शत्रुविद्रावक प्रभु के लिए **ब्रह्म उद्यतम्**=मन्त्रों द्वारा स्तवन उत्थित हुआ है। 'मामनुस्मर युद्ध च' के अनुसार हमारा यही कर्त्तव्य है कि प्रभु का स्मरण करें और युद्ध भी करते चलें। प्रभु ही तो हमें विजयी बनाएँगे।

भावार्थ—चारों ओर भयंकर युद्ध में हम प्रभु का स्मरण करते हुए युद्ध करें। प्रभु स्मरण से हम युद्ध में विजयी बनेंगे।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सुखसंदोह्य गौओं का दूध व हृदयरोग-चिकित्सा

आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः। अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे॥ ७॥

१. **यत्**=जब **अनपस्फुरः** (not refusing to be milked)=न बिदकनेवाली **सुदुघाः**= सुखसंदोह्य **एन्यः**=शुभवर्ण की गौएँ **आपतन्ति**=समन्तात् गृहों की ओर आनेवाली होती हैं, उस समय **अपस्फुरम्**=हृदय-कम्पन को दूर करनेवाले (Throbbing, palpilation) **सोमम्**=सोम को—ताजे दूध को—**गृभायत**=ग्रहण करो। यह दूध **इन्द्राय पातवे**=जितेन्द्रिय पुरुष के रक्षण के लिए होता है। २. गौवें 'सुदुघा' होनी चाहिएँ। ये अनपस्फुर होंगी तो इनके दूध में किसी प्रकार का विघ्न नहीं होगा। यह ताजा गोदुग्ध ही सोम है। यह हृदय की धड़कन को ठीक रखता है—हृदय-सम्बद्ध सब रोगों से बचानेवाला है।

भावार्थ—हम सुखसंदोह्य गौओं के ताजे दूध का प्रयोग करें। यही 'सोम' है। यह जितेन्द्रिय पुरुष का रक्षण करता है—हृदय-कम्पन आदि रोगों से बचाता है।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

'इन्द्र-अग्नि-देव'

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्य॒नूषत वत्सं संशिश्वरीरिव॥ ८॥

१. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **अपात्**=इस सोम का पान करता है। **अग्निः**=प्रगतिशील पुरुष **अपात्**=इसको पीता है। **विश्वेदेवाः**=सब देव इस सोमपान में **अमत्सत**=हर्ष का अनुभव करते हैं। २. **वरुणः**=वह पापनिवारक प्रभु **इत्**=निश्चय से **इह**=इस सोमपान करनेवाले के जीवन में **क्षयत्**=निवास करता है। **तम्**=उस प्रभु को **आपः**=कर्मों में व्याप्त होनेवाली प्रजाएँ **अभ्यनूषत**=स्तुत करती हैं। उसी प्रकार स्तुत करती हैं, **इव**=जैसेकि **संशिश्वरीः**=उत्तम बछड़ोंवाली गाएँ **वत्सम्**=बिछड़े के प्रति जाती हुई शब्द करती हैं। इसी प्रकार प्रेम से पूर्ण होकर कर्मों में व्याप्त होनेवाली ये प्रजाएँ अपने प्रिय प्रभु के प्रति स्तुति शब्दों को बोलती हैं।

भावार्थ—सोमपान हमें 'इन्द्र, अग्नि व देव' बनता है—शरीर में सबल (इन्द्र), मस्तिष्क में प्रकाशमय (अग्नि) तथा मन में 'देव'। सोमपान करनेवालों में ही परमात्मा का निवास होता है। ये कर्मों में व्याप्त रहकर सदा प्रभु का स्मरण करते हैं।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सु-देव

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव॥ ९॥

१. हे **वरुण**=पापनिवारक प्रभो! **सु देवः असि**=आप सर्वोत्तम देव हैं—देवों के भी अधिदेव हैं। **यस्य ते**=जिन आपकी **सप्त सिन्धवः**=सात छन्दों में प्रवाहित होनेवाली ज्ञान-जल की नदियाँ **काकुदम् अनुक्षरन्ति**=हमारे तालु में बहती हैं, उसी प्रकार **इव**=जैसेकि **सूर्म्यम्**=(lustre) प्रकाश व रश्मिजाल **सुषिराम्**=सच्छिद्र वस्तु में प्रवेश करता है। २. हम प्रभु का स्मरण करते हैं तो प्रभु की वेदवाणियाँ हमारे जीवन में इसप्रकार प्रवेश करती हैं, जैसेकि सच्छिद्र भित्ति में सूर्यरश्मियाँ। ये रशिमयाँ ही—वेदवाणियों का प्रकाश ही हमारे जीवन को निर्मल बनाता है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्मरण करें। प्रभु का ज्ञान हमारे जीवन को निर्मल कर देगा। वह प्रकाश हमें भी 'सुदेव' बनाएगा।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वपुः

यो व्यतीँरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे। तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत॥ १०॥

१. **यः**=जो **दाशुषे**=दानशील अथवा अपने को प्रभु के प्रति अर्पण करनेवाले के लिए **वि+अतीन्**=विशिष्ट गतिवाले **सुयुक्तान्**=उत्तमता से शरीर-रथ में जुते हुए इन्द्रियाश्वों को **उप अफाणयत्**=समीपता से प्राप्त करता है, वह प्रभु ही **तक्वः**=हमारे यज्ञों में प्राप्त होनेवाले हैं। प्रभु ही हमें यज्ञों के प्रति प्राप्त कराते हैं। २. **नेता**=वे प्रभु ही हमें मार्ग पर ले-चलनेवाले हैं। प्रभु नेता होते हैं तो **तत् इत्**=तभी यह उपासक **वपुः**=सब बुराइयों का वपन (छेदन) करनेवाला होता है। **उपमा**=यह औरों के लिए उपमानभूत हो जाता है। ऐसा बन जाता है कि **यः अमुच्यत**=जो मुक्त हो जाता है। पवित्र जीवनवाले पुरुषों की, लोग इससे उपमा देने लग जाते हैं कि 'यह तो ऐसा पवित्र है, जैसाकि वह वपुः'।

भावार्थ—हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें। प्रभु हमें गतिशील सुयुक्त इन्द्रियाश्वों को

प्राप्त कराके उत्तम मार्ग पर ले-चलेंगे। हम बुराइयों का छेदन करके उपमानभूत जीवन को प्राप्त करेंगे। हम जीवन्मुक्त-से बन जाएँगे।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'मुक्तिप्रदाता' शक्र—इन्द्र

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा॥ ११॥

१. **शक्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु **इत् उ**=निश्चय ही **अति ओहते**=हमें भवसागर के पार ले-जाता है। **इन्द्रः**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु **विश्वाः द्विषः**=सब द्वेषों के **अति**=पार प्राप्त कराता है। **२. कनीनः**=दीप्त प्रभु—प्रकाशमय प्रभु **परः**=सबसे परस्तात् वर्तमान है—सब गुणों के दृष्टिकोण से परे हैं—उत्कृष्ट हैं। वे प्रभु ही **गिरा**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **पच्यमानम्**=परिपक्व किये जाते हुए इस **ओदनम्**=हमारे अन्नमयकोश को—इस स्थूलशरीर को **भिनत्**=हमसे पृथक् करते हैं और हमें मुक्तिमार्ग पर आगे ले-चलते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही शक्र हैं—इन्द्र हैं। वे ही हमें सब द्वेषों से ऊपर उठाते हैं और ज्ञानाग्नि में परिपक्व करके हमें मुक्त करते हैं।

ऋषिः—**प्रियमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अर्भकः न, कुमारकः

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम्।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम्॥ १२॥

१. जीव को चाहिए कि **अर्भकः न**=एक छोटे बालक के समान हो। **कुमारकः**=वे सब क्रीड़ा करनेवाले हों। एक बालक के समान निर्दोष व्यवहारवाला हो—व्यर्थ में चुस्त चालाक न बने। साथ ही क्रीडक की मनोवृत्तिवाला हो—खिझे नहीं। **नवं रथम् अधितिष्ठन्**=इस स्तुत्य (न स्तुतौ) व गतिशील (नव गतौ) शरीर-रथ पर आरूढ़ होता हुआ **सः**=वह **पित्रे मात्रे**=पिता व माता के लिए उस **महिषम्**=पूजनीय (मह पूजायाम्) **मृगम्**=अन्वेषणीय **विभुक्रतुम्**=सर्वव्यापक व प्रज्ञानस्वरूप प्रभु को **पक्षत्**=परिगृहीत करे। (पक्ष परिग्रहे)।

भावार्थ—हम बालकों की भाँति निर्दोष जीवनवाले बनें। शरीररूप रथ को स्तुत्य व गतिशील बनाएँ। प्रभु को ही माता व पिता समझें। ये प्रभु पूज्य हैं, अन्वेषणीय हैं, सर्वव्यापक व प्रज्ञानस्वरूप हैं।

ऋषिः—**पुरुहन्मा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

मिलकर प्रभु की ओर

आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम्॥ १३॥

१. पत्नी पति से कहती है कि हे **सुशिप्र**=शोभन हनुओं व नासिकावाले—उत्तम भोजन व प्राणायाम करनेवाले **दम्पते**=शरीररूप गृह का रक्षण करनेवाले जीव! **हिरण्ययं रथम्**=ज्योतिर्मय शरीर-रथ पर **आतिष्ठ उ**=निश्चय से स्थित हो। इस शरीर-रथ को तू ज्ञानज्योति से परिपूर्ण कर। २. **अध**=अब—जीवन को इसप्रकार (क) सात्त्विक भोजनवाला (ख) प्राणसाधना-सम्पन्न (ग) व ज्ञानयुक्त बनाकर, हम उस प्रभु को **सेचवहि**=प्राप्त हों, जो **द्युक्षम्**=सदा प्रकाश

में निवास करनेवाले हैं। **सहस्रपादम्**=हजारों पाँवोंवाले हैं—सर्वत्र गतिमय हैं। **अरुषम्**=आरोचमान व (अ-रुषं) क्रोधरहित हैं। **स्वस्तिगाम्**=कल्याण की ओर गतिवाले हैं—हमें कल्याणपथ पर ले-चलनेवाले हैं और **अनेहसम्**=निष्पाप हैं।

भावार्थ—हम सात्त्विक भोजन करते हुए शरीररूप रथ का रक्षण करें। इसे ज्योतिर्मय बनाएँ। पति-पत्नी मिलकर प्रकाशमय प्रभु का उपासन करें। वे हमें कल्याण के मार्ग से ले-चलते हुए निष्पाप जीवनवाला बनाएँगे।

ऋषिः—**पुरुहन्मा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बृहती**॥

सुधित अर्थ

तं घे॑मि॒त्था न॑म॒स्विन॒ उप॑ स्व॒राज॑मासते।
अर्थं॑ चिदस्य॒ सुधि॑तं॒ यदेत॑व आव॒र्तय॑न्ति दा॒वने॑॥ १४॥

१. **तं स्वराजम्**=उस स्वयं देदीप्यमान प्रभु को **इत्था**=सचमुच **घा ईम्**=निश्चय से **नमस्विनः**=नमस्कारवाले **उपासते**=उपासित करते हैं। २. **अस्य**=इस उपासक का **अर्थम्**=प्राप्तव्य धन **चित्**=निश्चय से **सुधितम्**=सम्यक् स्थापित होता है। **यत्**=जो धन **एतवे**=जीवन के कार्यों को संचालित करने के लिए होता है और **दावने**=इस धन को वे हवि आदि देने के लिए **आवर्तयन्ति**=आवृत्त करते हैं, अर्थात् इस धन का वे सदा यज्ञों में विनियोग करते हैं।

भावार्थ—नमन से युक्त होकर हम प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें धन देते हैं। यह धन सदा उत्तम साधनों से कमाया जाए। जीवन-यात्रा की पूर्ति के लिए उपयुक्त किया जाता हुआ धन सदा दान में विनियुक्त हो।

ऋषिः—**पुरुहन्मा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बृहती**॥

प्रियमेधासः, वृक्तबर्हिषः, हितप्रयसः

अनु॑ प्र॒त्नस्यौक॑सः प्रि॒यमे॑धास एषाम्।
पूर्वा॑मनु॒ प्रय॑तिं वृ॒क्तब॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आशत॥ १५॥

१. **प्रियमेधासः**=बुद्धि के साथ प्रेमवाले लोग **एषाम्**=इनके, अर्थात् अपने **प्रत्नस्य ओकसः अनु**=सनातन गृह का लक्ष्य करके **वृक्तबर्हिषः**=हृदयरूप क्षेत्र को वासनारूप घास से रहित करनेवाले होते हैं। २. ये **हितप्रयसः**=सदा हितकर उद्योगों में लगे हुए **पूर्वाम्**=सर्वमुख्य अथवा पालन व पूरण करनेवाली **प्रयतिम्**=दान की प्रक्रिया को **अनु आशत**=व्याप्त करते हैं, अर्थात् सदा दानशील होते हैं।

भावार्थ—ब्रह्मलोकरूप अपने सनातन गृह को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हम 'प्रियमेध', बुद्धिप्रिय बनें। हृदयक्षेत्र में से हम वासनाओं के घास-फूस को उखाड़ डालें। सदा हितकर उद्योगों में लगे रहें।

ऋषिः—**पुरुहन्मा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (समा-बृहती+विषमा-सतोबृहती)**॥

'ज्येष्ठ वृत्रहा' प्रभु का स्तवन

यो राजा॑ चर्षणी॒नां याता॒ रथे॑भि॒रध्रि॑गुः।
विश्वा॑सां तरु॒ता पृत॑नानां॒ ज्येष्ठो॒ यो वृ॑त्र॒हा गृ॒णे॥ १६॥

१. मैं उस प्रभु का **गृणे**=स्तवन करता हूँ **यः**=जोकि **चर्षणीनां राजा**=श्रमशील मनुष्यों के जीवन को दीप्त बनानेवाला है। **रथेभिः याता**=शरीररूप रथों से हमें प्राप्त हानेवाला है, अर्थात्

हमारे लिए उत्तम शरीर-रथों को देनेवाला है। **अध्रिगुः**=अधृत गमनवाला है—प्रभु को अपने कार्यों में कोई विहत नहीं कर सकता। २. ये प्रभु ही **विश्वासाम्**=सब **पृतनानाम्**=शत्रुसैन्यों के **तरुता**=तैरजानेवाले हैं। हमें शत्रुसैन्यों पर विजय प्राप्त करानेवाले हैं। **ज्येष्ठः**=प्रशस्यतम हैं। **वृत्रहा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाले हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु हमें वासनारूप शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ करते हैं। वे हमें उत्तम शरीर रथों को प्राप्त कराते हैं और हमारे जीवनों को दीप्त करते हैं।

ऋषिः—**पुरुहन्मा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (समा-बृहती+विषमा-सतोबृहती)** ॥

वज्र+सूर्य

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ १७ ॥

१. हे **पुरुहन्मन्**=शत्रुओं का खूब ही हनन करनेवाले जीव! तू **तम्**=उस **इन्द्रम्**=शत्रुविद्रावक प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिए **शुम्भ**=अपने जीवन में अलंकृत कर। उस प्रभु को अलंकृत कर **यस्य**=जिसके **द्विता**=दोनों का विस्तार है—उसकी शक्ति भी अनन्त है और ज्ञान भी अनन्त है। प्रभु को अपने जीवन में अलंकृत करने पर हम भी ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करेंगे। २. उस **विधर्तरि**=विशेषरूप से धारण करनेवाले प्रभु में **हस्ताय**=(हन्ताय) शत्रुसंहार के लिए **दर्शतः**=दर्शनीय **महा**=महान् **वज्रः**=वज्र **प्रतिधायि**=धारण किया जाता है। हाथ में उसी प्रकार वज्र धारण किया जाता है, **न**=जैसेकि **दिवे**=प्रकाश के लिए **सूर्यम्**=सूर्य का धारण होता है।

भावार्थ—हम भी जीवन में वज्र और सूर्य को धारण करते हैं—हाथों में क्रियाशीलता को, मस्तिष्क में ज्ञानसूर्य को। एवं, यह प्रभु का धारण हमें शक्ति व प्रकाश प्राप्त कराएगा।

ऋषिः—**पुरुहन्मा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (समा-बृहती+विषमा-सतोबृहती)** ॥

न कर्म से, न यज्ञ से

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसम् ॥ १८ ॥

१. **तम्**=उस व्यक्ति को **कर्मणा**=कर्मों से **नकिः नशत्**=कोई भी व्याप्त नहीं कर पाता, अर्थात् उसके समान कोई भी महान् कर्मों को नहीं कर पाता, **यः**=जोकि **सदावृधम्**=सदा से वर्धमान उस प्रभु को **चकार**=अपने हृदय में करता है, अर्थात् जो प्रभु को हृदय में धारण करता है, वह प्रभु से शक्ति प्राप्त करके महान् कार्यों को करनेवाला होता है। २. **न**=(सम्प्रति) अब हम **यज्ञैः**-यज्ञात्मक कर्मों से **इन्द्रम्**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु को उपासित करें, जो प्रभु **विश्वगूर्तम्**=सबसे स्तुति के योग्य है, **ऋभ्वसम्**=महान् हैं। **अधृष्टम्**=किसी से भी धर्षित होनेवाले नहीं और **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **धृष्णुम्**=हमारे सब शत्रुओं का धर्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें असाधारण, महान् कर्मों को करने में समर्थ करती है। प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर हम सब शत्रुओं का धर्षण करते हैं।

ऋषिः—**पुरुहन्मा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (समा-बृहती+विषमा-सतोबृहती)** ॥

द्यावः क्षामः अनोनवुः

अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः॥ १९॥

१. **द्यावः**=द्युलोक में होनेवाले ये सूर्य व **क्षामः**=पृथिवीलोक उस प्रभु का **अनोनवुः**=अतिशयेन स्तवन करते है, जो प्रभु **अषाळ्हम्**=शत्रुओं से कभी पराभूत नहीं होते, **उग्रम्**=उद्‌गूर्ण बलवाले व तेजस्वी हैं तथा **पृतनासु**=शत्रुसैन्यों का **सासहिम्**=पराभव करनेवाले हैं। २. **यस्मिन् जायमाने**=जिसके प्रादुर्भू होने पर **महीः**=महत्त्वपूर्ण **उरुज्रयः**=महान् वेगवाली, अर्थात् हमें क्रियाओं में प्रेरित करनेवाली **धेनवः**=वेदवाणीरूप गौएँ **सम् अनोनवुः**=सम्यक् शब्दायमान हो उठती हैं। हृदय में प्रभु का प्रकाश होने पर ये वेदवाणियाँ हमें उस-उस क्रिया में प्रेरित करनेवाली होती है। इन वेदवाणियों के रूप में ही हमें प्रभु की प्रेरणाएँ सुन पड़ती हैं।

भावार्थ—ये सूर्य आदि पदार्थ प्रभु की ही महिमा का प्रकाश हैं। हृदय में प्रभु का प्रकाश होने पर वेदवाणी हमारे लिए उत्कृष्ट कर्मों की प्रेरणा देनेवाली होती है।

ऋषिः—**पुरुहन्मा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (समा-बृहती+विषमा-सतोबृहती)** ॥

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥ २०॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा।
अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः॥ २१॥

देखो व्याख्या अथर्व० २०.८१.१-२ पर।

प्रभु का स्तवन करनेवाला यह 'प्रगाथ' अगले सूक्त में १-३ तक ऋषि है। स्तवन के द्वारा दिव्यगुणों को जन्म देनेवाली 'देवजामय' ४-८ तक का ऋषि है—

९३. [त्रिनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रगाथः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु-स्तवन व ज्ञानियों का संग

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः। अव ब्रह्मद्विषो जहि॥ १॥

१. हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! **त्वा**=आपको **स्तोमः**=हमसे की जानेवाली स्तुतियाँ **उत् मन्दन्तु**=उत्कर्षेण आनन्दित करें। ये स्तोत्र हमें आपका प्रिय बनाएँ। आप हमारे लिए **राधः कृणुष्व**=कार्यसाधक धनों को कीजिए, अर्थात् आवश्यक धनों को हमारे लिए दीजिए। २. **ब्रह्मद्विषः**=ज्ञान से अप्रीतिवाले लोगों को **अवजहि**=हमसे दूर कीजिए। हमें ज्ञानी लोगों का ही सम्पर्क प्राप्त हो। मूर्खों के सम्पर्क से हम सदा दूर रहें।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करते हुए कार्यसाधक धनों को प्राप्त करें और ज्ञानियों के सम्पर्क में रहें, ज्ञान-प्राप्ति की रुचिवाले बनें।

ऋषिः—**प्रगाथः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

अराधस् पणियों का विनाश

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि। नहि त्वा कश्चन प्रति॥ २॥

१. हे इन्द्र! आप **पणीन्**=लोभयुक्त व्यवहारवाले **अराधसः**=यज्ञों के असाधक धनोंवाले

धनियों को **पदा**=पाँव से **निबाधस्व**=नीचे पीड़ित कीजिए—इन्हें पाँव तले रौंद डालिए। **महान् असि**=आप पूज्य हैं। २. हे प्रभो! **कश्चन**=कोई भी **त्वा प्रति नहि**=आपका मुक़ाबला करनेवाला नहीं है। आप अद्वितीय शक्तिशाली हैं।

भावार्थ –प्रभु लोभी व अयज्ञिय वृत्तिवाले धनियों को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**प्रगाथः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सबका 'ईश' प्रभु

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्। त्वं राजा जनानाम्॥ ३॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **सुतानाम्**=कर्मानुसार उस-उस शरीर को ग्रहण करनेवाले—जन्म धारण करनेवाले लोगों के **ईशिषे**=ईश हैं। **त्वम्**=आप ही **असुतानाम्**=शरीर न धारण करनेवाले—जन्म न धारण करनेवाले मुक्त पुरुषों के भी ईश हैं। २. **त्वम्**=आप ही **जनानाम्**=सब जन्मधारियों के **राजा**=व्यवस्थापक—कर्मानुसार फल देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु सभी के ईश हैं—चाहे वे जन्म लिये हुए हों, चाहे मुक्त हों। सबको कर्मानुसार जन्म देनेवाले प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**देवजामयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

देवजामयः–'इन्द्र' मातरः

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते। भेजानासः सुवीर्यम्॥ ४॥

१. **ईङ्खयन्तीः**=स्तुति के द्वारा प्रभु की ओर गति करनेवाली, **अपस्युवः**=अपने साथ कर्म को जोड़नेवाली माताएँ **जातम्**=उत्पन्न हुए-हुए **इन्द्रम्**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता बननेवाले बालक को **उपासते**=उपासित करती हैं, अर्थात् सदा इसका ध्यान करती हैं, इसे अपनी आँखों से ओझल नहीं करतीं। २. इसका निर्माण करनेवाली ये माताएँ **सुवीर्यम् भेजानासः**=उत्तम वीर्य व शक्ति का सेचन करनेवाली होती है। स्वयं संयमी जीवन बिताती हुई ये शक्ति का रक्षण करती हैं। इनका आपना जीवन संयमवाला न हो तो इन्होंने बच्चों का क्या निर्माण करना? 'स्तुति, क्रिया व संयम' के द्वारा ही तो ये 'देवजामय' बनती हैं।

भावार्थ—बालक को वही माता 'इन्द्र' बना पाती है जो 'प्रभु-स्तवन, क्रियाशीलता व संयम' को अपनाती है।

ऋषिः—**देवजामयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

बालक को माता की प्रेरणा

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः। त्वं वृषन्वृषेदसि॥ ५॥

१. हे **इन्द्र**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता बननेवाले प्रिय! **त्वम्**=तू **बलात्**=बल से, **सहसः**=सहस् से—सहनशक्तिवाले बल से तथा **ओजसः**=ओज से **अधिजातः असि**=आधिक्येन प्रसिद्ध हुआ है। तेरा मनोमयकोश 'बल व ओज' से सम्पन्न बना है तथा आनन्दमयकोश 'सहस्' वाला हुआ है। २. हे **वृषन्**=शक्तिशाली इन्द्र! **त्वम्**=तू **इत्**=निश्चय से **वृषा असि**=शक्तिशाली है। तूने अपने को शक्ति से सिक्त करना है।

भावार्थ—माता प्रारम्भ से बालक को यही प्रेरणा देती है कि तूने 'बलवान्, ओजस्वी व सहस्वी' बनना है। तूने अवश्य शक्तिशाली होना है।

ऋषिः—**देवजामयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

उदारहृदय-उत्कृष्ट मस्तिष्क

त्वमि॑न्द्रासि वृत्र॒हा व्य१॒॑न्तरि॑क्षमतिरः। उद् द्याम॑स्तभ्ना॒ ओज॑सा॥ ६॥

१. हे **इन्द्र**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव! **त्वं वृत्रहा असि**=तू ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करनेवाला है। **अन्तरिक्षं वि अतिरः**=तू ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करके हृदयान्तरिक्ष को विशेषरूप से बढ़ानेवाला है, अर्थात् तू अपने हृदय को विशाल बनाता है तथा २. **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **द्याम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को **उत् अस्तभ्नाः**=उत्कृष्ट स्थान में थामता है, अर्थात् तू मस्तिष्क को उत्कृष्ट ज्ञान-सम्पन्न बनाता है।

भावार्थ—माता बालक को प्रेरणा देती है कि (क) तूने वासनाओं को विनष्ट करनेवाला बनना है (ख) हृदय को विशाल बनाना है तथा (ग) ओजस्विता के साथ मस्तिष्क को ज्ञानोज्ज्वल करना है।

ऋषिः—**देवजामयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सजोषसं अर्कं, ओजसा वज्रम्

त्वमि॑न्द्र स॒जोष॑सम॒र्कं बि॑भर्षि बा॒ह्वोः। वज्रं॒ शिशा॑न॒ ओज॑सा॥ ७॥

१. हे **इन्द्र**=इन्द्रियों का अधिष्ठाता बननेवाले जीव! **त्वम्**=तू **बाह्वोः**=अपनी भुजाओं में **सजोषसम्**= ओज व उत्साह से युक्त **अर्कम्**=(अर्च पूजायाम्) स्तुत्य सूर्यसम तेज को **बिभर्षि**=धारण करता है। 'प्राणो वा अर्कः' (श० १०.४.१.२३) के अनुसार तू प्राणशक्ति-सम्पन्न जीवनवाला बनता है। २. तू **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **वज्रम्**=अपने वज्र को **शिशानः**=तीक्ष्ण करनेवाला है। 'वज् गतौ' से बना हुआ 'वज्र' शब्द क्रियाशीलता का वाचक है। ओजस्विता के कारण तेरा जीवन बड़ा क्रियाशील बनता है।

भावार्थ—बालक को माता ने उत्साहयुक्त तेजवाला तथा ओजस्वितायुक्त क्रियाशीलता-वाला बनाना है।

ऋषिः—**देवजामयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'अभिभू' बनकर 'आभूति' वाला होना

त्वमि॑न्द्रा॒भि॒भूर॑सि॒ विश्वा॑ जा॒तान्योज॑सा। स विश्वा॒ भुव॒ आभ॑वः॥ ८॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय व शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले बालक! **त्वम्**=तू **विश्वा जातानि**=सब उत्पन्न हुए-हुए इन वासनारूप शत्रुओं को **ओजसा**=अपनी ओजस्विता से **अभिभूः असि**=पराभूत करनेवाला है। काम, क्रोध, लोभ से तू आक्रान्त नहीं होता। २. **सः**=वह तू **विश्वाः**=सब **भुवः**=भूमियों को—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनन्दमयकोशों को—**आभवः**=आभूति-(ऐश्वर्य)-वाला बनाता है। इन्हें क्रमशः 'तेज, वीर्य, बल व ओज, मन्यु तथा सहस्' से परिपूर्ण करता है।

भावार्थ—माता ने बालक को यह प्रेरणा देनी है कि (क) तूने काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं को अभिभूत करना है तथा (ख) अन्नमय आदि सब कोशो का आभूतिवाला बनाना है।

माता से उत्तम प्रेरणा प्राप्त करके यह शत्रुओं का कर्षण करनेवाला 'कृष्ण' बनता है—यह अंग-प्रत्यंग में रसवाला 'आंगिरस' होता है। यह इन्द्र का उपासन करता है और प्रभु इस छोटे इन्द्र को कहते हैं कि—

९४. [चतुर्नवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'तूतुजानः तुविष्मान्'

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान्।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन॥ १॥

१. **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **आयातु**=मेरे समीप आये। जैसे एक बच्चा पिता की गोद में बैठता है, उसी प्रकार यह जितेन्द्रिय पुरुष प्रभु की गोद में बैठनेवाला हो। जो इन्द्र **स्वपतिः**=अपना स्वामी है—इन्द्रियों, मन व बुद्धि का दास न होकर इनका अधिष्ठाता है और अतएव **मदाय**=सदा हर्ष के लिए होता है। २. प्रभु कहते हैं कि मेरे समीप वह 'इन्द्र' आये **यः**=जोकि **धर्मणा**=लोकधारण के हेतु से **तूतुजानः**=(त्वरमाणः नि० ६.२०) शीघ्रता से कार्य करनेवाला होता है। जो **तुविष्मान्**=(growth, strength, intellect) उन्नति, शक्ति व बुद्धिवाला है। ३. **अपारेण महता**=महान् अपार, अर्थात् बहुत अधिक **वृष्ण्येन**=बल के द्वारा **विश्वा सहांसि**=सब सहनशक्ति के जनक बलों को **अति प्रत्वक्षाणः**=बहुत ही सूक्ष्म (तीव्र) बनानेवाला होता है। बल को बढ़ाता हुआ सहनशक्तिवाला होता है। वही प्रभु को पा सकता है। निर्बल व चिड़चिड़े पुरुष ने प्रभु को क्या पाना?

भावार्थ—प्रभु की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम 'इन्द्र स्वपति-धारणात्मक कर्मों को करनेवाले—उन्नतिशील—तथा सबल बनकर सहनशील' हों।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सुष्ठामा रथः

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि॥ २॥

१. गतमन्त्र के स्वपति से कहते हैं कि **रथः**=तेरा शरीररूप रथ **सुष्ठामा**=शोभनावस्थान हो—इसका एक-एक अंग सुबद्ध हो, अर्थात् यह शरीररूप रथ सुगठित हो। **ते**=तेरे **हरी**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व **सुयमा**=सम्यक् वश में हों। हे **नृपते**=आगे बढ़नेवालों के स्वामिन्—मुखिया **ते गभस्तौ**=तेरे बाहुओं में **वज्रः**=क्रियाशीलतारूप वज्र **मिम्यक्ष**=संगत हो, अर्थात् तू सतत क्रियाशील जीवनवाला हो। २. हे **राजन्**=अपने जीवन को व्यवस्थित (regulated) करनेवाले और इसप्रकार अपने जीवन को दीप्त बनानेवाले जीव! तू **सुपथा**=उत्तम मार्ग से **शीभम्**=शीघ्र **अर्वाङ्**=हमारे अभिमुख—हमारे अन्दर **आयाहि**=प्राप्त हो, बहिर्मुखी वृत्ति को छोड़कर अन्तर्मुखी वृत्तिवाला बन। जीवन को व्यवस्थित बनाना ही प्रभु की ओर चलना है। ३. प्रभु कहते हैं कि ऐसा होने पर **पपुषः**=सोमपान करनेवाले **ते**=तेरे **वृष्ण्यानि**=बलों को **वर्धाम**=हम बढ़ाते हैं। सोमपान से ही शक्ति का वर्धन होता है। सशक्त होकर ही हम प्रभु दर्शन के योग्य बनते हैं।

भावार्थ—हमारा शरीररूप रथ सुदृढ़ हो। इन्द्रियाश्व संयत हों। हाथों में क्रियाशीलता हो। सुपथ से प्रभु की ओर चलें और सोम-रक्षण द्वारा शक्तिशाली बनें।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उग्र-प्रत्वक्षस-सत्यशुष्म

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम्।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु॥ ३॥

१. प्राण जीवात्मा के साथ रहते हैं—उपनिषद् के शब्दों में उसी प्रकार जैसेकि पुरुष के साथ छाया। छाया पुरुष का साथ नहीं छोड़ती, प्राण आत्मा का साथ नहीं छोड़ते, इसीलिए प्राणों को यहाँ 'सधमादः' जीव के साथ आनन्दित होनेवाला कहा गया है। ये प्राण जितेन्द्रिय पुरुष को प्रभु के प्रति ले-चलनेवाले हैं, अतः 'इन्द्रवाहः' कहलाते हैं। शक्तिशाली होने से 'उग्रासः' हैं और अत्यन्त बढ़े हुए होने से—सब उन्नतियों का कारण होने से 'तविषासः' कहे जाते हैं। २. इन प्राणों से कहते हैं कि **सधमादः**=जीव को प्रभु के साथ आनन्द का अनुभव करानेवाले, **इन्द्रवाहः**=जितेन्द्रिय पुरुष को प्रभु के समीप प्राप्त करानेवाले, **उग्रासः**=तेजस्वी, **तविषासः**=प्रवृद्ध व बलसम्पन्न प्राणो! आप **एनम्**=इस जीव को **ईम्**=निश्चय से **अस्मत्रा**=हमारे समीप **आवहन्तु**=ले-आओ। उस जीव को जोकि **नृपतिम्**=उन्नतिशील पुरुषों का प्रमुख है। **वज्रबाहुम्**=बाहुओं में क्रियाशीलतारूप वज्र को लिये हुए है। **उग्रम्**=तेजस्वी है। **प्रत्वक्षसम्**= अपनी बुद्धि को बड़ा सूक्ष्म बनानेवाला है। **वृषभम्**=शक्तिशाली होता हुआ सब पर सुखों का वर्षण करनेवाला है और इन गुणों को उत्पन्न करके प्राण इस साधक को प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से जीव शक्तिशाली व सत्य के बलवाला और सूक्ष्मबुद्धि से युक्त होता है। इन तीनों बातों का सम्पादन करके यह प्रभु के समीप पहुँचता है।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

सुरक्षित सोम का महत्त्व

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे॥ ४॥

१. हे **धरुण**=हमारा धारण करनेवाले प्रभो! **एवा**=(इ गतौ) गतिशीलता के द्वारा आप **आवृषायसे**=हममें उस सोम का वर्षण व सेचन करते हैं जोकि **पतिम्**=पालक है—रोगों से हमें बचानेवाला है। **द्रोणसाचम्**=इस शरीररूप द्रोण (सोमपात्र) में समवेत (सम्बद्ध) होनेवाला है। **सचेतसम्**=जो चेतना से युक्त है—चेतना व ज्ञान को उत्पन्न करनेवाला है और **ऊर्जः स्कम्भम्**=बल व प्राणशक्ति का धारक है। २. हे प्रभो! इस सोम के सेचन से **ओजः कृष्व**=आप हममें ओजस्विता का सम्पादन कीजिए और **त्वे अपि संगृभाय**=हमें अपने में ग्रहण करने की कृपा कीजिए। हम आपकी गोद में इसी प्रकार आ सकें, जैसकि पुत्र पिता की गोद में आता है। ३. आप हमारे लिए उसी प्रकार होइए **यथा**=जैसेकि **इनः**=स्वामी होते हुए आप **केनिपानाम्**= मेधावियों के **वृधे**=वर्धन के लिए होते हैं। हम भी इस सोम के रक्षण के द्वारा मेधावी हों और आपके प्रिय होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करें।

भावार्थ—सोम (वीर्य) रोगों से हमारा रक्षण करता है, हमें चेतना-सम्पन्न व शक्तिशाली बनाता है। इसके द्वारा हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनते हैं। मेधावी बनकर वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

अनाधृष्यपात्र

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा॥ ५॥

१. हे प्रभो! गतमन्त्र के अनुसार जब मैं अपने इस शरीर को सोम का पात्र बनाता हूँ—

शरीर में सोम का रक्षण करता हूँ तब **हि**=निश्चय से **अस्मे**=हममें **वसूनि**=जीवन को उत्तम बनानेवाले सब वासक तत्त्व **आगमन्**=प्राप्त होते हैं और मैं **शंसिषम्**=आपका शंसन व स्तवन करनेवाला बनता हूँ—मेरी वृत्ति भोगप्रवण न होकर प्रभु-प्रवण होती है। आप मुझ **सोमिनः**=सोम का रक्षण करनेवाले के **सु-आशिषम्**=उत्तम इच्छाओंवाले **भरम्**=भरणात्मक यज्ञ को **आयाहि**=आइए। **त्वम् ईशिषे**=वस्तुतः आप ही तो इन सब यज्ञों के ईश हैं। आपकी कृपा से ही सब यज्ञ पूर्ण हुआ करते हैं। २. **सः**=वे आप **अस्मिन्**=इस हमारे **बर्हिषि**=वासनाओं का जिसमें से उद्बर्हण कर दिया गया है और यज्ञों का जिसमें स्थापन हुआ है उस हृदय में **आसत्सि**=आकर विराजमान होते हैं। उन हृदयस्थ आपकी प्रेरणा व शक्ति से ही सब यज्ञपूर्ण हुआ करते हैं। ३. हे प्रभो! **तव**=आपकी **धर्मणा**=धारकशक्ति से ही **पात्राणि**=ये सोम-रक्षण के पात्रभूत हमारे शरीर **अनाधृष्या**=आधि व्याधियों से धर्षण के योग्य नहीं होते। हृदय में आपके उपस्थित होने पर वहाँ 'काम' का प्रवेश नहीं होता। परिणामतः सोम का रक्षण होकर शरीर रोगाभिभूत नहीं होता। इसप्रकार यह स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मनवाला पुरुष 'आदर्श पुरुष' बनता है।

भावार्थ—सोम का रक्षण होने पर हमारे हृदयों में प्रभु का वास होगा। उस समय हमारे शरीर रोगों से आक्रान्त न होंगे और मन वासनाओं से मलिन न होंगे।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

यज्ञिय भाव

**पृथक्प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्या
नि दुष्टरा।**

न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः॥ ६॥

१. **प्रथमाः**=(प्रथ विस्तारे) अपना विस्तार करनेवाले व अपने हृदयों को विशाल बनानेवाले **देवहूतयः**-देव को पुकारनेवाले—प्रभु की प्रार्थना करनेवाले—अपने में दिव्यगुणों की स्थापना के लिए यत्नशील सोमी पुरुष **पृथक्**=अनासक्त (Detached) होकर—अलग रहते हुए—न फँसते हुए—**प्रायन्**=प्रकृष्ट गतिवाले होते हैं। सब सांसारिक कार्यों को करते हुए ये उनमें आसक्त नहीं होते। २. अनासक्तभाव से कार्यों को करते हुए ये सोमी पुरुष **श्रवस्यानि**=उन श्रवणीय यशों को **अकृण्वत**=करनेवाले होते हैं, जो यश **दुष्टरा**=दूसरों से दुस्तर होते हैं। इनके यश का अन्य लोग उल्लंघन नहीं कर पाते। ३. इनके विपरीत वे व्यक्ति **ये**=जोकि **यज्ञियां नावम्**=यज्ञमयी नाव पर **आरुहम्**=आरोहण के लिए **न शेकुः**=समर्थ नहीं होते, अर्थात् जो जीवन को, आसक्ति से ऊपर उठकर, यज्ञिय कार्यों में नहीं लगा पाते, **ते**=वे **केपयः**=कुत्सितकर्मा लोग **ईर्म एव**=(ऋणेनैव) अपने पर चढ़े हुए 'मानव ऋण' से ही **न्यविशन्त**=नीचे और नीचे प्रवेश करते हैं। इनको अधोगति प्राप्त होती है। मनुष्य पर चार ऋण होते हैं—'पितृऋण, ऋषिऋण, देवऋण व मानव ऋण'। इन ऋणों को हम विविध यज्ञिय कर्मों द्वारा उतारा करते हैं। यदि उन यज्ञों को हम नहीं करते तो ऋणभार से दबे हुए हम अधोगति को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हम संसार में फल की आसक्ति को छोड़कर कर्त्तव्यकर्मों को करें। यही 'यज्ञिय नाव' है। यही हमें भवसागर से तराएगी और अधोगति से बचाएगी।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

प्राग्, नकि अपाग्

**एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यो
श्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे।**

इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना॥ ७॥

१. **येषाम्**=जिन यज्ञ न करनेवालों के **दुर्युज**=दुष्ट योजनावाले, अर्थात् अशुभ मार्ग की ओर जानेवाले **अश्वाः**=इन्द्रियरूप अश्व **आयुयुत्रे**=इस शरीर-रथ में जुतते हैं, वे **दूढ्यः**=(दुर्धियः) दुष्ट बुद्धिवाले **अपरे**=इस अपरा प्रकृति में फँसे हुए पुरुष **एवा एव**=अपनी गतियों के कारण ही **अपाग् सन्तु**=अधोगतिवाले हों। भोगप्रवण मनोवृत्तिवाले पुरुषों की बुद्धियाँ सदा कुमन्त्रणा करती हैं। इनकी अन्ततः अवनति ही होती है। २. **उ**=और **ये**=जो **परे**=दूसरे पराप्रकृति (जीव= आत्मस्वरूप) की ओर चलनेवाले होते हैं और **इत्था**=सचमुच **दावने सन्ति**=देने के कार्य में लोग रहते हैं, वे **प्राग् सन्ति**=आगे बढ़नेवाले होते हैं। वे वहाँ पहुँचते हैं **यत्र**=जहाँ कि **पुरूणि**= पालन व पूरण करनेवाले पर्याप्त **वयुनानि**=ज्ञानयुक्त व कान्त (चमकते हुए) **भोजना**=धन हैं। भोगवृत्ति से ऊपर उठे हुए इन यज्ञशील पुरुषों को पालन के लिए आवश्यक सब धन प्राप्त होते हैं। ये धन उन्हें मूढ बनानेवाले नहीं होते। ये उन्हें आगे बढ़ाते हुए उनकी ज्ञानवृद्धि का साधन बनते हैं।

भावार्थ—भोगप्रवण बनकर हम अधोगति को प्राप्त करनेवाले न बनें। यज्ञों में प्रवृत्त हुए-हुए हम आगे बढ़ें और ज्ञानयुक्त धनोंवाले हों।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

समीचीने धिषणे

गिरीँरज्रानेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत्।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति॥ ८॥

१. **वृष्णः**=शक्ति देनेवाले सोम का **पीत्वा**=पान करके—सोम को शरीर में ही व्याप्त करके मनुष्य **मदे**=उल्लास में **उक्थानि**=प्रभु के स्तोत्रों का **शंसति**=उच्चारण करता है। जिस समय मन्त्र का ऋषि 'गोतम' (प्रशस्तेन्द्रिय पुरुष) सोम का विनाश न करके उसे शरीर में ही सुरक्षित करता है, उस समय नीरोगता व निर्मलता के कारण उसे एक अनुपम उल्लास का अनुभव होता है। उस उल्लास में वह प्रभु की महिमा का गायन करता है। २. इस सोम के रक्षण के द्वारा वह **समीचीने**=(सम् अञ्च) उत्तम गतिवाले **धिषणे**=द्यावापृथिवी को—मस्तिष्क व शरीर को **विष्कभायति**=विशेषरूप से थामता है। इनकी शक्ति को यह बढ़ानेवाला होता है। सोम-रक्षण ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है और शरीर में आ जानेवाले रोगकृमियों का नाश करता है। यह 'मस्तिष्क को उज्ज्वल बनाना, व शरीर को नीरोग बनाना' ही द्यावापृथिवी का धारण है। यही द्यावापृथिवी की समीचीनता है। अपने-अपने कार्य को ठीक से करना ही तो समीचीनता है। ३. यह **अज्रान्**=अपनी गति के द्वारा विक्षिप्त करनेवाले **रेजमानान्**=अत्यन्त कम्पित करते हुए **गिरीन्**=अविद्यापर्वतों को **अधारयत्**=थामता है, अर्थात् इन पर्वतों के आक्रमण से अपने को बचाता है। इसका **द्यौः**=मस्तिष्करूप द्युलोक **अक्रन्दत्**=प्रभु का आह्वान करनेवाला होता है, अर्थात् यह अपने ज्ञान के प्रकाश से प्रभु को देखता है और उसे अपने रक्षण के लिए पुकारता है। यह **अन्तरिक्षाणि**=अपने हृदयान्तरिक्षों को **कोपयत्** (कोपयति to shine)=दीप्त करता है। प्रभु के प्रकाश से हृदय का दीप्त होना स्वाभाविक है।

भावार्थ—सोम के रक्षण के द्वारा हमारे मस्तिष्क व शरीर उत्तम हों।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

प्रभु-स्तवनरूप अंकुश

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः॥ ९॥

१. हे प्रभो! **इमम्**=इस **ते**=आपके **सुकृतम्**=पुण्य के कारणभूत **अंकुशम्**=स्तवन को **बिभर्मि**=मैं धारण करता हूँ। यहाँ स्तुति को अंकुश इसलिए कहा है कि यह हमें मार्ग पर चलने के लिए प्रेरक होती है। अंकुश हाथी को मार्गभ्रष्ट नहीं होने देता—इसी प्रकार स्तुति मनुष्य को मार्गभ्रष्ट होने से बचाती है। हे **मघवन्**=सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामिन् प्रभो! यह स्तुतिरूप अंकुश वह है, **येन**=जिससे **शफारुजः**=(शफ root of a tree) शरीररूप वृक्ष के मूल पर आघात करनेवाले 'काम, क्रोध, लोभ' को आप **आरुजासि**=छिन्न-भिन्न कर देते हो। 'काम' शरीर को, 'क्रोध' मन को तथा 'लोभ' बुद्धि को नष्ट कर देता है। इन तीनों शफारुजों को प्रभु का स्तवन नष्ट कर देता है। २. इनको नष्ट करके हम चाहते हैं कि **अस्मिन् सवने सुते**=इस जीवन-यज्ञ में सोम का सम्पादन होने पर **ओक्यम् अस्तु**=प्रभु का यहाँ निवास हो। हे **आभगः**-आभजनीय—सर्वदा स्तवन के योग्य प्रभो! **इष्टौ सुते**=इस जीवन को यज्ञरूप में चलाने पर **बोधि**=आप हमारा ध्यान कीजिए। आपसे रक्षित होकर हम इस जीवन को यज्ञ का रूप दे सकेंगे।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन हमारे जीवनरूप हाथी के लिए अंकुश के समान हो। हम जीवन को यज्ञमय बनाएँ। इस जीवन-यज्ञ में प्रभु का निवास हो।

ऋषिः—**कृष्णः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम॥ १०॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु॥ ११॥

देखो व्याख्या २०.१७.१०-११ पर।

प्रभु की उपासना करनेवाला (गृणाति) और उल्लासमय जीवनवाला (माद्यति) 'गृत्समद' अगले सूक्त के प्रथम मन्त्र का ऋषि है। २-४ तक ऋषि 'सुदाः'=उत्तम दानशील पैजवनः-(अपिजवनः) खूब क्रियाशील व्यक्ति है—

९५. [पञ्चनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**गृत्समदः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अष्टिः** ॥

'देव, सत्य व इन्दु' बनना

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत्।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः॥ १॥

१. **त्रिकद्रुकेषु**=(कदि आह्वाने) जीवन के तीनों आह्वानकालों में—बाल्य, यौवन व वार्धक्य में **महिषः**-प्रभु की पूजा करनेवाला और अतएव **तुविशुष्मः**=महान् बलवाला मन्त्र का ऋषि गृत्समद **विष्णुना**=परमात्मा के द्वारा **सुतम्**=उत्पन्न किये गये **यवाशिरम्** (यौति आशृणाति) अशुभों को दूर करनेवाले, शुभों को हमारे साथ सम्पृक्त करनेवाले और सब रोगकृमियों व वासनाओं को शीर्ण करनेवाले **सोमम्**=सोम को **तृपत्**=तृप्ति का अनुभव करता हुआ **अपिबत्**=

अपने अन्दर ही पीता है, अर्थात् शरीर में ही इसे व्याप्त करता है। उतना-उतना व्याप्त करता है **यथा अवशत्**=जितना-जितना इन्द्रियों को वश में करता है। २. इसप्रकार सदा प्रभु का स्मरण करता हुआ और इन्द्रियों को वश में करता हुआ गृत्समद सोम का पान करता है—वीर्य को शरीर में ही सुरक्षित करता है। **सः**=वह **ईम्**=निश्चय से **ममाद**=प्रसन्नता का अनुभव करता है। **महि कर्म कर्तवे**=महान् कर्म करने के लिए होता है और **एनम्**=इस **महाम्**=महान्—पूजनीय **उरुम्**-सर्वव्यापक प्रभु को **सश्चत्**=प्राप्त होता है। **देवः**=प्रकाशमय जीवनवाला बनकर **देवम्**=प्रकाशमय प्रभु को प्राप्त करता है। **सत्यः**=सत्यवादी व **इन्दुः**=शक्तिशाली बनकर **सत्यम्**=सत्यस्वरूप **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को पाता है।

भावार्थ—उपासक उपासना की वृत्ति के परिणामस्वरूप वासनाओं से आक्रान्त न होकर सोम का रक्षण कर पाता है। इस सोम-रक्षण से उल्लासमय जीवनवाला—महान् कर्मों को करनेवाला तथा 'देव, सत्य व इन्द्र' बनकर उस महान् 'देव, सत्य व इन्दु' को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**सुदाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**शक्वरी** ॥

पुरोरथम्+शूषम्

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत। अभीके चिदु लोककृत्संगे समुत्सु
वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु॥ २॥

१. **अस्मै**=इस **इन्द्राय**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले सेनापति के लिए **उ**=निश्चय से **सु**=अच्छी प्रकार **पुरोरथम्**=अग्रगतिवाले रथ को तथा **शूषम्**=शत्रुशोषक बल को **प्र अर्चत**=सम्यक् आदर दो। उस सेनापति को उचित आदर प्राप्त हो, जिसका रथ सदा आगे ही बढ़ता है, जो रणाङ्गण से कभी पराङ्मुख नहीं होता। उस सेनापति को आदर दो जिसका बल शत्रुओं का शोषण करनेवाला है। २. यह इन्द्र **अभीके**=संग्राम में **चित्** उ=निश्चय से **लोककृत्**=अपना स्थान बनानेवाला है। **समत्सु**=संग्रामों में **संगे**=शत्रुओं के साथ मुठभेड़ होने पर यह **वृत्रहा**=वृत्र का हनन करनेवाला है। राष्ट्र को घेरनेवाले शत्रुओं को समाप्त करनेवाला होता है (वृ=घेरना) ३. हे इन्द्र! इसप्रकार शत्रु-हनन करता हुआ तू **अस्माकम्**=हमारा **चोदिता**=प्रेरक **बोधि**=अपने को जान। इसप्रकार ही तू प्रजाओं के अन्दर उत्साह का संचार करता है। तेरी वीरता के सामने **अन्यकेषाम्**=(कुत्सिते कन्) इन अधर्म के पक्षवाले शत्रुओं की **ज्याकाः**=धनुष् की डोरियाँ **अधिधन्वसु**=धनुषों पर **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ। उनका उत्साह मन्द पड़ जाए। उनके अस्त्र कुण्ठित हो जाएँ।

भावार्थ—सेनापति का रथ आगे-ही-आगे बढ़नेवाला हो, उसका बल शत्रुओं का शोषण कर दे। सेनापति शत्रुओं का हनन करता हुआ प्रजाओं के उत्साह को बढ़ाए और शत्रुओं के अस्त्र कुण्ठित हो जाएँ।

ऋषिः—**सुदाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**शक्वरी** ॥

राष्ट्र रक्षा के लिए रक्तधाराओं का बहाना

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि
वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु॥ ३॥

१. **अहिम्**=(आहन्ति) चारों ओर मारकाट करनेवाले शत्रु को **त्वम्**=तू **अहन्**=नष्ट करता है और **अधराचः**=नीचे की ओर बहनेवाली **सिन्धूम्**=रक्तनदियों को तू **अवासृजः**=उत्पन्न कर देता है। इसप्रकार शत्रुओं को समाप्त करके हे **इन्द्र**=सेनापते! तू **अशत्रुः जज्ञिषे**=शत्रुरहित हो

जाता है, तेरी शक्ति के कारण कोई भी तेरा विरोधी नहीं रहता। २. इसप्रकार शत्रुओं से राष्ट्र की रक्षा करके तू **विश्वं वार्यम्**=सब वरणीय वस्तुओं का **पुष्यसि**=पोषण करता है। **तं त्वा**=उस तुझको हम **परिष्वजामहे**=आलिंगित करते हैं, अर्थात् तेरा उचित अभिनन्दन करते हैं। तेरे बल के सामने **अन्यकेषाम्**=कुत्सित वृत्तिवाले इन शत्रुओं की **ज्याका:**=डोरियाँ **अधिधन्वसु**=धनुषों पर ही **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ—घात पात करनेवाले शत्रुओं को मारकर सेनापति रक्तधाराएँ बहा दे। राष्ट्रोत्थान का यही तो मार्ग है—बाह्य शत्रुओं का भय न होना तथा वरणीय तत्त्वों का वर्धन।

ऋषिः—**सुदाः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**शक्वरी** ॥

वज्र व धन की चोट से

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते
रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु॥ ४॥

१. **विश्वाः**=सब **अरातयः**=न देने की वृत्तिवाले—कृपण **अर्यः**=शत्रु **सु**=अच्छी प्रकार **विनशन्त**=विनष्ट हो जाएँ। **नः**=हमें **धियः**=ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले कर्म **नशन्त**=प्राप्त हों। शत्रुभय के न होने पर हम सब कार्यों को स्वस्थ मस्ष्कि से करनेवाले हों। २. हे **इन्द्र**=सेनापते! **यः**=जो **नः**=हमें **जिघांसति**=मारना चाहता है, उस **शत्रवे**=शत्रु के लिए तू **वधम्**=वज्र को **अस्तासि**=फेंकनेवाला है और समय समय पर **या**=जो **ते**=तेरी **रातिः**=दानशीलता है, उसे भी तू शत्रु के लिए फेंकनेवाला होता है, अर्थात् धन देकर भी तू शत्रुओं पर विजय पाने का प्रयत्न करता है। कई बार जो कार्य तोपों के गोलों की मार से नहीं होता, वह सोने के एक भार से हो जाता है, इसलिए आवश्यकता होने पर तू **वसुददिः**=धन देनेवाला होता है। इसप्रकार **अन्यकेषां ज्याकाः**=शत्रुओं के धनुषों की डोरियाँ **अधिधन्वसु**=धनुषों पर ही **नभन्ताम्**= नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ—शत्रु भय के अभावों में हमारे सब कार्य बुद्धिपूर्वक हों। सेनापति शस्त्रों से व धनों से शत्रुविजय के लिए यत्नशील हो।

शत्रुभयरहित राष्ट्र के शान्त वातावरण में बुद्धिपूर्वक कार्यों को करता हुआ यह व्यक्ति अपनी न्यूनताओं को दूर करता है और अपना पूरण करता है, अतः 'पूरणः' नामवाला हो जाता है। यही अगले सूक्त के प्रथम पाँच मन्त्रों का ऋषि है। 'पूरण' का साधन सोम-रक्षण ही है—

९६. [षण्णवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**पूरणः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'मुख्य कर्त्तव्य' (सोम-रक्षण)

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः॥ १॥

१. **तीव्रस्य**=शत्रुओं के लिए तीव्र=रोगकृमिरूप शत्रुओं को तीव्रता से विनष्ट करनेवाले **अभिवयसः**=(अभिगतं वयो येन), जिसके द्वारा उत्कृष्ट जीवनवाला होता है, **अस्य** (सोमस्य)= इस सोम का **पाहि**=तू अपने में रक्षण कर। सोम को तू शरीर में ही सुरक्षित रख। यह तुझे रोगों से मुक्त करेगा और दीर्घजीवन प्राप्त कराएगा। २. **इह**=इस जीवन में **सर्वरथाः** (सर्वः रथः

याभ्याम्)=जिनके द्वारा यह शरीर-रथ पूर्ण बनता है, उन **हरी**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों को **विमुञ्च**=विषय-वासनारूप घास के चरते रहने से पृथक् कर। तेरी इन्द्रियाँ विषयों में ही लिप्त न रह जाएँ—इन्हें तू विषयमुक्त करके शरीर-रथ को आगे ले-चलनेवाला बन। ३. हे **इन्द्र**= जितेन्द्रिय पुरुष! **त्वा**=तुझे **अन्ये यजमानासः**=अन्य विविध कामनाओं से यज्ञों में व्यापृत लोग **मा निरीरमन्**=मत आनन्दित करें, अर्थात् तू भी उनकी तरह सकाम होकर इन यज्ञ-याग आदि में ही न उलझा रह जाए। **तुभ्यम्**=तेरे लिए तो **इमे**=ये सोम **सुतासः**=उत्पन्न किये गये हैं। तेरा मुख्य कार्य इनका रक्षण है। इनके रक्षण से ही सब प्रकार की उन्नति होगी।

भावार्थ—हम इन्द्रियों को विषयों से मुक्त करके, सोम-रक्षण को ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझें।

ऋषिः—**पूरणः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वेदवाणियों की पुकार

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम्॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **तुभ्यं सुताः**=तेरे लिए इन सोमों का उत्पादन हुआ है, **उ**=और **तुभ्यम्**=तेरे लिए ही **सोत्वासः**=उत्पन्न किये जाएँगे। ये **श्वात्र्याः** (शु अतन्ति)-शीघ्रता से गतिवाली, अर्थात् कर्मों में प्रेरित करनेवाली **गिरः**=वेदवाणियाँ **त्वाम् आह्वयन्ति**=तुझे पुकारती है। तूने इनका अध्ययन करना है और इनमें निर्दिष्ट कर्मों में प्रवृत्त होना है। २. हे जितेन्द्रिय पुरुष! **अद्य**=आज **इदं सवनम्**=इस जीवन-यज्ञ को **जुषाणः**=प्रीतिपूर्वक सेवन करता हुआ **विश्वस्य विद्वान्**=अपने सब कर्त्तव्यकर्मों को जानता हुआ **सोमम्**=सोम (वीर्य) को **इह**=इस शरीर में **पाहि**=सुरक्षित कर। इस सोम-रक्षण से ही तू सब कर्त्तव्यकर्मों को पूर्ण कर पाएगा। सोम-रक्षण ही तुझे तीव्र बुद्धि बनाकर वेद (ज्ञान) को समझने के योग्य बनाएगा।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करें। वेदवाणी को पढ़ें। वेदवाणी को समझते हुए हम तदुपदिष्ट कर्त्तव्यकर्मों का पालन करें।

ऋषिः—**पूरणः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'प्रशस्त चारु' जीवन

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति॥ ३॥

१. **यः**=जो **उशता मनसा**=कामयमान मन से—चाहते हुए मन से **सर्वहृदा**=पूरे दिल से **देवकामः**=उस महान् देव प्रभु की कामनावाला होता हुआ **अस्मै**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिए **सोमं सुनोति**=अपने में सोम को उत्पन्न करता है। **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **तस्य**=उसकी **गाः**=इन्द्रियरूप गौओं को **न पराददाति**=कभी उससे दूर नहीं करता। इन्हें विषयों का नहीं होने देता। एवं, सोम-रक्षण का प्रथम परिणाम यही होता है कि मनुष्य प्रभु-प्रवण बनता है—उसकी इन्द्रियाँ विषयों से व्यावृत्त रहकर ठीक बनी रहती है। २. इसप्रकार वे प्रभु **अस्मै**=इस सोम-रक्षण करनेवाले के लिए **इत्**=निश्चय से **प्रशस्तम्**=प्रशस्त व **चारुम्**=सुन्दर जीवन को **कृणोति**=करते हैं। इसका जीवन प्रशस्त व सुन्दर बनता है।

भावार्थ—सोम-रक्षण के द्वारा हम इन्द्रियों को सशक्त बनाएँ। प्रभु-प्रवण बनकर जीवन को प्रशंसनीय व सुन्दर बना सकें।

ऋषिः—**पूरणः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

विलास का दुष्परिणाम

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम्।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः॥ ४॥

१. **यः**=जो **रेवान्**=धनवान् होता हुआ **अस्मै**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिए **सोमं न सुनोति**=सोम का अभिषव नहीं करता—विलासमय जीवन बिताता हुआ जो सोम का नाश करता है, **एषः**=यह व्यक्ति **अस्य**=इस प्रभु की **अनुस्पष्टः भवति**=दृष्टि में स्थापित होता है (स्पश् to see)। प्रभु की इसपर दृष्टि होती है, उसी प्रकार जैसेकि एक अशुभ आचरणवाला व्यक्ति राजपुरुषों की दृष्टि में होता है। २. यदि यह एकदम विलासमय जीवनवाला हो जाता है तो **तम्**=उस विलासी धनी पुरुष को **मघवा**=ऐश्वर्यशाली प्रभु **अरत्नौ**=मुट्ठी में **निः दधाति**=निश्चय से धारण करता है, अर्थात् उसे कैद में डाल देता है और भी अधिक विलास के बढ़ने पर इस **ब्रह्मद्विषः**=वेद के शत्रुओं को—ज्ञान से विपरीत मार्ग पर चलनेवालों को वे प्रभु **हन्ति**=विनष्ट कर देते हैं। **अनानुदिष्टः**=ये प्रभु कभी अनुदिष्ट नहीं होते। प्रभु तक कोई सिफ़ारिश नहीं पहुँचाई जा सकती।

भावार्थ—विलासी पुरुष प्रभु से 'अनुस्पष्ट, धृत व दण्डित' होता है। हम विलास के मार्ग पर न चलकर तप के ही मार्ग पर चलें।

ऋषिः—**पूरणः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

तपस्वी जीवन

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम॥ ५॥

१. **अश्वायन्तः**=उत्तम कर्मेन्द्रियों की कामना करते हुए, **गव्यन्तः**=ज्ञानेन्द्रियों को प्रशस्त बनाते हुए, **वाजयन्तः**=शक्ति की कामना करते हुए हम **उपगन्तवा उ**=हे प्रभो! आपके समीप प्राप्त होने के लिए **त्वा हवामहे**=आपको पुकारते हैं। प्रभु की आराधना से ही हम जीवन में विलास से बचकर उत्तम ज्ञानेन्द्रियों, उत्तम कर्मेन्द्रियों व शक्ति को प्राप्त करते हैं। २. हे प्रभो! इसप्रकार **ते**=आपकी **नवायाम्**=अतिशयेन स्तुत्य **सुमतौ**=कल्याणी मति में **आभूषन्तः**=सदा वर्तमान होते हुए **वयम्**=हम, हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **शुनम्**=आनन्दस्वरूप **त्वा**=आपको **हुवेम**=पुकारते हैं। आपकी आराधना ही तो हमें कल्याणी मति प्राप्त कराएगी।

भावार्थ—उत्तम ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों व शक्ति का सम्पादन करते हुए हम प्रभु का उपासन करें। प्रभु का उपासन हमें शुभ बुद्धि को प्राप्त कराता है।

यह उत्तम बुद्धिवाला तपस्वी जीवन को, नकि विलासी जीवन को बिताता हुआ पूर्ण नीरोग बनता है। सब रोगों को नष्ट करता हुआ 'यक्ष्मनाशनम्' होता है।

ऋषिः—**पूरणः, ब्रह्मा च, भृग्वङ्गिराश्च**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अग्निहोत्र से रोगमुक्ति

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्॥ ६॥

१. **त्वा**=तुझे **हविषा**=हवि के द्वारा—अग्निकुण्ड में डाली गई आहुतियों के द्वारा—**अज्ञातयक्ष्मात्**=अज्ञात रोगों से **उत**=और **राजयक्ष्मात्**=क्षयरोग से **मुञ्चामि**=मुक्त करता हूँ। **जीवनाय**=

जिससे तू उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त कर सके तथा तेरा जीवन **कम्**=सुखमय हो। २. अथवा **यदि**=यदि **एनम्**=इसको **एतत्** (एतस्मिन् काले सा०) अब **ग्राहिः**=अंगों को पकड़-सा लेनेवाला वातरोग **जग्राह**=जकड़ लेता है, तो **एनम्**=इसको **इन्द्राग्नी**=इन्द्र और अग्नि **तस्याः**=उस ग्राहि नामक रोग से **प्रमुमुक्तम्**=मुक्त करें। अग्निहोत्र में दीप्त होता हुआ अग्नि हविर्द्रव्यों को सूक्ष्मकणों में विभक्त करके सूर्यलोक तक पहुँचाता है 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते'। सूर्य (इन्द्र) जलों को वाष्पीभूत करके इन सूक्ष्मकणों के चारों ओर प्राप्त कराता है। इसप्रकार वृष्टि के बिन्दु इन हविर्द्रव्यों को केन्द्रों में लिये हुए होते हैं। उनके वर्षण से उत्पन्न अन्न-कण भी उन्हीं हविर्द्रव्यों के गुणों से युक्त हुए-हुए रोगों के निवारक बनते हैं। इसप्रकार इन्द्र और अग्नि हमें रोगमुक्त करके दीर्घजीवन प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—अग्निहोत्र में डाले गये हविर्द्रव्यों से हम रोगमुक्त हो पाते हैं। सब अज्ञातरोग—राजयक्ष्मा व ग्राहि नामक रोग सूर्य व अग्नि के द्वारा दूर किये जाते हैं।

ऋषिः—**पूरणः, ब्रह्मा च, भृग्वङ्गिराश्च**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

निर्ऋति की गोद से बाहर

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय॥ ७॥

१. **यदि**=यदि **क्षितायुः**=यह रुग्ण पुरुष क्षीण आयुष्यवाला हो गया है। **यदि वा**=अथवा **परा इतः**=रोग में बहुत दूर पहुँच गया है। **यदि**=यदि **मृत्योः अन्तिकम्**=मृत्यु के समीप **नीतः एव**=पहुँच ही गया है तो भी **तम्**=उसको **निर्ऋतेः**=दुर्गति की **उपस्थात्**=गोद से **आहरामि**=छीन लाता हूँ। २. इसप्रकार **एनम्**=इसे रोगमुक्त करके **शतशारदाय**=पूरे सौ वर्ष के जीवन के लिए **अस्पार्षम्**=(स्पृ बलप्रीणनयोः) बलयुक्त करता हूँ।

भावार्थ—अग्निहोत्र के द्वारा तीव्रतम रोगों से भी मुक्ति होकर दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**पूरणः, ब्रह्मा च, भृग्वङ्गिराश्च**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सहस्राक्ष हवि

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्॥ ८॥

१. मैं **एनम्**=इस रुग्ण पुरुष को **हविषा**=हवि के द्वारा **आहार्षम्**=रोग से बाहर ले-आता हूँ, उस हवि के द्वारा जोकि **सहस्राक्षेण**=हज़ारों आँखोंवाली है—हज़ारों पुरुषों का ध्यान करती है। हज़ारों को ही रोगों से मुक्त करती है। **शतशारदेन**=यह हवि हमें शतवर्षपर्यन्त ले-चलती है। **शतायुषा**=इस हवि के द्वारा हमारा शतवर्ष का आयुष्य क्रियामय बना रहता है। (एति इति आयुः)। २. मैं इसको हवि के द्वारा रोग से बाहर लाता हूँ और इसप्रकार व्यवस्था करता हूँ कि **यथा**=जिससे **इमम्**=इस पुरुष को **इन्द्रः**=सूर्य **विश्वस्य**=सब **दुरितस्य**=दुर्गतियों के **पारम्**=पार **नयाति**=ले-जाता है। अग्नि और सूर्य मिलकर मनुष्य को सब रोगों से ऊपर उठा देते हैं।

भावार्थ—अग्निहोत्र में डाले गये हविर्द्रव्यों से हज़ारों पुरुषों का कल्याण होता है। ये उन्हें शतवर्ष का क्रियामय जीवन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**पूरणः, ब्रह्मा च, भृग्वङ्गिराश्च**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**शक्वरीगर्भाजगती**॥

'इन्द्र, अग्नि, सविता तथा बृहस्पति'

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम्॥ ९॥

१. हे मनुष्य! तू **वर्धमानः**=सब शक्तियों की दृष्टि से वृद्धि प्राप्त करता हुआ **शतं शरदः जीव**=सौ शरद् ऋतुओं तक जीनेवाला हो। **शतं हेमन्तान्**=सौ हेमन्त ऋतुओं तक जी **उ**=और **शतं वसन्तान्**=सौ वसन्त ऋतुओं तक जीनेवाला बन। २. **इन्द्रः अग्निः**=सूर्य और अग्नि तथा **सविता बृहस्पतिः**=उत्पादक वीर्यशक्ति तथा उत्कृष्ट ज्ञान—ये सब **ते**=तेरे लिए **शतम्**=शतवर्ष का जीवन दें। मैं **एनम्**=इस रुग्ण पुरुष को **शतायुषा**=शत वर्षों का जीवन देनेवाली **हविषा**=हवि के द्वारा **आहार्षम्**=रोग से बाहर ले-जाता हूँ। 'सूर्यकिरणों के सम्पर्क में रहना, अग्निहोत्र द्वारा वायु-शुद्धि, उत्पादक शक्ति का शरीर में रक्षण तथा ज्ञान' ये सब दीर्घजीवन की प्राप्ति के साधन हैं।

भावार्थ—'इन्द्र, अग्नि, सविता तथा बृहस्पति' हमें दीर्घ जीवन प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**पूरणः, ब्रह्मा च**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सर्वाङ्ग

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम्॥ १०॥

१. रोगी को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि **त्वा आहार्षम्**=तुझे रोग से बाहर ले आता हूँ और इसप्रकार **त्वा अविदम्**=तुझे प्राप्त करता हूँ। **पुनः आगाः**=तू फिर से हमें प्राप्त हो। **पुनः नवः**=फिर से नवजीवन प्राप्त करनेवाला बन। २. हे **सर्वाङ्ग**=सम्पूर्ण अंगोंवाले पुरुष! **ते**=तेरे लिए **सर्वं चक्षुः**=पूर्ण स्वस्थ दृष्टि, **च**=और **ते**=तेरे लिए **सर्वम् आयुः**=पूर्ण जीवन **अविदम्**=मैंने प्राप्त कराया है।

भावार्थ—हम नीरोग होकर ठीक दृष्टि को व स्वस्थ अधिकृत अंगों को प्राप्त करते हुए पूर्ण जीवन प्राप्त करें।

अग्निहोत्र के द्वारा रोगकृमियों का विनाश होकर हमें नीरोगता प्राप्त होती है। ये रोगकृमि अपने रमण के लिए हमारा क्षय करते हैं, अतः 'रक्षस्' कहलाते हैं। इनको नष्ट करनेवाला 'रक्षोहा' अगले छह मन्त्रों का ऋषि है—

ऋषिः—**रक्षोहाः**॥ देवता—**गर्भदोषनाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गर्भस्थ व योनिस्थ दोषों का निराकरण

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये॥ ११॥

१. **अग्निः**=यह ज्ञानाग्नि से दीप्त कुशल वैद्य **रक्षोहा**=रोगकृमियों का नाश करनेवाला है। यह **ब्रह्मणा**=ज्ञान से **संविदानः**=खूब ज्ञानी बनता हुआ **इतः**=यहाँ से—तेरे शरीर से **बधताम्**=रोग को रोककर दूर करनेवाला हो। **यः अमीवा**=जो रोग **ते**=तेरे **गर्भम् आशये**=गर्भस्थान में निवास करता है, उस रोग को यह वैद्य दूर करे। २. **यः**=जो **दुर्णामा**=अशुभ नामवाला अर्शस्=(बवासीर) नामक रोग **ते**=तेरी **योनिम्**=रेतस् के आधानभूत स्थान को अपना आधार बनाता है, उसे भी

यह वैद्य दूर करे।

भावार्थ—कुशल वैद्य गर्भस्थान व योनि में होनेवाले दोषों को दूर करे।

ऋषिः—**रक्षोहाः**॥ देवता—**गर्भदोषनाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

क्रव्याद (क्रिमि) संहार

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये।

अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत्॥ १२॥

१. **यः**=जो **अमीवा**=रोग **ते**=तेरे **गर्भम्**=गर्भस्थान में **आशये**=निवास करता है और जो **दुर्णामा**=अशुभ नामवाला अर्शस् नामक रोग **योनिम्**=रेतस् के आधान स्थान में निवास करता है, **तम्**=उसको **अग्निः**=यह कुशल, ज्ञानी वैद्य **निः अनीनशत्**=बाहर करके नष्ट कर दे। २. यह ज्ञानी वैद्य **ब्रह्मणा सह**=ज्ञान के साथ, अर्थात् रोग को अच्छी प्रकार समझकर नष्ट करनेवाला हो। **क्रव्यादम्**=इस मांस खानेवाले (मांसानि शनम् सा०) क्रिमि को यह वैद्य नष्ट कर दे। इन क्रव्याद क्रिमियों के नाश से ही रोग का उन्मूलन होता है।

भावार्थ—ज्ञानी वैद्य मांस को खा जानेवाले क्रिमियों को नष्ट करके गर्भगत व योनिगत विकारों को नष्ट करता है।

ऋषिः—**रक्षोहाः**॥ देवता—**गर्भदोषनाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गर्भाधान से जातकर्म तक

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम्।

जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि॥ १३॥

१. गर्भाधान काल में **पतयन्तम्**=गर्भ में जाते हुए **ते**=तेरे वीर्यांश को **यः**=जो **हन्ति**=नष्ट करता है, अब **निषत्स्नुम्**=गर्भ में निषण्ण होते हुए जीव को जो नष्ट करता है, **यः**=जो तीन-चार मास बाद **सरीसृपम्**=सर्पणशील उस गर्भस्थ बालक को नष्ट करता है, **तम्**=उस रोगकृमि को **इतः**=यहाँ से **नाशयामसि**=हम नष्ट करते हैं। २. **यः**=जो रोग **ते**=तेरे **जातम्**=उत्पन्न हुए-हुए बालक को **जिघांसति**=नष्ट करना चाहता है, उस रोग को भी हम नष्ट करते हैं।

भावार्थ—गर्भस्थ बालक के जीवन को प्रारम्भ से अन्त तक रोगों से बचाने का प्रयत्न करते हैं।

ऋषिः—**रक्षोहाः**॥ देवता—**गर्भदोषनाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पति-पत्नी के शरीर-दोषों का निराकरण

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये।

योनिं यो अन्तरारेढि तमितो नाशयामसि॥ १४॥

१. हे नारि! **यः**=जो **ते**=तेरी **विहरति**=जाँघों में विहार करता है, **तम्**=उस रोगकृमि को हम **इतः**=यहाँ से **नाशयामसि**=नष्ट करते हैं। २. जो भी रोग **दम्पती**=पति-पत्नी के **अन्तरा**=देह के मध्य में गुप्तरूप से रहता है, उसको भी नष्ट करते हैं। ३. और **यः**=जो तेरी **योनिम् अन्तः**=योनि में प्रविष्ट होकर **आरेढि**=आहित वीर्य को ही चाट जाता है, उस कृमि को भी हम विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—हम पति-पत्नी के शरीर-दोषों को दूर करते हैं, जिससे सन्तान नीरोग हों।

ऋषिः—**रक्षोहाः** ॥ देवता—**गर्भदोषनाशनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

बालक की गर्भ-स्थिति में संयम का महत्त्व

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि॥ १५॥

१. हे नारि! **यः**=जो **भ्राता**=भरण करनेवाल **पतिः भूत्वा**=पति बनकर **त्वा**=गर्भस्थ बालकवाली तुझे **निपद्यते**=भोग के लिए प्राप्त होता है अथवा **जारः**=तेरी शक्तियों को जीर्ण करनेवाला **भूत्वा**=होकर तुझे प्राप्त होता है और इसप्रकार **यः**=जो **ते**=तेरी **प्रजाम्**=गर्भस्थ सन्तति को **जिघांसति**=मारने की कामनावाला होता है, **तम्**=उसको हम **इतः**=यहाँ से **नाशायामसि**=दूर करते हैं, अर्थात् ऐसी व्यवस्था करते हैं कि तुझ गर्भिणि के साथ भोगवृत्ति से कोई भी बर्ताव करनेवाला न हो। २. गर्भिणि स्त्री के पति का यह कर्त्तव्य है कि बच्चे के गर्भस्थ होने के समय वह 'भ्राता' ही बना रहे। उस समय भोग द्वारा स्त्री की शक्तियों को जीर्ण करनेवाला 'जार' न बने।

भावार्थ—बालक के गर्भस्थ होने पर पति 'भ्राता' के समान वर्ते। उस समय पति के रूप में वर्तना 'जारवृत्ति' है।

ऋषिः—**रक्षोहाः** ॥ देवता—**गर्भदोषनाशनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अचेतनावस्था में भोग का निषेध

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि॥ १६॥

१. **यः**=जो **त्वा**=तुझे **स्वप्नेन तमसा**=स्वप्नावस्था में ले-जानेवाले तमोगुणी पदार्थों के प्रयोग से **मोहयित्वा**=मूढ़ व अचेतन बनाकर **निपद्यते**=भोग के लिए प्राप्त होता है और इसप्रकार **यः**=जो **ते**=तेरी **प्रजाम्**=प्रजा को—गर्भस्थ सन्तान को **जिघांसति**=नष्ट करना चाहता है, **तम्**=उसको **इतः**=यहाँ से **नाशयामसि**=हम दूर करते हैं। २. गर्भिणी को अचेनावस्था में ले-जाकर भोगप्रवृत्त होना गर्भस्थ बालक के उन्माद या विनाश का कारण हो जाता है, अतः वह सर्वथा हेय है।

भावार्थ—पत्नी को अचेनावस्था में उपभुक्त करना गर्भस्थ बालक के लिए अत्यन्त घातक होता है।

शरीर के अंग-प्रत्यंग से दोषों का उद्बर्हण करनेवाला 'विवृहा' १७ से २३ तक मन्त्रों का ऋषि है। ज्ञानी होने से यह 'काश्यप' है—

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शीर्षण्य दोष का निराकरण

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वया वि वृहामि ते॥ १७॥

१. हे रुग्ण पुरुष! मैं **'विवृहा काश्यप' ते**=तेरी **अक्षीभ्याम्**=आँखों से **नासिकाभ्याम्**=नासिका-छिद्रों से, **कर्णाभ्याम्**=कानों से **छुबुकादधि**=ठोडी से **यक्ष्मम्**=रोग को **विवृहामि**=उखाड़ फेंकता हूँ—इन अंगों से रोग का समूलोन्मूलन किये देता हूँ। २. **शीर्षण्यम्**=सिर में बैठे रोग को दूर करता हूँ। **मस्तिष्कात्**=शिर के अन्तःस्थित मांस विशेष से तथा **जिह्वायाः**=जिह्वा से **ते**=तेरे इस रोग को विनष्ट करता हूँ। इसप्रकार तेरे शिरोभाग को निर्दोष बनाता हूँ।

भावार्थ—ज्ञानी वैद्य सिर के सब रोगों का निराकरण करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दोषण्य दोष का निराकरण

ग्रीवाभ्य॑स्त उ॒ष्णिहा॑भ्यः॒ कीक॑साभ्यो अनू॒क्या॑त्।

यक्ष्मं॑ दोष॒ण्य॑ १मंसा॑भ्यां बा॒हुभ्यां॒ वि वृ॑हामि ते॥ १८॥

१. हे व्याधिगृहीत पुरुष! मैं **ते**=तेरी **ग्रीवाभ्यः**=गले में विद्यमान नाड़ियों से **यक्ष्मम्**=रोग को **विवृहामि**=दूर करता हूँ। **उष्णिहाभ्यः**=ऊपर की ओर जानेवाली धमनियों से **कीकसाभ्यः**=अस्थियों से **अनूक्यात्**=अस्थिसंधियों से भी रोग को दूर करता हूँ। २. **दोषण्यम्**=भुजाओं में होनेवाले रोग को दूर करता हूँ और **अंसाभ्याम्**=कन्धों से तथा **बाहुभ्याम्**=भुजाओं के अधोभागरूप हाथों से **ते**=तेरे रोग को दूर करता हूँ।

भावार्थ—ज्ञानी वैद्य भुजाओं के सब रोगों को दूर कर देता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्**॥

हृदयादि दोष-दूरीकरण

हृद॑यात्ते॒ परि॑ क्लो॒म्नो हली॑क्ष्णात्पा॒र्श्वाभ्या॑म्।

यक्ष्मं॒ मत॑स्नाभ्यां प्ली॒ह्नो य॒क्नस्ते॒ वि वृ॑हामसि॥ १९॥

१. हे रुग्ण पुरुष! **ते**=तेरे **हृदयात्**=हृदय-पुण्डरीक से, **परिक्लोम्नः**=हृदय-समीपस्थ फेफड़े से **हलीक्ष्णात्**=पित्ताशय से, **पार्श्वाभ्याम्**=दोनों कोखों से—पार्श्वावयवों से **यक्ष्मम्**=रोग को **विवृहामसि**=पृथक् करते हैं। २. **ते**=तेरे **मतस्नाभ्याम्**=गुर्दों से **प्लीह्नः**=तिल्ली से और **यक्नः**=जिगर से रोग को दूर करते हैं।

भावार्थ—ज्ञानी वैद्य हृदय आदि प्रदेशों से रोग को दूर करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**चतुष्पदाभुरिगुष्णिक्**॥

आन्त्र आदि से रोग का निराकरण

आ॒न्त्रेभ्य॑स्ते॒ गुदा॑भ्यो वनि॒ष्ठोरु॒दरा॒दधि॑।

यक्ष्मं॑ कु॒क्षिभ्यां॑ प्ला॒शेर्नाभ्या॒ वि वृ॑हामि ते॥ २०॥

१. **ते**=तेरी **आन्त्रेभ्यः**=आँतों से **गुदाभ्यः**=गुदा से—मलमूत्रप्रवहण मार्गों से **वनिष्ठोः**=स्थविरान्तों से (मलस्थान से—मलाधिष्ठान से) **उदरात् अधि**=सर्वाधारभूत जठर से **यक्ष्मम्**=रोग को **विवृहामि**=पृथक् करता हूँ। २. **कुक्षिभ्याम्**=दक्षिण व उत्तर उदरभागों से (दाएँ-बाएँ पासे से) **प्लाशैः**=बहुछिद्र मलपात्र से (अन्दर की थैली से) और **नाभ्या**=नाभि से **ते**=तेरे रोग को निकाल फेंकता हूँ।

भावार्थ—आन्त्र आदि प्रदेशों से रोग-बीजों को दूर किया जाए।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्विराड्बृहती**॥

'उरु ' आदि प्रदेशों की नीरोगता

ऊ॒रुभ्यां॑ ते अष्ठी॒वद्भ्यां॒ पार्ष्णि॑भ्यां॒ प्रप॑दाभ्याम्।

यक्ष्मं॑ भस॒द्यं॑ १श्रोणि॑भ्यां॒ भास॑दं॒ भंस॑सो॒ वि वृ॑हामि ते॥ २१॥

१. हे रोगार्त! **ते**=तेरी **ऊरुभ्याम्**=जाँघों से **अष्ठीवद्भ्याम्**=घुटनों से **पार्ष्णिभ्याम्**=पाँवों के अधरभाग, अर्थात् एड़ियों से और **प्रपदाभ्याम्**=पाँवों के अग्रभाग से **यक्ष्मम्**=रोग को **विवृहामि**=पृथक्

करता हूँ। २. **भसद्यम्**=कटिभाग में होनेवाले रोग को दूर करता हूँ। **श्रोणिभ्याम्**=कटि के अधरभाग से रोग को दूर करता हूँ। इसीप्रकार **ते**=तेरे **भासदम्**=गुह्यप्रदेश में होनेवाले रोग को **भंससः**=(भस दीप्तौ) भासमान गुह्यस्थान से पृथक् करता हूँ।

भावार्थ—जाँघों आदि प्रदेशों में होनेवाले रोगों को नष्ट किया जाए।

सूचना—'भंससः' शब्द गुह्यप्रदेश की शुद्धता पर बल दे रहा है। इन प्रदेशों को शुद्ध रखना नितान्त आवश्यक है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**उष्णिग्गर्भानिचृदनुष्टुप्**॥

अस्थ्यादि दोष-विध्वंस

अ॒स्थिभ्य॑स्ते म॒ज्जभ्यः॒ स्नाव॑भ्यो ध॒मनि॑भ्यः।
यक्ष्मं॑ पा॒णिभ्या॑म॒ङ्गुलि॑भ्यो न॒खेभ्यो॒ वि वृ॑हामि ते॥ २२॥

१. **ते**=तेरी **अस्थिभ्यः**=हड्डियों से **मज्जभ्यः**=मज्जा से **यक्ष्मम्**=रोग को **विवृहामि**=दूर करता हूँ। **स्नावभ्यः**=सूक्ष्म सिराओं से तथा **धमनिभ्यः**=स्थूल सिराओं से तेरे रोग को दूर करता हूँ। २. **ते**=तेरे **पाणिभ्याम्**=हाथों से, **अंगुलिभ्यः**=अंगुलियों से तथा **नखेभ्यः**=नखों से रोग को दूर करता हूँ।

भावार्थ—अस्थि आदि में आ गये रोग को दूर किया जाए।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**यक्ष्मनाशनम्**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

प्रत्यंग रोग-विनाश

अङ्गे॑अङ्गे॒ लो॒म्नि॑लोम्नि॒ यस्ते॒ पर्व॑णिपर्वणि।
यक्ष्मं॑ त्वच॒स्यं॑ ते व॒यं क॒श्यप॑स्य वीब॒र्हेण॒ विष्व॑ञ्चं॒ वि वृ॑हामसि॥ २३॥

१. हे रुग्ण! **ते**=तेरे **अङ्गे अङ्गे**=सब अवयवों में, **लोम्नि लोम्नि**=सब रोमकूपों में **पर्वणि पर्वणि**=सब पर्वों में—सन्धियों में होनेवाले **यक्ष्मम्**=रोग को **विवृहामसि**=पृथक् करते हैं। २. **वयम्**=हम **ते**=तेरे **त्वचस्यम्**=त्वचा में होनेवाले **विष्वञ्चम्**=चक्षु आदि सब अवयवों में व्याप्त होनेवाले रोग को **कश्यपस्य**=ज्ञानी पुरुष के **वीबर्हेण**=रोगघातक प्रयोग से नष्ट करते हैं।

भावार्थ—ज्ञानी वैद्य रोग के मूलकारण को समझकर अंग-प्रत्यंग से रोगों को विनष्ट करता है।

रोग-विनाश द्वारा सर्वाङ्ग स्वस्थ होकर यह 'प्रचेता' प्रकृष्ट ज्ञानी बनता है और पाप को अपने से दूर भगाता हुआ कहता है—

ऋषिः—**प्रचेता**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पाप-संकल्प को दूर भगाना

अपे॑हि मनसस्प॒तेऽप॑ क्राम प॒रश्च॑र। प॒रो निर्ऋ॑त्या॒ आ च॑क्ष्व ब॒हुधा जीव॑तो॒ मनः॑॥ २४॥

१. हे **मनसस्पते**=मन का पति बन जानेवाले पाप संकल्प! तू **अप इहि**=यहाँ से दूर भाग जा। **अपक्राम**=तेरा पादविक्षेप हमसे सुदूर प्रदेशों में ही हो। **परःचर**=तू दूर जंगलों में भटकनेवाला हो। २. **निर्ऋत्यै**=इस निर्ऋति—दुर्गति—दुराचार के लिए **परः**=हमसे दूर होकर **आचक्ष्व**=कथन कर, अर्थात् तू हमें पाप के लिए प्रेरित मत कर। **जीवतः मनः**=प्राणशक्ति को धारण करनेवाला मेरा मन **बहुधा**=बहुत बातों का धारण करनेवाला है। घर के कितने ही कार्यों—गौ आदि की सेवा व वेदवाणी के अध्ययन में मेरा मन व्यापृत है, अतः हे पाप संकल्प! तू मुझसे दूर जा—

मुझे अवकाश नहीं कि तेरी बातों को सुनूँ।

भावार्थ—हम मन पर प्रभुत्व पा लेनेवाले पाप संकल्प को दूर भगाएँ। धारणात्मक कार्यों में मन को लगाये रक्खें, जिससे इसमें पाप-संकल्प उत्पन्न ही न हों।

पाप-संकल्पों को पराजित करनेवाला यह वीर 'कलि' कहलाता है (कलि=A hew)। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

अथ नवमोऽनुवाकः

९७. [सप्तनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**कलिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

स्तवन, सोम-रक्षण, प्रभु-प्राप्ति

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते॥ १॥

१. **वयम्**=हम **एनम्**=इस **वज्रिणम्**=वज्रहस्त प्रभु को **इह**=इस जीवन में **इदा**=अब और **ह्यः**=भूतकाल में भी (गत दिवस में भी) **अपीपेम**=अप्यायित करते हैं। स्तोत्रों के द्वारा हम प्रभु की भावना को अपने अन्दर बढ़ाते हैं। २. **तस्मा उ**=उस प्रभु-प्राप्ति के लिए **अद्य**=आज **समना**=संग्राम के द्वारा—वासनाओं को संग्राम में पराजित करने के द्वारा **सुतं भरा**=सोम का सम्भरण करते हैं। वे प्रभु **नूनम्**=निश्चय से **श्रुते**=शास्त्रश्रवण होने पर **भूषत**=प्राप्त होते हैं (आभवतु=आगच्छतु)।

भावार्थ—हम सदा प्रभु का स्तवन करें। स्तुति द्वारा वासनाओं को पराजित करके सोम का रक्षण करें। सोम-रक्षण द्वारा तीव्र बुद्धि होकर प्रभु-दर्शन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**कलिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

'वृक व उरामथि' के जीवन में परिवर्तन

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया॥ २॥

१. **वारणः**=सबके मार्गों को रोकनेवाला **वृकःचित्**=स्तेन (चोर) भी तथा **उरामथिः**=(उर to go) मार्ग में जानेवालों का हिंसक (Highway robber) डाकू भी **अस्य वयुनेषु**=इस प्रभु का प्रज्ञान होने पर, कहीं अकस्मात् सत्संग में प्रभु का उपदेश सुनने पर **आभूषति**=अनुकूल को प्राप्त करता है, अर्थात् प्रतिकूल कर्मों से निवृत्त हो जाता है। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सः**=वे आप **इमं नः**=इस हमारे **स्तोमम्**=स्तवन को **जुजुषाणः**=प्रीतिपूर्वक ग्रहण करते हुए **चित्रया धिया**=चेतना देनेवाली बुद्धि के साथ **प्र आगहि**=प्रकर्षेण प्राप्त होइए।

भावार्थ—प्रभु-विषयक उपदेश चोरों व डाकुओं के जीवन में भी परिवर्तन लानेवाला होता है। प्रभु हमारे स्तोम से प्रसन्न हों और हमारे लिए चेतनादायिनी बुद्धि दें।

ऋषिः—**कलिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

'सर्वाणि बलकर्माणि इन्द्रस्य'

कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा॥ ३॥

१. **कत् उ नु**=कौन-सा निश्चय से **पौंस्यम्**=पौरुष का काम—वृत्र आदि का विनाशरूप

कर्म **अस्य इन्द्रस्य**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु का **अकृतमस्ति**=न किया हुआ है? अर्थात् वृत्र वध आदि सब पौरुष के काम प्रभु द्वारा ही तो किये जाते हैं। २. **केन उ नु श्रोमतेन**=और निश्चय से किस श्रवणीय पौरुष के कार्य से **न शुश्रवे**=वे प्रभु नहीं सुने जाते? **जनुषःपरि**=जन्म से लेकर ही, अर्थात् जैसे ही प्रभु का हृदयों में कुछ प्रादुर्भाव होता है, तभी वे प्रभु **वृत्रहा**=वासना का विनाश करनेवाले हैं।

भावार्थ—वासना-विनाश (वृत्र-वध) आदि सब शक्तिशाली कर्मों को करनेवाले प्रभु ही हैं। वे प्रभु हमारे हृदयों में प्रादुर्भूत होते ही सब शत्रुओं का विनाश कर देते हैं।

प्रभु की उपासना के द्वारा वासना-विनाश से शान्ति को अपने साथ जोड़नेवाला 'शंयु' अगले सूक्त का ऋषि है—

९८. [अष्टनवतितमं सूक्तम्]

'प्रभु-आराधन' के लाभ

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥ १॥

१. **कारवः**=कुशलता से कार्यों को करनेवाले स्तोता लोग **वाजस्य सातौ**=शक्ति प्राप्ति के निमित्त **त्वाम् इत् हि**=आपको ही **हवामहे**=पुकारते हैं। आप ही सब शक्तियों के देनेवाले हैं। २. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **वृत्रेषु**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं के विनाश के निमित्त **सत्पतिम्**=सज्जनों के रक्षक **त्वाम्**=आपको पुकारते हैं तथा **अर्वतः**=अश्व-सम्बन्धिनी **काष्ठासु** (काष्ठा-race-cower)=पलायन भूमियों में **नरः**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले मनुष्य **त्वाम्**=आपको पुकारते हैं। इन्द्रियाँ जब अपने मार्गों पर गति करती हैं तब वे प्रभु का स्मरण करते हैं, जिससे ये इन्द्रियाँ मार्गभ्रष्ट न हों।

भावार्थ—प्रभु का आराधन (क) हमें शक्ति देता है (ख) वासनाओं का विनाश करता है तथा (ग) इन्द्रियों को मार्गभ्रष्ट होने से बचाता है।

ऋषिः—**कलिः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

तेजस्विता की प्राप्ति

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्य॒मिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे॥ २॥

१. हे **चित्र**=चयनीय—पूजनीय **वज्रहस्त**=दुष्टों को दण्ड देने के लिए हाथ में वज्र लिये हुए **अद्रिवः**=शत्रुओं से न विदीर्ण किये जानेवाले प्रभो! **स्तवानः**=स्तुति किये जाते हुए **सः त्वम्**=वे आप **नः**=हमारे लिए **धृष्णुया**=शत्रुओं के धर्षण के हेतु से **महः**=तेजस्विता **संकिर**=दीजिए। आपसे तेजस्विता प्राप्त करके हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं का धर्षण करनेवाले बनें। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **रथ्यम्**=शरीर-रथ में उत्तमता से कार्य करनेवाली **गाम्**=ज्ञानेन्द्रियों व **अश्वम्**=कर्मेन्द्रियों को (संकिर) दीजिए और हे प्रभो! **सत्रा**=सदा **जिग्युषे**=जैसे एक विजयशील पुरुष के लिए इसी प्रकार हमें **वाजम्**=शक्ति दीजिए। एक इन्द्रियों को जीतनेवाला पुरुष जैसे शक्ति सम्पन्न बनता है, उसी प्रकार हम भी शक्ति प्राप्त करें।

भावार्थ—स्तुति किये जाते हुए प्रभु हमारे लिए शक्ति दें। इस शक्ति के द्वारा ही तो हम शत्रुओं को जीत पाएँगे।

शत्रुओं को जीतकर यह पवित्र जीवनवाला पुरुष 'मेध्य'-पूर्ण पवित्र प्रभु की ओर चलता है, अतः इसका नाम 'मेध्यातिथि' होता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

९९. [नवनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

चारों आश्रमों में प्रभु-स्तवन

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **पूर्वपीतये**=जीवन के पूर्वभाग में सोम-रक्षण के लिए **त्वा अभि**=आपका लक्ष्य करके ही **समस्वरन्**=स्तुति-शब्दों का ही उच्चारण करते हैं—आपका स्तवन ही वासनाओं के विनाश के द्वारा हमें सोम-रक्षण के योग्य बनाता है। २. **आयवः**=संसार के व्यवहारों में चलनेवाले गृहस्थ पुरुष भी **स्तोमेभिः**=स्तुति-समूहों के द्वारा आपको ही स्तुत करते हैं। आपका स्तवन ही उन्हें भोगविलास में फँसने से बचाकर आगे बढ़ानेवाला होता है। ३. गृहस्थ से ऊपर उठकर **समीचीनासः**=प्रभु के साथ मिलकर गति करनेवाले (सम् अञ्च) प्रभु-स्मरणपूर्वक सब कार्यों को करनेवाले **ऋभवः**=ज्ञानदीप्त व्यक्ति आपके ही (समस्वरन्=) स्तुतिशब्दों का उच्चारण करते हैं और ४. अन्त में **रुद्राः**= (रुत् र) ज्ञानोपदेश करनेवाले ये परिव्राजक लोग भी **पूर्व्यम्**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम आपको ही **गृणन्त**=स्तुत करते हैं। आपका स्तवन ही उन्हें आसक्ति से ऊपर उठाता है।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण ही ब्रह्मचारी को सोम-रक्षण के योग्य बनाता है। प्रभु-स्मरण से ही गृहस्थ भोगप्रसक्त नहीं होता। यह प्रभु-स्मरण ही वनस्थ को स्वाध्याय-प्रवृत्त करके दीप्त जीवनवाला बनाता है। यह स्मरण ही संन्यस्त को सब कमियों से दूर रहने में समर्थ करता है।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

वृष्ण्यं शवः

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा॥ २॥

१. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **सुतस्य अस्य**=उत्पन्न हुए-हुए इस सोम के **विष्णवि मदे**=शरीर में व्याप्त मद (उल्लास) के होने पर **इत्**=ही **वृष्ण्यं शवः**=शक्ति का सेचन करनेवाले—अंग-प्रत्यंग को सशक्त बनानेवाले बल को **वावृधे**=अपने अन्दर बढ़ाता है। २. **आयवः**=गतिशील पुरुष **अस्य**=इस सोम की **तम्**=उस **महिमानम्**=महिमा को **पूर्वथा**=पहले की भाँति **अनुष्टुवन्ति**=स्तुत करते हैं। सोम का महत्त्व वेद में स्थान-स्थान पर उद्गीत हुआ है, सुरक्षित हुआ-हुआ सोम ही उत्कृष्ट जीवन का आधार बनता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम शरीर के सब अंगों को सशक्त बनाता है। सोम की महिमा सदा वेदवाणियों से गाई जाती रही है।

यह सोमी पुरुष उन्नति-पथ पर चलता हुआ अन्य मनुष्यों के साथ मिलकर चलता है, अतः यह 'नृमेध' कहलाता है (मेध संगमे)। इसका जीवन स्वार्थमय नहीं होता। यह 'नृमेध' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

१००. [शततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

महान् कामनाएँ

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे। उदेव यन्त उदभिः॥ १॥

१. हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा उपासनीय **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अधा हि**=अब निश्चय से **त्वा उप**=आपके समीप ही **महः कामान्**=इन महान् कामनाओं को **ससृज्महे**=अपने में उत्पन्न करवाते हैं। प्रभु की उपासना—उस महान् प्रभु का सम्पर्क हममें महान् ही कामनाओं को जन्म देता है। २. **इव**=जैसे **उदा यन्तः**=पानी में से जाते हुए पुरुष **उदभिः**=जलों से अपने को संसृष्ट करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—जैसे नदी से जानेवाले पुरुष जलों से संसृष्ट होते हैं, उसी प्रकार महान् प्रभु के सम्पर्कवाले पुरुष महान् कामनाओं से संसृष्ट हो पाते हैं। इनके अन्दर तुच्छ कामनाएँ उत्पन्न ही नहीं होतीं।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

स्तवन से प्रभु-प्रकाश की प्राप्ति

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि। वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे॥ २॥

१. **न**=जैसे **यव्याभिः**=यवों के क्षेत्रों के उद्देश्य से **वाः**=जलों को **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं। जलों के द्वारा ही यवों ने बढ़ना होता है। एवं, हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **यव्याभिः**= (यु मिश्रणामिश्रणयोः) बुराइयों को पृथक् करने के उद्देश्य से **ब्रह्माणि**=हमारी स्तुतिवाणियाँ **त्वा वर्धन्ति**=आपको बढ़ाती हैं। आपका स्तवन ही हमें बुराइयों से बचाता है। २. हे **अद्रिवः**=आदरणीय व वज्रहस्त प्रभो! **वावृध्वांसं चित्**=सब दृष्टिकोणों से बढ़े हुए भी आपको **दिवे-दिवे**=प्रतिदिन हमारी स्तुति-वाणियाँ बढ़ती हैं। इन स्तुति-वाणियों के द्वारा ही हम आपके प्रकाश को अपने अन्दर अधिक और अधिक बढ़ा पाते हैं।

भावार्थ—स्तवन के द्वारा प्रभु के प्रकाश का अपने अन्दर वर्धन करते हुए हम बुराइयों को अपने जीवन से दूर करें।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'इन्द्रवाहा-वचोयुजा'

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे। इन्द्रवाहा वचोयुजा॥ ३॥

१. **इषिरस्य**=उस सर्वप्रेरक—सबको गति देनेवाले प्रभु की **गाथया**=गुणगाथा के साथ **हरी**=इन्द्रियाश्वों को **उरौ रथे**=इस विशाल शरीर रथ में **युञ्जन्ति**=जोतते हैं। उस शरीर रथ में इन्हें जोतते हैं, जोकि **उरुयुगे**=विशाल युगवाला है। मन ही युग है। यह आत्मा व इन्द्रियों को जोड़नेवाला है। २. ये इन्द्रियाश्व **इन्द्रवाहा**=जितेन्द्रिय पुरुष को लक्ष्य की ओर वहन करनेवाले हैं—इस जितेन्द्रिय पुरुष को ये प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं। **वचोयुजा**=वे इन्द्रियाश्व वेदवाणी के अनुसार कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रेरक प्रभु का गुणगान करनेवाला व्यक्ति इन्द्रियाश्वों को शरीर-रथ में वेदवाणी के निर्देश के अनुसार युक्त करके प्रभुरूप लक्ष्य की ओर बढ़ता है।

यह प्रभुरूप लक्ष्य की ओर बढ़नेवाला व्यक्ति 'मेध्यातिथि' बनता है। प्रभु को प्राप्त करके पवित्र प्रभु (मेध्य) का अतिथि होता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

१०१. [एकोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'दूत होता व विश्ववेदस्' अग्नि का वरण

अ॒ग्निं दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्ववे॑दसम्। अ॒स्य य॒ज्ञस्य॑ सु॒क्रतु॑म्॥ १॥

१. उपासक कहता है कि हम तो **अग्निम्**=उस सब उन्नतियों के साधक प्रभु का ही **वृणीमहे**=वरण करते हैं। वे प्रभु **दूतम्** (दु उपतापे)=हम भक्तों को तपस्या की अग्नि में तपाकर परिपक्व जीवनवाला करते हैं। वह तपस्या की अग्नि ही हमारे जीवनों को शुद्ध बनाती है। २. **होतारम्**=वे प्रभु हमारे लिए उन्नति के साधनभूत सब पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। वे प्रभुही तो **विश्ववेदसम्**=सम्पूर्ण धनों के स्वामी हैं। इन धनों के द्वारा **अस्य यज्ञस्य**=हमारे इस जीवन यज्ञ के **सुक्रतुम्**=उत्तम कर्त्ता हैं। प्रभु-कृपा से ही हमारा जीवन-यज्ञ चलता है। प्रभु-कृपा के अभाव में यह जीवन यज्ञमय नहीं रहता।

भावार्थ—प्रभु 'अग्नि-दूत-होता व विश्ववेदस्' हैं। वे हमारे जीवन-यज्ञ के सुक्रतु हैं। हम प्रभु का ही वरण करते हैं। प्रभु-वरण से आवश्यक प्राकृतिक भोग तो प्राप्त हो ही जाते हैं साथ ही हम प्रकृति में फँसने से होनेवाली दुर्गति से बच जाते हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'पुरु प्रिय' प्रभु का आह्वान

अ॒ग्निम॑ग्निं॒ हवी॑मभि॒ः सदा॑ हवन्त वि॒श्पति॑म्। ह॒व्यवा॑हं पुरुप्रि॒यम्॥ २॥

१. जो भी संसार में समझदारी से चलते हैं वे **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु को और **अग्निम्**=उस प्रभु को ही **हवीमभिः**=आह्वान के साधनभूत मन्त्रों से **सदा**=हमेशा **हवन्त**=पुकारते हैं। प्राकृति का चुनाव करने से मनुष्य घाटे में ही रहता है। ठीक-ठीक बात तो यह है कि कुछ अपने ज्ञान को भी खो बैठता है। २. हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि प्रभु ही **विश्पतिम्**=सब प्रजाओं के पति—पालक व रक्षक हैं और जब प्रभु रक्षक हैं तब हमें भय किस बात का? वे प्रभु **हव्यवाहम्**=सब हव्य—पवित्र यज्ञिय पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं, वे **पुरुप्रियम्**=पालक व पूरक हैं और अतएव प्रिय हैं। प्रभु को प्राप्त करने पर उपासक को एक ऐसा अवर्णनीय आनन्द प्राप्त होता है कि और सब-कुछ उसे हेय-सा प्रतीत होता है।

भावार्थ—प्रभु 'विश्पति, हव्यवाह व पुरुप्रिय' हैं। हम उस अग्नि नामक प्रभु को पुकारते हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

देवों का आह्वान

अग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह जज्ञा॒नो वृ॒क्तब॑र्हिषे। असि॒ होता॑ न॒ ईड्यः॑ ॥ ३॥

१. हे **अग्ने**=हमारी सम्पूर्ण अग्रगति के साधक प्रभो! **इह**=इस जीवन में **वृक्तबर्हिषे**=जिसने अपने हृदय को वासनाओं से वर्जित (वृक्त) किया है, उस पवित्र हृदय पुरुष के लिए **देवान्**=सब दिव्यगुणों को **आवह**=प्राप्त कराइए। हे प्रभो! **जज्ञानः**=प्रादुर्भूत होते हुए आप हमारे जीवनों में दिव्यगुणों को उत्पन्न करते ही हैं। 'महादेव' के आने पर क्या 'देव' न आएँगे। २. हे प्रभो! आप ही **होता**=सब दिव्यगुणों को पुकारनेवाले हैं अथवा सब अच्छाइयों को आप ही देनेवाले

असि=हैं, अतः आप ही **नः**=हमारे लिए **ईड्यः**=स्तुति के योग्य हैं। आपका यह स्तवन हमारे सामने भी उन दिव्यगुणों की प्राप्तिरूप लक्ष्य को उपस्थित करता है।

भावार्थ—हे प्रभो! हमारे हृदयों में प्रादुर्भूत होते हुए आप सब दिव्यगुणों को प्रादुर्भूत करते हैं। आप ही हमारे लिए सब अच्छाइयों को प्राप्त कराते हैं। आप ही स्तुति के योग्य हैं।

यह प्रभु का स्तोता किसी के साथ द्वेष न करता हुआ सभी का मित्र बनता है। यह 'विश्वामित्र' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

१०२. [द्व्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

'ईडेन्य-नमस्य' प्रभु

ई॒डेन्यो॑ नम॒स्य॑स्ति॒रस्तमां॑सि दर्श॒तः। सम॒ग्निरि॑ध्यते॒ वृषा॑॥ १॥

१. ये प्रभु **ईडेन्यः**=स्तुति के योग्य, **नमस्यः**=नमस्कार के योग्य हैं। **तमांसि तिरः**=सब अन्धकारों को तिरोभूत करनेवाले हैं और **दर्शतः**=दर्शनीय हैं। हम प्रभु का स्तवन करते हैं तो हमारे अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं। ज्ञान के प्रकाश में हमें प्रभु का दर्शन होता है। २. ये **वृषा**=शक्तिशाली **अग्निः**=हमें उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाले प्रभु **समिध्यते**=स्तवन व नमन के द्वारा हृदयों में समिद्ध किये जाते हैं। प्रभु का दर्शन उन्हीं को होता है जोकि शक्ति का सम्पादन करें (वृषा) तथा उन्नति-पथ पर आगे बढ़ने का प्रयत्न करें (अग्नि)।

भावार्थ—स्तवन व नमन से प्रीणित प्रभु हमारे अज्ञानान्धकार को विनष्ट करते हैं। प्रभु हमें उन्नति पथ पर ले-चलते हैं और शक्तिशाली बनाते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

'हविष्मान्' उपासक

वृषो॑ अ॒ग्निः समि॑ध्य॒तेऽश्वो॒ न दे॑व॒वाह॑नः। तं ह॒विष्म॑न्त ईडते॥ २॥

१. **वृषा**=शक्तिशाली **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **उ**=ही **समिध्यते**=उपासकों से हृदयों में समिद्ध किये जाते हैं। वे प्रभु **अश्वः न**=अश्व के समान हैं। जैसे एक घोड़ा अपने सवार को लक्ष्यस्थान पर पहुँचाता है, उसी प्रकार प्रभु अपने उपासकों को लक्ष्यस्थान पर पहुँचाते हैं। **देववाहनः**=देवों से ये प्रभु धारण किये जाते हैं। देववृत्ति के पुरुष ही हृदयों में प्रभु का दर्शन करते हैं। २. **तम्**=उस प्रभु को **हविष्मन्तः**=प्रशस्त हविवाले पुरुष ही **ईडते**=पूजते हैं। प्रभु का पूजन हवि से ही होता है। (हविषा विधेम) दानपूर्वक अदन ही प्रभु-पूजन है। यही यज्ञों के द्वारा यज्ञरूप प्रभु का उपासन है।

भावार्थ—यज्ञशील बनकर हम प्रभु का पूजन करते हैं। प्रभु हमें शक्तिशाली व उन्नत बनाकर लक्ष्यस्थान पर पहुँचाते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

वृषणं, दीद्यतम्, बृहत्

वृष॑णं त्वा व॒यं वृ॑ष॒न्वृष॑णः॒ समि॑धीमहि। अग्ने॒ दीद्य॑तं बृ॒हत्॥ ३॥

१. हे **वृषन्**=शक्तिशाली **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **वृषणं त्वा**=शक्तिशाली आपको **वयम्**=हम **वृषणः**=शक्तिशाली बनते हुए **समिधीमहि**=अपने हृदयों में समिद्ध करते हैं। प्रभु-प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम प्रभु-जैसे बनें। प्रभु 'वृषा' हैं—हम भी वृषा=शक्तिशाली बनें। २. वे प्रभु **दीद्यतम्**=देदीप्यमान हैं, **बृहत्**=महान् हैं। हम भी मस्तिष्क में ज्ञान-ज्योति से दीप्त बनने का

प्रयत्न करें तथा हृदयों में महान्—विशाल बनें।

भावार्थ—प्रभु की उपासना करते हुए हम भी प्रभु की भाँति 'शक्तिशाली, ज्ञानी व विशाल हृदय' बनें।

ज्ञानदीप्तिवाला प्रभु का यह उपासक 'सुदीति' बनता है, अपने अन्दर शक्ति का खूब ही सेचन करता हुआ 'पुरुमीढ' होता है। ये 'सुदीति व पुरुमीढ' ही अगले सूक्त में प्रथम मन्त्र के ऋषि हैं। अत्यन्त तेजस्वी बननेवाला 'भर्ग' २-३ मन्त्र का ऋषि है—

१०३. [त्र्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**सुदीतिपुरुमीढौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

सुदीतये छर्दिः

अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्।
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १ ॥

१. **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिए **गाथाभिः**=स्तुतिवाणियों के द्वारा **ईडिष्व**=उपासित कर। हे **पुरुमीढ**=अपने में शक्ति का खूब ही सेचन करनेवाले उपासक! तू **राये**=ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए **शीरशोचिषम्**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाली ज्ञानदीप्तिवाले **श्रुतम्**=उस प्रसिद्ध **अग्निम्**=अग्रणी प्रभु को उपासित कर। २. हे **नर**=मनुष्यो! **अग्निः**=ये अग्रणी प्रभु **सुदीतये**=उत्तम दीप्तिवाले नर के लिए—खूब ज्ञान प्राप्त करनेवाले मनुष्य के लिए **छर्दिः**=शरणस्थान व गृह हैं। इस सुदीति को प्रभु शरण देते हैं।

भावार्थ—हम स्तुतिवाणियों से प्रभु का अर्चन करें। प्रभु ही हमें ऐश्वर्य प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही ज्ञानदीप्ति प्राप्त करनेवालों के लिए शरणस्थान होते हैं।

ऋषिः—**भर्गः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

अग्नियों के साथ 'अग्नि'

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २ ॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **अग्निभिः**=उत्तम मातारूप दक्षिणाग्नि, उत्तम पितारूप गार्हपत्याग्नि तथा उत्तम आचार्यरूप आह्वनीय अग्नि के साथ **आयाहि**=हमें प्राप्त होइए। **होतारम्**=सब-कुछ देनेवाले **त्वा**=आपको **वृणीमहे**=हम वरते हैं। आपकी प्राप्ति से सब-कुछ प्राप्त हो ही जाता है। २. **यजिष्ठम्**=अतिशयेन पूजनीय **त्वाम्**=आपको **बर्हिः आसदे**=हृदयासन पर बिठाने के लिए **हविष्मती**=हवि से युक्त यह **प्रयता**=पवित्र वेदवाणी **अनक्तु**=हमारे जीवनों में प्राप्त कराए। यज्ञ व ज्ञान हमें प्रभु के समीप प्राप्त करानेवाले हों।

भावार्थ—उत्तम माता-पिता व आचार्य को प्राप्त करके, ज्ञान को प्राप्त करते हुए, हम प्रभु के समीप पहुँचते हैं। यज्ञों से युक्त पवित्र वेदवाणी हमें प्रभु की समीपता में प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**भर्गः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**सतोबृहती** ॥

'ऊर्जो न पातं-घृतकेशम्' ईमहे

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३ ॥

१. हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज प्रभो! हे **अंगिरः**=सर्वत्र गतिवाले प्रभो! इस **अध्वरे**=जीवन-

यज्ञ में **स्रुचः**=(वाग वै स्रुक् श० ६.३.१.८) ज्ञान की वाणियाँ **हि**=निश्चय से **त्वा अच्छा**=आप की ओर **चरन्ति**=गतिवाली हैं। ये ज्ञान की वाणियाँ हमें आपके समीप प्राप्त कराती हैं। २. हम **यज्ञेषु**=यज्ञों में उस प्रभु को **ईमहे**=आराधित करते हैं—स्तुत करते हैं, जो **ऊर्जः नपातम्**=शक्ति को न गिरने देनेवाले हैं, **घृतकेशम्**=दीप्त ज्ञान की रश्मियोंवाले हैं। **अग्निम्**=अग्रणी हैं और **पूर्व्यम्**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम हैं।

भावार्थ—इस जीवन-यज्ञ में हम ज्ञान प्राप्त करते हुए प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें शक्ति प्राप्त कराएँगे और ज्ञानदीप्ति देंगे।

पवित्र प्रभु का अतिथि बननेवाला 'मेध्यातिथि' अगले सूक्त के १-२ मन्त्रों का ऋषि है तथा 'नृमेध' (सबके साथ मिलकर चलनेवाला) ३-४ का।

१०४. [चतुरुत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+ समा-सतोबृहती)**॥

पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत॥ १ ॥

१. हे **पुरूवसो**=पालक व पूरक वसुओं (धनों) -वाले प्रभो! **इमाः याः मम गिरः**=ये जो मेरी वाणियाँ हैं, वे **उ**=निश्चय से **त्वा वर्धन्तु**=आपका वर्धन करनेवाली हों। हम सदा आपका ही स्तवन करें। २. **पावकवर्णाः**=अग्नि के समान वर्णवाले—तेजस्वी **शुचयः**=पवित्र मनोंवाले, **विपश्चितः**=ज्ञानी पुरुष ही **स्तोमैः**=स्तुतियों के द्वारा आपका **अभि अनूषत**=प्रातः-सायं (दिन के दोनों ओर) स्तवन करते हैं। वस्तुतः आपके स्तवन से ही वे 'पावकवर्ण, शुचि व विपश्चित्' बनते हैं।

भावार्थ—हम सदा प्रभु का स्तवन करें। यह स्तवन हमें शरीरों में अग्नि के समान तेजस्वी, मनों में पवित्र व मस्तिष्क में ज्ञानोज्ज्वल बनाएगा।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+ समा-सतोबृहती)**॥

यज्ञेषु-विप्रराज्ये

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये॥ २ ॥

१. **अयम्**=ये प्रभु **ऋषिभिः**=तत्त्वद्रष्टा पुरुषों से **सहस्रम्**=आनन्दपूर्वक **सहस्कृतः**=अपना बल बनाया जाता है, अर्थात् ऋषि लोग प्रभु को हृदयों में धारण करते हुए प्रभु के बल से अपने को बल-सम्पन्न बनाते हैं। ये प्रभु **समुद्रः इव**=समुद्र के समान **पप्रथे**=विस्तृत हैं। समुद्र अनन्त-सा प्रतीत होता है—प्रभु हैं ही अनन्त। २. **सः**=वह **अस्य**=इसकी **महिमा**=महिमा **सत्यः**=सत्य है कि **यज्ञेषु**=यज्ञों और **विप्रराज्ये**=ज्ञानियों के राज्य में **शवः गृणे**=इस प्रभु के बल का स्तवन होता है। वे प्रभु स्तुत्य बलवाले हैं। प्रभु का यह बल यज्ञों व ज्ञानयज्ञों का रक्षण करता है।

भावार्थ—ऋषि प्रभु को ही अपना बल बनाते हैं। प्रभु सर्वव्यापक हैं। प्रभु के बल का सर्वत्र यज्ञों में व ज्ञानयज्ञों में स्तवन होता है।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

ब्रह्माणि सवनानि (उप)

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः॥ ३॥

१. **इन्द्रः**=वह शत्रुसंहारक प्रभु **विश्वासु समत्सु**=सब संग्रामों में **हव्यः**=पुकारने योग्य होते हैं। वे प्रभु **नः**=हमें **आभूषतु**=अलंकृत करनेवाले हों। प्रभु को अपने हृदयों में आसीन करके ही हम शत्रुओं का संहार कर पाते हैं। २.वे प्रभु सदा **ब्रह्माणि**=ज्ञानपूर्वक की गई स्तुतिवाणियों के साथ तथा **सवनानि**=यज्ञों के **उप**=समीप प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रभु उसी व्यक्ति को प्राप्त होते हैं जो अपने जीवन को स्तुतिमय व यज्ञमय बनाता है। वे प्रभु **वृत्रहा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करते हैं। **परमज्या**=(परमान् जिनाति) अत्यन्त प्रबल शत्रुओं को भी समाप्त करनेवाले हैं। **ऋचीषमः**(स्तुत्या समः)=स्तुतियों से अभिमुखीकरणीय होते हैं। जितना-जितना हम प्रभु-स्तवन करते हैं, उतना-उतना ही प्रभु के समीप होते हैं।

भावार्थ—सब संग्रामों में प्रभु ही हमें विजयी बनाते हैं। वे ही हमारे जीवनों को अलंकृत करते हैं। ज्ञान व यज्ञ के द्वारा हम प्रभु को समीपता से प्राप्त होते हैं। प्रभु ही हमारे शत्रुओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

राधसां प्रथमः दाता

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः॥ ४॥

१. हे प्रभो! **त्वम्**=आप **राधसाम्**=ऐश्वर्यों के **प्रथमः दाता असि**=सर्वमुख्य दाता हैं। आप **सत्यः असि**=सत्यस्वरूप हैं। **ईशानकृत्**=स्तोताओं को ऐशवर्यों का ईशान बनानेवाले हैं। २. **तुविद्युम्नस्य**=महान् ज्ञानज्योतिवाले **शवसः पुत्रस्य**=बल के पुञ्ज—सर्वशक्तिमान् **महः**=महान् आपके **युज्या**=संगतिकरण योग्य, अर्थात् उत्तम धनों को **आवृणीमहे**=हम वरते हैं। हम प्रभु से देय धनों की ही कामना करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सर्वमुख्य ऐश्वर्यों के दाता हैं। उस महान् ज्ञानज्योतिवाले, सर्वशक्तिमान् प्रभु के धनों का ही हम वरण करते हैं।

अगले सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों का ऋषि भी 'नृमेध' ही है। ४-५ का पुरुहन्मा=शत्रुओं का खूब ही विनाश करनेवाला—

१०५. [पञ्चोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती)**॥

अशस्तिहा-विश्वतूः

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **प्रतूर्तिषु**=संग्रामों में **विश्वाः**=सब **स्पृधः**=स्पर्धाकारिणी शत्रुसेनाओं को **अभि असि**=अभिभूत करनेवाले हैं। २. आप **अशस्तिहा**=इन शत्रुओं से की जानेवाली हिंसाओं के हन्ता हैं। **जनिता**=इन शत्रुओं की हिंसा को पैदा करनेवाले

हैं। हमें शत्रुओं के हिंसन के योग्य बनाते हैं। हमें इनसे हिंसित नहीं होने देते। **विश्वतूः असि**=सब शत्रुओं का हिंसन करनेवाले आप ही हैं। **त्वम्**=आप ही **तरुष्यतः**=हिंसन करनेवालों को **तूर्य**=विनष्ट कीजिए।

भावार्थ—प्रभु ही संग्रामों में हमारे शत्रुओं का पराभव करते हैं। सब हिंसकों का हिंसन प्रभु ही करते हैं।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (सतोबृहती)** ॥

'वृत्र-विनाश से सब शत्रुओं को विनाश'

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! आपके **तुरयन्तम् शुष्मम्**=शत्रुओं का संहार करनेवाले बल का **क्षोणी**=द्यावापृथिवी **अनु ईयतुः**=अनुगमन करते हैं, **नः**=जैसे **मातरा शिशुम्**=माता-पिता प्रेम-वश छोटे बच्चे के पीछे चलते हैं। प्रभु के बल से ही वस्तुतः सब अपने शत्रुओं का विनाश कर पाते हैं। २. **ते मन्यवे**=आपके क्रोध के लिए **विश्वाः स्पृधः**=सब शत्रुसैन्य **श्नथयन्त**=श्नथित (हिंसित) व खिन्न हो जाते हैं। **यत्**=जब आप **वृत्रम्**=वृत्र को—ज्ञान के आवरणभूत 'काम' को **तूर्वसि**=विध्वस्त कर देते हैं। वृत्र का विनाश होने पर सब शत्रुसैन्य ढीले पड़ जाते हैं।

भावार्थ—सम्पूर्ण संसार प्रभु की शक्ति का ही अनुगमन करता है। प्रभु के मन्यु के सामने सब शत्रु शिथिल हो जाते हैं। प्रभु ही वृत्र का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

'तुग्र्यावृध' प्रभु

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम्॥ ३॥

१. **वः**=तुम्हारे **अजरम्**=जरा को दूर करनेवाले (न जरा यस्मात्) **प्रहेतारम्**=शत्रुओं को दूर प्रेरित करनेवाले, **अप्रहितम्**=किसी भी दूसरे से प्रेरित न किये जानेवाले, **आशुम्**=वेगवान्, **जेतारम्**=शत्रुओं को पराजित करनेवाले, **हेतारम्**=शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले प्रभु को **ऊती**=रक्षण के लिए **इतः**=ये द्यावापृथिवी प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रभु ही सबका रक्षण करते हैं। २. उस प्रभु को रक्षा के लिए सब प्राप्त होते हैं, जो **रथीतमम्**=हमारे शरीर रथों के सर्वोत्तम संचालक हैं। **अतूर्तम्**=किसी से हिंसित होनेवाले नहीं तथा **तुग्र्यावृधम्**=शरीरस्थ रेतःकणरूप जलों का वर्धन करनेवाले हैं। वस्तुतः शत्रुओं का हिंसन करके शरीर में शक्तियों के वर्धन के द्वारा ही प्रभु हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ—सम्पूर्ण द्यावापृथिवी रक्षण के लिए प्रभु को ही प्राप्त होते हैं। प्रभु शत्रुओं का हिंसन करके हमारा रक्षण करते हैं। वे रेतःकणरूप जलों का हममें वर्धन करते हैं।

ऋषिः—**पुरुहन्मा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती)** ॥

'ज्येष्ठ वृत्रहा' प्रभु

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे॥ ४॥

१. मैं उस प्रभु का **गृणे**=स्तवन करता हूँ **यः**=जोकि **चर्षणीनां राजा**=श्रमशील मनुष्यों के

जीवन को दीप्त बनानेवाला है। **रथेभिः याता**=शरीररूप रथों से प्राप्त होनेवाला है, अर्थात् शरीररूप उत्तम रथों को हमारे लिए देते हैं। **अध्रिगुः**=अधृतगमनवाला है—प्रभु को अपने कार्यों में कोई विहत नहीं कर पाता। २. ये प्रभु ही **विश्वासाम्**=सब **पृतनानाम्**=शत्रुसैन्यों के **तरुता**=तैर जानेवाले है। सब शत्रुओं से वे प्रभु हमें पार करनेवाले हैं। वे प्रभु **ज्येष्ठः**=प्रशस्यतम हैं **यः**=जो **वृत्रहा**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमें उत्तम शरीर-रथ प्राप्त कराते हैं और हमारे जीवनों को दीप्त करते हैं।

ऋषिः—**पुरुहन्मा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (सतोबृहती)**॥

वज्रः-सूर्यः

इन्द्र तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः॥ ५॥

१. हे **पुरुहन्मन्**=शत्रुओं का खूब ही हनन करनेवाले जीव! तू **तम्**=उस **इन्द्रम्**=शत्रु विद्रावक प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिए **शुम्भ**=अपने जीवन में अलंकृत कर। उस प्रभु को अलंकृत कर **यस्य**=जिसके **द्विता**=दोनों का विस्तार है—उस प्रभु की शक्ति भी अनन्त विस्तारवाली है और ज्ञान भी। प्रभु को धारण करने पर हम भी ज्ञान व शक्ति प्राप्त करेंगे। २. उस **विधर्तरि**=विशेषरूप से धारण करनेवाले प्रभु में **हस्ताय** (हननाय)=शत्रु-संहार के लिए **दर्शतः**=दर्शनीय **महः**=महान् **वज्रः**=वज्र **प्रतिधायि**=धारण किया जाता है **न**=(चार्थे) और **दिवे**=प्रकाश के लिए **सूर्यः**=सूर्य धारण किया जाता है। 'वज्र' शत्रु-संहार की शक्ति का प्रतीक है और 'सूर्य' ज्ञान का।

भावार्थ—हम अपने जीवनों में प्रभु का धारण करें। प्रभु शत्रुहनन के लिए वज्र का धारण करते हैं और प्रकाश के लिए सूर्य का। प्रभु का धारण हमें शक्ति व प्रकाश प्राप्त कराएगा।

ज्ञान के धारण करनेवाले हम 'गोषूक्ति' बनेंगे, अर्थात् हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तम ही कथन करेंगी तथा शक्ति को धारण करनेवाले हम 'अश्वसूक्ति' होंगे। ये ही अगले सूक्त के ऋषि हैं—

१०६. [षडुत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**उष्णिक्**॥

शुष्म-क्रतु-वज्र-इन्द्रिय

तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव शुष्ममुत क्रतुम्। वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम्॥ १॥

१. हे उपासक! **तव**=तेरी **धिषणा**=यह स्तुति **त्यत्**=उस **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों की शक्ति को **शिशाति**=तीक्ष्ण करती है **उत**=और यह स्तुति **तव**=तेरे **बृहत्**=वृद्धि के कारणभूत **शुष्मम्**=शत्रु-शोषक बल को और **क्रतुम्**=प्रज्ञान को बढ़ाती है। २. 'इन्द्रियशक्ति, शत्रुशोषक बल व प्रज्ञान' का वर्धन करती हुई यह स्तुति **वरेण्यम्**=वरणीय—चाहने योग्य **वज्रम्**=क्रियाशीलता को बढ़ानेवाली होती है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से हमारा जीवन 'शक्ति, ज्ञान व क्रियाशीलता' वाला होता है। यह स्तुति हमारी इन्द्रियों की शक्ति का वर्धन करती है।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'द्युलोक, पृथिवी, समुद्र व पर्वतों' द्वारा प्रभु-स्तवन

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः। त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **द्यौः**=यह द्युलोक **तव**=आपके **पौंस्यम्**=बल को **वर्धति**=बढ़ाता है। यह द्युलोक आपकी शक्ति की सूचना देता है। **पृथिवी**=यह पृथिवी भी **श्रवः**=आपके यश को बढ़ाती है। यह आपकी महिमा का स्तवन करती है। २. **आपः**=ये जल **पर्वतासः च**=और पर्वत **त्वाम् हिन्विरे**=आपको ही प्राप्त करते हैं। इन समुद्रस्थ अनन्त-से जलों को व गगनचुम्बी पर्वतशिखरों को देखकर आपकी महिमा का ही स्मरण होता है।

भावार्थ—यह 'आकाश, पृथिवी, समुद्र, जल व पर्वत' सभी प्रभु की महिमा का प्रकाश कर रहे हैं।

ऋषिः—**गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

सच्चे उपासक का जीवन

त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः। त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम्॥ ३॥

१. हे प्रभो! वास्तव में **त्वाम्**=आपका **गृणाति**=स्तवन वही करता है जोकि **विष्णुः**=व्यापक व उदारवृत्तिवाला बनता है, **बृहन्**=अपनी शक्तियों का वर्धन करता है, **क्षयः**=उत्तम निवास व गतिवाला बनता है 'क्षि निवासगत्योः' **मित्रः**=सबके प्रति स्नेहवाला होता है और **वरुणः**=द्वेष का निवारण करनेवाला होता है। प्रभु का वास्तविक स्तवन तो यही है कि हम इसप्रकार के जीवनवाले बनें। २. हे प्रभो! **त्वाम्**=आपकी **अनु**=अनुकूलता करता हुआ यह **मारुतं शर्धः**=प्राणों का बल **मदति** (मादयति)=आनन्द का अनुभव कराता है। प्राणसाधना से चित्तवृत्ति की एकाग्रता होकर प्रभु में प्रीति बढ़ती है, तब एक अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है।

भावार्थ—प्रभु का उपासक 'विष्णु, बृहत्, क्षय, मित्र व वरुण' बनने का प्रयत्न करता है। यह प्राणसाधना करता हुआ, चित्तवृत्ति की एकाग्रता के द्वारा, प्रभु-प्राप्ति का आनन्द पाता है।

यह उपासक प्रभु का प्रिय 'वत्स' बनता है। यह अगले सूक्त में १-३ का ऋषि है। खूब ज्ञान के प्रकाशवाला 'बृहद् दिवः' कहलाता है। यह ४-१२ मन्त्रों तक का ऋषि है १३ १४ का ब्रह्मा और वासनाओं का पूर्ण संहार करनेवाला 'कुत्स' १५ वें मन्त्र का ऋषि है—

१०७. [सप्तोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वत्सः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु का विनम्र प्रिय शिष्य

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः॥ १॥

१. **अस्य मन्यवे**=इस प्रभु के ज्ञान के लिए **विश्वाः**=सब **विशः**=संसार में प्रवेश करनेवाली **कृष्टयः**=श्रमशील प्रजाएँ **सन्नमन्त**=इसप्रकार नतमस्तक होती हैं, **इव**=जिस प्रकार **समुद्राय**=समुद्र के लिए **सिन्धवः**=नदियाँ। २. नदियाँ निम्नमार्ग से जाती हुई समुद्र को प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार प्रजाएँ नम्रता को धारण करती हुई प्रभु से दिये जानेवाले ज्ञान को प्राप्त करती हैं। ज्ञान-प्राप्ति के लिए नम्रता ही तो मुख्य साधन है 'तद् विद्धि प्रणिपातेन'।

भावार्थ—हम नम्रता को धारण करते हुए प्रभु से दिये जानेवाले वेदज्ञान को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वत्सः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

ज्ञान+शक्ति=ओजस्विता

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत्। इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ २ ॥

१. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **चर्म इव**=चर्म की भाँति **यत्**=जब **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को **समवर्तयत्**=ओढ़ (Wrap up) लेता है, अर्थात् मस्तिष्करूप द्युलोक तथा शरीररूप पृथिवीलोक दोनों का धारण करता है, **तत्**=तब **अस्य ओजः**=इस जितेन्द्रिय पुरुष का ओज (शक्ति) **तित्विषे**=चमक उठता है। २. ओजस्विता केवल शरीर की शक्ति से नहीं, अपितु मस्तिष्क का ज्ञान होने पर भी चमकती है। 'शरीर की शक्ति व मस्तिष्क का ज्ञान' दोनों के ही धारण की आवश्यकता है। ये दोनों सम्मिलितरूप से धारण किये जाने पर इस रूप में हमारे रक्षक होते हैं, जैसेकि एक ढाल (चर्म)। जैसे एक योद्धा ढाल के द्वारा अपने को शत्रु के प्रहार से बचाता है, इसप्रकार उपासक को 'शक्ति व ज्ञान' रोग व वासनारूप शत्रुओं से बचाते हैं।

भावार्थ—शरीर की शक्ति व मस्तिष्क का ज्ञान—दोनों को सम्मिलितरूप से धारण करने पर हम ओजस्वी बनते हैं। यह ओजस्विता ही हमारा रक्षण करनेवाली ढाल बनती है।

ऋषिः—**वत्सः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'शतपर्व वृष्णि' वज्र

वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा। शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ३ ॥

१. गतमन्त्र में वर्णित **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **दोधतः**=(दुध to kill) हमारा विनाश करनेवाले ज्ञान की आवरणभूत वासना के **शिरः**=सिर का **चित्**=निश्चय से **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा **बिभेद**=विदारण कर देता है। क्रियाशीलता हमपर वासना का आक्रमण नहीं होने देती। २. यह क्रियाशीलतारूप वज्र **वृष्णिना**=बड़ा प्रबल है—हममें शक्ति का सेचन करनेवाला है तथा **शतपर्वणा**=शतवर्षपर्यन्त हमारा पूरण करनेवाला है। वस्तुतः क्रियाशीलता से ही शक्ति बनी रहती है और सौ वर्ष का पूर्ण जीवन प्राप्त होता है।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष क्रियाशील बना रहकर वासना का विनाश करनेवाला बनता है। इससे वह शक्ति-सम्पन्न व शतवर्षपर्यन्त जीवनवाला होता है।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्येष्ठ ब्रह्म

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥ ४ ॥

१. **तत्**=वे ब्रह्म **इत्**=ही **भुवनेषु**=सब भुवनों में—सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड में **ज्येष्ठं आस**=सर्वश्रेष्ठ हैं। **यतः**=जिस ब्रह्म से **उग्रः**=तेजस्वी **त्वेषनृम्णः**=दीप्त बलवाला यह आदित्य **जज्ञे**=उत्पन्न हुआ है। प्रभु इस द्युलोक में देदीप्यमान सूर्य को उदित करते हैं। इसी प्रकार हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में भी ज्ञान का सूर्य प्रभु के द्वारा उदित किया जाता है। २. यह सूर्य **जज्ञानः**=प्रादुर्भूत होता हुआ **सद्यः**=शीघ्र ही **शत्रून्**=शत्रुभूत अन्धकारों को **निरिणाति**=नष्ट करता है। मस्तिष्क में उदित होनेवाला ज्ञानसूर्य अज्ञानान्धकार को नष्ट करनेवाला होता है। अज्ञानान्धकार के नाश के द्वारा **विश्वे ऊमाः**=अपना रक्षण करनेवाले सब प्राणी **यम्**=जिसके **अनुमदन्ति**=पीछे उल्लास का अनुभव करते हैं। जितना-जितना प्रभु का उपासन करते हैं, उतना-उतना एक रस का अनुभव लेते हैं।

भावार्थ—प्रभु के उपासन से ज्ञानसूर्य का उदय होता है—वासनान्धकार का विनाश होता है और प्रभु-प्राप्ति के आनन्द का अनुभव होता है।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'शक्ति-पुञ्ज' प्रभु

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु॥ ५॥

१. वे प्रभु **शवसा वावृधानः**=बल से खूब बढ़े हुए हैं। **भूरि ओजाः**=अतिशयित ओजवाले हैं। **शत्रुः**=हमारी वासनाओं का शातन करनेवाले हैं। **दासाय**=(दसु उपक्षये) हमारी शक्तियों को क्षीण करनेवाले काम, क्रोध के लिए **भियसं दधाति**=भय को धारण करते हैं। जहाँ भी महादेव के नाम का उच्चारण होता हो वहाँ कामदेव आने से भयभीत होते ही हैं। २. वे प्रभु **अवयनत्**=श्वास (प्राण) न लेनेवाले स्थावर पदार्थों को **च**=तथा **व्यनत्**=विशेषरूप से प्राणों को धारण करनेवाले जंगम प्राणियों को **सस्नि**=शुद्ध करनेवाले हैं। **ते**=आपके **मदेषु**=आनन्दों में **प्रभृता**=धारण किये हुए सब प्राणी **संनवन्त**=सम्यक् स्तवन करते हैं (नु स्तुतौ), अथवा आपकी ओर गतिवाले होते हैं (नव गतौ)।

भावार्थ—प्रभु अनन्त शक्तिवाले हैं। हमारे शत्रुओं को भयभीत करके हमसे दूर करते हैं। सबका शोधन करते हैं। उपासक प्रभु प्राप्ति के आनन्द में निरन्तर प्रभु का स्तवन करते हैं।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु में जीवन का शोधन

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः॥ ६॥

१. **विश्वे**=सब उपासक **त्वे**=आपमें ही—आपकी उपासना में ही **क्रतुम्**=ज्ञानों, कर्मों व संकल्पों को **अपि पृञ्चन्ति**=संपृक्त करते हैं, (purify पवित्र करते हैं)। २. **एते**=ये **ऊमाः**=आपके सम्पर्क द्वारा अपने मलों का प्रक्षालण करके अपना रक्षण करनेवाले लोग **यत्**=जब **द्विः भवन्ति**=दो बार होते हैं, अर्थात् प्रातः सायं आपके ध्यान में बैठते हैं, अथवा **त्रिः** (भवन्ति)=तीन बार (प्रातः, मध्याह्न व सायं) आपकी उपासना में स्थित होते हैं तो **स्वादोः स्वादीयः**=स्वादु से भी स्वादु, अर्थात् मधुरतम आप इस उपासक के जीवन को **स्वादुना सृजा**=माधुर्य से संसृष्ट करते हैं। ३. **अदः**=इस उपासक के **सुमधु**=उत्तम मधुर जीवन को **मधुना**=और अधिक माधुर्य से **अभियोधीः**=वासनाओं के साथ युद्ध के द्वारा संगत करते हैं। वासनाओं को विनष्ट करके इस उपासक के जीवन को आप अधिक मधुर बनाते हैं। ४. सायणाचार्य के अनुसार 'द्विः भवन्ति' का भाव यह है कि जब ये गृहस्थ बनकर एक से दो होते हैं, तथा 'त्रिः भवन्ति' का भाव यह है कि जब इन्हें सन्तान प्राप्त होते हैं और ये दो से तीन हो जाते हैं। इसप्रकार गृहस्थ बनकर ये आपके उपासक बने ही रहें और आप इनके गृहस्थ जीवन को मधुर-ही-मधुर बनाइए।

भावार्थ—प्रभु की उपासना के द्वारा हम अपने कर्मों व संकल्पों को पवित्र करें। दो बार व तीन बार प्रभु-चरणों में बैठने का नियम बनाये। प्रभु हमारे जीवनों को मधुर बनाएँगे।

सूचना—तीन बार प्रभु-चरणों में बैठने का भाव इस रूप में लेना चाहिए कि हम 'बाल्य, यौवन व वार्धक्य' रूप 'प्रातः, मध्याह्न व सायन्तन' सवन में प्रभु-चरणों में बैठनेवाले बनें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

धन के साथ प्रभु-स्मरण

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्दुरेवासः कशोकाः ॥ ७ ॥

१. **यदि चत् नु**=यदि निश्चय से अब **रणे रणे**=प्रत्येक संग्राम में **धना जयन्तं त्वा**=धनों का विजय करानेवाले आपको **विप्राः**=ये ज्ञानी पुरुष **अनुमदन्ति**=प्रतिदिन स्तुत करते हैं तो हे **शुष्मिन्**=शत्रु-शोषक बलोंवाले प्रभो! इन उपासकों में **ओजीयः**=ओजस्विता से पूर्ण **स्थिरम्**=स्थिर धन को **आतनुष्व**=विस्तृत कीजिए। वस्तुतः प्रभु उपासना होने पर धन के विजय का अहंकार नहीं होता, विषयों की ओर झुकाव न होकर ओजस्विता बनी रहती है तथा धन का विषयों में विनाश भी नहीं हो जाता। २. हे प्रभो! इन धनों के कारण **दुरेवाः**=दुर्गमनवाले **कशोकाः**=विनाशक भाव (to destroy) अथवा अभिमान के प्रलाप (to serend) **त्वा मा दभन्**=आपके स्मरण को हमारे हृदयों से हिंसित न कर दें। हम धनों के गर्व में अभिमानयुक्त होकर घातपात की क्रियाओं में न लग जाएँ।

भावार्थ—हम धनों को प्रभु से प्राप्त कराया जाता हुआ जानें। ये धन हमारी ओजस्विता व चित्तवृत्ति की स्थिरता को नष्ट करनेवाले न हों। धनों के अहंकार में विषय-प्रवण होकर हम प्रभु को भूल ही न जाएँ।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु की उपासना के द्वारा शत्रु-विजय

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ८ ॥

१. हे प्रभो! **वयम्**=हम **रणेषु**=संग्रामों में **त्वया**=आपके साथ **प्रपश्यन्तः**=अच्छी प्रकार से देखते हुए—ज्ञान को प्राप्त करते हुए **युधेन्यानि**=युद्ध करने योग्य 'काम, क्रोध, लोभ' आदि आसुरभावों को **भूरि**=खूब ही **शाशद्महे**=नष्ट करनेवाले हों। हमारे अन्दर छिपकर रहनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं को हम अवश्य विनष्ट करनेवाल हों। २. **ते**=आपसे दिये हुए **आयुधा**='इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप अस्त्रों को **वचोभिः**=आपके वेद में दिये गये वचनों (निर्देशों) के अनुसार **चोदयामि**=प्रेरित करता हूँ। **ते ब्रह्मणा**=आपके इस वेदज्ञान व स्तवन से **वयांसि**=मैं अपने 'बाल्य, यौवन व वार्धक्य' में विभक्त जीवनों को **संशिशामि**=तीव्र करता हूँ। मैं अपनी शक्ति व बुद्धि को तीव्र बनाता हूँ और इसप्रकार वासनारूप शत्रुओं को विनष्ट करनेवाला होता हूँ।

भावार्थ—प्रभु से मिलकर हम वासनारूप शत्रुओं को युद्ध में पराजित करें। इस युद्ध के लिए ज्ञान की वाणियों के द्वारा 'इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप अस्त्रों को तीव्र करें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'अवर व पर' धन

नि तद्दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥ ९ ॥

१. हे प्रभो! **यस्मिन् दुरोणे**=जिस यज्ञशील पुरुष के इस शरीररूप गृह में **अवसा**

(protection, food, wealth) रक्षण के द्वारा, उत्तम भोजन के द्वारा तथा न्याय्य धनों के द्वारा **आविथ**=आप रक्षण करते हो **तत्**=उस शरीरगृह को आप **अवरे**=निचले शक्तिरूप धन में **च**=तथा **परे**=उत्कृष्ट ज्ञान-धन में **निदधिषे**=निश्चय से स्थापित करते हो। यह बल-(क्षत्र) रूप धन हमें रोगों से बचाता है और ज्ञान (ब्रह्म) रूप धन वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देता। २. हे प्रभो! आपका हमें यही उपदेश है कि **जिगत्नुम्**=गतिशील बनानेवाली **मातरम्**=वेदमाता को **आस्थापयत**=अपने में स्थापित करो, **अतः**=इस वेदमाता के अपने में स्थापन से **भूरि**=खूब ही **कर्वराणि**=कर्मों को **इन्वत**=व्याप्त करो। वस्तुतः यह वेदमाता उसी प्रकार हमें कर्मों की प्रेरणा देती है जैसे एक माता अपने शिशु को।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति व ज्ञान प्राप्त कराते हैं। प्रभु इस वेदमाता के द्वारा हमें कर्मों की प्रेरणा देते हैं।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु की उपासना से शत्रु-विनाश

स्तुष्व वर्ष्मन्पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम्।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः॥ १०॥

१. वेदमाता यह प्रेरणा देती है कि हे **वर्ष्मन्**=सुन्दर आकृतिवाले पुरुष! तू उस प्रभु का **संस्तुष्व**=सम्यक् स्तवन कर, जो **पुरुवर्त्मानम्**=पालक व पूरक मार्गोंवाले हैं—प्रभु की ओर ले-जानेवाले मार्ग कभी भी तुम्हारा विनाश नहीं करेंगे। **ऋभ्वाणम्**=(उरुभासमानम्) वे प्रभु खूब ही ज्ञान की दीप्तिवाले हैं। **इनतमम्**=सर्वमहान् स्वामी हैं। **आप्त्यानाम् आप्तम्**=विश्वसनियों में विश्वसनीय हैं। प्रभु का भरोसा करनेवाला कभी धोखा नहीं खाता। २. वे **भूर्योजाः**=अनन्त ओजस्वी प्रभु **शवसा**=बल के द्वारा **आदर्शति**=शत्रुओं को विदीर्ण करते हैं (दॄ विदारणे)। **प्रसक्षति**=वे प्रभु ही शत्रुओं का पराभव करते हैं—इनका मर्षण व विनाश करते हैं। वे **पृथिव्याः प्रतिमानम्**=सम्पूर्ण पृथिवी के प्रतिमान हैं—(adversary) सारे संसार की शक्ति भी प्रभु को पराभूत नहीं कर सकती। प्रभु को धारण करने से तुम भी सारे शत्रुओं का पराभव कर सकोगे।

भावार्थ—वेदमाता की अपने शिशुओं को यही प्रेरणा है कि वे प्रभु का उपासन करें। प्रभु उनके शत्रुओं का विनाश करेंगे। प्रभु की उपासना होने पर सारा संसार भी हमारा पराजय न कर सकेगा।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अग्रियः-स्वर्षाः

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद्विश्वमर्णवत्तपस्वान्॥ ११॥

१. **बृहद् दिवः**=उत्कृष्ट ज्ञानधनवाला व्यक्ति **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिए **इमा ब्रह्म**=इन स्तोत्रों का **कृणवत्**=निर्माण व उच्चारण करता है। इस स्तवन से **अग्रियः**=जीवन-मार्ग में आगे बढ़नेवाला **स्वर्षाः**=प्रकाश को प्राप्त करनेवाला यह 'बृहद्दिव' **शूषम्**=शत्रुशोषक बल को (नि० २.९) व सुख को (नि० ३.६) **क्षयति**=प्राप्त होता है (क्षि गतौ) और **महः गोत्रस्य**=महनीय, तेजस्वी इन्द्रियसमूह का **क्षयति** (रक्षयति)=ईश्वर होता है। (क्षि to gover, to rule, to be master of) २. यह **स्वराजा**=अपना शासन करनेवाला व्यक्ति **चित्**=निश्चय से **तुरः**=सब

शत्रुओं का संयम करनेवाला होता है, परिणामतः **विश्वम् अर्णवत्**=इसका यह सारा ज्ञानेन्द्रियसमूह ज्ञानजलवाला होता है और यह **तपस्वान्**=अतिशयित ज्ञानदीप्तिवाला होता है (तप् दीप्तौ)।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन करता हुआ ज्ञानी पुरुष जीवन-यात्रा में आगे बढ़ता है और प्रकाश व सुख प्राप्त करता है।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभुरूपता

एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्व१मिन्द्रमेव।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च॥ १२॥

१. **एवा**=इसप्रकार **महान्**=पूजा की वृत्तिवाला (मह पूजायाम्) **बृहद्दिवः**=उत्कृष्ट ज्ञान-धनवाला **अथर्वा**=न डाँवाडोल वृत्तिवाला पुरुष **स्वां तन्वम्**=अपने शरीर को **इन्द्रम् एव अवोचत्**=परमेश्वर ही कहता है। अन्तःस्थित प्रभु के कारण उसे प्रभु ही जानता है। शीशी में शहद हो तो शीशी की ओर संकेत करके यही तो कहा जाता है कि 'यह शहद है'। इसी प्रकार अन्तःस्थित प्रभु को देखता हुआ यह अपने शरीर की ओर निर्देश करता हुआ यही कहता है कि 'यह प्रभु ही है'। २. इसप्रकार से **स्वसारः**=उस आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाले ज्ञानी पुरुष **मातरिभ्वरी**=सदा वेदवाणीरूप माता में होनेवाली, अर्थात् वेदज्ञान को प्राप्त करनेवाली और अतएव **अरिप्रे**=निर्दोष **एने**=इन ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों के समूह को **हिन्वन्ति**=प्रवृद्ध शक्तिवाला करते हैं 'हि वृद्धौ' **च**=और **शवसा वर्धयन्ति**=बल से बढ़ाते हैं अथवा गतिशीलता से बढ़ाते हैं। इन इन्द्रियों को अपने-अपने कर्मों में व्याप्त करके इन्हें सशक्त बनाये रखते हैं।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष सदा अन्तःस्थित प्रभु का ध्यान करता है। आत्मतत्त्व की ओर चलता हुआ यह इन्द्रियों को सशक्त बनाये रखता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**आर्षीपङ्क्तिः** ॥

प्रभुरूप सूर्य का उदय

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान्प्रदिशः सूर्य उद्यन्।
दिवाकरोति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद्दुरितानि शुक्रः॥ १३॥

१. गतमन्त्र के अनुसार अन्तःस्थित प्रभु को देखने पर यह उपासक अनुभव करता है कि वे प्रभु ही **चित्रम्**=सब ज्ञानों के देनेवाले हैं। **देवानां केतुः**=सब देवों के प्रकाशक हैं (brightness)। सूर्य आदि सब प्रभु द्वारा ही प्रकाशित हो रहे हैं। **अनीकम्**=प्रभु ही बल हैं 'बलं बलवताञ्चाहं कामरागविवर्जितम्'। **ज्योतिष्मान्**=प्रकाशमय हैं। **उद्यन् सूर्यः**=उदय होते हुए—हृदय में प्रादुर्भूत होते हुए—सूर्यसम ज्योतिवाले वे प्रभु **प्रदिशः**=उपासक के लिए मार्ग का निर्देश करनेवाले हैं। २. ये उदय होते हुए प्रभुरूप सूर्य **द्युम्नैः**=ज्ञान-ज्योतियों से **तमांसि**=सब अन्धकारों को **दिवा करोति**=दिन के प्रकाश में परिवर्तित कर देते हैं। **शुक्रः**=(शुच्) वे देदीप्यमान प्रभु **विश्वा दुरितानि**=सब दुरितों को **अतारीत्**=तैर जाते हैं—विध्वस्त कर देते हैं। प्रभु के उदय होते ही सब पापों व अज्ञानों का अन्धकार विलीन हो जाता है।

भावार्थ—प्रभु ही प्रकाश व बल के देनेवाले हैं। प्रभु के हृदय में उदय होते ही सब अशुभवृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'सर्वभूतान्तरात्मा' प्रभु

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ १४॥

१. ये प्रभु ही **चित्रम्**=सब ज्ञानों के देनेवाले हैं। सब **देवानम्**=देवों के **अनीकम्**=बल हैं—सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले हैं। **उदगात्**=ये मेरे हृदय में उदित हुए हैं। ये प्रभु ही **मित्रस्य**=द्युलोकस्थ सूर्य के **वरुणस्य**=अन्तरिक्षस्थ रात्रि में चन्द्ररूप से दीप्त सूर्यकिरण के तथा **अग्नेः**=पृथिवीलोकस्थ **अग्नेः**=अग्नि के **चक्षुः**=प्रकाशक हैं। सब देवों को दीप्ति देनेवाले वे प्रभु हैं 'तेन देवाः देवतामनु आयन्'। २. ये प्रभु ही **द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्**=द्युलोक, पृथिवीलोक व अन्तरिक्षलोकरूपी त्रिलोकी को **आप्रात्**=पूरण व व्याप्त कर रहे हैं। **सूर्यः**=(सुवति कर्मणि) सब लोक लोकान्तरों व कर्मों को प्रभु ही क्रियाशील बना रहे हैं। सब पिण्डों में शक्ति की स्थापना प्रभु ही करते हैं। वस्तुतः प्रभु ही **जगतः तस्थुषः च**=जंगम व स्थावर जगत् के **आत्मा**=आत्मा हैं। सबके अन्दर ओत-प्रोत होकर सबको शक्ति-सम्पन्न व क्रियाशील बना रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु ही ज्ञान व बल के देनेवाले हैं। वे ही सूर्य, चन्द्र व अग्नि के प्रकाशक हैं। त्रिलोकी को व्याप्त किये हुए हैं। ब्रह्माण्डरूप शरीर की वे आत्मा हैं। सब प्राणियों के हृदयों में स्थित हैं।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सूर्य व उषा का सच्चा पूजन

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्॥ १५॥

१. **सूर्यः**=सूर्य **रोचमानाम्**=चमकती हुई **देवीम्**=प्रकाशमयी **उषसम्**=उषा के **पश्चात्**=पीछे **अभ्येति**=उसी प्रकार आता है **न**=जैसेकि **मर्यः**=मनुष्य **योषाम्**=पत्नी के पीछे आता है। उषा मानो पत्नी है, सूर्य उसका पति है। ये पति पत्नी जब आते हैं तब हमें इनके स्वागत के लिए तैयार रहना चाहिए। इस समय लेटे रहना—या व्यर्थ की प्रवृत्तियों में लगना तो इनका निरादर ही है। २. यह समय वह होता है **यत्रा**=जिसमें कि **देवयन्तः नरः**=अपने को देव बनाने की कामनावाले पुरुष **युगानि**=द्वन्द्वरूप में होकर, अर्थात् पति-पत्नी मिलकर **भद्राय**=कल्याण व सुख-प्राप्ति के लिए **भद्रम्**=कल्याण व सुख के साधक यज्ञ को **प्रतिवितन्वते**=प्रतिदिन विस्तृत करते हैं। इन यज्ञों से (क) उनकी वृत्ति दिव्य बनती है (ख) उनका कल्याण होता है (ग) वे उषा व सूर्य का सच्चा पूजन कर पाते हैं। सूर्य के सामने हाथ जोड़ना सूर्य का पूजन नहीं है—सूर्योदय के समय यज्ञादि करना ही सूर्यपूजन है।

भावार्थ—उषा के पीछे आते हुए सूर्य का हमें स्वागत करना चाहिए—उस समय यज्ञादि कर्मों में हमें प्रवृत्त होना चाहिए।

यह यज्ञशील पुरुष सबके हित में प्रवृत्त हुआ हुआ सबके साथ मिलकर चलता है, अतः इसका नाम 'नृमेध' हो जाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है।

१०८. [अष्टोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

ओज+नृम्ण

त्वं न॑ इन्द्रा भ॑र॒ँ ओजो॑ नृ॒म्णं श॑तक्रतो विचर्षणे। आ वी॒रं पृ॑तना॒षह॑म्॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन्—परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमारे लिए **ओजः**=बल को तथा **नृम्णम्**=धन को **आभर**=प्राप्त कराइए। २. हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले **विचर्षणे**=सबके द्रष्टा प्रभो! आप हमें **पृतनाषहम्**=शत्रु-सेनाओं का अभिभव करनेवाले **वीरम्**=वीर सन्तान को **आ** (भर)=प्राप्त कराइए।

भावार्थ—प्रभु का उपासन करते हुए हम बल, धन व वीर सन्तान को प्राप्त करके सुखी जीवनवाले हों।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**ककुबुष्णिक्** ॥

सुम्नम्

त्वं हि नः॑ पि॒ता व॑सो॒ त्वं मा॒ता श॑तक्रतो ब॒भूवि॑थ। अधा॑ ते सु॒म्नमी॑महे॥ २ ॥

१. हे **वसो**=सबको अपने में बसानेवाले प्रभो! **त्वम् हि**=आप ही **नः पिता**=हमारे पिता हैं, हे **शतक्रतो**=अनन्त सामर्थ्य व प्रज्ञानवाले प्रभो! **त्वम्**=आप ही **माता बभूविथ**=माता हैं, २. अतः **अधा**=अब **ते**=आपसे ही हम **सुम्नम्**=सुख को **ईमहे**=माँगते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! आप ही हमारे पिता व माता हो। आपसे ही हम सब सुखों को माँगते हैं।

ऋषिः—**नृमेधः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पुरउष्णिक्** ॥

सुवीर्यम्

त्वां शु॑ष्मिन्पुरुहूत वाज॒यन्त॒मुप॑ ब्रुवे शतक्रतो। स नो॑ रास्व सु॒वीर्य॑म्॥ ३ ॥

१. हे **शुष्मिन्**=शत्रुओं के शोषक बल से सम्पन्न! **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्ति से सम्पन्न प्रभो! **वाजयन्तम्**=हमारे साथ बल का सम्पर्क करनेवाले **त्वाम्**=आपको ही **उपब्रुवे**=मैं समीपता से पुकारता हूँ। २. **सः**=उपासना किये गये वे आप **नः**=मारे लिए **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **रास्व**=दीजिए।

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् प्रभु उपासक को भी शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं। प्रभु हमारे लिए भी सुवीर्य को प्राप्त कराएँ।

'ओज-नृम्ण-सुम्न व सुवीर्य' को प्राप्त करनेवाला यह व्यक्ति प्रशस्त इन्द्रियोंवाला 'गोतम' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

१०९. [नवोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

'स्वादु विषूवान्' मधु का पान

स्वा॒दोरि॒त्था वि॑षू॒वतो॒ मध्वः॑ पिबन्ति गौ॒र्यः॑।
या इन्द्रे॑ण स॒याव॑रीर्वृ॒ष्णा॒ मद॑न्ति शो॒भसे॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म्॥ १ ॥

१. **गौर्यः**=गौरवर्ण गौएँ, अर्थात् व्यसनों में अलिप्त शुद्ध इन्द्रियाँ **मध्वः**=सोम का **पिबन्ति**=पान करती है। आहार से उत्पन्न सोम को—वीर्यशक्ति को जब शरीर में ही सुरक्षित रखा जाता

है तब यही इन्द्रियों का सोमपान होता है। इन्द्रियाँ उस सोम का पान करके जोकि **स्वादोः**=जीवन को स्वाद व माधुर्यवाला बनाता है और **इत्था**=इसप्रकार **विषूवतः**=सारे अंगों में व्याप्त हो जाता है। सब अंगों में व्याप्त होकर उन्हें सशक्त बनाता है। २. सोम-रक्षण से शक्ति-सम्पन्न बनी हुई इन्द्रियाँ वे होती हैं **याः**=जोकि **वृषणा**-सब सुखों का वर्षण करनेवाले **इन्द्रेण**=इन्द्र के साथ **सयावरीः**=गति व प्राप्तिवाली होती हैं। सोमपान के अभाव में इन्द्रियाँ विषयोन्मुख होती हैं। सोमपान करने पर ये आत्मतत्त्व के दर्शन के लिए प्रवृत्त होती हैं। आत्मतत्त्व के दर्शन में प्रवृत्त ये इन्द्रियाँ **मदन्ति**=उल्लास से युक्त होती हैं। **शोभसे**=जीवन की शोभा के लिए होती हैं। **वस्वीः**=निवास को उत्तम करनेवाली होती हैं, परन्तु यह सब होता तभी है जबकि **अनु स्वराज्यम्**=मनुष्य आत्मशासन करनेवाला होता है। आत्मशासन के बाद ही सोम रक्षण सम्भव होता है और तभी इन्द्रियाँ आत्मतत्त्व की ओर गति करती हैं, जीवन शोभामय होता है और हमारा इस शरीर में निवास उत्तमता को लिये हुए होता है।

भावार्थ—हम संयमी बनें। इससे सोम-रक्षण होकर इन्द्रियाँ सशक्त बनेगी। ये हमें आत्मतत्त्व की ओर ले-चलेंगी। उस समय जीवन शोभामय व उत्तम बनेगा।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

'सायक' वज्र

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम्॥ २॥

१. **ताः**=गतमन्त्र में वर्णित शुद्ध इन्द्रियाँ (गौर्यः) **अस्य**=इस आत्मतत्त्व के—इन्द्र के **पृशनायुवः**=(स्पर्शनकामाः) स्पर्शन की कामनावाली, **पृश्नयः** (संस्प्रष्टो भासा नि० २.१४)-ज्योति से युक्त हुई-हुई **सोमम्**=सोम को **श्रीणन्ति**-शरीर में ही परिपक्व करती हैं। सोम को शरीर में सुरक्षित करके विविध शक्तियों का पोषण करती हैं। इस सोम-रक्षण से ही तो आत्मतत्त्व का स्पर्श करनेवाली हो पाएँगी। २. ऐसा होने पर **इन्द्रस्य**=इन इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव को **धेनवः**=ज्ञान-दुग्ध का पान करानेवाली वेदवाणियाँ **प्रियाः**=प्रिय होती हैं और वे वाणियाँ इसके जीवन में **सायकम्**=सब शत्रुओं का अन्त करनेवाले **वज्रम्**=क्रियाशीलतारूप वज्र को **हिन्वन्ति**=प्रेरित करती हैं, अर्थात् ये इसे क्रियाशील बनाती हैं। ३. इसप्रकार ये **वस्वीः**=उसे उत्तम निवासवाला बनाती हैं। ये उसे **स्वराज्यम् अनु**=आत्मशासन के बाद उत्तम निवासवाला बनाती हैं। जितना जितना आत्मशासन होता है, उतना-उतना ही जीवन उत्तम बनता है।

भावार्थ—शरीर में सोम के परिपाक से इन्द्रियाँ आत्मदर्शन करानेवाली होती हैं। सोमपान करनेवाले इस पुरुष को वेदवाणियाँ प्रिय होती हैं। यह उनमें उपदिष्ट कर्मों को करनेवाला होता है। इन कर्मों में लीन हुआ-हुआ यह वासनाओं का शिकार नहीं होता।

ऋषिः—**गोतमः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

नम्रतायुक्त बल

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्॥ ३॥

१. **ताः**=वे इन्द्रियाँ (गौर्यः) **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले **अस्य**=इस इन्द्र (जीवात्मा) के **सहः**=बल को **नमसा**=नमन से—विनीतता के द्वारा **सपर्यन्ति**=पूजित करती हैं। सोम का पान करनेवाली इन्द्रियाँ इन्द्र को सबल बनाती है और इसके बल को विनीतता से युक्त करती हैं।

२. ये इन्द्रियाँ **अस्य**=इस इन्द्र के **पुरूणि**=पालन व पूरणात्मक **व्रतानि**=व्रतों को **सश्चिरे**= सेवित करती हैं। सोमपान करनेवाली इन्द्रियों के द्वारा ही हमारे सब पुण्यकर्म पूर्ण हुआ करते हैं। २. ये इन्द्रियाँ **पूर्वाचित्तये**=सृष्टि से पूर्व वर्तमान प्रभु के ज्ञान के लिए होती हैं। इनके द्वारा सृष्टि के पदार्थों में प्रभु की महिमा का दर्शन होकर प्रभु की सत्ता में हमारा विश्वास दृढ़ हो जाता है। इसप्रकार प्रभुसत्ता में विश्वास कराकर **वस्वीः**=ये इन्द्रियाँ उत्तम निवास को करानेवाली होती हैं। यह उत्तम निवास **स्वराज्यम् अनु**=आत्मशासन के अनुपात में ही होता है।

भावार्थ—सोमपान करनेवाली इन्द्रियाँ हमें नम्रयुक्त बल प्राप्त कराती हैं। हमें व्रतमय जीवनवाला बनाकर प्रभु-दर्शन के योग्य बनाती हैं।

गौरी इन्द्रियोंवाला व्यक्ति अपने ज्ञान को बढ़ाकर उस ज्ञान को ही अपनी शरण बनाता है, अतः 'श्रुतकक्ष' कहलाता है—ज्ञान है शरण-स्थान (Hiding place) जिसका। यह उत्तम शरण स्थानवाला 'सुकक्ष' है। ये श्रुतकक्ष ही अगले सूक्त का ऋषि है—

११०. [दशोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्रुतकक्षः सुकक्षो वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

'स्वाध्याय व स्तवन' के द्वारा सोम का शरीर में स्तोभन

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः॥ १॥

१. उस **मद्वने**=(मद्+वन्) हर्ष का संभजन करनेवाले आनन्दस्वरूप **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिए **नः गिरः**=हमारी ज्ञान की वाणियाँ **सुतं परिष्टोभन्तु**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को शरीर में ही चारों ओर रोकनेवाली हों (स्तोभते-Stops)। शरीर में सोम के सुरक्षित होने पर ही प्रभु की प्राप्ति होती है। २. **कारवः**=क्रियाओं को कुशलता से करने के द्वारा प्रभु का अर्चन करनेवाले स्तोता **अर्कम्**=उस उपासनीय प्रभु का **अर्चन्तु**=पूजन करें। कर्त्तव्यकर्मों को करके उन्हें प्रभु के लिए अर्पित करना ही प्रभु का अर्चन है।

भावार्थ—आनन्दमय प्रभु की प्राप्ति के लिए सोम का रक्षण आवश्यक है। सोम-रक्षण के लिए स्वाध्याय व प्रभु-स्तवन साधन बनते हैं।

ऋषिः—**श्रुतकक्षः सुकक्षो वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

'श्री-पति' विष्णु

यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः। इन्द्रं सुते हवामहे॥ २॥

१. **यस्मिन्**=जिन प्रभु में **विश्वाः श्रियः**=सब लक्ष्मियाँ **अधि**=आधिक्येन निवास करती हैं। जिस प्रभु के विषय में **सप्त**=सातों **संसदः**=होता 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' **रणन्ति**=स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं, उस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को—सब इन्द्रियों को शक्ति देनेवाले प्रभु को **सुते**=इस सोम के सम्पादन व रक्षण के निमित्त **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु ने ही वासना-विनाश द्वारा इस सोम का रक्षण करना है।

भावार्थ—प्रभु ही सब विषयों के आधार हैं। प्रभु ही हमारी कर्ण आदि इन्द्रियों को श्रीसम्पन्न बनाते हैं। इस श्रीसम्पादन के लिए प्रभु ही हमारे शरीरों में सोम का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**श्रुतकक्षः सुकक्षो वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

ज्योतिः, गौः, आयुः

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत। तमिद्वर्धन्तु नो गिरः॥ ३॥

१. **त्रिकद्रुकेषु**=(ज्योतिः, गौः, आयुः) 'हमें ज्योति प्राप्त कराओ, हमारे लिए उत्तम इन्द्रियों

को प्राप्त कराइए (गौः) तथा हमें दीर्घजीवी बनाइए' इसप्रकार तीनों आह्वानों के होने पर (कदि आह्वाने) **चेतनम्**=चेतना को—ज्ञान को देनेवाले **यज्ञम्**=पूजनीय प्रभु को **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष **अलत**=अपने में विस्तृत करते हैं। २. **नः गिरः**=हमारी ये वाणियाँ भी **तम् इत्**=उस प्रभु का ही **वर्धन्तु**=वर्धन करें। हम अपनी वाणियों से प्रभु का ही स्तवन करें। प्रभु हमारे ज्ञान को बढ़ाएँगे, हमें उत्तम इन्द्रियाँ प्राप्त कराएँगे और इसप्रकार हमें प्रशस्त दीर्घ जीवनवाला बनाएँगे।

भावार्थ—देववृत्ति के पुरुष प्रभु को ही पुकारते हैं। प्रभु-स्तवन करते हुए वे ज्ञान व प्रकाश को, उत्तम इन्द्रियों को तथा दीर्घजीवन को प्राप्त करते हैं।

इसप्रकार प्रभु-स्तवन द्वारा अपना पूरण करनेवाला यह ऋषि 'पर्वत' कहलाता है पर्व पूरणे। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

१११. [एकादशोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**पर्वतः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

विष्णु-त्रित आप्त्य

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये। यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जब आप **विष्णवि**=(विष् व्याप्तौ) व्यापक—उदार हृदयवाले पुरुष में **सोमम्**=सोम को **संमन्दसे**=प्रशंसित करते हैं। **यत् वा**=अथवा **घ**=निश्चय से **त्रिते**=(त्रीन् तनोति) 'ज्ञान, कर्म व उपासना' इन तीनों का विस्तार करनेवालों में आप सोम को प्रशंसित करते हैं **आप्त्येः**=आप्तों में—उत्तम पुरुषों में आप इस सोम को प्रशंसित करते हैं, अर्थात् यह सोम-रक्षण ही उन्हें 'विष्णु, त्रित व आप्त्य' बनाता है। एक पुरुष में उदारता 'विष्णु' 'ज्ञान, कर्म व उपासना' तीनों के विस्तार (त्रित) व आप्तता (Aptness आप्त्य) को देखकर और इन बातों को सोममूलक जानकर लोग सोम का प्रशंसन तो करेंगे ही। इस प्रशंसन को करते हुए वे सोम-रक्षण के लिए प्रेरणा प्राप्त करेंगे। २. **यत् वा**=अथवा हे इन्द्र! आप **मरुत्सु**=इन प्राणसाधक पुरुषों में **इन्दुभिः**=इन सुरक्षित सोमकणों से **संमन्दसे**=(to shine) चमकते हैं। सोमकणों का रक्षण ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है और बुद्धि को तीव्र बनाता है। इस तीव्र बुद्धि से प्रभु का दर्शन होता है। '**दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः**'।

भावार्थ—सोम रक्षण से हम उदार-हृदय, ज्ञान, कर्म व उपासना का विस्तार करनेवाले व आप्त बनते हैं। प्राणसाधना होने पर सुरक्षित हुआ-हुआ सोम ही हमें प्रभु-दर्शन के योग्य बनाता है।

ऋषिः—**पर्वतः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

परावति-समुद्रे

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे। अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २ ॥

१. हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **यद्वा**=अथवा आप **परावति**=पराविद्यावालों में—ब्रह्मविद्या को प्राप्त करनेवाले में तथा **समुद्रे**=(समुद्) सदा आनन्दमय स्वभाववाले पुरुष में **अधिमन्दसे**=आधिक्येन चमकते हैं। प्रभु-प्राप्ति का उपाय 'पराविद्या में रुचिवाला होना' तथा 'सदा प्रसन्न रहने का प्रयत्न करना' है। २. हे प्रभो! **अस्माकम्**=हमारी **इत्**=निश्चय से **सुते**=इस सोम सम्पादन की क्रिया के होने पर **इन्दुभिः**=सोमकणों के द्वारा **संरण**=हमारे अन्दर रमणवाले होइए। यह सोम-रक्षण हमें आपके दर्शन का पात्र बनाए।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम (१) पराविद्या में रुचिवाले हों, (२)

सदा आनन्दमय रहें, (३) सोम को अपने अन्दर सुरक्षित करें।

ऋषिः—**पर्वतः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'सुन्वतः यजमानस्य' वृधः

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते। उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ ३ ॥

१. हे **सत्पते**=उत्तम कर्मों के रक्षक प्रभो! आप **यत् वा**=निश्चय से **सुन्वतः**=सोम का सम्पादन करनेवाले—अपने अन्दर सोम को सुरक्षित करनेवाले **यजमानस्य**=यज्ञशील पुरुष के **वृधः असि**=बढ़ानेवाले हैं। इस यज्ञशील सोमी पुरुष को आप सदा बढ़ाते हैं। २. **वा**=अथवा उसके आप बढ़ानेवाले हैं **यस्य**=जिसके **उक्थे**=स्तोत्र में आप **इन्दुभिः**=सोमकणों के द्वारा **संरण्यसि**=सम्यक् प्रीतिवाले होते हैं। जो भी स्तोता सोमकणों का रक्षण करता हुआ प्रभु-स्तवन करता है, वह प्रभु का प्रिय बनता है।

भावार्थ—प्रभु सोमरक्षक यज्ञशील पुरुष का वर्धन करते हैं। सोम-रक्षक पुरुष से किया जानेवाला स्तवन प्रभु को प्रिय होता है।

यह प्रभु का स्तोता प्रभु को अपनी शरण बनाता है, अतः 'सु-कक्ष'-उत्तम शरणवाला (Hiding place) कहलाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

११२. [द्वादशोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**सुकक्षः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

इन्द्र-वृत्रहन्-सूर्य

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १ ॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **वृत्रहन्**=कामनाओं को विनष्ट करनेवाले व **सूर्य**=सूर्य की भाँति निरन्तर क्रियाशील जीव! **यत्**=जब **अद्य**=आज या जब भी कभी तू **उत्**=प्रकृति से ऊपर उठकर **अभि अगाः**=मेरी ओर आता है तब **तत् सर्वम्**=वह सब हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **ते वशे**=तेरी इच्छा पर निर्भर करता है। तू दृढ़ संकल्प करेगा, वासनाओं को विनष्ट करके ज्ञान सूर्य से दीप्त जीवनवाला बनेगा तो अवश्य मेरी ओर (प्रभु की ओर) आनेवाला होगा। २. प्रभु की ओर आने पर हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **तत् सर्वम्**=यह सब संसार **ते वशे**=तेरे वश में होगा। प्रभु को प्राप्त कर लेने पर तुझे ये सब ब्रह्माण्ड प्राप्त हो जाएगा।

भावार्थ—हम प्रभु-प्राप्ति का दृढ़ संकल्प करें। यह संकल्प हमें वासना-विनाश में प्रवृत्त करेगा और तब हमारे जीवन में वासनाओं के मेघों का विलय होकर ज्ञानसूर्य का उदय होगा।

ऋषिः—**सुकक्षः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

अमरत्व का ज्ञान

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे। उतो तत्सत्यमित्तव ॥ २ ॥

१. हे **प्रवृद्ध**=ज्ञान के दृष्टिकोण से वृद्धि को प्राप्त हुए-हुए **सत्पते**=उत्तम कर्मों के रक्षक जीव! **यद् वा**=जब निश्चय से **'न मरा'**='मैं मरता नहीं। मैं तो अमर हूँ' **इति मन्यसे**=इसप्रकार तू जानता है तो **उत उ**=निश्चय से **तव**=तेरा **तत्**=वह अपने को अजरामर जानना **सत्यम् इत्**=सत्य ही है। २. अपने अमरत्व को पहचानना ही वास्तिवक सत्य को पाना है।

भावार्थ—हम आने अमरत्व को पहचानकर शरीरादि से ऊपर उठें। यही ज्ञान हमें प्राकृतिक भोगों की तुच्छता को स्पष्ट करता हुआ उनके बन्धन में पड़ने से बचाएगा।

ऋषिः—**सुकक्षः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सोम-रक्षण द्वारा शरीर व मस्तिष्क का सुन्दर निर्माण

ये सोमा॑सः परा॒वति॒ ये अ॑र्वा॒वति॑ सुन्वि॒रे। सर्वां॒स्ताँ इ॑न्द्र गच्छसि॥ ३॥

१. ये **सोमासः**=जो सोमकण **परावति**=उस सुदूर मस्तिष्करूप द्युलोक के निमित्त **सुन्विरे**=उत्पन्न किये गये हैं, अथवा **ये**=जो **अर्वावति**=समीपस्थ इस शरीररूप पृथिवीलोक के निमित्त उत्पन्न किये गये हैं, हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **तान् सर्वान्**=उन सब सोमकणों को **गच्छसि**=प्राप्त होता है। २. अपने अमरत्व को समझकर विषयों से ऊपर उठने पर ही सोमकणों का रक्षण होता है। इनके रक्षण से ही मस्तिष्करूप द्युलोक दीप्त तथा शरीररूप पृथिवीलोक दृढ़ बनता है।

भावार्थ—हम अपने अमरत्व को पहचानें और विषयों की तुच्छता को समझकर उनमें न फँसते हुए सोमणों का रक्षण करें। इसप्रकार मस्तिष्क को दीप्त बनाएँ और शरीर को दृढ़ करें।

सोम-रक्षण द्वारा तेजस्वी बननेवाला यह ऋषि 'भर्गः' (तेजःपुञ्ज) होता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

११३. [त्रयोदशोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**भर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

सूक्ष्मार्थग्राहिणी बुद्धि

उ॒भयं॑ शृणव॑च्च न॒ इन्द्रो॑ अ॒र्वागि॒दं वचः॑।
स॒त्राच्या॑ म॒घवा॒ सोम॑पीतये धि॒या शवि॑ष्ठ॒ आ ग॑मत्॥ १॥

१. **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **नः**=हमारे लिए **उभयम् इदं वचः**=प्रकृति व आत्मा दोनों का ज्ञान देनेवाले इस वेदवचन को **अर्वाक्**=अन्तर्हृदय में (हमारे अभिमुख) **शृणवत्**=(अन्तर्भावितण्यर्थ) सुनाएँ। हृदयस्थ प्रभु से हम उन ज्ञान की वाणियों को सुन पाएँ जोकि प्रकृति व आत्मा का ज्ञान देनेवाली हैं। २. वह **शविष्ठः**=अतिशयेन शक्तिशाली **मघवा**=ज्ञानरूप ऐश्वर्यवाले प्रभु **सत्राच्या**=सत्य-ज्ञान के साथ गतिवाली—सत्यज्ञान को प्राप्त करानेवाली **धिया**=बुद्धि के साथ **आगमत्**=हमें प्राप्त हों। ये प्रभु **सोमपीतये**=सोम के रक्षण के लिए हों। सोम रक्षण द्वारा ही वे हमें उस सूक्ष्मार्थग्राहिणी बुद्धि को प्राप्त कराएँगे जो हमें प्रकृति व आत्मा के तत्त्व को समझने के योग्य बनाएगी।

भावार्थ—प्रभु हमें प्रकृति व आत्मा का ज्ञान देनेवाले वेदवचनों को सुनाएँ। सोम रक्षण के द्वारा उस बुद्धि को प्राप्त कराएँ जोकि सूक्ष्म अर्थों के सत्यतत्त्व को जानने में समर्थ हो।

ऋषिः—**भर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

'स्वराट् वृषभ' प्रभु

तं हि स्व॒राजं॑ वृष॒भं तमोज॑से धि॒षणे॑ निष्टत॒क्षतुः॑।
उ॒तोप॒मानां॑ प्रथ॒मो नि षी॑दसि॒ सोम॑काम॒ं हि ते॒ मनः॑॥ २॥

१. **तम्**=उस **स्वराजम्**=स्वयं देदीप्यमान **वृषभम्**=शक्तिशाली प्रभु को **हि**=निश्चय से **धिषणे**=द्यावापृथिवी **निष्टतक्षतुः**=(संस्कर्तुः) संस्कृत करते हैं। द्युलोक प्रभु की दीप्ति का आभास देता है तो पृथिवीलोक प्रभु की शक्ति व दृढ़ता का 'येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा'। प्रभु ने ही वस्तुतः द्युलोक को तेजस्वी व पृथिवीलोक को दृढ़ बनाया है। **तम्**=उस प्रभु को ही हम **ओजसे**=बल की प्राप्ति के लिए अपने अन्दर देखने का प्रयत्न करें। २. **उत**=और हे प्रभो! आप

उपमानाम्=उपमानभूत देवों में **प्रथमः**=मुख्य होते हुए **निषीदसि**=हमारे हृदयों में निषण्ण होते हैं। हमने अपने पिता प्रभु-जैसा ज्ञानी व शक्तिशाली बनने का प्रयत्न करना है। हमारे लिए यह कहा जाए कि यह प्रभु के समान ज्ञानी व शक्तिशाली है। वस्तुतः ऐसे ही व्यक्ति जनता को प्रभु के अवतार प्रतीत होने लगते हैं। **ते मनः**=आपके प्रति प्रवण मन **हि**=निश्चय से **सोमकामम्**=सोम की कामनावाला होता है। प्रभु-प्रवण मन विलास में नहीं जाता और इसप्रकार सोम का रक्षण हो पाता है।

भावार्थ—द्युलोक में स्वराट् प्रभु का प्रकाश है तो पृथिवी में शक्तिशाली प्रभु की दृढ़ता। इस प्रभु का स्मरण करते हुए हम भी प्रकाश व शक्ति का सम्पादन करें। प्रभु-प्रवण मन सदा सोम का रक्षक होता है।

अपने अन्दर प्रकाश व शक्ति का सम्पादन करनेवाला यह 'सोभरि' बनता है—अपना सम्यक् भरण करनेवाला। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

११४. [चतुर्दशोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**सोभरिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**ककुबुष्णिक्** ॥

युधा इत् आपित्वमिच्छसे

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि। युधेदापित्वमिच्छसे॥ १॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वम्**=आप **अभ्रातृव्यः**=शत्रुरहित **असि**=हैं तथा **जनुषा**=पूर्णरूप से शक्तियों के प्रादुर्भाव के द्वारा **सनात्**=सदा से ही **अना**=अनेतृक व **अनापिः**=अबन्धु (असि) हैं। आप सबके नेता हैं—आपका कोई नेता नहीं। आपके समान शक्तियोंवाला कोई और नहीं, अतः समानता के अभाव में आपका कोई बन्धु भी नहीं। आप उपासकों के मित्र अवश्य होते हैं, परन्तु **युधा**=युद्ध के द्वारा **इत्**=ही **आपित्वम्**=मित्रभाव को **इच्छसे**=चाहते हैं, अर्थात् जब एक व्यक्ति 'काम-क्रोध-लोभ' आदि से युद्ध करता है, इन्हें जीतने का प्रयत्न करता है, तभी प्रभु इसके मित्र होते हैं। प्रभु जितनी पूर्णता कठिन है, परन्तु उस पूर्णता की ओर चलनेवाला ही प्रभु की मित्रता का पात्र होता है।

भावार्थ—प्रभु शत्रुरहित हैं। प्रभु का कोई नेता नहीं, वे सबके नेता हैं। समानता के द्वारा कोई प्रभु का बन्धु नहीं—प्रभु की बाराबरी का नहीं। जो भी 'काम, क्रोध, लोभ' आदि से संघर्ष करता है, यह प्रभु का मित्र बन पाता है।

ऋषिः—**सोभरिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**सतोबृहती** ॥

सम्पत्ति में विस्मरण, विपत्ति में ही स्मरण

नकीं रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे॥ २॥

१. हे प्रभो! आप **रेवन्तम्**=धनवान् को—यज्ञ आदि में धन का विनियोग न करनेवाले पुरुष को **सख्याय**=मित्रता के लिए **नकिः विन्दसे**=नहीं प्राप्त करते। ऐसे अयज्ञशील धनी के आप कभी मित्र नहीं होते। **ते**=वे **सुराश्वः**=(सुर ऐश्वर्ये) ऐश्वर्य से फूलनेवाले लोग **पीयन्ति**=हिंसात्मक कर्मों में प्रवृत होते हैं। अभिमान में खूब फूले हुए ये लोग प्रभु को भूल जाते हैं। २. **यदा**=जब आप **नदनुं कृणोषि**=गर्जना करते हैं, अर्थात् जब ज़रा भूकम्प-सा आता है तब सब सम्पत्ति हिलती-सी प्रतीत होती है तब आप **समूहसि**=(change, modify) उनके जीवन में परिवर्तन लाते हैं। **आत् इत्**=उस समय ही **पिता इव हूयसे**=पिता के समान आप पुकारे जाते हैं। वे

धनी व्याकुलता होने पर परिवर्तित जीवनवाले बनते हैं और प्रभु की ओर झुकाववाले हो जाते हैं।

भावार्थ—जो धनी धन के मद में फूले हुए हिंसात्मक कर्मों में प्रवृत होते हैं, प्रभु उनके कभी मित्र नहीं होते। जब कभी सम्पत्ति विनष्ट होने लगती है, तभी ये धनी व्याकुल होकर प्रभु का स्मरण करते हैं और पिता की तरह प्रभु को पुकारते हैं।

सम्पत्ति में भी प्रभु का स्मरण करनेवाला प्रभु का प्रिय बनता है, अतः 'वत्स' कहलाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

११५. [पञ्चदशोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वत्सः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सूर्य के समान

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ। अहं सूर्यइवाजनि॥ १॥

१. **अहम्**=मैं **इत् हि**=निश्चय से **पितुः**=अपने पिता प्रभु से **ऋतस्य**=सत्यज्ञान की **मेधाम्**=बुद्धि को **परिजग्रभ**=ग्रहण करता हूँ। प्रभु की उपासना करता हुआ हृदयस्थ प्रभु से प्रकाश प्राप्त करता हूँ। २. इस प्रकाश को प्राप्त करके **अहम्**=मैं **सूर्य इव**=सूर्य की भाँति **अजनि**=हो गया हूँ। प्रभु से दिया गया प्रकाश मुझे इसप्रकार चकमा देता है जैसेकि सूर्य।

भावार्थ—हम प्रभु का ध्यान करें। हृदयस्थ प्रभु से प्रकाश को प्राप्त करें। यह प्रकाश हमें सूर्य की भाँति दीप्त जीवनवाला बना देगा।

ऋषिः—**वत्सः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सनातन ज्ञान के द्वारा बल की प्राप्ति

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्। येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे॥ २॥

१. गतमन्त्र के अनुसार मैं प्रभु से प्रकाश प्राप्त करता हूँ। **अहम्**=मैं **प्रत्नेन**=सनातन—सदा सृष्टि के प्रारम्भ में दिये जानेवाले **मन्मना**=ज्ञान से **गिरः शुम्भामि**=अपनी वाणियों को ऐसे अलंकृत करता हूँ **कण्ववत्**=जैसेकि एक मेधावी पुरुष किया करता है। वस्तुतः यह सनातन ज्ञान ही मुझे मेधावी बनाता है। २. उस ज्ञान से मैं अपनी वाणियों को अंकृत करता हूँ, **येन**=जिससे **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **इत्**=निश्चय से **शुष्मम्**=शत्रु-शोषक बल को **दधे**=धारण करता है। इस ज्ञानाग्नि से ही इन्द्र सब असुरों को दग्ध करनेवाला होता है।

भावार्थ—सनातन वेदज्ञान मेरी वाणियों को अलंकृत करे। इस ज्ञान के द्वारा जितेन्द्रिय बनता हुआ मैं सब वासनारूप शत्रुओं के शोषक बल को धारण करूँ।

ऋषिः—**वत्सः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'ऋषि' नकि 'प्राकृत' (प्रकृति में फँसा हुआ)

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः। ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः॥ ३॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! ऐसे भी लोग हैं **ये**=जो **त्वाम्**=आपको **न तुष्टुवुः**=स्तुत नहीं करते। प्रकृति के भोगों में फँसे हुए, उन्हीं के जुटाने में यत्नशील वे 'जगदाहुरनीश्वरम्'=संसार को ईश्वररहित ही कहते हैं। वे आपकी सत्ता से ही इनकार करते हैं **च**=और इनके विरीत वे **ऋषभ**=तत्त्वद्रष्टा पुरुष भी हैं **ये**=जोकि आपका **तुष्टुवुः**=स्तवन करते हैं—सब कार्यों को आपसे ही होता हुआ जानते हैं। २. इसप्रकार द्विविध लोगों को देखता हुआ मैं तो आपका स्तवन

करनेवाला ही बनूँ। **मम**=मेरी तो **इत्**=निश्चय से **सुष्टुतः**=उत्तमता से स्तुत हुए-हुए आप **वर्धस्व** (वर्धयस्व)=वृद्धि का कारण बनें। आपका स्तवन करता हुआ मैं आप-जैसा ही बनने का यत्न करूँ। आपका स्तवन मेरी वृद्धि का कारण बने।

भावार्थ—प्राकृतिक भोगों में फँसे हुए लोग ईश्वर का स्मरण नहीं करते। तत्त्वद्रष्टा ऋषि प्रभु की स्तुति करते हैं। प्रभु-स्तवन करता हुआ मैं वृद्धि को प्राप्त करूँ।

प्रभु-स्तवन करता हुआ यह पवित्र प्रभु को अपना अतिथि बनाता है अथवा निरन्तर प्रभु की ओर चलता है (अत सातत्यगमने) और इसप्रकार 'मेध्यातिथि' नामवाला होता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

११६. [षोडशोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

मा भूम निष्ट्याः इव

मा भूम निष्ट्याइवेन्द्र त्वदरणाइव। वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! हम **निष्ट्याः इव**=घर से बहिष्कृत-से **मा भूम**=न हो जाएँ। आप ही तो हमारे सच्चे माता व पिता हैं। हम आपसे दूर न हो जाएँ और परिणामतः **त्वत्**=आपसे **अरणाः** (अरमणाः) आनन्द को न प्राप्त होनेवाले न हो जाएँ। हमें आपकी उपासना में ही आनन्द आये। २. इसप्रकार आपसे बहिष्कृत न हुए-हुए और आपकी उपासना में आनन्द लेनेवाले हम **प्रजहितानि**=शाखा-पत्र आदि से **त्यक्त**=क्षीण **वनानि न**=वनों की भाँति (मा भूम) मत हो जाएँ, अर्थात् हम पुत्र-पौत्रों से वियुक्त-से न हो जाएँ। हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! हम **दुरोषासः**=सब बुराइयों को दग्ध करनेवाले होते हुए **अमन्महि**= आपका स्तवन करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु से बहिष्कृत न हो जाएँ। प्रभु की उपासना में ही आनन्द का अनुभव करें। पुत्र-पौत्रों से भरे परिवारवाले हों और बुराइयों का दहन करते हुए आपका स्तवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

अनाशवः-अनुग्रासः

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन्। सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ २ ॥

१. हे **वृत्रहन्**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **अनाशवः**=बहुत हबड़-दबड़ में न पड़े हुए, अर्थात् शान्तभाव से सब कार्यों को करते हुए **च**=और **अनुग्रासः**=उग्र व क्रूर, क्रोधी वृत्तिवाले न होते हुए हम **इत्**=निश्चय से **अमन्महि**=आपका मनन व स्तवन करते हैं। २. हे **शूर**=हमारे शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **सकृत्**=एक बार तो **ते**=आप से दिये गये **महता राधसा**=इस महान् ज्ञानैश्वर्य के साथ **स्तोमम् अनु**=आपके स्तवन के अनुपात में **सु मुदिमहि**-उत्तम आनन्द का अनुभव करें। ज्ञानपूर्वक आपका स्तवन हमें आनन्दित करनेवाला हो।

भावार्थ—हम शान्त व मृदु स्वभाव बनकर प्रभु का स्तवन करते हैं। ज्ञानपूर्वक किये जाते हुए इन प्रभु-स्तवनों में ही आनन्द का अनुभव करते हैं।

यह ज्ञानी स्तोता अतिशयेन उत्तम जीवनवाला बनता है, अतः 'वसिष्ठ' कहलाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

११७. [सप्तदशोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिपदागायत्री** ॥

अहिंसक सोम (न अर्वा)

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **सोमं पिब**=अपने अन्दर इस सोम का पान कर—इसे तू शरीर में ही व्याप्त कर। यह **त्वा मन्दतु**=तुझे आनन्दित करनेवाला हो। हे **हर्यश्व**=कमनीय इन्द्रियाश्वोंवाले इन्द्र! उस सोम का तू पान कर **यम्**=जिसको **ते**=तेरे लिए **अद्रिः**=उस आदरणीय प्रभु ने **सुषाव**=उत्पन्न किया है। प्रभु से उत्पन्न किये गये इस सोम का समुचित रक्षण करना ही चाहिए। २. वह सोम **सोतुः**=स्तोता की—उत्पन्न करनेवाले की **बाहुभ्याम्**=बाहुओं से **सुयतः**=सम्यक् यत होता है, अर्थात् यदि सोम का सम्पादन करनेवाला यह व्यक्ति क्रियाशील बना रहता है तो वह वासनाओं से आक्रान्त न होकर इस सोम को शरीर में ही सुरक्षित कर पाता है। रक्षित हुआ-हुआ यह सोम **न अर्वा**=हिंसित करनेवाला नहीं होता (अर्व to kill) रोगकृमियों का संहार करता हुआ यह सोम हमारा रक्षण ही करता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम आनन्द की वृद्धि का कारण बनता है। यह हमें रोगों से हिंसित नहीं होने देता। सतत क्रियाशील बने रहना ही सोम रक्षण का साधन है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिपदागायत्री** ॥

'मद-युज्य-चारु' सोम

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि। स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **प्रभूवसो**=प्रभूत ज्ञानैश्वर्य के स्वामिन्! **सः**=वह सोम शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ **त्वाम्**=तुझे **ममत्तु**=आनन्दित करे। २. वह सोम तुझे आनन्दित करे **यः**=जो **ते**-तेरे लिए **मदा**=उल्लास को पैदा करनेवाला है, **युज्यः**=तुझे प्रभु से मिलानेवाला है तथा **चारुः अस्ति**-जीवन को सुन्दर ही सुन्दर बनानेवाला है और हे **हर्यश्व**=कमनीय इन्द्रियाश्वोंवाले जीव! वह सोम तुझे आनन्दित करे **येन**=जिसके द्वारा तू **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **हंसि**=विनष्ट करता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम उल्लास का जनक है, हमें प्रभु से मिलानेवाला है, जीवन को सुन्दर बनानेवाला है। इस सोम के द्वारा वासनाओं का विनाश होता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिपदागायत्री** ॥

वसिष्ठ का प्रभु-अर्चन

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

१. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **मे**=मेरी **इमां वाचम्**=इस स्तुतिवाणी को **सु**=अच्छी प्रकार **आ**=सर्वथा **बोध**=जानिए **यः**=जिस **ते**=आपकी **प्रशस्तिम्**=स्तुतिरूप वाणी को **वसिष्ठः**=वशियों में श्रेष्ठ अथवा उत्तम निवासवाला यह उपासक **अर्चति**=पूजित करता है, अर्थात् मुझे आप इसप्रकार ज्ञान दीजिए कि मैं वसिष्ठ बनकर आपका स्तवन करता हुआ आपका पूजन करूँ। २. हे प्रभो! **इमा ब्रह्म**=इन ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुतिवाणियों को **सधमादे**=मिलकर आनन्दित होने के इस हृदयरूप स्थान में **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन कीजिए। हम हृदय में आपका ध्यान करते हुए इन ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुति-वाणियों में आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—हम वसिष्ठ बनकर ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुति-वाणियों द्वारा हृदय में प्रभु का ध्यान करें। ये स्तुतिवाणियाँ हमें प्रभु का प्रिय बनाएँ।

यह स्तोता सोम-रक्षण द्वारा 'भर्गः' बनता है तथा निरन्तर प्रभु की ओर चलता हुआ 'मेध्यातिथि' होता है। अगले सूक्त में १-२ का ऋषि 'भर्गः' है। ३-४ का 'मेध्यातिथिः'—

११८. [अष्टादशोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**भर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

'ऐश्वर्य, यश व वसु'

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि॥ १॥

१. हे **शचीपते**=शक्तियों (कर्मों) व प्रज्ञानों के स्वामिन्! **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **विश्वाभिः**=सब **ऊतिभिः**=रक्षणों के द्वारा **उ**=निश्चय से **सुशग्धि**=सब उत्तम पदार्थों को दीजिए। २. **भगं न**=ऐश्वर्यपुञ्ज के समान **यशसम्**=यशस्वी तथा **वसुविदम्**=सब वसुओं को प्राप्त करानेवाले **त्वा**=आपको हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **हि अनु चरामसि**=निश्चय से उपासित करते हैं। आपकी उपासना हमें भी 'ऐश्वर्यशाली', यशस्वी-व सब वसुओं (धनों) को प्राप्त करनेवाला बनाएगी।

भावार्थ—वे शचीपति प्रभु हमें रक्षित करते हुए सब उत्तम पदार्थ प्राप्त कराते हैं। प्रभु की उपासना हमें 'ऐश्वर्य' व वसुओं को देती है।

ऋषिः—**भर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

पौरः

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर॥ २॥

१. हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **अश्वस्य**=कर्मों में व्याप्त होनेवाली, कर्मेन्द्रियों के आप **पौरः**=पूरयिता **असि**=हैं। **गवाम्**=अर्थों की गमक इन्द्रियों के आप **पुरुकृत्**=पालन व पूरण करनेवाले हैं। आप हमारे लिए **हिरण्ययः उत्सः**=ज्योतिर्मय स्रोत के समान हैं। २. **त्वे**=आपमें **दानम्**=हमारे लिए देय धन **नकिः हि**=नहीं ही **परिमर्धिषत्**=हिंसित होता, अर्थात् आप सदा हमारे लिए इन धनों को प्राप्त कराते हैं। **यत् यत् यामि**=जो-जो मैं आपसे माँगता हूँ **तत**=उसे **आभर**=हमारे लिए प्राप्त कराइए।

भावार्थ—प्रभु हमारी ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का पूरण करनेवाले हैं। हमारे लिए ज्ञान के स्रोत हैं। जो कुछ माँगते हैं, उसे हमारे लिए देते हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

इन्द्र के आराधन से चार लाभ

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये॥ ३॥

१. **इन्द्रम् इत्**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु को ही **प्रयति अध्वरे**=इस चलते हुए जीवन-यज्ञ के निमित्त, अर्थात् जीवन-यज्ञ की रक्षा के लिए पुकारते हैं। **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **देवतातये**=दिव्यगुणों के विस्तार के लिए **हवामहे**=पुकारते हैं। २. **इन्द्रम्**=उस शत्रुविद्रावक

प्रभु को ही **समीके**=संग्रामों में पुकारते हैं। प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर हम शत्रुओं का विद्रावण कर पाएँगे। **वनिनः**=प्रभु का संभजन करनेवाले हम **धनस्य सातये**=धन की प्राप्ति के लिए **इन्दम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को पुकारते हैं।

भावार्थ—प्रभु की आराधना से ही (१) जीवन-यज्ञ सुरक्षितरूप में चलता है (२) दिव्यगुणों का विस्तार होता है ३. संग्रामों में हम विजयी बनते हैं और (३) धनों की प्राप्ति में समर्थ होते हैं।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (विषमा-बृहती+समा-सतोबृहती)**॥

इन्द्र की महिमा

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः॥ ४॥

१. **इन्द्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु **मह्ना**=अपनी महिमा से **रोदसी**=द्यावापृथिवी में **शवः**=बल को **पप्रथत्**=विस्तृत करते हैं। द्यावापृथिवी में सर्वत्र प्रभु की शक्ति ही कार्य कर रही है। **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **सूर्यम्**=सूर्य को **अरोचयत्**=दीप्त करते हैं। सूर्य आदि सब ज्योतिर्मय पिण्ड प्रभु की दीप्ति से ही दीप्त हो रहे हैं 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'। २. **ह**-निश्चय से **इन्द्रे**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में **विश्वा भुवनानि**=सब भुवन **येमिरे**=नियमित हो रहे हैं। प्रभु के शासन में ही वे सब लोक-लोकान्तर अपनी-अपनी मर्यादा में हैं। **इन्द्रे**=उस शक्तिशाली प्रभु में ही **इन्दवः**=शक्तिशाली **सुवानासः** (स्वनाः)=शब्द हैं। प्रभु इन शब्दों से ही लोक-लोकान्तरों का निर्माण करते हैं। शब्दगुणक आकाश प्रभु से प्रादुर्भूत होता है 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'। इस शब्दगुणक आकाश से वायु आदि के क्रम से सृष्टि का विस्तार प्रभु ही करते हैं।

भावार्थ—द्यावापृथिवी में सर्वत्र प्रभु की शक्ति का विस्तार है। प्रभु ही सूर्य को दीप्त करते हैं—सब भुवन प्रभु द्वारा नियन्त्रित होते हैं। प्रभु में ही शक्तिशाली शब्दों का निवास है।

इन्द्र का स्तवन करता हुआ यह स्तोता अपने कर्तव्यों में तत्पर होकर 'आयु' कहलाता है (एति)। अगले सूक्त में प्रथम मन्त्र का यही ऋषि है। द्वितीय मन्त्र का ऋषि 'श्रुष्टिगु' है—खूब समृद्ध ज्ञानेन्द्रियोंवाला।

११९. [एकोनविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**आयुः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

वेदवाणी द्वारा बुद्धिवर्धन

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत। पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत॥ १॥

१. **पूर्व्यम्**=पालन व पूरण में उत्तम **मन्म**=मननीय स्तोत्र **अस्तावि**=हमसे स्तुत होता है। हम प्रभु का विचारपूर्वक स्तवन करते हैं—यह स्तवन हमारी लक्ष्यदृष्टि को पैदा करता हुआ हमारा पूरण करता है। **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिए **ब्रह्म वोचत**=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करो। २. **ऋतस्य**=सत्यज्ञान की **पूर्वीः**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली **बृहतीः**=ये वर्धन की हेतुभूत वाणियाँ **अनूषत**=हमसे स्तुत होती हैं। इस वेदवाणी के स्तवन से **स्तोतुः**=स्तवन करनेवाले की **मेधा**=बुद्धियाँ **असृक्षत**=सृष्ट होती हैं। वेदवाणियों का अध्ययन बुद्धियों की वृद्धि का कारण बनता है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु-प्राप्ति के लिए ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करें।

ये वेदवाणियाँ हमारी बुद्धि का वर्धन करनेवाली होती हैं।

ऋषिः—**श्रुष्टिगुः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

तुरण्यवः-विप्रासः

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ २ ॥

१. **तुरण्यवः**=क्षिप्रकारी, कर्मकुशल **विप्रासः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले लोग **मधुमन्तम्**=अत्यन्त माधुर्यवाले **घृतश्चुतम्**=हमारे जीवनों में दीप्ति को आसिक्त करनेवाले **अर्कम्**=पूजनीय प्रभु का **आनृचुः**=अर्चन करते हैं। २. इस प्रभु के अर्चन से **अस्मे**=हमारे लिए **रयिःपप्रथे**=ऐश्वर्य का विस्तार होता है। **वृष्ण्यं शवः**=हमें सुखों का सेचन करनेवाला बल प्राप्त होता है। **अस्मे**=हमारे लिए **सुवानासः**=उत्पन्न होते हुए सोमकण **इन्दवः**=शक्तिशाली बनानेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का अर्चन करें। हमें इस अर्चन से ऐश्वर्य व शक्ति प्राप्त होगी। हमारे अन्दर सुरक्षित सोमकण हमें तेजस्वी व ओजस्वी बनाएँगे। प्रभु की उपासना जीवन को मधुर व ज्ञानदीप्त बनाती है।

यह प्रभु का उपासक अन्ततः 'देवातिथि' बनता है—प्रभु को अपना अतिथि बनाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

१२०. [विंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**देवातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

सर्वव्यापक प्रभु

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जो आप **अपाग्**=पूर्व व पश्चिम में **उदग् न्यग् वा**=वा उत्तर व दक्षिण में **नृभिः**=मनुष्यों से **हूयसे**=पुकारे जाते हैं। वे आप **सिमः**=सब दिशाओं में विद्यमान है। आप कहाँ नहीं हैं? आप **पुरू**=खूब ही **नृषूतः असि**=उन्नति-पथ पर चलनेवालों के सारथि हैं। २. **आनवे**=(अन प्राणने) आप इन नर मनुष्यों को प्राणित व उत्साहित करनेवाले हैं। हे **प्रशर्ध**=प्रकृष्ट शक्ति-सम्पन्न प्रभो! आप **तुर्वशे असि**=त्वरा से शत्रुओं को वश में करने के लिए होते हैं। प्रभु का भक्त प्रभु से शक्ति व उत्साह प्राप्त करके शत्रुओं को शीघ्रता से वश में करनेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु सर्वव्यापक हैं। उन्नति पथ पर चलनेवालों के पथ के सारथि होते हैं। उन्हें उत्साह व शक्ति देते हैं। शत्रुओं को वशीभूत करनेवाले हैं।

ऋषिः—**देवातिथिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)** ॥

'रुम, रुशम, श्यावके, कृप'

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत् वा**=या तो **रुमे** (रु शब्दे)=स्तुतिशब्दों का उच्चारण करनेवाले पुरुष में, या **रुशमे**=(रुश् to kill) स्तुतिशब्दों के उच्चारण के साथ शत्रु-संहार

करनेवाले में तथा **श्यावके**=शत्रुसंहार के उद्देश्य से ही निरन्तर गतिशील पुरुष में (श्यैङ् गतौ) और **कृपे**=(कृप् सामर्थ्ये) शक्तिशाली पुरुष में **रुचा**=समवाय-(मेल) वाले होते हुए आप **मादयसे**=इन उपासकों को आनन्दित करते हैं। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **स्तोमवाहसः**=स्तुतिसमूहों का धारण करनेवाले **कण्वासः**=बुद्धिमान् लोग **ब्रह्मभिः**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित होनेवाली इन स्तुतिवाणियों से **त्वा यच्छन्ति**=आपके प्रति अपने को दे डालते हैं। **आगहि**=आप इन स्तोताओं को प्राप्त होइए।

भावार्थ—प्रभु उन्हें प्राप्त होते हैं जो (१) स्तुतिशब्दों का उच्चारण करते हैं (२) वासनाओं का संहार करते हैं (२) गतिशील हैं तथा (३) शक्तिशाली बनते हैं। स्तोता प्रभु के प्रति अपना अर्पण करते हैं—प्रभु इन्हें प्राप्त होते हैं।

प्रभु को प्राप्त करनेवाला यह स्तोता अतिशयेन उत्कृष्ट जीवनवाला 'वसिष्ठ' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है।

१२१. [एकविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**देवातिथिः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

ईशान का ध्यान

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः॥ १॥

१. हे **शूर**=हमारे 'काम, क्रोध, लोभ' रूप शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! हम **अदुग्धाः धेनवः**=जो दुग्धदोह नहीं हो गईं, अर्थात् जो इतनी वृद्ध नहीं हो गईं कि अब दूध देंगी ही नहीं, उन गौओं के समान, अर्थात् अवृद्ध ही—तरुणावस्था में ही **त्वा अभिनोनुमः**=आपको प्रातः व सायं खूब ह स्तुत करते हैं। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप ही **अस्य जगतः**=इस जंगम संसार के **ईशानम्**=ईशान हैं। आप ही **तस्थुषः ईशानम्**=सम्पूर्ण स्थावर जगत् के भी स्वामी हैं। आप **स्वर्दृशम्**=सूर्य के समान दिखते हैं 'ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः' अथवा सबका ध्यान करनेवाले आप ही हैं (Look after)। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आप ईशान हैं और सारे ब्रह्माण्ड के आप पालक हैं।

भावार्थ—हम तरुणावस्था में ही सदा प्रातः-सायं प्रभु का स्मरण करें। प्रभु ही हमारे शत्रुओं का विनाश करेंगे और ये ही हम सबके स्वामी व पालनकर्त्ता हैं।

ऋषिः—**देवातिथिः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)**॥

अद्वितीय प्रभु

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वावान्**=आपके समान **न अन्यः दिव्यः**=न तो कोई अन्य दिव्य सत्ता, **न पार्थिवः**=न ही पार्थिव सत्ता **न जातः**=न तो पैदा हुई है और **न**=न ही **जनिष्यते**=पैदा होगी। आप अद्वितीय हैं। २. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **अश्वायन्तः**=उत्तम कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करने की कामनावाले होते हुए, **गव्यन्तः**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियों की कामना करते हुए **वाजिनः**=उत्तम शक्तिवाले होते हुए हम **त्वा हवामहे**=आपको ही पुकारते हैं। आपका आराधन ही हमें उत्तम इन्द्रियों व शक्ति को प्राप्त कराएगा।

भावार्थ—हम प्रातः-सायं अद्वितीय प्रभु को ही पुकारते हैं। वे हमें उत्तम इन्द्रियों व शक्ति प्राप्त कराएँगे।

उत्तम इन्द्रियों व शक्ति को प्राप्त करके ही हम सुखों का निर्माण करनेवाले 'शुनःशेप' बन सकेंगे। यह शुनःशेप ही अगले सूक्त का ऋषि है—

१२२. [द्वाविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'सधमादः क्षुमन्तः' तुविवाजाः

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम॥ १ ॥

१. **इन्द्रे**=इन्द्र के हमारे होने पर, अर्थात् जब हम प्रभु की ही कामना करेंगे और प्रभु को अपनाएँगे तब **नः**=हमारे **रेवतीः**=प्रशस्त धनोंवाले **तुविवाजाः**=प्रभूत अन्न **सन्तु**=हों, जो अन्न **सधमादः**=साथ मिलकर हमें आनन्द देनेवाले हों, अर्थात् वे अन्न हमारे हों, जिनको हम स्वयं ही सारों को न खा जाएँ, अपितु औरों के साथ बाँटकर ही खानेवाले हों। २. ये अन्न **क्षुमन्तः**=भूखवाले हों, अर्थात् इन अन्नों को हम इस रूप में सेवन करें कि इनके अतियोग से हमारी भूख ही न समाप्त हो जाए और इसप्रकार ये अन्न ऐसे हों कि **याभिः**=जिनसे नीरोग व सशक्त बने हुए हम **मदेम**=हर्ष का अनुभव करें। ३. प्रभु-प्रवण व्यक्ति को (क) निर्धनता का कष्ट नहीं सहना पड़ता (रेवतीः), (ख) साथ ही धनी होकर कृपण नहीं होता, miser बनकर miserable life वाला नहीं हो जाता (सधमादः), (ग) इन धनों व अन्नों से विलासमय जीवनवाला बनकर रोगी भी नहीं हो जाता (क्षुमन्तः)। संक्षेप में वह धनी होता हुआ न तो इनका अतियोग करता है, न अयोग, अपितु यथायोग से चलता हुआ आनन्दमय जीवन वाला होता है।

भावार्थ—प्रभु-प्रवण व्यक्ति को वे अन्न व धन प्राप्त होते हैं, जिनका वह औरों के साथ मिलकर उपभोग करता है। वे अन्न व धन उसे अपने में आसक्त करके अतियोग से रुग्ण नहीं कर देते। परिणामतः इनसे वह आनन्द ही प्राप्त करता है।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

त्रिविध उन्नति

आ घ त्वावान्त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः। ऋणोरक्षं न चक्र्योः॥ २ ॥

१. हे **स्तोतृभ्यः धृषणो**=स्तोताओं के लिए उनके शत्रुओं का घर्षण करनेवाले प्रभो! जो व्यक्ति **त्वावान्**=आप-जैसा बनने का प्रयत्न करता है और **त्मना आप्तः**=आत्मतत्त्व की प्राप्ति से सब-कुछ को प्राप्त मानता है। वह **इयानः**=सदा गतिशील होता हुआ **घ**=निश्चय से **चक्र्योः अक्षं न**=चक्रों में अक्ष की भाँति, मस्तिष्क व शरीर (द्युलोक व पृथिवीलोक) के बीच में हृदय (अन्तरिक्ष) को **आ ऋणोः**=प्राप्त करता है (आ ऋणोति)। जैसे चक्र व अक्ष साथ-साथ चलते हैं उसी प्रकार यह स्तोता मस्तिष्क, शरीर व हृदय सबकी साथ-साथ उन्नति करता है। उन्नति कर वही पाता है जोकि क्रियाशील होता है (इयानः) २. यह ठीक है कि यह व्यक्ति प्रभु का स्तवन करता है और प्रभु ही इसके मार्ग में आनेवाले विघ्नभूत शत्रुओं का विनाश करते हैं। स्तोताओं के शत्रुओं का विनाश प्रभु का ही कार्य है। स्तोता वह है जोकि प्रभु-जैसा बनने का प्रयत्न करता है (**त्वावान्**) तथा अपने अन्दर आत्मा से ही तुष्ट होने का प्रयत्न करता है (त्मना आप्तः=आत्मन्येवात्मना तुष्टः)।

भावार्थ—हम प्रभु के स्तोता बनें। प्रभु हमारे वासनारूप शत्रुओं का संहार करेंगे। तभी हम शरीर, मन व मस्तिष्क तीनों की उन्नति कर पाएँगे।

ऋषिः—**शुनःशेपः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'प्रज्ञा, वाणी व कर्म'

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्। ऋणोरक्षं न शचीभिः॥ ३॥

१. हे **शतक्रतो**=सैकड़ों प्रज्ञाओं व कर्मोंवाले प्रभो! आप **जरितॄणाम्**=स्तोताओं को **यत्**=जो **दुवः**=धन (दुवस् wealth) तथा **कामम्**=चाहनेवाले पदार्थों को **आऋणोः**=सर्वथा प्राप्त कराते हैं, यह सब **शचीभिः**=(कर्म नि० २.१; वाणी १.११; प्रज्ञा ३.९) कर्म, वाणी व प्रज्ञा के हेतु से **अक्षं न**=दो पहियों के बीच में वर्तमान अक्ष के समान हैं। जैसे दो पहियों के बीच में अक्ष होता है, उसी प्रकार यहाँ प्रज्ञा व कर्म के बीच में वाणी है। दोनों पहिये तथा अक्ष साथ-साथ घूमते हैं, उसी प्रकार प्रज्ञा, वाणी व कर्म साथ-साथ चलते हैं। प्रत्येक कर्म पहले विचार के रूप में होता है (प्रज्ञा), फिर उच्चारण के रूप आता है (वाङ्) और अन्ततः आचरण (कर्म) का रूप धारण करता है। २. प्रभु हमें जो भी धन प्राप्त कराते हैं या हमें जो काम्य पदार्थ देते हैं, वे सब इसलिए कि हम 'प्रज्ञा, वाणी व कर्म' को सुन्दर बना सकें। इन सब धनों व काम्य पदार्थों का अतियोग व अयोग न करते हुए हम यथायोग करेंगे तो हम 'प्रज्ञा, वाणी व कर्म' इन सबको सुन्दर बना ही सकेंगे।

भावार्थ—हम प्रभु के स्तोता बनें। प्रभु हमें धनों व इष्ट पदार्थों को प्राप्त कराएँगे। उनके यथायोग से हम 'प्रज्ञा, वाणी व कर्म' को पवित्र बना पाएँगे।

'प्रज्ञा, वाणी व कर्म' को पवित्र बनानेवाला यह व्यक्ति 'कुत्स' कहलाता है—सब वासनाओं का संहार करनेवाला। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

१२३. [त्रयोविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उपसंहार

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥ १॥

१. **तत्**=तभी **सूर्यस्य**=सूर्य का—सूर्य के समान ज्ञानदीप्त मेधावी पुरुष का **देवत्वम्**=देवपन है, **तत्**=तभी **महित्वम्**=बड़प्पन व माहिमा होती है **यदा**=जबकि **मध्यःकर्तोः**=कामों के बीच में **विततम्**=फैले हुए क्रियाजाल को **संजभार**=संगृहीत करता है। संसार में मनुष्य ने आजीविका के लिए कोई न कोई काम तो करना ही होता है। प्रारम्भ में कार्य छोटा-सा होता है। धीरे-धीरे कई बार वह बड़ा फैल जाता है। मनुष्य उसमें उलझ जाता है। कई बार इतना उलझ जाता है कि उसे खान-पान की सुध भी नहीं रहती। इस उलझन से उसके आयुष्य में भी कमी आ जाती है और ज्ञान-मार्ग के आक्रमण का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इसी सम्पूर्ण विचार से वैदिक संस्कृति में गृहस्थ को समाप्त करके वानप्रस्थ होने का आदेश है। मनुष्य अपने कार्यों को समाप्त (wind up) करे और स्वाध्याय में समय का यापन करे। समाप्ति का यह भी प्रकार है कि अपने इन सब कार्यों को पुत्रों के कन्धों पर डाल दे। २. इसप्रकार निपटकर **यदा**=जब यह **इत्**=निश्चय से **सधस्थात्**=सदा साथ रहनेवाले प्रभु से **हरितः**=ज्ञान की रश्मियों को **अयुक्त**=अपने साथ जोड़ता है, तब इस ज्ञान की रश्मियों से द्योतित होकर यह 'देव' बनता है। इस ज्ञानदीप्ति से ही यह महिमावाला होता है। ३. **आत्**=अन्यथा, अर्थात् कर्मों का उपसंहार करके प्रभु की गोद में न बैठने पर **रात्री**=अज्ञानान्धकार **सिमस्मै**=सबके लिए **वासः**=अज्ञानान्धकार

के वस्त्रों को **तनुते**=तान देती है। धन में उलझा हुआ मनुष्य चिन्तामय जीवनवाला होता है। उसे 'मैं कौन हूँ, यहाँ क्यों आया हूँ' इन प्रश्नों के सोचने का समय ही नहीं मिलता। इसप्रकार अपने स्वरूप के विषय में ही वह अज्ञानन्धकार में रहता है।

भावार्थ—हम जीविका के कार्यों का उपसंहार करके सधस्थ प्रभु से ज्ञान प्राप्त करें, जिससे हमपर सदा अज्ञान का पर्दा ही न पड़ा रहे।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'अनन्त, अन्यत्, रुशत्' पाजः

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥ २॥

१. यह **सूर्यः**=ज्ञान-सूर्य को अपने अन्दर उदित करनेवाला व्यक्ति **द्योः**=उस प्रकाशमय प्रभु के **उपस्थे**=समीप, अर्थात् उसकी उपासना करता हुआ **मित्रस्य**=स्नेह की भावना के तथा **वरुणस्य**=द्वेष-निवारण की भावना के **अभिचक्षे**=अपने अन्दर दर्शन के लिए **तत् रूपम्**=उस प्रकाश को अपने अन्दर **कृणुते**=करता है (**रूपम्**=प्रज्ञाने नि० १०.१३)। प्रभु का उपासक उस प्रकाश को पाता है जो प्रकाश उसे मनुष्य की एकता का दर्शन कराता है—उस स्थिति में राग-द्वेष का प्रश्न ही कहाँ? २. **अस्य**=इस ज्ञानदीप्त पुरुष का **पाजः**=बल **अनन्तम्**=बहुत अधिक होता है। **अन्यत्**=इसका बल विलक्षण ही होता है। **रुशत्**=इसका यह बल देदीप्यमान होता है। वस्तुतः प्रभु के सम्पर्क के कारण इसमें प्रभु की शक्ति काम करने लगती है, अतः इसकी शक्ति का असाधारण व विलक्षण प्रतीत होना स्वाभाविक है। ३. **हरितः**=इसकी ये ज्ञानरश्मियाँ **अन्यत्**=एक विलक्षण ही **कृष्णम्** (कृष्=भूः स्वास्थ्य, नः निर्वृत्ति)=स्वास्थ्य व सन्तोष का **संभरन्ति**=सम्यक् भरण करनेवाली होती हैं। इस 'कुत्स' के ज्ञान-सूर्य की रश्मियाँ सभी को प्राणशक्ति व प्रकाश प्राप्त कराती हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का उपस्थान करते हुए ज्ञान प्राप्त करें। सबके प्रति स्नेहवाले, तेजस्वी व प्रकाश फैलानेवाले बनें।

प्रभु की गोद में बैठनेवाला यह उपासक स्नेह व निर्द्वेषिता को अपनाकर 'वामदेव'=सुन्दर दिव्य गुणोंवाला बनता है। यही अगले सूक्त में १-३ का ऋषि है। लोकहित में प्रवृत्त हुआ-हुआ यह सबको अपने परिवार में सम्मिलित करके 'भुवन' होता है। यही ४-६ तक मन्त्रों का ऋषि है—

१२४. [चतुर्विंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

वह सदा का साथी

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥ १॥

१. वे **सदावृधः**=सदा से बढ़े हुए **सखा**=जीव के मित्र **चित्रः**=अद्भुत शक्ति व ज्ञानवाले प्रभु **नः**=हमारे **ऊती**:=कल्याणमय रक्षण के द्वारा **आभुवत्**=चारों ओर विद्यमान हैं। जब मैं प्रभु से आवृत्त हूँ तब मुझे भय किस बात का? 'हम प्रभु में रह रहे हैं' इस तथ्य को हम अनुभव करेंगे तो निर्भीक बनेंगे ही। प्रभु हमें सदा बढ़ानेवाले हैं। हम ही क्रोध, ईर्ष्या व द्वेष आदि से उस उन्नति को समाप्त कर लेते हैं। २. वे प्रभु **कया**=कल्याणकर **शचिष्ठया**=अत्यन्त शक्तिप्रद **वृता**=आवर्तन के द्वारा हमारे चारों ओर विद्यमान हैं। दिन-रात व ऋतुओं आदि का चक्र हमारे

कल्याण के लिए ही है।

भावार्थ—मैं उस सदा के साथी, मेरी सतत वृद्धि के कारणभूत प्रभु को अपने चारों ओर अनुभव करूँ। वे प्रभु अनन्त शक्तिप्रद आवर्तनों के द्वारा हमारी रक्षा कर रहे हैं।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

आसुर पुरियों का विध्वंस

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृळ्हा चिदारुजे वसु॥ २॥

१. हे जीव! **त्वा**=तुझे **कः**=आनन्दमय **सत्यः**=सत्यस्वरूप **मदानां मंहिष्ठः**=आनन्दों के सर्वाधिक दाता प्रभु **अन्धसाः**=इस आध्यायनीय सोम के द्वारा **मत्सत्**=आनन्दित करते हैं। इस सोम को वे प्रभु तुझे इसलिए भी प्राप्त कराते हैं कि **दृळ्हा चित्**=बड़े दृढ़ भी **वसु**=लोकों को **आरुजे**= छिन्न-भिन्न करने के लिए तू समर्थ हो सके। २. सोम-रक्षण ही आनन्द-प्राप्ति का साधन है। हम सोम-रक्षण से समर्थ बनकर 'काम, क्रोध, लोभ' आदि असुरों की पुरियों का विदारण करने में समर्थ होते हैं।

भावार्थ—प्रभु ने हमारे शरीर में सोम की उत्पत्ति की है। इसके द्वारा ही प्रभु हमारे जीवनों को आनन्दमय व पवित्र बनाते हैं।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सखा+जरिता

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः॥ ३॥

१. हे प्रभो! आप **अभि**=दोनों ओर **सु**=उत्तमता से **नः**=हम **सखीनाम्**=सखा (मित्र) **जरितॄणाम्**=स्तोताओं को **शतम्**=सौ वर्षपर्यन्त **ऊतिभिः**=रक्षणों के द्वारा **अविता भवसि**=रक्षक होते हैं। प्रभु मातृ-गर्भ में भी व बाहर आने पर भी हमारे रक्षक होते हैं। उन्होंने सर्वत्र हामरे रक्षण की व्यवस्था की है। सम्पूर्ण संसार चक्राकार गति में चलता हुआ हमारा रक्षण करनेवाला होता है। २. यह रक्षण सखाओं को प्राप्त होता है। जो भी व्यक्ति समान ख्यान-(ज्ञान)-वाले बनते हैं वे ही संसार के इन पदार्थों से कल्याण प्राप्त कर पाते हैं। इसी प्रकार प्रभु-स्तवन करते हुए वे भटकते नहीं और कल्याण के भागी होते हैं। ३. 'ऊतिभिः'=शब्द का अर्थ 'कर्मों से' (गति से) भी है। प्रभु क्रियाशील का ही कल्याण करते हैं। इसप्रकार अपने जीवन में 'ज्ञान, उपासना व कर्म' का समन्वय करनेवाला व्यक्ति प्रभु-कृपा का पात्र बनता है।

भावार्थ—हम प्रभु के सखा व स्तोता बनकर प्रभु-कृपा के पात्र हों। प्रभु सबके रक्षक हैं।

ऋषिः—**वामदेवः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति॥ ४॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम्।
हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः॥ ५॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ ६॥

व्याख्या २०.६३.१-३ पर द्रष्टव्य है

गत सूक्त की भावना के अनुसार जीवन को सुन्दर बनाता हुआ यह व्यक्ति उत्तम यशवाला 'सुकीर्ति' बनता है। प्रभु का उत्तम कीर्तन करने से भी यह 'सुकीर्ति' होता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

१२५. [पञ्चविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**सुकीर्तिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शत्रुओं का अपनोदन

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन्मदेम॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **प्राचः अमित्रान्**=सामने से आनेवाले शत्रुओं को **अपनुदस्व**=परे धकेल दीजिए। इसी प्रकार हे **अभिभूते**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले प्रभो! **अपाचः**=दाहिनी ओर से आनेवाले शत्रुओं को भी **अप**=दूर कीजिए। **उदीचः**=उत्तर की ओर से आनेवाले शत्रुओं को **अप**=दूर कीजिए। हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **अधरा च**=पश्चिम से (सूर्य जिस दिशा में नीचे जाता प्रतीत होता है—अधर) आते हुए शत्रुओं को भी **अप**=दूर कीजिए। सब दिशाओं से आनेवाले इन शत्रुओं को हमसे पृथक् कीजिए। २. इन सब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि शत्रुओं को पराजित करके हम **यथा**=जिस प्रकार **तव**=आपकी **उरौ**=विशाल **शर्मन्**=शरण में **मदेम**=आनन्द में रहें, ऐसी आप कृपा कीजिए।

भावार्थ—चारों दिशाओं से होनेवाले शत्रुओं के आक्रमण से हम बचें। सदा प्रभु की शरण में आनन्द में रहें।

ऋषिः—**सुकीर्तिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वासनाशून्य हृदय में प्रभु-भजन

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः॥ २ ॥

१. हे **अङ्ग**=प्रिय! **यथा**=जैसे **यवमन्तः**=जौ-वाले—जौ की कृषि करनेवाले **चित्**=निश्चय से **यवम्**=जौ को **पूर्वम्**=क्रमशः **वियूय**=पृथक्-पृथक् करके **कुवित्**=खूब ही **दान्ति**=काट डालते हैं। इसी प्रकार **ये**=जो व्यक्ति अपने हृदय-क्षेत्र से वासनाओं को उखाड़ डालते हैं और वासनाशून्य **बर्हिषः**=जिसमें से वासनाओं का उद्बर्हण कर दिया गया है, उस हृदय में **नमःवृक्तिम्**=नमस्कार के वर्जन को **न जग्मुः**=नहीं प्राप्त होते हैं, अर्थात् जो अपने हृदयों को वासनाशून्य बनाते हैं और उन हृदयों में सदा प्रभु के प्रति नमन की भावना को धारण करते हैं, **एषाम्**=इनके **इह इह**=इस-इस स्थान पर, अर्थात् जब-जब आवश्यकता पड़े **भोजननानि**=पालन के साधनभूत भोग्य पदार्थों को प्राप्त कराइए। २. मनुष्य का कर्त्तव्य यह है कि एक-एक करके वासनाओं को विनष्ट करनेवाला हो। वासनाशून्य हृदय में प्रभु को नमन करे। प्रभु इसको योगक्षेम प्राप्त कराते ही हैं।

भावार्थ—मनुष्य वासनाओं का उद्बर्हण करके वासनाशून्य हृदय में प्रभु के प्रति नमनवाला होता है तो प्रभु उसके योगक्षेम की स्वयं व्यवस्था करते हैं।

ऋषिः—**सुकीर्तिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु की मित्रता में

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः॥ ३॥

१. **स्थूरि** (अव)=एक बैल से युक्त शकट **ऋतुथा**=समय पर **यातम्**=उद्दिष्ट स्थान पर प्राप्त **नहि अस्ति**=नहीं होता है, इसी प्रकार उस प्रभु के बिना अकेला जीव अपने शरीर रथ को उद्दिष्ट स्थान पर नहीं ले-जा सकता। सम्पूर्ण सफलता प्रभु से प्राप्त शक्ति पर ही निर्भर करती है। २. यह प्रभु को विस्मृत करनेवाला व्यक्ति **संगमेषु**=सभाओं में उपस्थित न होकर **श्रवः**=ज्ञान को **न विविदे**=नहीं प्राप्त करता है। यह व्यक्ति भोगप्रवण होकर ज्ञानरुचिवाला नहीं रहता, इसलिए **गव्यन्तः**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियों की कामना करते हुए **अश्वायन्तः**=उत्तम कर्मेन्द्रियों की कामना करते हुए **वाजयन्तः**=शक्ति की कामना करते हुए **विप्राः**=ज्ञानी पुरुष **इन्द्रम्**=उस प्रभु को ही **सख्याय**=मित्रता के लिए चाहते हैं। प्रभु की मित्रता में ही मनुष्य अपने शरीर-रथ को लक्ष्य की ओर ले-चलता है। उसकी इन्द्रियाँ सशक्त बनती है। अंग-प्रत्यंग की शक्ति स्थिर रहती है।

भावार्थ—प्रभु की मित्रता में मनुष्य मार्गभ्रष्ट न होकर अपने ज्ञान व बल का वर्धन करता हुआ लक्ष्य-स्थान पर पहुँचता है।

ऋषिः—**सुकीर्तिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सुरामं विपिपाना

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम्॥ ४॥

१. 'अश्विना' शरीर में प्राणापान हैं। इनकी साधना से शरीर में सोमशक्ति (वीर्य) की ऊर्ध्वगति होती है। इस सोमशक्ति को प्रस्तुत मन्त्र में 'सुरामम्' कहा गया है। इसके द्वारा जीव उत्तम रमणवाला होता है 'सुष्ठु रमते अनेन'। सोम-रक्षण होने पर ही सब आनन्द-निर्भर हैं। इसी से मनुष्य सौम्य स्वभाव का बनता है और अन्ततः प्रभु को पानेवाला होता है। २. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप **सुरामम्**=उत्तम रमण के साधनभूत सोम का **विपिपाना**=विशेषरूप से पान करते हुए, **शुभस्पती**=सब कर्मों के रक्षक होते हो, **सचा**=परस्पर मिलकर—प्राण-अपान से मिलकर **आसुरे**=असुरों के अधिपति **नमुचौ** (न मुचि)=अत्यन्त कठिनता से पीछा छोड़नेवाले इस अहंकार का हनन करनेवाले होते हो। प्राणसाधना से सब मलों का क्षय होते-होते इस आसुर अहंकारवृत्ति का भी ध्वंस हो जाता है। ३. इस आसुरवृत्ति का संहार करके आप **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **कर्मसु**=कर्मों में **आवतम्**=रक्षित करते हो। कर्मों में लगा रहकर यह साधक वासनाओं की ओर नहीं झुकता और पवित्र बना रहकर प्रभु को पानेवाला होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से सोम का रक्षण होकर मनुष्य निरहंकार होता है। कर्मशील बना रहकर पवित्र बना रहता है और प्रभु को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**सुकीर्तिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

काव्यैः-दंसनाभिः

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक्॥ ५॥

१. **इव**=जैसे **पितरौ**=माता-पिता **पुत्रम्**=पुत्र को रक्षित करते हैं उसी प्रकार हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय

पुरुष! **उभा अश्विना**=ये दोनों प्राणापान **काव्यैः**=उत्तम ज्ञानों के द्वारा तथा **दंसनाभिः**=उत्तम कर्मों के द्वारा **अवथुः**=तेरा रक्षण करते हैं। प्राणापान हमारे लिए माता-पिता के समान हैं। इनके रक्षणों से हमारा ज्ञान बढ़ता है और हमारी प्रवृत्ति उत्तम कर्मों में होती है। २. यह सब कब होता है? **यत्**=जबकि हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन्! तू **सुरामम्**=इस रमण के साधनाभूत उत्तम सोम को **व्यपिब**=विशेषरूप से पीनेवाला होता है। प्राणसाधना के द्वारा ही तो इस सोम का पान होता है। ऐसा होने पर **सरस्वती**=यह ज्ञान की अधिष्ठातृ-देवता सरस्वती **शचीभिः**=प्रज्ञानों के द्वारा (नि० ३.९) तथा उत्तम कर्मों के द्वारा (नि० २.१) **त्वा**=तुझे **अभिष्णक्**=(भिष्णज् सेवायाम्) सेवित करती है। सोम पान से ज्ञान बढ़ता है और उत्तम कर्मों में प्रवृत्ति होती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से सोम-रक्षण होता है। सोम-रक्षण से ज्ञानवृद्धि व उत्तम कर्मों में अभिरुचि होती है।

ऋषिः—**सुकीर्तिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

निर्द्वेषता-निर्भयता-सुवीरता

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥ ६॥

१. **इन्द्रः**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु **द्वेषः बाधताम्**=द्वेष की भावना को हमसे दूर करे। **सुत्रामा**=वह उत्तम रक्षण करनेवाला **स्ववान्**=सब धनोंवाला व आत्मिक शक्तिवाला प्रभु **अवोभिः**=रक्षणों के द्वारा हमारे लिए **अभयं कृणोतु**=निर्भयता करें। प्रभु की गोद में बैठे हुए हम आत्मशक्ति-सम्पन्न बनकर निर्भय क्यों न होंगे? २. वे **विश्ववेदाः**=सम्पूर्ण धनोंवालें प्रभु **सुमृडीकः भवतु**=आवश्यक धनों को प्राप्त कराके हमारे लिए उत्तम सुखों को देनेवाले हों। व्यर्थ के भोगों में न फँसकर हम **सुवीर्यस्य**=उत्तम शक्ति के **पतयः**=रक्षक **स्याम**=हों।

भावार्थ—प्रभु-कृपा से हम निर्द्वेष, निर्भय व सुवीर बनें।

ऋषिः—**सुकीर्तिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सुमति+सौमनस

स सुत्रामा स्वावाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम॥ ७॥

१. **सः**=वह **सुत्रामा**=उत्तम त्राण करनेवाला **स्वावान्**=आत्मिक शक्ति से सम्पन्न **इन्द्रः**=शत्रुविद्रावक प्रभु **अस्मत्**=हमसे **द्वेषः**=द्वेष को **आरात् चित्**=निश्चय से बहुत दूर प्रवाहित करके **युयोतु**=पृथक् कर दे। 'यह द्वेष हमारे समीप फिर न आसके' इस रूप में प्रभु इसे हमसे दूर करें। २. **तस्य यज्ञियस्य**=उस यज्ञिय—पूज्य प्रभु की **सुमतौ**=कल्याणी मति में **वयम् स्याम**=हम हों **अपि**=और **भद्रे सौमनसे**=उस उत्तम मन में स्थित हों जो सबका भद्र व कल्याण ही सोचता है।

भावार्थ—प्रभु-कृपा से हमें सुमति व सौमनस प्राप्त हो। द्वेष हमसे दूर हो।

'सुमति व सौमनस' को प्राप्त करनेवाला यह व्यक्ति 'वृषाकपि' बनता है—शक्तिशाली व वासनाओं को कम्पित करके दूर करनेवाला। यह 'इन्द्र' परमैश्वर्यशाली प्रभु का उपासक होने से 'इन्द्र' कहलाता है। 'इन्द्राणी' प्रकृति प्रभु का सामर्थ्य है। उस प्रकृति की ओर झुकनेवाली ऋषिका भी 'इन्द्राणी' है। ये ही अगले सूक्त के द्रष्टा है—

१२६. [षड्विंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

प्रभु-मित्रता में आनन्द

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १॥

१. **हि**=निश्चय से **सोतोः**=ज्ञान को उत्पन्न करने के हेतु से **वि असृक्षत**=विशेषरूप से इन इन्द्रियों का निर्माण हुआ है, परन्तु सामान्यतः ये तत्त्वज्ञान की ओर न झुककर विषयों की ओर भागती हैं। **देवम् इन्द्रम्**=उस प्रकाशमय प्रभु का **न अमंसत**=मनन नहीं करतीं। २. ये इन्द्रदेव प्रभु वे हैं, **यत्र**=जिनमें स्थित हुआ-हुआ **वृषाकपिः**=वासनाओं को कम्पित करके दूर करनेवाला (कपि) शक्तिशाली (वृषा) पुरुष **अमदत्**=आनन्द का अनुभव करता है। यह वृषाकृषि **अर्यः**=स्वामी बनता है, इन्द्रियों का दास नहीं होता। **पुष्टेषु**=अंग-प्रत्यंग की शक्तियों का पोषण करने पर **मत्सखा**=(माद्यति इति मत्) इस आनन्दमय प्रभुरूप मित्रवाला होता है। ३. यह **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे उत्कृष्ट हैं। प्रभु-प्राप्ति में सम्पूर्ण प्राप्ति—संसार की प्राप्ति स्वयं ही हो जाती है।

भावार्थ—इन्द्रियाँ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए दी गई हैं। इनके द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हुए हम 'वृषाकपि' बनकर प्रभु प्राप्ति में आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

प्रभु-प्राप्ति के लिए आतुरता

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **हि**=निश्चय से जब **परा धावसि**=दूर होते हैं, अर्थात् जब वृषाकपि को आपका दर्शन नहीं होता तब आप **वृषाकपेः**=इस वृषाकपि के **अतिव्यथिः**=अति व्यथित करनेवाले होते हैं। प्रभु-दर्शन के अभाव में वृषाकपि आतुरता का अनुभव करता है। उसे प्रभु-दर्शन के बिना शान्ति कहाँ? २. प्रभु संकेत करते हुए कहते हैं कि **सोमपीतये**=तू सोम-रक्षण के लिए यत्नशील हो। यही प्रभु-दर्शन का साधन है। **अन्यत्र**=अन्यान्य बातों में—विषयवासनाओं में लगे रहने से **अह**=निश्चयपूर्वक तू **नो प्रविन्दसि**=उस प्रभु को नहीं प्राप्त करता है। प्रभु-प्राप्ति का मार्ग एक ही है— 'वीर्यरक्षण'। इस वीर्य की ऊर्ध्वगति से मस्तिष्क की ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और उस समय सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा प्रभु का दर्शन होता है। ये **इन्द्रः**=प्रभु ही **विश्वस्मात् उत्तरः**=सम्पूर्ण संसार से उत्कृष्ट हैं। इन्हीं को प्राप्त करने में आत्मकामता है।

भावार्थ—प्रभु-दर्शन के लिए हममें आतुरता हो और हम सोमपान=वीर्यरक्षण करते हुए अपने को प्रभु-दर्शन के योग्य बनाएँ।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

हरितो मृगः

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।
यस्मा इरस्यसीदु न्व1र्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ३॥

१. हे प्रभो! **अयं वृषाकपि**=यह वृषाकपि **त्वाम्**=आपकी प्राप्ति का लक्ष्य करके **किं**

चकार=क्या करता है ? यही तो करता है कि **हरितः**=यह इन्द्रियों का प्रत्याहार करनेवाला बनता है और **मृगः**=आत्मान्वेषण में प्रवृत्त होता है। २. यह आत्मनिरीक्षण करनेवाला और विषयों से इन्द्रियों को प्रत्याहृत करनेवाला वृषाकपि वह है **यस्मा**=जिसके लिए आप **अर्यः**=सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी होते हुए **वा उ**=निश्चय से **नु**=अब **पुष्टिमत् वसु**=पुष्टिवाले धन को—पोषण के लिए पर्याप्त धन को **इरस्यसि इत्**=देते ही हैं। वे प्रभु **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली हैं **विश्वस्मात् उत्तरः**= सबसे उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—हम आत्मानिरीक्षण करें, इन्द्रियों को विषयों से प्रत्याहृत करें। प्रभु हमें पोषक धन प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

वराहावतार

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यम्**=जिस **इमम्**=इस **प्रियम्**=अपने कर्मों से आपको प्रीणित करनेवाले, अपने हरितत्व व मृगत्व के द्वारा प्रभु का प्रिय बननेवाले **वृषाकपिम्**=वृषाकपि को **त्वम्**=आप **अभिरक्षसि**=शरीर में रोगों से तथा मन में राग-द्वेष से बचाते हो, **नु**=अब ऐसा होने पर **श्वा** (मातरिश्वा) वायु, अर्थात् प्राण **अस्य**=इसके **जम्भिषत्**=सब दोषों को खा जाता है। प्राण-साधना से इसके सब दोष दूर हो जाते हैं। प्राण-साधना से दोष दूर होते ही हैं, मानो प्राण सब दोषों को खा जाते हैं। २. इतना ही नहीं, **कर्णे** (कृ विक्षेपे)=चित्तवृत्ति का विक्षेप होने पर ये प्राण **वराहयुः अपि**=(वरं वरम् आहन्ति, प्रापयति) श्रेष्ठता को प्राप्त करानेवाले प्रभु से मेल करानेवाले भी हैं। प्राणायाम से मन का निरोध होता है और इसप्रकार प्राण हमें प्रभु से मिलाते हैं, जोकि 'वराह' हैं=सब वर पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं। इसप्रकार प्राण हमें विषय-समुद्र में डूबने से बचाते हैं। ये **इन्द्रः**=प्रभु **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—प्रभु-रक्षण प्राप्त होने पर, प्राणसाधना से हम सब दोषों को दूर करके प्रभु से मेलवाले होते हैं।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

विषयदोष-दर्शन

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यऽदूदुषत्।
शिरो न्वऽस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ५॥

१. प्रकृति कहती है कि **मे**=मुझसे **तष्टानि**=बनाये गये **व्यक्ताः**=(adorned, decorated) अलंकृत **प्रिया**=देखने में बड़े प्रिय लगनेवाले इन विषयों को **कपिः**=यह वृषाकपि—विषयवासनाओं को कम्पित करके दूर करनेवाला **व्यदूदुषत्**=दूषित करता है—इन विषयों के दोषों को देखता हुआ इनमें फँसता नहीं। २. प्राकृत मनुष्य इन विषयों के दोषों को न देखता हुआ इनमें आसक्त हो जाता है। **नु**=अब प्रकृति **अस्य शिरः**=इस विषयासक्त पुरुष के सिर को **राविषम्**=(रु to break) तोड़-फोड़ देती है। यह प्रकृति कभी भी **दुष्कृते**=अशुभ कर्म करनेवाले के लिए **न सुगं भुवम्**=सुखकर गमनवाली नहीं होती। वस्तुतः प्रकृति प्रवण हो जाना ही दोषपूर्ण है। **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **विश्वस्मात्**=सबसे **उत्तरः**=उत्कृष्ट हैं। उन्हीं की ओर चलना श्रेष्ठ है। प्रकृति के भोग तो प्रारम्भ में रमणीय लगते हुए भी परिणाम में विष-तुल्य हैं।

भावार्थ—प्राण-साधना करनेवाला पुरुष विषयदोष दर्शन करता हुआ उनमें फँसता नहीं। सामान्य व्यक्ति इनमें फँसकर अशुभ मार्ग पर चलता है। इसके लिए यह प्रकृति ही अन्त में घातक हो जाती है।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

प्रकृति का आकर्षण

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत्।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ६॥

१. गतमन्त्र के अनुसार विषयदोष दर्शन करनेवाले वृषाकपि से इन्द्राणी (प्रकृति) कहती है कि **मत्**=मुझसे **सुभसत्तरा**=अधिक दीप्तिवाली (भस दीप्तौ) **स्त्री न**=स्त्री नहीं है और **न**=न ही **सुयाशुतरा**=(या+अश्) अधिक उत्तमता से प्राप्त होनेवाली व भोगों को प्राप्त करानेवाली **भुवत्**=है। प्रकृति को प्राप्त करना सुगम है और वहाँ सब भोग प्राप्त होते हैं। **न**=न ही **मत्**=मुझसे अधिक **प्रतिच्यवीयसी**=प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होनेवाली है और **न**=न ही **सक्थि**=आसक्तिपूर्वक **उद्यमीयसी**=स्थिति को उन्नत करनेवाली है। 'सक्थि' शब्द 'सच्' धातु से बनकर आसक्ति व प्रेम के भाव को प्रकट कर रहा है। प्रकृति चमकती है (सुभसत्), विविध भोगों को प्राप्त कराती है (सुयाशु), सबकी ओर आती है (प्रतिच्यवीयसी) और सांसारिक स्थिति को ऊँचा कर देती है (सक्थि उद्यमीयसी)। २. **मे**=मेरा पति **इन्द्रः**=परमैश्वर्यवान् प्रभु भी तो **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे उत्कृष्ट है, अतः इस वृषाकपि का मुझमें दोष देखना तो ठीक नहीं। मेरे प्रति उसका आकर्षण होना ही चाहिए।

भावार्थ—प्रकृति चमकती है, सामान्यतः मनुष्य उसकी ओर आकृष्ट होता ही है।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

माता, नकि स्त्री

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ७॥

१. वृषाकपि उत्तर देता हुआ कहता है कि **उवे अम्ब**=हे मातः! हे **सुलाभिके**=सब उत्तम लाभों को प्राप्त करानेवाली! **अङ्ग**=प्रिय मातः! **यथा इव भविष्यति**=जैसा आप कहती हो वैसा ही होगा। आप 'सुभतरा, सुयाशुतरा, प्रतिच्यवीसी व सक्थ्युद्यमीयसी' ही हैं। आपके पुत्र के नाते **मे**=मेरी **भसत्**=दीप्ति, **मे सक्थि**=माता पिता के प्रति मेरा प्रेम अथवा सब भाइयों के प्रति स्नेह तथा **मे शिरः**=मेरा उन्नति के शिखर पर पहुँचना **वि हृष्यति इव**=विशिष्ट प्रसन्नतावाला-सा होता है। २. यह तो आप ठीक ही कहती हो कि **इन्द्रः**=वे प्रभु **विश्वस्मात्**=सबसे **उत्तरः**=अधिक उत्कृष्ट हैं। मुझे भी उस प्रभु को पाने के लिए सब-कुछ छोड़ना स्वीकार है। ३. यहाँ वृषाकपि प्रकृति को 'अम्ब' इस रूप में सम्बोधन करता हुआ यही संकेत करता है कि प्रकृति मेरी स्त्री नहीं, अपितु माता है। यह प्रकृति मेरे लिए उपभोग्य न होकर आदरणीय है। इस प्रकृतिमाता से मैंने आवश्यक सहायता प्राप्त करनी है। इस भावना के होने पर ही प्रकृति 'सुलाभिका' होती है। प्रकृति को इस रूप में देखनेवाला ही दीप्ति व प्रेम प्राप्त करके उन्नति के शिखर पर पहुँचता है।

भावार्थ—प्रकृति को हम माता समझकर चलेंगे तो उसके प्रति आसक्त न होकर, दीप्त प्रेमयुक्त जीवनवाले बनकर उन्नत होंगे।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

वृषाकपि की प्रशस्त भावना

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्य मीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ८॥

१. इन्द्र इन्द्राणी से कहता है कि हे **सुबाहो**=उत्तम बाहुओंवाली **स्वंगुरेः**=उत्तम अंगुलियोंवाली, **पृथुष्टो**=विशाल केशसमूहवाली **पृथुजाघने**=विशाल जघनोंवाली तुम **किम्**=वृषाकपि के प्रति क्यों रुष्ट होती हो। **मा**=मुझ **शूरपत्नि**=शूर की पत्नी होती हुई **त्वम्**=तू **किम्**=क्यों **वृषाकपिम्**=वृषाकपि के प्रति **अभि अमीषि**=क्रोध करती है? २. तू सुन्दर है, आकर्षक है, तेरा अंग-प्रत्यंग मनोहर है। ऐसा होने पर भी तेरा पुत्र वृषाकपि तेरे प्रति मातृभावना रखता हुआ तेरा समुचित आदर करता है। इससे बढ़कर क्या बात हो सकती है कि हमारा पुत्र वृषाकपि इतनी उत्कृष्टवृत्तिवाला है। ३. इतना तो तूने भी कहा है कि मेरा पति **इन्द्रः**=इन्द्र **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे उत्कृष्ट है। तुझे इसी बात पर गर्व होना चाहिए कि हमारा लड़का सचमुच वृषाकपि है—वासनाओं को कम्पित करके शक्तिशाली बना है।

भावार्थ—प्रकृतिरूप स्त्री अत्यन्त आकर्षक है। वह प्रभु की पत्नी है। जीव की तो वह माता ही है, पत्नी नहीं।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

प्रकृति 'अवीरा' नहीं, 'वीरिणी' है

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ९॥

१. 'प्रकृति इतनी आकर्षक है फिर भी वृषाकपि उससे आकृष्ट नहीं हुआ' यह देखकर प्रकृति क्रुद्ध-सी होती है और कहती है कि **अयं शरारुः**=यह सब वासनाओं का संहार करनेवाला (प्रकृति की दृष्टि में शरारती) **माम्**=मुझे **अवीराम् इव मन्यते**=अवीर, अवीर-सा मानता है। मैं अवीर थोड़े ही हूँ? **उत अहम्**=निश्चय से मैं तो **वीरिणी अस्मि**=उत्कृष्ट वीरता-(पुत्र)-वाली हूँ। **इन्द्रपत्नी**=इन्द्र की पत्नी हूँ। **मरुत्सखा**=ये मरुत् (प्राण) मेरे मित्र हैं और यह तो सब कोई जानता ही है कि मेरा पति **इन्द्रः**=इन्द्र **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे उत्कृष्ट है। ऐसी स्थिति में यह कैसे सहनीय हो सकता है कि यह वृषाकपि मेरा निरादर करे। २. यहाँ 'इन्द्रपत्नी' शब्द का प्रयोग करके प्रकृति स्वयं अपने पक्ष को शिथिल कर लेती है। वृषाकपि उसे इन्द्रपत्नी जानकर ही तो माता के रूप में देखता है। 'मरुत्सखा' शब्द भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इन मरुतों=प्राणों ने ही उसे वासनात्मक जगत् से ऊपर उठाकर प्रकृति के आकर्षण में फँसने से बचाना है। एवं, इन्द्राणी के मित्र ये मरुत् ही वृषाकपि को वृषाकपित्व प्राप्त कराते हैं। प्रकृति वीरिणी है, प्रकृति का पुत्र वृषाकपि भी वीर बनता है। यह प्रलोभन में फँसने से बचता है।

भावार्थ—प्रकृति वीरिणी है। उसका पुत्र वृषाकपि वीर बनकर अपनी माता का (प्रकृति का) सच्चा आदर करता है।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

युद्धों व यज्ञों में

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १०॥

१. **पुरा**=पहले—उत्कृष्ट युग में, धर्म का ह्रास होने से पूर्व **नारी**=पत्नी **होत्रम्**=यज्ञ के प्रति **संगच्छति स्म**=पति के साथ मिलकर जाती थी तथा **वाव**=निश्चय से **समनम्**=युद्ध के प्रति जाती थी। पत्नी 'धर्मपत्नी' थी। वह पति के साथ यज्ञों व युद्धों में सहायक होती थी। 'इत्थं युद्धैश्च यज्ञैश्च भजामो विष्णुमीश्वरम्' इस वाक्य के अनुसार वे धर्मयुद्धों व यज्ञों से उस सर्वव्यापक ईश को भजते थे। २. यह पत्नी घर में **ऋतस्य वेधा**=सब यज्ञों व श्रेष्ठतम (ठीक) कार्यों का विधान करती थी। परिणामत: यह **वीरिणी**=वीर सन्तानोंवाली होती है। यह **इन्द्रपत्नी**=जितेन्द्रिय पुरुष की पत्नी **महीयते**=महिमा को प्राप्त करती है। ऐसी ही नारियों का आदर होता है। इनकी दृष्टि में **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे उत्कृष्ट होते हैं। ये इस इन्द्र का ही पूजन करती हैं।

भावार्थ—स्त्री अपने को आकर्षक बनाने की अपेक्षा धार्मिक व वीर बनने का ध्यान करे। उसकी वृत्ति वैषयिक न हो। वह युद्धों व यज्ञों में पति की सहायिका बने।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

इन्द्राणी का अजरामर सौभाग्य

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्य१स्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ११॥

१. **इन्द्राणीम्**=इन्द्राणी को **आसु नारिषु**=इन नारियों में **अहम्**=मैं **सुभगाम्**=उत्तम भाग्यवाला **अश्रवम्**=सुनता हूँ चूँकि **अस्याः**=इसका **पतिः**=स्वामी इन्द्र **अपरंचन**=अन्य पतियों के समान **जरसा**=बुढ़ापे से **हि**=निश्चयपूर्वक **न मरते**=मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जाता। इन्द्र अजरामर हैं, अत: इन्द्रपत्नी इन्द्राणी का सौभाग्य भी अजरामर बना रहता है। **विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः**=इस अजरामरता के कारण परमैश्वर्यशाली प्रभु सबसे उत्कृष्ट हैं। २. प्रभु 'इन्द्र' हैं। प्रकृति 'इन्द्राणी' है। यह प्रभु की पत्नी के समान है। प्रकृति का यह कितना सौभाग्य है कि जहाँ अन्य व्यक्तियों के जरा से समाप्त हो जाने के कारण अन्य नारियों का सौभाग्य भी कुछ देर के लिए होता है, वहाँ प्रकृति का सौभाग्य, इन्द्र के अजरामर होने से अक्षुण्ण बना रहता है।

भावार्थ—पति प्रभु के अजरामर होने से पत्नी 'प्रकृति' का सौभाग्य भी अमर बना रहता है। पत्नी ने सदा पति के दीर्घजीवन की कामना करनी, जिससे वह स्वयं सौभाग्यवती बनी रहे।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

'अप्य हवि' का महत्त्व

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १२॥

१. प्रभु प्रकृति से कहते हैं कि **इन्द्राणि**=हे प्रकृते! **अहम्**=मैं **सख्युः**=इस मित्र (द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया) **वृषाकपेः**=वासनाओं को कम्पित करके दूर करनेवाले और अतएव शक्तिशाली इस वृषाकपि के **ऋते**=बिना **न रारणे**=इस सृष्टिरूप क्रीड़ा को नहीं करता हूँ। यह सारी सृष्टिरूप क्रीड़ा इस मित्रभूत जीव के लिए ही तो है। आप्तकाम होने से मुझे इसकी आवश्यकता नहीं, जड़ता के कारण तुझे (प्रकृति को) इसकी आवश्यकता नहीं। जीव ही तो इसमें साधन-सम्पन्न होकर उन्नत होता हुआ मोक्ष तक पहुँचता है। २. वह जीव **यस्य**=जिसकी **इदम्**=यह **अप्यम् हविः**=रेत:कण-सम्बन्धी हवि **प्रियम्**=इसे प्रीणित करनेवाली होती है और इसे कान्ति प्रदान

करती है। (प्री तर्पणे कान्तौ च) तथा **देवेषु गच्छति**=सब इन्द्रियरूप देवों में जाती है। रेत:कणों का रक्षण ही शरीर में इस 'अप्य हवि' को आहुत करता है। यह हवि शरीर को कान्त बनाती है और इन्द्रियों को सशक्त। २. इस अप्य हवि के द्वारा सब शक्तियों का वर्धन करके यह जीव अनुभव करता है कि **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे अधिक उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—प्रभु इस सृष्टि का निर्माण जीव के लिए करते हैं। भोगों में न फँसकर जब यह शक्ति को शरीर में ही सुरक्षित करता है तब यह शुभ को पहचान पाता है और मोक्ष का भागी होता है।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

आत्मा की पत्नी बुद्धि

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुनुषे।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १३॥

१. हे प्रकृते! तू **वृषाकपायि**=इस वृषाकपि की माता है। वृषाकपि का उत्कर्ष इसी में है कि वह माता को माता के रूप में देखे और इससे सहायता लेता हुआ इसके भोगों में आसक्त न हो। **रेवति**=हे प्रकृते! तू तो ऐश्वर्य-सम्पन्न है। **सुपुत्रे**=यह वृषाकपि तेरा उत्तम पुत्र है। इसे तू आवश्यक ऐश्वर्य देती ही है। **आत् उ**=और अब **सुनुषे**=हे प्रकृते! तू उत्तम स्नुषावाली है। वृषाकपि तेरा पुत्र है और इस वृषाकपि की पत्नी 'बुद्धि' तेरी स्नुषा है। इस बुद्धि के द्वारा चलता हुआ वृषाकपि अपने जीवन को उत्तम बना पाता है। २. यह वृषाकपि उन्नत होता हुआ अपने पिता के अनुरूप बनकर 'इन्द्र' ही बन जाता है। यह **इन्द्रः**=इन्द्र **ते**=तेरे, अर्थात् प्राकृतिक आहार से उत्पन्न हुए-हुए **उक्षणः**=शरीर को शक्ति से सिक्त करनेवाले वीर्यकणों को **घसत्**=खाता है—इन्हें अपने शरीर में ही व्याप्त करने का प्रयत्न करता है। यह उसके लिए **प्रियम्**=प्रीणित करनेवाली **काचित् करम्**=निश्चय से सुख देनेवाली **हविः**=हवि होती है। इस हवि की वह शरीर-यज्ञ में आहुति देता है। यही उक्षा (वीर्य) का भक्षण है। इस हवि के सेवन से वह अत्यन्त तीव्र बुद्धि होकर उस प्रभु का दर्शन करता है और कहता है कि **इन्द्रः**=परमैश्वरशाली प्रभु **विश्वस्मात् उत्तरः**=सम्पूर्ण संसार से उत्कृष्ट है।

भावार्थ—वीर्यरूप हवि की शरीराग्नि में ही आहुति देना सच्चा जीवन-यज्ञ है। इस यज्ञ को करानेवाला प्रभु को 'पुरुषोत्तम' के रूप में देखता है।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

परिपाक

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १४॥

१. **उक्ष्णः**=शरीर में शक्ति का सेचन करनेवाले वीर्यकणों को **हि**=निश्चय से **मे**=मेरे **पञ्चदश**=पन्द्रह—दस इन्द्रियाँ तथा पाँच प्राण **साकम्**=साथ-साथ **पचन्ति**=परिपक्व करनेवाले होते हैं। विषयव्यावृत्त इन्द्रियों तथा प्राणायाम द्वारा सिद्ध किये हुए प्राण वीर्यकणों को शरीर में ही परिपक्व करनेवाले होते हैं। वीर्यकणों के परिपाक के द्वारा ये प्राण **विंशतिम्**=एकोनविंशति मुखोंवाले इस बीसवें आत्मा को भी परिपक्व करते हैं, अर्थात् ये इन्द्रियाँ व प्राण आत्मिक शक्ति के विकास का कारण बनते हैं। २. **उत**=और **अहम्**=मैं **अद्मि**=इन वीर्यकणों को शरीर में खाने

का प्रयत्न करता हूँ। **इत्**=निश्चय से **पीवः**=मैं हृष्ट-पुष्ट बनता हूँ। ये सुरक्षित वीर्यकण **मे**=मेरी **उभा कुक्षी**=दोनों कुक्षियों को **पृणन्ति**=(Protect) सुरक्षित करते हैं। इन कणों के रक्षण से गुर्दे इत्यादि की बीमारियाँ नहीं होती। ३. इस स्वस्थ अवस्था में मैं उस प्रभु का स्मरण करता हूँ जोकि **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली होते हुए **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—विषयव्यावृत्त इन्द्रियों व प्राणसाधना से वीर्य का परिपक्व होकर आत्मिक शक्ति का विकास होता है। प्रसंगवश यह वीर्य का परिपाक गुर्दे आदि के कष्टों से भी हमें बचाता है।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

तिग्मशृंगवृषभ

वृष॒भो न ति॒ग्मशृ॑ङ्गो॒ऽन्तर्यू॒थेषु॒ रोरु॑वत्।
म॒न्थस्त॑ इन्द्र॒ शं हृ॒दे यं ते॑ सु॒नोति॑ भाव॒युर्विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः॥ १५॥

१. वे प्रभु **तिग्मशृंगः वृषभः न**=पैने सींगोंवाले वृषभ के समान हैं। जैसे एक वृषभ मार्ग-विघातक को अपने तेज सींगों के द्वारा दूर कर देता है, उसी प्रकार प्रभु हमारे शत्रुओं को दूर करनेवाले हैं, इसीलिए स्थानान्तर में 'अश्वं न त्वा वारवन्तम्' इन शब्दों में कहा है कि प्रभु बालोंवाले घोड़े के समान हैं। जैसे घोड़ा पूँछ से मक्खियों को दूर करता है, उसी प्रकार प्रभु हमारी वासनाओं को दूर करते हैं। ये वृषभ के समान प्रभु **यूथेषु अन्तः**=जीव समूह के अन्दर **रोरुवत्**=खूब गर्जना कर रहे हैं। हृदयस्थरूपेण वे प्रभु 'ज्ञान, कर्म व उपासना' की विविध प्रेरणा दे रहे हैं। उस प्रेरणा के अनुसार चलने पर हम वासनाओं के आक्रमण से बचे रहते हैं। २. हे **इन्द्र**=प्रभो! **ते**=आपका **मन्थः**=मन्थन—चिन्तन **हृदे शम्**=हृदय के लिए शान्ति देनेवाला होता है। **यम्**=जिस **ते**=आपके मन्थन व विचार को **भावयुः**=भक्तिभाव से युक्त उपासक **सुनोति**=अपने में उत्पन्न करता है और सदा इस रूप में सोचता है कि **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे उत्कृष्ट हैं। प्रभु को सर्वोत्कृष्ट रूप में देखनेवाला ही प्रभु का उपासक बनता है। उस समय प्रभु उसे सतत प्रेरणा देते हैं और उसके शत्रुओं को दूर कर देते हैं।

भावार्थ—उपासक के लिए प्रभु तिग्मशृंग वृषभ के समान रक्षक होते हैं।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

ध्यान व ज्ञान

न सेशे॒ यस्य॒ रम्ब॑तेऽन्त॒रा स॒क्थ्या॒३ कपृ॑त्।
सेदी॑शे॒ यस्य॑ रोम॒शं नि॑षे॒दुषो॑ वि॒जृम्भ॑ते॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः॥ १६॥

१. गतमन्त्र के अनुसार प्रभु से रक्षित होकर जो व्यक्ति प्रभु के ध्यान में लगता है और **यस्य**=जिसका **सक्थि**=(सच् समवाये) प्रभु से मेलवाला व **कपृत्**=अपने में आनन्द का पूरण करनेवाला मन **अन्तरः**=अन्दर ही **आरम्बते**=स्थिर होता है—आश्रय करता है, **न स ईशे**=वह ही ईश नहीं है, अपितु **स इत् ईशम्**=वास्तविक ईश तो यह है **निषेदुषः**=नम्रता से आचार्यचरणों में बैठनेवाले **यस्य**=जिसका **रोमशम्**=(रोमणि शेते, सामानि यस्य लोमानित) साममन्त्रों में निवास करनेवाला मन **विजृम्भते**=विकसित होता है, अर्थात् जिसका मन ऋचाओं व यजुर्मन्त्रों का अध्ययन करके साममन्त्रों में निवास करता है, दूसरे शब्दों में जिसका मन सम्पूर्ण ज्ञान में अवस्थित होता है। २. यह ज्ञानी अनुभव करता है कि **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **विश्वस्मात् उत्तरः**=सम्पूर्ण संसार से उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—जैसे ध्यानी पुरुष मन का ईश बनता है, उसी प्रकार ज्ञानी भी मन का वास्तविक

ईश बनता है।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

ज्ञान व ध्यान

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १७॥

१. गतमन्त्र की भावना को ही क्रम बदलकर कहते हैं कि **न स ईशे**=वह ही ईश नहीं है **निषेदुषः**=आचार्यचरणों में नम्रता से बैठनेवाले **यस्य**=जिसका **रोमशम्**=(सामानि यस्य लोमानि) साममन्त्रों में निवास करनेवाला मन **विजृम्भते**=ज्ञान के दृष्टिकोण से अधिकाधिक विकसित होता चलता है, **स इत्**=वह भी **ईशे**=ईश है, **यस्य**=जिसका **सक्थि**=प्रभु से मेलवाला **कपृत्**=परिणामतः अपने में आनन्द को भरनेवाला मन **अन्तरा**=अन्दर ही **आरम्बते**=स्थिर होता है। अन्तःस्थित हुआ-हुआ मन प्रभु का आश्रय करता है। २. यह मन अनुभव करता है कि **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **विश्वस्मात् उत्तरः**=सम्पूर्ण संसार में उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—जहाँ ज्ञान मनुष्य को विषयों के तात्त्विक स्वरूप का चिन्तन कराके उनसे ऊपर उठाता है, वहाँ ध्यान भी प्रभु-प्राप्ति का आनन्द देकर वैषयिक आनन्द की तुच्छता को स्पष्ट कर देता है।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

अ-पराधीनता

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत्।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १८॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आपका **अयम्**=यह पुत्र **वृषाकपिः**=वासनाओं को कम्पित करनेवाला और अतएव शक्तिशाली सन्तान **परस्वन्तम्**=पराधीन को—इन्द्रियों के अधीन हुए हुए पुरुष को **हतं विदत्** (विद् ज्ञाने)=मृत जानता है। इन्द्रियों की अधीनता (दासता) मृत्यु का ही कारण बनती है। इन्द्रियों को जीतकर ही हम आनन्दमय जीवन बिता सकते हैं। २. यह जितेन्द्रिय पुरुष **असिम्**=(अस् क्षेपणे) वासनाओं के दूर फेंकने को, **सूनाम्**=(सू प्रेरणे) प्रभु की प्रेरणा को—इस प्रेरणा से ही तो यह निरन्तर वासनाओं को दूर करने के लिए यत्नशील होता है **नवं चरुम्**=(नु स्तुतौ, चर भक्षणे) वासनाओं को न उत्पन्न होने देने के लिए ही स्तुत्य भोजन को—राजस व तामस् भोजनों को छोड़कर सात्त्विक आहारों को और **आत्**=इनके बाद **ऐधस्य**=ज्ञानदीप्ति के **आचितम्**=समन्तात् व्याप्तिवाले **अनः**=शरीर-रथ को **विदत्**=प्राप्त करता है (विद् लाभे)। ३. यह अनुभव करता है कि **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे अधिक उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—इन्द्रियों की दासता विनाश का मार्ग है। इनको जीतकर ही हम शरीर-रथ को ज्ञानदीप्त बना पाते हैं।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

'दास व आर्य' का विवेक

अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम्।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १९॥

१. वृषाकपि कहता है कि **अयम्**=यह मैं **विचाकशत्** (कश् to sound)=प्रभु के नामों का उच्चारण करता हुआ **एमि**=गतिशील होता हूँ—अपने कार्यों में प्रवृत्त होता हूँ। मैं अपने जीवन में **दासम्**=(दस उपक्षये) नाशक वृत्ति को तथा **आर्यम्**=श्रेष्ठ वृत्ति को **विचिन्वन्**=विविक्त करता हुआ गति करता हूँ। दास वृत्तियों को छोड़ता हुआ आर्य वृत्तियों को अपनाता हूँ। २. **पाकसुत्वनः**=जीवन के परिपाक के लिए उत्पन्न किये गये सोम का **पिबामि**=मैं पान करता हूँ। इस सोम को शरीर में ही व्याप्त करने से नवशक्तियों का सुन्दर परिपाक होता है। इस परिपाक से मैं **धीरम्**=उस ज्ञान देनेवाले प्रभु को **अभि अचाकशम्**=प्रातः-सायं स्तुत करता हूँ कि **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **विश्वस्मात् उत्तरः**=सारे संसार से अधिक उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—सोम का शरीर में व्यापन होने पर जीवन की शक्तियों का उत्तम परिपाक होता है। यह व्यक्ति ही प्रभु का स्तवन व दर्शन कर पाता है।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता -**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

संसार-मरीचिका

धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ २०॥

१. यह संसार एक मृगतृष्णा के दृश्य के समान है। **धन्व च**=यह मरुस्थल तो है ही—जैसे मरुस्थल में एक मृग पानी की कल्पना करके प्यास बुझाने के लिए उधर भागता है—परन्तु उस स्थान पर पहुँचने पर वहाँ पानी न पाकर रेत को ही पाता है और दूर पर फिर पानी के दृश्य को देखता है और उधर भागता है। इसप्रकार यह मरीचिका उसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न करती चलती है **यत् कृन्तत्रं च**=यह काटनेवाली तो है ही और फिर **ता**=वे मरीचिका के दृश्य **कतिस्वित्**=कितने ही **योजना**=योजनों तक **वि**=(वि तत) विस्तृत होते हैं। इन योजनों तक फैले दृश्यों में आसक्त मृग जैसे मर जाता है, इसी प्रकार मनुष्य के लिए संसार के विषय **धन्व च**=मरुस्थल के समान हैं, **च**=और **कृन्तत्रम्**=उसकी शक्तियों को छिन्न भिन्न करनेवाले हैं और **ता**=वे विषय जीवन यात्रा में न जाने **कतिस्वित् योजना**=कितने ही योजनों तक चलते हैं। अन्त में वे मनुष्य को भ्रान्त करके समाप्त कर देते हैं। २. हे **वृषाकपे**=शक्तिशाली तथा वासनाओं को कम्पित करनेवाले जीव! तू इन विषय मरीचिकाओं में न उलझकर **नेदीयसः**=अपने अत्यन्त समीप निवास करनेवाले प्रभु के **अस्तम् ऐहि**=गृह को आ। हृदय ही प्रभु का गृह है। विषय-व्यावृत्त होकर हम अन्तर्मुख यात्रा करते हुए हृदय में स्थित होने के लिए यत्नशील हों। **गृहान् उप**=इन प्रभु-गृहों के समीप रहनेवाले बनें और यह अनुभव करें कि **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **विश्वस्मात् उत्तरः**=सम्पूर्ण संसार से उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—संसार की मरीचिका में कोसों भटकते रहने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि हम हृदयरूप गृह में प्रभु का दर्शन करें।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**पङ्क्तिः**॥

स्वप्न-नंशनः (नींद से उठ बैठना)

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै।
य एष स्वप्नंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ २१॥

१. हे **वृषाकपे**=वासनाओं को कम्पित करके दूर करनेवाले वृषाकपे! तू **पुनः**=फिर **एहि**=घर में प्राप्त हो। इधर-उधर भटकने की अपेक्षा तू मन को निरुद्ध करके हृदय में आत्मदर्शन

करनेवाला हो। प्रभु कहते हैं कि मैं और तू मिलकर **सुविता**=उत्तमकर्मों को (सु इता) **कल्पयावहै**=करनेवाले हों। जीव प्रभु की शक्ति का माध्यम बने, जीव के माध्यम से प्रभु-शक्ति उत्तम कार्यों को सिद्ध करनेवाली हो। २. जीव इस दुनिया की चमक में अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है और अपने लक्ष्य को वह सदा भूला-सा रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वह सो गया हो। अब **स्वप्ननंशनः**=इस नींद को समाप्त करनेवाला तू अपने लक्ष्य का स्मरण करता है और **अस्तम् एषि**=फिर से घर में आता है। **पुनः**=फिर **पथा**=ठीक मार्ग से चलता हुआ हृदयरूप गृह में प्रभु का दर्शन करता है और अनुभव करता है कि **इन्द्रः**=यह परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे उत्कृष्ट है।

भावार्थ—इस संसार में हमें सोते नहीं रह जाना। जागकर लक्ष्य की ओर बढ़ना है। प्रभु की शक्ति का माध्यम बनकर सदा उत्तम कर्मों को करना है।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

'उदङ्' नकि 'पुल्वघ-मृग-जनयोपन'

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन।
क्व१स्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ २२॥

१. हे **वृषाकपे**=वासनाओं को कम्पित करनेवाले शक्तिशाली जीव! **यत्**=जब **उत् अञ्चः**=लोग उत्कृष्ट मार्ग पर चलनेवाले होते हैं, तभी वे **गृहम्**=घर को **अजगन्तन**=प्राप्त होते हैं। ब्रह्मलोक ही वस्तुतः इस जीव का घर है। उत्कृष्ट मार्ग पर चलते हुए व्यक्ति इस गृह को प्राप्त करते हैं। २. परन्तु हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **स्यः**=वह **पुल्वघः**=बहुत पापोंवाला **मृगः**=सदा विलास की वस्तुओं को व परछिद्रों को खोजनेवाला (मृग अन्वेषणे) व्यक्ति ब्रह्मलोकरूप गृह में **क्व**=कहाँ आ पाता है? **जनयोपनः**=लोगों को पीड़ित करनेवाला **कम् अगन्**=किसको प्राप्त करता है? यह हिंसक पुरुष ब्रह्मलोक को क्या प्राप्त करेगा? उन्नति-पथ पर चलनेवाला पुरुष ही जान पाता है कि **इन्द्रः**-वे परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **विश्वस्मात् उत्तरः**=सबसे उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—हम 'उदङ्' बनें। 'पुल्वघ, मृग व जनयोपन' न बनें।

ऋषिः—**वृषाकपिरिन्द्राणी च**॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

मानवी की महिमा

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम्।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ २३॥

१. गतमन्त्र के अनुसार हमें 'उदङ्' बनना है। यह तभी हो सकता है जब हमारी बुद्धि स्थिर हो। यह बुद्धि मानो मनु की सन्तान है, इसीलिए इसे 'मानवी' कहा गया है। यही मानव की पत्नी है—उसकी शक्ति है। यही उसका कल्याण करती है। यह **ह**=निश्चय से **पर्शुः नाम**='पर्शु' इस नामवाली है। यह वासना-वृक्षों के लिए सचमुच कुल्हाड़े के समान है। २. यह बुद्धि मनुष्य की वासनाओं को छिन्न-भिन्न करके सभी इन्द्रियों व सभी प्राणों को ठीक रखती है। दसों इन्द्रियों व दसों प्राणों को विकसित करने के कारण यह बुद्धि इन बीस सन्तानोंवाली कहलाती है। **साकम्**=साथ-साथ **विंशतिम्**=इस बीस को यह **ससूव**=उत्पन्न करती है। ३. हे **भल**=सर्वद्रष्टा प्रभो! **त्यस्याः**=उस बुद्धि का **भद्रम् अभूत्**=भला हो, **यस्याः**=जिसका हमारी दुर्गति को देखकर **उदरम् आमयत्**=पेट पीड़ावाला हुआ, अर्थात् जिसको हमारी दुर्गति अखरी। हमारी दुर्गति को दूर करने के लिए ही इसने वासनाओं का विनाश किया और हमें

अनुभव कराया कि **इन्द्रः**-वे परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **विश्वस्मात् उत्तरः**=सर्वोत्कृष्ट हैं।

भावार्थ—अन्ततः बुद्धि ही हमारा कल्याण करती है—यही मानवी है। वासना-वृक्षों के लिए पर्शु बनकर यह हमारी इन्द्रियों व प्राणशक्तियों को उत्कृष्ट बनाती है।

इस बुद्धि को विकसित करनेवाला व्यक्ति सब बुराइयों को (कु) सन्तप्त व विनष्ट (ताप) करनेवाला बनता है। सो यह 'कुन्ताप' कहलाता है। अगले दस सूक्त इसी ऋषि के हैं, अतः ये 'कुन्ताप-सूक्त' कहलाते हैं।

अथ कुन्तापसूक्तानि॥

१२७. [सप्तविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्]

षष्टिं-सहस्रा-नवतिं (च)

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे॥ १॥

१. **जनाः**-हे लोगो! **इदम् उपश्रुत**=इस बात को ध्यान से सुनो। **नराशंसः**=उन्नति-पथ पर चलनेवालों से शंसनीय वह प्रभु **स्तविष्यते**=हमसे स्तुत होगा। हम प्रभु का स्तवन करेंगे, आप सब प्रभु-स्तवन को सुनने का अनुग्रह करो। २. प्रभु-स्तवनपूर्वक **कौरमे**-(कु+रम्) इस पृथ्वी पर क्रीड़ा करनेवाले में—क्रीड़क की मनोवृत्ति से सब कार्यों को करनेवाले में तथा **रुशमेषु**=काम, क्रोध, लोभ आदि आसुरवृत्तियों का संहार करनेवाले में हम **षष्टिं** (ष-wise) अतिशयित बुद्धिमत्ता को **सहस्रा** (स हस्)-आनन्दमयी मनोवृत्तियों को तथा **नवतिम्**=(नवते to go) क्रियाशीलता को **आदद्महे**=सब प्रकार से ग्रहण करते हैं। ३. वस्तुतः प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाला व्यक्ति 'कौरम व रुशम' बनता है। यह सब स्थितियों को क्रीडक की मनोवृत्ति से करता है तथा वासनाओं का संहार करता है। परिणामतः यह बुद्धिमत्ता (षष्टिं) मनःप्रसाद (स-हस्रा) तथा क्रियाशीलता को (नवति) प्राप्त करता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करते हुए हम क्रीडक की मनोवृत्तिवाले व वासनाओं का संहार करनेवाले बनें। ऐसी स्थिति में हम 'बुद्धि-प्रसाद व क्रियाशीलता' के द्वारा मस्तिष्क, हृदय व शरीर—तीनों का स्वास्थ्य प्राप्त करेंगे।

'दिवः ईषमाणाः, उपस्पृशः'

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः॥ २॥

१. गतमन्त्र में वर्णित स्तोता वह है **यस्य**=जिसके **प्रवाहणः**=(प्रवाहिणः) प्रकृष्ट गतिवाले **द्विःदश**=दस प्राण तथा दस इन्द्रियाँ—ये बीस तत्त्व—**वधूमन्तः**=बुद्धिरूप प्रकृष्ट वधूवाले होते हुए **उष्ट्राः**=सब दोषों का दहन करनेवाले होते हैं (उष दाहे)। आत्मा पति है और बुद्धि उसकी पत्नी है। (आत्मा Adam है तो बुद्धि Eve)। जब इन्द्रियों व प्राणों के साथ इस उत्कृष्ट बुद्धि का सम्पर्क होता है तब ये प्राण व इन्द्रियाँ सब दोषों का दहन करनेवाली होती हैं। २. उस समय **रथस्य**=इस शरीर-रथ के **वर्ष्मा**=(Surface of a mountain) शिखर (शिरःस्थ आँख, कान, नाक, मुख) **निजिहीडते**=इन सब प्राकृतिक भोगों का निरादर करते प्रतीत होते हैं। यह स्तोता प्राकृतिक भोगों में नहीं फँसता। इस स्तोता के शरीर-रथ के शिखर **दिवः ईषमाणाः**-प्रकाश की ओर गतिवाले होते हैं और अन्ततः **उपस्पृशः**=उस प्रभु को समीपता से स्पर्श करनेवाले होते

हैं।

भावार्थ—स्तोता की इन्द्रियाँ व प्राण प्रकृष्ट बुद्धि से युक्त होकर गतिशील होते हैं और सब दोषों का दहन करनेवाले होते हैं। अब यह स्तोता प्राकृतिक भोगों से ऊपर उठता है और प्रकाश की ओर चलता हुआ प्रभु को प्राप्त करनेवाला होता है।

शतं निष्कान्-दश स्त्रजः

एष इषाय मामहे शतं निष्कान्दश स्त्रजः।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्त्रा दश गोनाम्॥ ३॥

१. **एषः**=यह स्तोता **इषाय**=प्रभु-प्रेरणा की प्राप्ति के लिए **मामहे**=खूब ही प्रभु-पूजन करता है। प्रभु-पूजन करता हुआ यह स्तोता अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को सुनता है और प्रभु से दिये हुए **शतं निष्कान्**=सैकड़ों कण्ठ की भूषणभूत ज्ञानमालाओं को आदृत करता है। प्रभु से दिये गये ये ज्ञान इस स्तोता के **निष्क** (neckless)=कण्ठहार—बनते हैं। प्रभु-प्रदत्त **दश स्त्रजः**= (सृजन्ति) ज्ञान व कर्मों का उत्पादन (सृष्टि) करनेवाली इन्द्रियों को आदर देता है। इन इन्द्रियों का ग़लत प्रयोग नहीं करता। २. यह स्तोता **शतानि**=शतवर्षपर्यन्त चलनेवाले **अर्वताम् त्रीणि**=वासनाओं के संहार के तीन को—कामसंहार, क्रोधसंहार व लोभसंहार को आवृत्त करता है। प्रभु-स्तवन के द्वारा यह आजीवन 'काम, क्रोध, लोभ' का संहार करनेवाला होता है। वासना-संहार के द्वारा **गोनाम्**=ज्ञान की वाणियों के **सहस्त्रा**=(सहस्) आनन्द को प्राप्त करानेवाले प्रभु **दश**=धर्म के दश लक्षणों का ज्ञान प्राप्त कराते हैं और यह स्तोता उनको आदृत करता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करते हुए हम प्रभु की प्रेरणा को प्राप्त करेंगे। प्रभु हमें कण्ठों के आभूषणभूत शतशः ज्ञानों को, ज्ञानों व कर्मों का सर्जन करनेवाली दस इन्द्रियों को, शतवर्षपर्यन्त होनेवाले 'काम, क्रोध व लोभ' के विविध संहार को तथा ज्ञान द्वारा होनेवाले आनन्दमय धर्म के दस लक्षणों को प्राप्त कराते हैं।

मामनुस्मर युध्य च

वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव॥ ४॥

१. हे **रेभ**=स्तोतः! **वच्यस्व**=तू प्रभु के नामों का उच्चारण कर। प्रभु के गुणों का **वच्यस्व**= तू इसप्रकार उच्चारण कर **न**=जैसेकि **पक्वे वृक्षे**=पके हुए वृक्ष पर **शकुनः**=पक्षी शब्द करता है। वृक्ष के परिपक्व फलों का वह आनन्द लेता है और प्रसन्नता में शब्द करता है। इसी प्रकार हे स्तोतः! प्रभु-स्मरण में आनन्द अनुभव करता हुआ तू प्रभु का गुणगान कर। २. **नष्टे**=किसी भी प्रकार के 'सन्तान, धन व यश' आदि का नाश होने पर **जिह्वा चर्चरीति**=इस स्तोता की जिह्वा प्रभु-नामों का उच्चारण करती हुई इसप्रकार गतिवाली होती है, **न**=जैसेकि **भुरिजो क्षुरः इव**=भुजाओं में क्षुर (razor or arrow) (उस्तरा या तीर) गतिवाला होता है। यह उपासक विघ्न-विनाश के लिए भुजाओं द्वारा अस्त्रों का प्रहार करता है और वाणी द्वारा प्रभु-नामोच्चारण करता है, अर्थात् यह स्तोता प्रभु-स्मरण करता है और युद्ध करता है। (मामनुस्मर युध्य च)।

भावार्थ—हम प्रभु स्तवन में आनन्द लें। आपत्ति आने पर भुजाओं में पुरुषार्थ हो, वाणी में प्रभु के नामों का उच्चारण।

स्तुति, सन्तान व गौएँ

प्र रेभासो मनीषा वृषा गावइवेरते। अमोतपुत्रका एषाममोत गाइवासते॥ ५॥

१. **रेभासः**=स्तोता लोग **मनीषा**=मननपूर्वक की गई स्तुतियों को (Hymn, praise) इसप्रकार **प्र ईरते**=प्रकर्षेण गतिमय करते हैं, **इव**=जैसे वे अपने घरों में **वृषाः गावः**=दुग्ध का वर्षण करनेवाली—खूब दूध देनेवाली गौवों को प्रेरित करते हैं। ये प्रभु भक्त इन गोदुग्धों के सेवन से ही सात्त्विकवृत्तिवाले बनकर प्रभु भजन करनेवाले होते हैं। २. **एषाम्**=इन स्तोताओं के **अमा**=घर में **उत पुत्रकाः**=निश्चय से प्रिय सन्तान **आसते**=आसीन होते हैं, उसी प्रकार **इव**=जैसेकि **अमा**=इनके घरों में **उत**=निश्चय से **गाः**=गौएँ आसीन होती हैं। प्रभु-भक्तों के गृह प्रिय सन्तानों व गौओं से युक्त होते हैं।

भावार्थ—प्रभुभक्तों के गृहों में जिसप्रकार प्रभु का उपासन चलता है, उसी प्रकार वहाँ प्रिय सन्तानों व गौओं की स्थिति होती है।

ज्ञान के द्वारा प्रभु को प्राप्त करानेवाली बुद्धि

प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम्। देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम्॥ ६॥

१. हे **रेभ**=स्तोतः! **गोविदम्**=ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करानेवाली तथा **वसुविदम्**=सबके अन्दर बसनेवाले व सबको अपने अन्दर बसानेवाले प्रभु को प्राप्त करानेवाली **धीम्**=बुद्धि को **प्रभरस्व**=अपने में धारण कर। स्तवन से ही यह बुद्धि प्राप्त होती है। २. **देवत्रा**=देवों में स्थित होकर **इमां वाचम्**=इस ज्ञान की वाणी को **श्रीणीहि**=अपने में परिपक्व कर। ज्ञानी गुरुओं के चरणों में बैठकर इस ज्ञान को तू इसप्रकार परिपक्व कर **न**=जैसेकि **अवीःइषुः**=रक्षक बाण **अस्तारम्**=अस्त्रों को फेंकनेवाले योद्धा को परिपक्व करता है। हाथ में अस्त्र होने पर योद्धा घबराता नहीं। अस्त्रों से सुसज्जित योद्धा दृढ़ मन से युद्ध करता है, इसी प्रकार उत्तम आचार्यों को पाकर शिष्य अपने में ज्ञान का ठीकरूप से परिपाक कर पाता है।

भावार्थ—स्तवन से वह बुद्धि प्राप्त होती है जोकि ज्ञान को प्राप्त कराती हुई प्रभु-प्राप्ति का साधन बनती है। यह स्तोता ज्ञानी आचार्यों के चरणों में ज्ञान का परिपाक करता है और इसप्रकार जीवन संग्राम में विजयी बनता है जैसेकि अस्त्रों से सुसज्जित योद्धा युद्ध में।

विश्वजनीन राजा

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति। वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः॥ ७॥

१. उस **राज्ञः**=सम्पूर्ण संसार का शासन (regulation) करनेवाले, **विश्वजनीनस्य**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले, **वैश्वानरस्य**=सब मनुष्यों को उन्नति-पथ पर ले चलनेवाले, **परिक्षितः**=समन्तात् निवास व गतिवाले (सर्वव्यापक) प्रभु की **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **आसुनोत**=उत्पन्न करो। प्रभु के गुणों का गायन करो। २. उन प्रभु का स्तवन करो **यः**=जोकि **देवः**=प्रकाशमय हैं तथा **अमर्त्यान् अति**=अमरणधर्मा देवों को लाँघकर स्थित हैं। सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले वे ही 'महादेव' हैं—देवाधिदेव हैं।

भावार्थ—हम संसार के शासक, सबके हितकारी, सबको उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाले, सर्वव्यापक प्रभु का स्मरण करें। वे प्रभु ही प्रकाशमय हैं, देवों के देव 'महादेव' हैं। सबको देवत्व प्राप्त करानेवाले हैं।

पति-पत्नी का मिलकर प्रभु-स्तवन

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत्तम आसनमाचरन्। कुलायन्कृण्वन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया॥ ८॥

१. **तमः आसनम्** (आ अस्=क्षेपणे)=समन्तात् अन्धकार को परे फेंकने—दूर करने को **आचरन्**=करता हुआ—हमारे अज्ञानान्धकारों को दूर करता हुआ **परिक्षित्**=चारों ओर निवास व

गतिवाला वह सर्वव्यापक प्रभु **नः**=हम स्तोताओं के **क्षेमम्**=कल्याण को **अकरोत्**=करता है। प्रभु की उपासना से हृदय प्रकाशमय हो उठता है और अन्धकार में पनपनेवाले सब आसुरभाव वहाँ से विलीन हो जाते हैं। २. **कुलायन् कृण्वन्** (कुलायं)=घर को बनाता हुआ **कौरव्यः** (कु+रु) पृथिवी पर प्रभुनामोच्चारण करनेवालों में उत्तम वह **पतिः**=गृहपति **जायया**=अपनी पत्नी के साथ **वदति**=प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करता है। यह पति-पत्नी के द्वारा किया गया स्तवन ही उनके घर को उत्तम बनाता है।

भावार्थ—स्तुति किया गया प्रभु हमारे अज्ञानान्धकारों को दूर करता है। जिस घर में पति-पत्नी प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं, वह घर प्रकाशमय व प्रशस्त बनता है।

दधि, मन्थां, परिश्रुतम्

कृतरत्त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम्।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः॥ ९॥

१. **परिक्षितः**=चारों ओर निवास व गति करनेवाले **राज्ञः**=संसार के शासक (इन्द्रो विश्वस्य राजति) प्रभु के राष्ट्र में, अर्थात् जिस राष्ट्र में सब घरों में प्रभु-स्तवन होता है वहाँ **जाया**=पत्नी **पतिं विपृच्छति**=पति से पूछती है कि **दधि मन्थां परिश्रुतम्**=दही, मठा व मक्खन में से **कतरत्**=कौन-सी वस्तु को **ते**=आपके लिए **आहराणि**=प्राप्त कराऊँ? २. प्रभु-स्तवनवाले राष्ट्र में (दूध) दही-मक्खन-मठा आदि सात्त्विक भोजनों का ही प्रयोग होता है। वहाँ मद्य, मांस आदि के सेवन की रुचि नहीं पनपती। मद्य आदि का सेवन मनुष्य को प्रभु-स्तवन से दूर ले-जाता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन के साथ मनुष्य सात्त्विक भोजनों की ही वृत्तिवाला बना रहता है। राजस् व तामस् भोजन हमें प्राकृतिक भोगों में फँसाकर प्रभु-स्तवन से दूर कर देते हैं।

यव (जौ)

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम्।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः॥ १०॥

१. **परिक्षितः**=चारों ओर गति व निवासवाले उस सर्वव्यापक **राज्ञः**=शासक प्रभु के **राष्ट्रे**=राष्ट्र में, अर्थात् जहाँ प्रभु-स्तवन उत्तमता से चलता है उस राष्ट्र में **सः जनः**=वह स्तोता मनुष्य **भद्रं एधति**=मंगल व कल्याण के साथ वृद्धि को प्राप्त होता है। यह स्तोता मार्ग से न भटकता है और न ही अकल्याण का भागी होता है। २. इस राष्ट्र में **अभीवस्वः**=शरीर व मन दोनों के उत्तम निवास का साधनभूत—दोनों को उत्तम बनानेवाला **पक्वः यवः**=परिपक्व जौ **पथः**=मार्ग से **बिलम् प्रजिहीते**=हमारी अनाज की खत्तियों की ओर—अन्नों को भर रखने के स्थानों की ओर **प्रजिहीते**=गति करता है, अर्थात् ये स्तोता उत्तम, न्याय्यमार्ग से यव आदि सात्त्विक भोज्यपदार्थों का घरों में संचय करते हैं।

भावार्थ—प्रभु के स्तोता लोग सुख व कल्याण के साथ फूलते-फलते हैं। ये न्याय्यमार्गों से यव (जौ) आदि सात्त्विक भोजनों का ही संग्रह करते हैं।

बोध

इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम्। ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत्ते पृणादरिः॥ ११॥

१. **इन्द्रः**=ज्ञानरूप परमैश्वर्यवाला प्रभु **कारुम्**=क्रियाओं को कुशलता से करनेवाले पुरुष को **अबूबुधत्**=बोधयुक्त करता है। आलसी को ज्ञान प्राप्त नहीं होता। प्रभु इस कारु को यह

बोध देते हैं कि **उत्तिष्ठ**=उठ, आलस्य को छोड़ और **जनम् विचर**=लोगों में विचरण कर। लोगों से तू सम्पर्क स्थापित कर। उनके सुख-दुःख में सहानुभूति दर्शाता हुआ उनका सहायक बन। २. दूसरी बात यह है कि **उग्रस्य मम इत्**=शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले तेजस्वी मेरी ही **चर्कृधि**=स्तुति करनेवाला बन। तू इसप्रकार अपने जीवन को सुन्दर बना कि **सर्वः**=सब **अरिः**=(a religious or pious man) धार्मिक लोग **इत्**=निश्चय से **ते पृणात्**=तुझसे प्रसन्न हों (पृणाति-delight, please)। तेरे सुन्दर जीवन को देखकर उन्हें प्रसन्नता का अनुभव हो।

भावार्थ—क्रियाशील व्यक्ति को प्रभु बोध देते हैं—(१) तू लोगों के साथ मिलकर चल (२) प्रभु का स्तवन करनेवाला बन और (३) इसप्रकार जीवन को सुन्दर बना कि सब धार्मिक लोग तुझे देखकर प्रसन्न हों।

प्रभु-पूजन व उत्तम घर का निर्माण

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति॥ १२॥

१. जहाँ मनुष्य गतमन्त्र के अनुसार प्रभु के बोध को सुनता है, **इह**=वहाँ इस घर में **गावः प्रजायध्वम्**=हे गौओ! तुम खूब फूलो-फलो। **इह**=इस घर में **अश्वाः**=हे घोड़ो! तुम फूलो-फलो और **इह**=यहाँ **पूरुषाः**=पुरुष फूलें-फलें। २. **इह उ**=इस घर में निश्चय से **सहस्रदक्षिणः**=हजारों का दान देनेवाला **पूषा**=सबका पोषण करनेवाला गृहपति **अपि**=भी **निषीदति**=नम्रतापूर्वक आसीन होता है।

भावार्थ—प्रभु-पूजनवाले गृह में 'गौएँ, घोड़े, पुरुष' सभी फूलते-फलते हैं। इस घर का गृहपति हजारों का दान देनेवाला व सबका पोषण करनेवाला होता है। यह नम्र होता है।

न अमित्रयु जन, न स्तेन

नेमा इन्द्र गावो रिषन्मो आसां गोप रीरिषत्। मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत॥ १३॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **इमाः गावः**=ये हमारे घरों की गौएँ **न रिषन्**=हिंसित न हों और **मा उ**=मत ही निश्चय से **आसाम्**=इन गौओं का **गोपः**=ग्वाला (रक्षक) **रीरिषत्**=हिंसित हो। २. हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **अमित्रयुः जनः**=शत्रुरूप से वर्तनेवाला—इनके साथ स्नेह न करनेवाला मनुष्य **आसाम्**=इनका **मा ईशत**=शासक मत हो जाए। इसीप्रकार **स्तेनः**=चोर **मा (ईशत)**=मत शासक हो।

भावार्थ—हमारे घरों व राष्ट्र में न गौएँ हिंसित हों—न गोप। शत्रुभूत मनुष्य व चोर इनका ईश न जो जाए।

'भद्रेण सूक्तेन' वचसा

उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम्।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन॥ १४॥

१. **वयम्**=हम **सूक्तेन वचसा**=उत्तमता से उक्त वचनों के द्वारा **नरम्**=उन्नति-पथ पर ले चलनेवाले प्रभु को **उप नो नमसि**=खूब ही उपस्तुत करते हैं। **वयम्**=हम **भद्रेण वचसा**=कल्याणकारक सुखप्रद वचनों के द्वारा प्रभु का स्तवन करते हैं। सूक्त व भद्र वचनों के द्वारा ही प्रभु का स्तवन होता है। २. वे प्रभु हमारी **अधिध्वनः**=अधिक ध्वनिवाली—ऊँचे से उच्चरित **गिरः**=वाणियों का **वनात्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करें। हमारे स्तुतिवचन हमें प्रभु का प्रिय बनाएँ। इन स्तुतिवचनों का उच्चारण करते हुए हम **कदाचन**=कभी भी **न रिष्येम**=हिंसित न हों।

भावार्थ—हम 'भद्र व सूक्त' वचनों के द्वारा प्रभु का स्तवन करें। ये स्तुति-वचन प्रभु के लिए प्रिय हों। इन स्तुतिवचनों का उच्चारण करते हुए हम कभी हिंसित न हों।

१२८. [अष्टाविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्]

'सभेय-विदथ्य-सुत्वा-यज्वा'

यः स॒भेयो॑ वि॒द॒थ्य॑ः सु॒त्वा य॒ज्वाथ॒ पूरु॑षः। सूर्यं॒ चामू रि॒शाद॑स॒स्तद्दे॒वाः प्रागक॑ल्पयन्॥ १॥

१. वस्तुतः **पूरुषः**=पुरुष वह है **यः**=जोकि **सभेयः**=सभा में उत्तम है—अपने ज्ञान व शिष्टाचार के कारण सभा में प्रशस्य होता है। **विदथ्यः**=(Knowledge, sacrifice, battle) ज्ञान, यज्ञ व संग्राम में उत्तम है। **सुत्वा**=सोम का सम्पादन करता है, शरीर में शक्ति (सोम) का रक्षण करता है। **अथ**=और **यज्वा**=यज्ञशील बनता है। २. **च**=और **तत्**=ऐसा बनने के लिए **देवाः**= देववृत्ति के पुरुष **अमुम्**=उस **सूर्यम्**=सूर्यसम ज्योति ब्रह्म को (ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः) **प्राक्**=आगे—अपने सामने **अकल्पयन्**=(to believe, consider, think, imagine) सोचते हैं। प्रभु का ध्यान करते हुए प्रभु-जैसा ही बनने का प्रयत्न करते हैं। प्रभु ही **रिशादसम्**=सब हिंसक वृत्तियों को समाप्त करनेवाले हैं। प्रभु-स्मरण करते हुए ये उपासक 'ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध व द्रोह' आदि वृत्तियों से ऊपर उठ जाते हैं।

भावार्थ—मनुष्य तो वही है जो कि सभा में प्रशस्य होता है—ज्ञान में उत्तम है—सोम का सम्पादन करता है और यज्ञशील है। ये देववृत्ति के पुरुष सदा प्रभु का स्मरण करते हैं। प्रभु इनकी अशुभवृत्तियों को विनष्ट कर देते हैं।

अधराक् (अधोगामी)

यो जा॒म्या अप्र॑थय॒स्तद्यत्सखा॑यं दुधू॒र्षति। ज्येष्ठो॒ यद॑प्रचेता॒स्तदा॑हु॒रध॑रा॒गिति॑॥ २॥

१. (क) **यः**=जो **जाम्यः**=बहिन का, अथवा किसी कुलीन स्त्री का **अप्रथयः**=(प्रथ प्रक्षेपे disclose) दोष इधर-उधर फैलाता है। मामूली-सी बात को लेकर जो किसी कुलीन स्त्री को कलंकित करता है। (ख) **तत् यत्**=वह जो **सखायं दुधूर्षति**=मित्र को हिंसित करने की कामना करता है। (ग) तथा **ज्येष्ठः**=आयु में बड़ा होता हुआ **यत्**=जो **अप्रचेताः**=नासमझी की बात करता है। **तत्**=तब उस पुरुष को **अधराग् आहु**=अधोगामी कहते हैं। २. अवनति की ओर जानेवाले पुरुष के तीन लक्षण हैं (क) यह बहिन व कुलीन स्त्री को बदनाम करता है (ख) मित्रों से द्रोह करता है (ग) और आयु में बड़ा होता हुआ भी नासमझी की बात करता है।

भावार्थ—अवनत पुरुष के तीन लक्षण है (क) कुलीन स्त्री को कलंकित करना (ख) मित्र-द्रोह तथा (ग) बड़ा होते हुए भी नासमझी की बात करना।

उदग्

यद्भ॒द्रस्य॒ पुरु॑षस्य पु॒त्रो भव॑ति दाधृ॒षिः। तद् वि॒प्रो अब्र॑वीदु॒ तद्ग॑न्ध॒र्वः का॒म्यं वचः॥ ३॥

१. **यत्**=जब **भद्रस्य पुरुषस्य**=(भदि कल्याणे सुखे च) कल्याण-कर्मों को करनवाले पुरुष का **पुत्रः**=सन्तान **दाधृषिः**=शत्रुओं का—काम, क्रोध, लोभ का—धर्षण करनेवाला होता है? **तत्**=तब **गन्धर्वः**=ज्ञान की वाणियों का धारण करनेवाला **विप्रः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाला ज्ञानी पुरुष इस दाधृषि के लिए **काम्यं वचः**=कमनीय सुन्दर वेदवाणियों को **अब्रवीत्**=उपदिष्ट करता है। २. विद्यार्थी कुलीन हो, 'काम' आदि शत्रुओं का धर्षण करनेवाला हो, ऐसा होने पर उत्कृष्ट जीवनवाला ज्ञानी आचार्य ज्ञान की वाणियों को उपदिष्ट करता है। यह विद्यार्थी **उदग्**=ऊर्ध्वगतिवाला होता है (उत् अञ्च)—सदा उन्नति-पथ पर आगे बढ़ता है।

भावार्थ—उत्तम माता व पिता का सन्तान भी सामान्यतः उत्तम होता है—यह काम, क्रोध का शिकार नहीं होता रहता। इसे सदाचारी, ज्ञानी आचार्य ज्ञान की वाणियों का उपदेश करते हैं और यह सदा उन्नत होता चलता है।

धन तथा दानशीलता

यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः। धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम॥ ४॥

१. **यः च**=और जो **पणिः**=वणिक् वृत्तिवाला होता हुआ **रघुजिष्ठ्यः**=औरों का पालन करनेवाला नहीं। **यः च**=और जो **देवान् अदाशुरिः**=देवों के प्रति देने की वृत्तिवाला नहीं अथवा **देवान्**=धनी होता हुआ (अदाशुरिः) न देने की वृत्तिवाला है। वह **शश्वतां धीराणाम्**=प्लुतगतिवाले क्रियाशील धीर पुरुषों में **अपाग्**=(अप अञ्च्) निम्न गतिवाला है। **अहम् इति शुश्रुम**=मैंने ऐसा सुना है अथवा सदा से धीर पुरुषों से हमने ऐसा सुना है कि वह अदानशील पुरुष नीच गतिवाला है।

भावार्थ—धन की शोभा दान में है। धनी होते हुए न देना निम्न गति का कारण बनता है।

'यज्ञशीलता+दान' से स्वर्ग

ये च देवा अयजन्ताथो ये च परादुदिः। सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते॥ ५॥

१. **ये च**=और जो **देवाः**=देववृत्ति के बनकर **अयजन्त**=खूब ही यज्ञ करते हैं। **च अथ उ**=और अब निश्चय से **ये परादुदिः**=जो खूब ही दान करते हैं। ये व्यक्ति **सूर्यः इव**=सूर्य की भाँति **दिवं गत्वाय**=प्रकाशमय लोक में जाकर **मघवानः**=ऐश्वर्यशाली होते हुए अथवा (मघ-मख) यज्ञशील होते हुए **विरप्शते**=खूब ही प्रभु के नामों का उच्चारण करते हैं।

भावार्थ—हम देव बनकर यज्ञशील व दानवृत्तिवाले बनें। हमें प्रकाशमय स्वर्गलोक की प्राप्ति होगी। वहाँ भी हम यज्ञशील व प्रभु स्तवन करनेवाले होंगे।

(कल्पेषु संमिता) अमणिः अहिरण्यवान्

योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता॥ ६॥

१. **यः**=जो **अनाक्ताक्षः**=आँख में अञ्जन लगाये हुए नहीं है, इसी प्रकार **अनभ्यक्तः**=अंगों पर जिसने उबटन नहीं लगाया है, **अमणिवः**=जिसने शरीर पर मणियों को धारण नहीं किया हुआ, **अहिरण्यवान्**=जो सोना, चाँदी आदिवाला नहीं है, अर्थात् बहुत धनी नहीं है, **अब्रह्मा**=चारों वेदों का ज्ञाता नहीं है, वह भी **ब्रह्मणः पुत्रः**=उस ब्रह्म का ही पुत्र है। २. **ता उ ता**=वे सब और निश्चय से वे सब **कल्पेषु संमिता**=अनुष्ठानों में (rites) यज्ञ आदि के क्रियाकलापों में समानरूप से सम्मिलित होने योग्य माने गये हैं (adapted)।

भावार्थ—यज्ञ आदि कर्मों के विधि विधानों में शरीर की बहुत सजावट व बहुत धन, व बहुत ज्ञान का होना आवश्यक नहीं है। पूर्व व पश्चिम में आहुति डालने के लिए बहुत ज्ञान अपेक्षित नहीं।

सुमणिः सुहिरण्यवः

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता॥ ७॥

१. **यः आक्ताक्षः**=अञ्जन से अँजी आँखवाला है, **सुअभ्यक्तः**=जिसने स्नान आदि के बाद सम्यक् तेल मला है, **सुमणिः**=उत्तम मणियों को धारण किये हुए है, **सुहिरण्यवः**=उत्तम स्वर्ण आदि धनों से युक्त है। **सुब्रह्मा**=उत्तम वेदज्ञाता है। वह भी **ब्रह्मणः पुत्रः**=उस ब्रह्म का ही पुत्र है। २. **ता उ ता**=वे सब और निश्चय से वे सब **कल्पेषु संमिता**=यज्ञानुष्ठानों में समान रूप से सम्मिलित होने के योग्य माने गये हैं।

भावार्थ—सुस्नात, सुन्दर शरीरवाला, धनी तथा ज्ञानी भी यज्ञानुष्ठान उसी प्रकार करे जैसे कि अस्नात, न सुन्दर शरीरवाला, निर्धन व अल्पज्ञ करता है। यज्ञानुष्ठान सभी को करना ही चाहिए। ज्ञानी होकर इन अनुष्ठानों की उपेक्षा न करे।

धनी होता हुआ अदाता कैसा है?

अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः।
अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता॥ ८॥

१. **अप्रपाणा च**=जैसे बिना पनघटवाला—पानी पीने के अस्थानवाला **वेशन्ता**=सरोवर है, वैसे ही **अप्रतिदिश्ययः**=प्रतिदान न करनेवाला **रेवान्**=धनी है। धन के होने पर दान करना ही चाहिए। २. धन होने पर दान न करनेवाला तो ऐसा है जैसेकि एक **कल्याणी कन्या**=बड़ी सुन्दर रूपवती युवति हो परन्तु **अयभ्या**=मैथुन के अयोग्य हो—सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य हो। **ता उ ता**=वे सब—निश्चय से वे सब **कल्पेषु संमिता**=शास्त्रविधानों में समान माने गये हैं।

भावार्थ—एक धनी होता हुआ दान न देनेवाला पुरुष ऐसा है, जैसा कि बिना पनघटवाला सरोवर और जैसेकि सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य सुन्दर युवति।

रेवान् सुप्रतिदिश्ययः

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः।
सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता॥ ९॥

१. **सुप्रपाणा च**=जैसे उत्तम प्याऊवाला **वेशान्त**=सरोवर है, उसी प्रकार **सुप्रतिदिश्ययः**=सुन्दर प्रतिदान करनेवाला **रेवान्**=धनी है। २. यह दाता धनी उस **कल्याणी कन्या**=सुन्दररूपवाली युवति के समान है जोकि **सुयम्या**=उत्तमता से मैथुन के योग्य व सन्तानोत्पत्ति के योग्य है। **ता उ ता**=वे सब और निश्चय से वे सब शास्त्रविधानों में समान माने गये हैं।

भावार्थ—उत्तम दान देनेवाला धनी शास्त्रों में उस सरोवर से उपमित होता है जो उत्तम पनघटवाला है तथा उस सुन्दर युवति से उपमित होता है जोकि उत्तम सन्तान को जन्म देने के योग्य है।

निरादृत युद्धकातर पुरुष

परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः। अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता॥ १०॥

१. **महिषी**=ऊँचे घर की होती हुई **च**=भी जो स्त्री **परिवृक्ता**=पति से छोड़ी गई है, जैसे वह स्त्री आदर का पात्र नहीं होती, इसी प्रकार वह व्यक्ति भी आदरणीय नहीं होता जो **स्वस्त्या च**=(सु+अस्ति) कल्याणमयी (स्वस्थ) स्थितिवाला होता हुआ भी **अयुधिंगमः**=युद्ध में नहीं जाता। युद्ध में कातरता के कारण न जानेवाला व्यक्ति उसी प्रकार अनादरणीय होता है, जैसेकि कुलीन होती हुई भी पति परित्यक्ता स्त्री आदरणीय नहीं होती। २. **च**=और इसी प्रकार **अनाशुरः**=शीघ्रता से कार्यों को न करनेवाला **आयामी**=समन्तात् नियामक राजा भी आदरणीय नहीं हुआ करता। **ता उ ता**=वे और निश्चय से वे सब **कल्पेषु**=शास्त्रविधानों में **संमिता**=समान

माने गये हैं।

भावार्थ—'परित्यक्ता कुलीन स्त्री, स्वस्थ होते हुए भी युद्ध में न जानेवाला तथा शासक होते हुए भी आलसी पुरुष' ये सब शास्त्रविधानों में समान माने गये हैं।

स्वस्त्या च युधिंगमः

वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः। श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता॥ ११॥

१. **वावाता च**=(वा गतिगन्धनयोः) उत्तम पुण्य सुगन्ध-(सम्बन्ध) युक्त—सुखपूर्वक पति के साथ संगत **महिषी**=कुलीन स्त्री जैसे आदरणीय होती है, **च**=उसी प्रकार **च**=उसी प्रकार **स्वस्त्या**=स्वस्थ कल्याणयुक्त होता हुआ **युधिंगमः**=युद्ध में जानेवाला वीर आदरणीय होता है। २. **शु आसुरः**=शीघ्रता से (शु) मार्ग को व्यापनेवाला—कार्यों को करनेवाला, **आयामी च**=शासक भी उसी प्रकार आदरणीय होता है। **ता उ ता**=वे सब और निश्चय से वे सब **कल्पेषु**=शास्त्र विधानों में **संमिता**=समान माने गये हैं।

भावार्थ—पतिसंगत कुलीन स्त्री, युद्ध में वीरतापूर्वक अग्रसर होनेवाला स्वस्थ योद्धा तथा शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाला शासक—ये सब शास्त्र-विधानों में समानरूप से आदरणीय माने गये हैं।

मानुषं विगाहथाः

यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः। विरूपः सर्वस्मा आसीत्सह यक्षाय कल्पते॥ १२॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **यत्**=जो **दाशराज्ञे**=दसों इन्द्रियों पर शासन के लिए **अदः मानुषम्**=उस मनुष्योचित कर्म का तू **विगाहथाः**=विलोडन करता है, अर्थात् जब तू जितेन्द्रिय बनने के लिए सदा मनुष्योचित कर्मों में प्रवृत्त रहता है तब 'तू' **सर्वस्मै**=सबके लिए **विरूपः आसीत्**=विशिष्ट रूपवाला होते है। यह सदा मानवकर्मों में प्रवृत्त जितेन्द्रिय पुरुष सम्पूर्ण समाज में चमक जाता है। २. **सः ह**=वही निश्चय से **यक्षाय**=उस प्रभु के साथ सम्पर्क के लिए **कल्पते**=समर्थ होता है।

भावार्थ—मानवोचित कर्मों में व्यापृत जितेन्द्रिय पुरुष ही विरूप बनता है और प्रभुसम्पर्क में समर्थ होता है।

'रौहिण वृत्र' का विनाश

त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः। त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः॥ १३॥

१. हे **मघवन्**=(मघ-मख) यज्ञशील **मर्य**=मनुष्य! **त्वम्**=तू **वृषा**=शक्तिशाली—अपने में सोमशक्ति का सेचन करनेवाला व **रविः**=अज्ञानान्धकार को नष्ट करनेवाला सूर्यसम ज्ञानदीप्त बना है। तू अपने सन्तानों को भी **अक्षुम्**=(अश्) कर्मों में व्याप्त—खूब क्रियाशील **व नम्रम्**=ज्ञान से विनीत **अकरोः**=बनाता है। २. **त्वम्**=तू **रौहिणम्**=उपभोग से निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होनेवाले इस कामासुर को (न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥) **व्यास्यः**=विशेषरूप से दूर फेंकता है और **वृत्रस्य**=ज्ञान पर पर्दे के रूप में आ जानेवाले 'वृत्र' (लोभ) के **शिरः**=सिर को **वि अभिनत्**=विशेषरूप से विदीर्ण करता है, काम व लोभ को नष्ट करके ही यह यज्ञशील बनता है। स्वयं शक्तिशाली व ज्ञानी बनता हुआ यह सन्तानों को भी क्रियाशील व नम्र बनाता है।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनकर शक्तिशाली व ज्ञानी बनें। हमारे सन्तान भी क्रियाशील व नम्र हों। हम काम व लोभ को विनष्ट कर पाएँ।

इन्द्र का 'पर्वतविधान' व 'अपो विगाहन'

यः पर्वतान्व्यदधाद्यो अपो व्यगाहथाः। इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते॥ १४॥

१. **यः**=जो **पर्वतान्**=(पर्व पूरणे) पूरणों को—कमियों के दूरीकरण को—**व्यदधात्**=विशेष रूप से करता है, अर्थात् सब न्यूनताओं को दूर करके जीवन को उत्तम गुणों से परिपूर्ण बनाता है। **यः**=जो **अपः**=ज्ञान-जलों व कर्मों का **व्यगाहथाः**=आलोडन करता है, अर्थात् खूब ज्ञानी व क्रियाशील बनता है। इसप्रकार **यः**=जो **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय बनकर **वृत्रहा**=वासनारूप वृत्र का विनाश करता है। २. **आत्**=अब हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **तस्मात्**=उस कारण से चूँकि तूने कमियों को दूर किया है, चूँकि तू ज्ञानी व क्रियाशील बना है, चूँकि तूने वासनारूप वृत्र का विनाश किया है, अतः **ते**=तुझे **महम्**=(मह पूजायाम्) महनीय (आदरभाव से परिपूर्ण) **नमः अस्तु**=नमस्कार हो।

भावार्थ—हम उस व्यक्ति को आदर दें जो (क) अपनी न्यूनताओं को दूर करने के लिए यत्नशील होता है, (ख) जो ज्ञानी व क्रियाशील बनता है, और (ग) जो वासनारूप वृत्र का विनाश करता है।

'अश्व-पृष्ठ-धावन'

पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन्। स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम्॥ १५॥

१. **हर्योः**=इन्द्रियाश्वों के—ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों के **पृष्ठम्**=पृष्ठ (Surface) को **धावन्तम्**=शुद्ध करते हुए, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को शुद्ध बनाते हुए **उचैः श्रवसम्**= उत्कृष्ट कीर्तिवाले इस जितेन्द्रिय पुरुष को सब देव (माता, पिता व आचार्य) **आ अब्रुवन्**=सब प्रकार से यही कहते हैं कि हे **स्वस्त्यश्व** (सु अस्ति अश्व)=कल्याणकर इन्द्रियाश्वोंवाले जीव! तू **जैत्राय**=विजय-प्राप्ति के लिए **सुस्रजम्**=उत्तमताओं का निर्माण करनेवाले—तेरे जीवन को उत्तम बनानेवाले **इन्द्रम्**=सब शत्रुओं के विद्रावक प्रभु को **आवह**=अपने समीप प्राप्त करा। प्रभु का सान्निध्य ही तेरे जीवन को शत्रु-विजय द्वारा पवित्र बनाएगा।

भावार्थ—इन्द्रियों को पवित्र बनाने के लिए यत्नशील मनुष्य यशस्वी होता है। माता, पिता व आचार्य आदि सब देव इसे यही उपदेश करते हैं कि तू जीवन में शत्रुओं को जीतने के लिए प्रभु का उपासन कर।

शुद्ध कर्मों में व्यापृति

ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम्।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते॥ १६॥

१. हे **नमस्य**=नमस्कार के योग्य **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **ये**=जो **श्वेताः**=सब मिलनताओं के विनाश से श्वेता (शुद्ध) अतएव **अजैश्रवसः**=अजेय कीर्तिवाले—अत्यन्त प्रशंसनीय **हार्यः**=इन्द्रियाश्व **त्वा**=तुझे **दक्षिणं युञ्जन्ति**=सदा सीधे (वाम से विपरीत) उन्नति के साधक (दक्ष् to grow) कर्मों में प्रेरित करते हैं—लगाते हैं तो उस समय आप **देवानाम्**=सब इन्द्रियों के **पूर्वा**=पालन व पूरणात्मक कर्मों को **बिभ्रत्**=धारण करते हुए **महीयते**=महिमावाले होते हैं—सब लोग आपका आदर करते हैं।

भावार्थ—जब हम इन्द्रियों से सदा उत्तम कार्यों को करने में तत्पर होते हैं तब शुद्ध जीवनवाले बनकर हम महिमा को प्राप्त करते हैं।

१२९. [एकोनत्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

प्रतीपम्

एता अश्वा आ प्लवन्ते॥ १॥　　प्रतीपं प्राति सुत्वनम्॥ २॥

१. गतमन्त्र के अनुसार इन्द्रियों के शुद्ध होने पर **एताः**=ये **अश्वाः**=विविध विषयों में व्याप्त होनेवाली चित्तवृत्तियाँ **आ**=चारों ओर से **प्रतीपम्**=(inverted) अन्तर्मुखी हुई-हुई **प्लवन्ते**=गतिवाली होती हैं। अब ये चितवृत्तियाँ **प्रातिसुत्वनम्**=ब्रह्माण्ड के प्रत्येक पदार्थ को उत्पन्न करनेवाले प्रभु की ओर चलती हैं।

भावार्थ—इन्द्रियों के शुद्ध होने पर चित्तवृत्तियाँ अन्तर्मुखी होकर प्रभु की ओर चलती हैं।

हरिक्निके किमिच्छसि

तासामेका हरिक्निका॥ ३॥　　हरिक्निके किमिच्छसि॥ ४॥

१. **तासाम्**=उन चित्तवृत्तियों में **एका**=एक **हरिक्निका** (हरयः मनुष्याः नि० १.१५। कन् दीप्तौ) मनुष्यों के जीवन को दीप्त बनानेवाली है। २. हे **हरिक्निके**=मानव-जीवन को दीप्त करनेवाली चित्तवृत्ते! तू **किम् इच्छसि**=क्या चाहती है। यहाँ साधक अपने से ही प्रश्न करता है और अगले मन्त्र में उसका उत्तर देता है।

भावार्थ—अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति वह है जोकि मानवजीवन को दीप्त बनानेवाली है।

प्रभु की ओर

साधुं पुत्रं हिरण्ययम्॥ ५॥

१. अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति **साधुम्**=(साध्नोति कार्याणि) कार्यसाधक—जीवन के पोषण के लिए आवश्यक धन को चाहती है। २. यह **पुत्रम्**=उस जीवात्मा को चाहती है जो (पुनाति त्रायते) अपने जीवन को पवित्र और वासनाओं के आक्रमण से रक्षित करता है। ३. **हिरण्ययम्**=यह उस ज्योतिर्मय—'रुक्माभम्' स्वर्णसम दीप्तिवाले प्रभु को चाहती है।

भावार्थ—मानव जीवन को दीप्त करनेवाली चित्तवृत्ति तीन वस्तुओं की कामना करती है (क) कार्यसाधक धन की, (ख) जीवन को पवित्र व वासनाओं से अनाक्रान्त—सुरक्षित बनानेवाले जीवात्मा की, (ग) स्वर्णसम दीप्त ज्योतिर्मय प्रभु की।

तीन शपथें

क्वाहतं परास्यः॥ ६॥　　यत्रामूस्तिस्त्रः शिंशपाः॥ ७॥

साधक गतमन्त्र में वर्णित अपनी हरिक्निका नामक चित्तवृत्ति से ही पूछता है कि तू **तम्**=उस प्रभु को **क्व आह**=कहाँ कहती है? वे प्रभु कहाँ हैं? २. साधक ही पुनः कहता है कि क्या तू यह कहती है कि **स्यः**=वे प्रभु **परा**=परे व दूर हैं। वहाँ **यत्र**=जहाँ कि **अमूः**=वे **तिस्त्रः**=तीन **शिंशपाः**=(शि-good fortune; tranquiling; Shiva; शिव। शप्=take an oath) शपथें ली जाती हैं कि हम (क) सुपथ से धन कमाएँगे, (ख) जीवन को शान्त रखेंगे, और (ग) प्रभु-प्राप्ति को अपना लक्ष्य बनाएँगे।

भावार्थ—प्रभु का निवास उस व्यक्ति में होता है जो (क) सुपथ से धन कमाता है (ख) शान्तवृत्ति का बनता है और (ग) प्रभु-प्राप्ति को अपने जीवन का लक्ष्य बनाता है।

शिखर पर

परि त्रयः॥ ८॥　　पृदाकवः॥ ९॥　　शृङ्गं धमन्तं आसते॥ १०॥

१. गतमन्त्र के अनुसार जीवन में तीन शपथें लेने पर (उत्तम मार्ग से धन कमाऊँगा, शान्त रहूँगा, प्रभु की ओर चलूँगा) **त्रयः**=आधिभौतिक, आध्यात्मिक व आधिदैविक तीनों ही कष्ट **परि**=(परेर्वर्जने) हमारे जीवनों से दूर हो जाते हैं। २. धन को कुमार्ग से न कमाने का व्रत लेने पर मनुष्यों का परस्पर प्रेम न्यून नहीं होता और युद्ध आदि का प्रसंग उपस्थित नहीं होगा, इसप्रकार आधिभौतिक कष्ट उपस्थित नहीं होते। जीवन के शान्त होने पर आध्यात्मिक कष्टों का प्रसंग नहीं होता। प्रभु-प्रवणता आधिदैविक कष्टों को दूर रखती है। ३. इस स्थिति में एक घर के मुख्य पात्र 'पिता, माता व सन्तान' 'पृ-दा-कवः' होते हैं। (पृणाति protect क्रियते to be busy) पिता व्यापार आदि में लगे रहकर धनार्जन करता हुआ घर का रक्षक होता है। माता सबके लिए आवश्यक वस्तुओं को 'दा'=देनेवाली होती है तथा सन्तान (कुशके) ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करते हुए कवि व ज्ञानी बनने के लिए यत्नशील होते हैं। ४. इसप्रकार घर के सब व्यक्ति अपने जीवनों में **शृंगम्**=शिखर को **धमन्तम्**=(ध्मा=to manufacture by blowing) तपस्या द्वारा निर्मित करते हुए **आसते**=स्थित होते हैं—तपस्या के द्वारा—प्राणायाम के द्वारा उन्नत होते हुए शिखर पर पहुँचते हैं।

भावार्थ—हमारे जीवनों के उत्तम होने पर सब कष्ट हमसे दूर रहते हैं। घरों में 'पिता, माता व सन्तान' सब अपने कर्त्तव्यों को सुचारुरूपेण करते हैं और तपस्वी बनकर शिखर पर पहुँचने के लिए यत्नशील होते हैं।

प्रभु-प्राप्ति किसे?

अयन्महा ते अर्वाहः॥ ११॥ स इच्छकं सघाघते॥ १२॥
सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति॥ १३॥

१. गतमन्त्र के अनुसार जब तुम शिखर पर पहुँचने का प्रयत्न करते हो तो वे **महा**=महान् **अर्वाहः**=(ऋ गतौ) सब गतियों को प्राप्त करानेवाले प्रभु **ते अयत्**=तुझे प्राप्त होते हैं। उन्नतिशील पुरुष ही प्रभु-प्राप्ति के योग्य होता है। २. **सः**=वे प्रभु **इच्छकम्**=प्रभु-प्राप्ति की प्रबल कामनावाले पुरुष को ही **सघाघते** (receive, accept)=स्वीकार करते हैं। यही ब्रह्मलोक में पहुँचने का अधिकारी होता है। ३. यह प्रभु का प्रिय साधक **गोमीद्याः**=(मिद् स्नेहने) ज्ञान की वाणियों के प्रति स्नेह को **सघाघते** (सघ् to support, bear) अपने में धारण करता है तथा **गोगतीः**=ज्ञान की वाणियों के अनुसार क्रियाओं को अपने में धारण करता है। यह बात शास्त्रनिर्दिष्ट है **इति**=इस कारण ही वह उसका धारण करता है।

भावार्थ—शिखर पर पहुँचने के लिए यत्नशील पुरुष को प्रभु की प्राप्ति होती है। प्रभु उसी को प्राप्त होते हैं जो प्रभु-प्राप्ति की प्रबल कामनावाला होता है। यह पुरुष ज्ञान की वाणियों के प्रति स्नेह को धारण करता है और ज्ञान की वाणियों के अनुसार ही क्रियाओं को करता है।

पुमान् को प्रभु की प्राप्ति

पुमां कुस्ते निमिच्छसि॥ १४॥

१. ज्ञान की वाणियों के अनुसार क्रियाओं को करता हुआ यह **पुमान्**=(पू) अपने जीवन को पवित्र करनेवाला व्यक्ति **कुस्ते**=प्रभु से अपना मेल कर पाता है (कुस् संश्लेषणे)। हे प्रभो! आप इस पुमान् को ही **निमिच्छसि**=(मिच्छ to hinder) सब वासनाओं को निश्चय से रोकने के द्वारा पवित्र बनाते हो। वह पुमान् स्वयं तो इन काम-क्रोध आदि वासनाओं को जीतने में समर्थ नहीं होता। आपके द्वारा ही तो वह इन्हें जीतने में समर्थ होता है।

भावार्थ—अपने को पवित्र करनेवाला जीव प्रभु से मेल करने का यत्न करता है। प्रभु इसकी वासनाओं को विनष्ट करते हैं।

क्रियाशीलता व व्रत-बन्धन

पल्प बद्ध वयो इति॥ १५॥ बद्ध वो अघा इति॥ १६॥

१. **पल्प** (पल् गतौ, पा रक्षणे)=हे गति के द्वारा रक्षण करनेवाले! **बद्ध**=व्रतों के बन्धन में अपने को बाँधनेवाले जीव! तू अपना **इति**=यही लक्ष्य बना कि **वयः**-(वे तन्तुसन्ताने) मैंने अपने कर्मतन्तु को विच्छिन्न नहीं होने देना—इस कर्मतन्तु का विस्तार ही करना है। मैंने इस यज्ञ-तन्तु को जीवन में कभी विलुप्त नहीं होने देना। २. हे **अघाः**=पापो! आज तक तुम्हारे में फँसा हुआ यह **वः**=तुम्हारा व्यक्ति **बद्ध इति**=अब व्रतों के बन्धन में बँधा है, ऐसा समझ लो और अब इसे अपने वशीभूत करने की आशा छोड़ दो।

भावार्थ—हम क्रियाशील बनें, व्रतों के बन्धन में अपने को बाँधें और यज्ञ-तन्तु को विच्छिन्न न होने देने का निश्चय करें। पाप भी ये समझ लें कि अब मैं व्रतों के बन्धन में बँधा हूँ, अब वे मुझे अपने वशीभूत न कर सकेंगे।

सेवावृत्ति व प्रभु का वरण

अजागार केविका॥ १७॥ अश्वस्य वारो गोशपद्यके॥ १८॥

१. गतमन्त्र के अनुसार व्रतमय जीवनवाला व्यक्ति कहता है कि **केविका**=(केव to serve) मुझमें सब सेवा की वृत्ति **अजागार**=(जागरिता अभवत्) जागरित हो गई है। मैं अब स्वार्थ से ऊपर उठकर परार्थ में प्रवृत्त हुआ हूँ। २. अब मैं तो **गोशपद्यके**=(गोषु शेते पद्यते) ज्ञान की वाणियों में ही शयन (निवास) व गति के होने पर **अश्वस्य**=(अश् व्याप्तौ) उस सर्वव्यापक प्रभु का ही **वारः**=वरण करनेवाला बना हूँ। मेरी इच्छा तो अब एकमात्र यही है कि मैं वेदरुचिवाला व वेदानुसार कार्य करनेवाला बनकर, परार्थ में प्रवृत्त हुआ-हुआ सर्वभूतहिते रत बना हुआ—प्रभु का धारण कर पाऊँ।

भावार्थ—मुझमें सेवा की वृत्ति का जागरण हो। मैं सदा ज्ञान की रुचिवाला व तदनुसार कर्म करता हुआ प्रभु का ही वरण करूँ।

सेवक के चार लक्षण

श्येनीपती सा॥ १९॥ अनामयोपजिह्विका॥ २०॥

१. गतमन्त्र में वर्णित **सा**=वह सेवावृत्ति **श्येनीपती**=(श्यैङ् गतौ, पा रक्षणे) खूब क्रियाशीलतावाली है तथा सदा रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त रहती है। २. यह सेवावृत्ति **अनामया**=रोगों से शून्य है। सेवावृत्तिवाला व्यक्ति रोगी नहीं होता। भोगवृत्ति से ऊपर उठने का यह परिणाम स्वाभाविक ही है। ३. यह सेवावृत्ति **उपजिह्विका**=गौण जिह्वावाली है। सेवावृत्तिवाला व्यक्ति न खाने के चस्केवाला होता है, न बहुत बोलने की वृत्तिवाला। यह कम खाता है और कम बोलता है। इसी से यह सदा स्वस्थ रहता है।

भावार्थ—सेवा की वृत्ति में चार बातें होती हैं (क) क्रियाशीलता (ख) रक्षणात्मक कर्मों में प्रवृत्ति (ग) नीरोगता (४) कम खाना, कम बोलना।

१३०. [त्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

सोम-यज्ञ

को अ॑र्य ब॑हुलि॒मा इषू॑नि॥ १॥ को अ॒सिद्या॑ः पय॑ः॥ २॥
को अर्जु॑न्या॒ः पय॑ः॥ ३॥ कः का॒र्ष्ण्या॑ः पय॑ः॥ ४॥

१. **कः**=कौन **बहुलिमा**=शक्तियों के बाहुल्यवाले **इषूनि**=सोमयज्ञों को—शरीर में ही प्रतिदिन सोम (वीर्य) की आहुति देनेरूप यज्ञों को **अर्य**=(ऋ गतौ) प्राप्त होता है। शक्तियों के बाहुल्य को प्राप्त करानेवाले इन सोमयज्ञों का करनेवाला यह ब्रह्मचारी ही तो होता है। सोम-रक्षण द्वारा यह अपने में शक्ति का संचय करता है। २. **असिद्याः** (अविद्यमाना सितिः बन्धनं यस्याः)=गृहस्थ में रहते हुए भी विषयों में अनासक्तवृत्ति का **पयः**=(semen virile) **वीर्यकः**=कौन-सा होता है। गृहस्थ में होते हुए भी जो विषय विलास के जीवनवाला नहीं बन जाता, वह सु-वीर्य बनता ही है। ३. **अर्जुन्याः**=(अर्जुन श्वेत) राग-द्वेष से अनाक्रान्त शुद्ध (श्वेत) चित्तवृत्तिवाले का **पयः**=वीर्य **कः**=कौन-सा होता है? गृहस्थ के कार्यों को समाप्त करके मनुष्य वानप्रस्थ बनता है। इस वानप्रस्थ में राग-द्वेष से ऊपर उठने पर शरीर में वीर्य शुद्ध (उबाल से रहित) बना रहता है। (४) वानप्रस्थ से ऊपर उठकर मनुष्य संन्यस्त होता है। इस संन्यास में 'कार्ष्णी' वृत्ति को अपनाता है। इधर-उधर भटकनेवाली इन्द्रियों व मन को यह अन्तर्मुखी करने का प्रयत्न करता है—उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करता है। इस **कार्ष्ण्याः**=कार्ष्णी वृत्ति का **पयः**=वीर्य **का**=कौन-सा है? संन्यस्त होकर—सब इन्द्रियों को अपने अन्दर आकृष्ट करके यह वीर्य को सुरक्षित करनेवाला होता है।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य तो है ही सोमयज्ञ। इस आश्रम में सोम (वीर्य) को शरीर में सुरक्षित रखना होता है। गृहस्थ में भी हम विषयों से बद्ध न हो जाएँ। वानप्रस्थ में अत्यन्त शुद्धवृत्ति-(अर्जुनी)-वाले बनें। संन्यास में इन्द्रियों व मन को अपने अन्दर आकृष्ट करनेवाले बनें। इसप्रकार हम आजीवन सोमयज्ञ करनेवाले हों।

'परि प्रश्न' (परिप्रश्नेन)

ए॒तं पृ॑च्छ॒ कुहं॑ पृच्छ॥ ५॥ कुहा॑कं पक्व॒कं पृ॑च्छ॥ ६॥

१. **एतं पृच्छ**=गत चार मन्त्रों में वर्णित प्रश्न को तू पूछ। 'वीर्यरक्षण कैसे सम्भव है? उसका क्या लाभ है?' यह प्रश्न तू पूछ। **कुहं पृच्छ**=(कुह विस्मापने) अपने ज्ञान से औरों का विस्मापन करनेवाले ज्ञानी से तू इस प्रश्न को पूछ। २. **कुहाकम्**=ज्ञान के द्वारा आश्चर्यित करनेवाले महान् ज्ञानी से तू इस सोमयज्ञ-सम्बन्धी प्रश्न को **पृच्छ**=पूछ। **पक्वकम्**=ज्ञान-परिपक्व व्यक्ति से पूछ। यह परिप्रश्न तेरे ज्ञान का वर्धन करनेवाला होगा।

भावार्थ—हम परिपक्व ज्ञानवाले—आश्चर्यकारक ज्ञानवाले—ज्ञानियों से सोमरक्षण-सम्बन्धी प्रश्नों को पूछकर सोमयज्ञ करनेवाले बनें। शरीर में सुरक्षित सोम हमारे जीवन को शक्तिशाली व आनन्दमय बनाएगा।

सुन्दर जीवन

यवा॑नो यति॒स्वभि॑ः कुभि॑ः॥ ७॥ अकु॑प्यन्त॒ः कुपा॑यकुः॥ ८॥
आम॑णको॒ मण॑त्सकः॥ ९॥ देव॑ त्वप्रतिसूर्य॥ १०॥

१. गतमन्त्र के अनुसार यह वीर्यरक्षण करनेवाला—सोमयज्ञ करनेवाला व्यक्ति **यवानः**=

(यु मिश्रणामिश्रणयोः) अपने से बुराइयों को दूर करता है और अच्छाइयों का अपने से मिश्रण करता है। यह **यतिस्वभिः**=(यति+स्व-भा+इ) संयत जीवनवाला व आत्मदीप्तिवाला होता है। **कु-भिः**=(कु+भा+इ) इस पृथिवी पर अपने कर्मों से यह दीप्त होता है। २. **अकुप्यन्तः** (कुप्+ सच्-अन्त) यह कभी क्रोध नहीं करता। **कुपायकुः**=इस पृथिवी पर सबका रक्षण करनेवाला बनता है। ३. **आमणकः**=(मण् to sound) यह चारों ओर ज्ञानोपदेश करनेवाला होता है। **मणत्सकः**=सदा स्तुतिवचनों के उच्चारण के स्वभाववाला बनता है। ४. यह मणत्सक इसप्रकार प्रभु का स्मरण करता है कि (क) **देव**=प्रभो! आप प्रकाशमय हो—दिव्यगुणों के पुञ्ज हो। **तु**=दिव्यगुणों के पुञ्ज होने के साथ आप **अ-प्रतिसूर्य**=एक अद्वितीय सूर्य हो। सूर्य के समान अन्धकारमात्र को विनष्ट करनेवाले हो। ५. यह प्रभु-स्मरण मणत्सक को भी 'देव व सूर्य' बनने की प्रेरणा देता है।

भावार्थ—सोम का रक्षण करनेवाला अनुपम सुन्दर जीवनवाला बनता है। (क) यह ब्रह्मचर्याश्रम में बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों का ग्रहण करता है (ख) संयत जीववाला व आत्मदीप्तिवाला होता है (ग) इस पृथिवी पर यशोदीप्त होता है (घ) गृहस्थ में क्रोध नहीं करता (ङ) सब सन्तानों का रक्षण करता है (च) ज्ञान का प्रचार करता है (छ) प्रभु का स्तवन करता है कि आप दिव्यगुणों के पुञ्ज हो, ज्ञान के सूर्य हो। इस स्तवन से वह ऐसा बनने की ही प्रेरणा लेता है। अब संन्यस्थ होकर स्वयं देव व सूर्य बनता है।

प्रदुद्रुदो मघाप्रति

एनश्चिपङ्क्तिका हविः॥ ११॥ प्रदुद्रुदो मघाप्रति॥ १२॥

१. गतमन्त्र में वर्णित सोमरक्षक पुरुष के जीवन में **एनः चिपङ्क्तिका**=(चि चयने, पचि विस्तारे) पाप का चयन (बीनना) करके परे फेंकने का विस्तार होता है। यह हृदयक्षेत्र में से अशुभ वृत्तियों को चुन-चुनकर बाहर फेंक देता है और **हविः**=सदा दानपूर्वक अदन को अपनाता है (हु दानादनयोः)। यह सदा यज्ञशेष का खानेवाला बनता है। २. इसी हवि का परिणाम होता है कि यह **मघा प्रति**=ऐश्वर्यों की ओर **प्रदुद्रुदः**=प्रकृष्ट गतिवाला व उन ऐश्वर्यों को दान में देनेवाला होता है। यह न्याय्य-मार्गों से धनों का खूब ही अर्जन करता है और उन धनों का यज्ञों में विनियोग करके यज्ञशेष को ही खानेवाला बनता है।

भावार्थ—सोम का रक्षण करनेवाला व्यक्ति (१) अपने हृदयक्षेत्र से वासनाओं के घास फूस को चुन-चुनकर निकाल फेंकता है। (२) सदा दानपूर्वक अदन (भक्षण) करता है। ३. ऐश्वर्यों के प्रति न्याय्य मार्ग से गतिवाला व उन ऐश्वर्यों का दान देनेवाला होता है।

धनाभिमान व प्रभु से दूरी

शृङ्ग उत्पन्न॥ १३॥ मा त्वाभि सखा नो विदन्॥ १४॥

१. गतमन्त्र के अनुसार ऐश्वर्यों को कमाने पर यदि एक व्यक्ति दान नहीं देता तो धीमे धीमे उसमें धन का अभिमान आ जाता है। धन को वह प्रभु का दिया हुआ न समझकर 'इद-मद्य मया लब्धं, इमं प्राप्स्ये मनोरथम्' अपना समझने लगता है और उसे अभिमान हो जाता है। उसके मानों सींग-से निकल आते हैं २. मन्त्र में कहते हैं कि हे **उत्पन्न शृंग**=पैदा हुए हुए सींग! **नः सखा**=हम सबका मित्र वह प्रभु **त्वा अभि**=तेरी ओर **मा विदन्** (विदत्)=मत प्राप्त हो। जहाँ धनाभिमान है, वहाँ प्रभु का वास कहाँ? अभिमानी को प्रभु की प्राप्ति नहीं होती। वह तो अपने को ही ईश्वर मानने लगता है 'ईश्वरोऽहम्'।

भावार्थ—धन का त्याग न होने पर धन का अभिमान उत्पन्न हो जाता है और इस अभिमानी को कभी प्रभु की प्राप्ति नहीं होती।

वशा का पुत्र

वशायाः पुत्रमा यन्ति॥ १५॥ इरावेदुमयं दत॥ १६॥

१. **वशायाः**=वशा के—बन्ध्या गौ के **पुत्रम्**=पुत्र को **आयन्ति**=ये धन व सब दिव्यगुण प्राप्त होते हैं। एक व्यक्ति जो न्याय्य-मार्गों से धनार्जन करता है और उस धन को भोगविलास में व्ययित नहीं करता, इस पुरुष के लिए यह धन वन्ध्या गौ के समान है। यह इस लक्ष्मी को माता समझता है। 'यह विष्णु की पत्नी है—मेरी तो माता है, मैं इसका पुत्र हूँ' ऐसा समझनेवाला व्यक्ति धन का उपभोग क्योंकर करेगा? २. वह धन से शरीर का रक्षण करता हुआ भी उसे उपभोग्य वस्तु नहीं समझ लेता। प्रभु कहते हैं कि देव तो वशा के पुत्र को ही प्राप्त होते हैं, अतः तुम इस धन को **इरा-वेदु-मयम्** (इरा=सरस्वती) सरस्वती के—ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता के—ज्ञान से पूरिपूर्ण पुरुष के लिए **दत** (दत्त)=देनेवाले बनो। धन कमाओ और ज्ञानी ब्राह्मणों के लिए देनेवाले बनो। वे इस धन का विनियोग शिक्षा के विस्तार में करनेवाले हों।

भावार्थ—हम धन कमाएँ। इस धन को उपभोग्य वस्तु न बनाकर इसे ज्ञानी पुरुषों के लिए दें—ताकि धन का विनियोग शिक्षा के विस्तार के लिए हो।

क्रियाशील और क्रियाशील

अथो इयन्नियन्निति॥ १७॥ अथो इयन्निति॥ १८॥

१. गतमन्त्र के अनुसार चाहे मनुष्य को धन का उपभोग नहीं करना, **अथ उ**=तो भी (Even then) वह **इति**=निश्चय से **इयन्**=चलता हुआ हो और **इयन्**=चलता हुआ ही हो। गतिशीलता आवश्यक है। २. **अथ उ**=और अब **इयन् इति**=चलता हुआ ही हो। गतिशील पुरुष ही पवित्र जीवनवाला बनता है। संसार में इस गतिशील पुरुष को ही ऐश्वर्य प्राप्त होता है। इस ऐश्वर्य का विनियोग इसने यज्ञों में करना है।

भावार्थ—धन का उपभोग न करने की अवस्था में भी धनार्जन का प्रयत्न आवश्यक है इन प्रयत्नार्जित धनों से ही तो यज्ञ आदि उत्तम कर्म सिद्ध होंगे।

भोगप्रवणता व विनाश

अथो श्वा अस्थिरो भवन्॥ १९॥ उयं यकांशलोकका॥ २०॥

१. **अथ उ**=अब यदि निश्चय से **श्वा**=(श्वि गतिवृद्ध्योः) गतमन्त्र में वर्णित गति के द्वारा प्रवृद्ध ऐश्वर्यवाला यह व्यक्ति **अस्थिरः**=न स्थिर मनोवृत्तिवाला—चंचलवृत्तिवाला—भोगप्रवण **भवन्**=होता है तो **उयम्**=दुःख की बात है कि निश्चय से ही (Alas, certainly) यह भोगासक्त पुरुष **यक-अंश-लोक का**=(यकन्=जिगर, अंश=विभाजने, लोकृ दर्शने) जिगर को टुकड़े-टुकड़े होते हुए देखनेवाला होता है।

भावार्थ—धन के कारण भोगप्रवणता मनुष्य को अन्ततः विनाश व निराशा की ओर ले-जाती है।

१३१. [एकत्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

मन्दन व भञ्जन

आमिनोनिति भद्यते॥ १॥ तस्य अनु निभञ्जनम्॥ २॥

१. गतमन्त्रों में वर्णित धन के प्रकरण में ही कहते हैं कि एक (श्वा-) प्रवृद्ध ऐश्वर्यवाले व्यक्ति के **आ अमिनोन्**=समन्तात् धन का प्रक्षेपण हुआ है (मि प्रक्षेपणे)—मेरे चारों ओर धन ही धन है **इति**=यह सोचकर **भद्यते**=सुखी होता है—आनन्द का अनुभव करता है। अपने को धन में लोटता हुआ (rolling in the wealth) देखकर प्रसन्न होता है। २. परन्तु यह प्रसन्नता स्थायी नहीं होती। यह व्यक्ति धन के मद में विषयों में फँस जाता है और **अनु**=इस भोगप्रवणता के कुछ बाद **तस्य अनु निभञ्जनम्**=उस भोगासक्त धनी पुरुष का भञ्जन (आमर्दन-विनाश) हो जाता है।

भावार्थ—जो व्यक्ति धनमदमत्त हुआ हुआ भोगासक्त हो जाता है, वह थोड़े दिनों के विलास के बाद शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है।

भारती+शवः

वरुणो याति वस्वभिः ॥ ३ ॥ शतं वा भारती शवः ॥ ४ ॥

१. गतमन्त्र में धनमदमत्त भोगासक्त पुरुष के विनाश का उल्लेख हुआ है। इसके विपरीत **वरुणः**=व्यसनों व ईर्ष्या-द्वेष से अपना निवारण करनेवाला वरुण **वस्वभिः**=सदा निवास के लिए उत्तम वसुओं के साथ **याति**=गतिवाला होता है। इसके धन इसके विनाश का कारण न होकर इसके उत्तम निवास का साधन बनते हैं। २. **वा**=निश्चय से **शतम्**=शतवर्षपर्यन्त, अर्थात् आजीवन यह **भारती**=सरस्वती—विद्या की अधिष्ठात्री देवता तथा **शवः**=बल का अधिष्ठान बनता है। इसके जीवन में ज्ञान व शक्ति का समन्वय होता है—इसके ब्रह्म व क्षत्र दोनों श्रीसम्पन्न होते हैं।

भावार्थ—विषयासक्ति के न होने पर धन 'ब्रह्म व क्षत्र' के विकास का साधन बनता है।

'अश्व-रथ्य-कुथ-निष्क'

शतमाश्वा हिरण्ययाः। शतं रथ्या हिरण्ययाः।
शतं कुथा हिरण्ययाः। शतं निष्का हिरण्ययाः ॥ ५ ॥

१. गतमन्त्र में वर्णित वासना का निवारण करनेवाले वरुण के **शतम्**=शतवर्षपर्यन्त **हिरण्ययाः**=ज्योतिर्मय (हिरण्यं वै ज्योतिः) व हितरमणीय **अश्वाः**=इन्द्रियरूप अश्व होते हैं। **शतम्**=शतवर्षपर्यन्त ये इन्द्रियाश्व **हिरण्ययाः**=वीर्यवान् (हिरण्यं वै वीर्यम्) **रथ्याः**=शरीर-रथ का उत्तमता से वहन करनेवाले होते हैं। २. **शतम्**=शतवर्षपर्यन्त **हिरण्ययाः**=ज्योतिर्मय **कुथाः** (कुन्थ दीप्तौ)=ज्ञानदीप्तियाँ होती हैं अथवा (कुथ्यति हिनस्ति अशोभाम्) शतवर्षपर्यन्त इसका जीवन शोभामय बना रहता है। **शतम्**=शतवर्षपर्यन्त यह **हिरण्ययाः**=ज्योतिर्मय **निष्काः**=ज्ञानरूप कण्ठाभरणोंवाला होता है।

भावार्थ—धन का भोगों में व्यय न करके, सद्व्यय करने पर इन्द्रियाँ प्रकाशमय बनी रहती हैं। ये इन्द्रियाँ शरीर-रथ का उत्तमता से वहन करती हैं। सब अशोभाओं का निराकरण होकर शोभा की वृद्धि होती है और विविध विज्ञान इसके कण्ठाभरण बनते हैं।

कुश

अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥ शफेनइव ओहते ॥ ७ ॥

१. गतमन्त्र में वर्णित वरुण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि **अ-हल**=अविलेखनीय—वासनाओं से अविदारणीय! **कुश**=(श्यति कु-बुराई) बुराई को विनष्ट करनेवाले! **वर्तक**=सदा धर्म-कार्यों में वर्तनेवाले वरुण! धन के कारण वासनाओं में न फँसनेवाला यह व्यक्ति **आ**

ऊहति=सब बुराइयों को (push, remove) दूर करता है। इसप्रकार दूर करता है **इव**=जैसेकि **शफेन**=खुर से एक गौ शत्रु को आहत करती है। खुर के प्रहार से गौ जैसे शत्रुओं को दूर करती है, इसी प्रकार वह वरुण धर्मकार्यों में वर्तता हुआ सब बुराइयों को दूर रखता है।

भावार्थ—हम अपने जीवनों में वासनाओं से विलेखित—अवदीर्ण हों। बुराई का अन्त करनेवाले हों। सदा धर्म-कार्यों में वर्तें और इसप्रकार जीवन से सब बुराइयों को दूर रक्खें।

संविभाग की वृत्ति

**आयं वनेनती जनी॥ ८॥		वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति॥ ९॥**

१. गतमन्त्र का वर्तक प्रार्थना करता है कि **वनेनती**=संभजन में झुकाववाली (वन संभक्तौ) बनी शक्तियों का विकास करनेवाली चित्तवृत्ति **आ अय**=मुझे सर्वथा प्राप्त हो। वस्तुतः जब हम संभजन की वृत्तिवाले होते हैं—सब-कुछ स्वयं ही नहीं खा लेते तब इस समय हमारी शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। वस्तुतः उत्तम कार्यों में वर्तनेवाला व्यक्ति सदा इस संभजन की वृत्ति को अपनाता है। २. ये **वनिष्ठाः**=अधिक-से-अधिक संविभाग की वृत्तिवाले लोग **न अवगृह्यन्ति**=परस्पर विरोध की वृत्तिवाले नहीं होते। एक-दूसरे का ये संग्रह करनेवाले ही होते हैं।

भावार्थ—संविभाग की वृत्ति हमारी शक्तियों का विकास करती है। यह हमें परस्पर के संघर्ष से दूर रखकर उन्नत करती है।

वृक्ष

**इदं मह्यं मदूरिति॥ १०॥		ते वृक्षाः सह तिष्ठति॥ ११॥**

१. गतमन्त्र का वनिष्ठ कहता है कि **इदम्**=यह संविभजन—सबके साथ बाँटकर खाना **मह्यम्**=मेरे लिए **मदूः इति**=आनन्द देनेवाला है। इस संविभाग में—सबके साथ मिलकर खाने में मैं आनन्द का अनुभव करता हूँ। २. **ते**=वे वनिष्ठ **वृक्षाः**=(व्रश्चू छेदने) वासनाओं के झाड़-झंकाड़ों को काटनेवाले होते हैं। सब वासनाओं को छिन्न करके पवित्र जीवनवाले होते हैं। **सह तिष्ठति**=प्रभु इनके साथ निवास करते हैं। प्रभु को वही प्रिय होता है जो सबके साथ बाँटकर खानेवाला होता है।

भावार्थ—संविभाग में हम आनन्द का अनुभव करें। यह संविभाग ही हमारी वासनाओं को विनष्ट करेगा। इन वनिष्ठों को ही—संभक्ताओं को ही प्रभु मिलते हैं।

त्याग व प्रभु-प्राप्ति

**पाक बलिः॥ १२॥		शक बलिः॥ १३॥**

अश्वत्थ खदिरो धवः॥ १४॥

१. **पाक**=हे साधना द्वारा ज्ञानाग्नि में अपना परिपाक करनेवाले जीव! तू तो **बलिः**=भूतयज्ञ में पड़नेवाली आहुति ही हो गया है। २. **शक**=हे शक्तिशालिन् साधक! तू **बलिः**=भूतयज्ञ की आहुति बना है। 'तैजस' (शक) व 'प्राज्ञ' (पाक) बनकर तू 'वैश्वानर' बनता है। इसप्रकार इन तीनों पगों को रखकर तू चौथे पग में (सोऽयमात्मा चतुष्पात्) उस 'सत्य, शिव, सुन्दर' प्रभु को पानेवाला बना है। ३. उस सर्वव्यापक 'अश्व' नामक (अश् व्याप्तौ) प्रभु में स्थित होनेवाले 'अश्वत्थ' (अश्वे तिष्ठति) तू **खदिरः** (खद स्थैर्ये)=स्थिर वृत्तिवाला है। तेरा मन डाँवाडोल नहीं रहा। **धवः**=(धू कम्पने) तूने सब वासनाओं को कम्पित करके अपने जीवन को वासनाओं से शून्य बनाया है।

भावार्थ—हम ज्ञानाग्नि में अपने को परिपक्व करके तथा शक्तिशाली बनकर भूतयज्ञ में—प्राणिमात्र के हित के लिए अपने को आहुत कर दें तभी हम प्रभु में स्थित होंगे। प्रभु में स्थित होने पर स्थिर वृत्ति के बनेंगे तथा वासनाशून्य जीवनवाले होंगे।

अहिंसा=वासनाशून्यता

अरदुपरम॥ १५॥ **शयो हतइव॥ १६॥**

व्याप पूरुषः॥ १७॥

१. गतमन्त्र के अनुसार हे ब्रह्मनिष्ठ (अश्वत्थ)! तू **अरत् उपरम** (ऋ to kill)=हिंसा से उपरत हो। किसी भी प्राणी का तू हिंसन करनेवाला न बन। २. **हतः इव**=जिसकी सब वासनाएँ मर गई हैं, ऐसा बना हुआ तू **शयः**=(शी अच्) इस संसार में निवास करनेवाला हो (शेते इति शयः) ३. ऐसे वासनाशून्य व्यक्ति को **पूरुषः**=वह परम पुरुष प्रभु **व्याप**=विशेष रूप से प्राप्त होता है।

भावार्थ—हम हिंसा से निवृत्त हों। वासनाओं को मारकर संसार में पवित्र जीवनवाले बनें। तभी हमें उस परमपुरुष की प्राप्ति होगी।

पूषक-परस्वान्

अदूहमित्यां पूषकम्॥ १८॥ **अत्यर्धर्च परस्वतः॥ १९॥**

दौव हस्तिनो दृती॥ २०॥

१. **अ-दूह-मित्याम्** (अ=दुहिर् Hurt अर्दने, मिति-ज्ञान)=हिंसा न करनेवाला ज्ञान होने पर ही मनुष्य **पूषकम्**=उस सर्वपोषक प्रभु को पाता है। प्रभु पूषा हैं। साधक भी पूषा—न कि हिंसक बनकर ही प्रभु को प्राप्त करता है। २. (अति, ऋधु वृद्धौ, ऋच् स्तुतौ) **अत्यर्धर्च**=हे अतिशयेन प्रवृद्ध स्तुतिवाले जीव! तू ही उस **परस्वतः** (पृ पालनपूरणयोः, अस्। परस्+मत्) पालन व पूरण के कर्मोंवाले प्रभु को पानेवाला होता है। प्रभु का स्तवन करता हुआ भी 'परस्वान्'-पालनात्मक व पूरणात्मक कर्मोंवाला होता है। ३. इस **हस्तिनः**=प्रशस्त हाथोंवाले पुरुष के **दौव**=(दोः=भुजा) दोनों ही हाथ **दृती** (दृ विदारणे)=शत्रुओं का विदारण करनेवाले होते हैं। वस्तुतः प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न बनकर यह शत्रुओं का विदारण करता हुआ उत्तमता से पालन करनेवाला होता है।

भावार्थ—हमारा ज्ञान अहिंसक होगा तो ही हम पोषक प्रभु को प्राप्त करेंगे। प्रभु का स्तवन करनेवाला अवश्य पालनात्मक व पूरणात्मक कर्मों को करता है। इसके दोनों हाथ शत्रुओं का विदारण करनेवाले होते हैं।

१३२. [द्वात्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

'सर्वव्यापक-अद्वितीय-कूटस्थ' प्रभु

आदलाबुकमेककम्॥ १॥ **अलाबुकं निखातकम्॥ २॥**

१. **आत्**=सर्वथा (at all) वे प्रभु **अलाबुकम्**=(लवि अवस्रंसने) न अधःपतनशील हैं। वे प्रभु निराधार होते हुए सर्वाधार हैं। सर्वव्यापक होने से उन्हें आधार की आवश्यकता नहीं। उनके अधःपतन का कोई प्रसंग ही नहीं—'वे किसी स्थान पर न हो' ऐसी बात ही नहीं। २. **एककम्**=वे एक ही हैं। अद्वितीय हैं। अकेले होते हुए भी सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् होने से वे अपने सब कार्यों को स्वयं कर सकते हैं। उन्हें किसी अन्य के सहाय्य की अपेक्षा नहीं। ३.

अलाबुकम्=वे कभी स्रस्त नहीं होते। उन्हें स्रस्त होना ही कहाँ? वे तो पहले ही सब जगह हैं। **निखातकम्**=अपने स्थान पर दृढ़ता से गढ़े हुए हैं, स्थिर हैं—ध्रुव हैं 'कूटस्थः, अचलो ध्रुवः'।

भावार्थ—प्रभु सर्वत्र व्यापक होने से अधःपतनशील व स्रस्त होनेवाले नहीं। वे एक, अद्वितीय हैं। अचल व ध्रुव हैं।

प्राणसाधना व प्रभु का मनन

कर्करिको निखातकः॥ ३॥ तद्वात उन्मथायति॥ ४॥

१. वे प्रभु **कर्करिकः**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के पदार्थों के कर्त्ता हैं। **निखातकः**=स्वयं स्वस्थान में सुदृढ़रूप से स्थित हैं, 'कूटस्थ, अचल व ध्रुव' हैं। स्वयं गतिशून्य होते हुए सारे ब्रह्माण्ड को गति देनेवाले हैं (तदेजति तन्नैजति) २. **तत्**=उस ब्रह्म को **वातः**=वायु के समान निरन्तर क्रियाशील पुरुष अथवा प्राणसाधना करनेवाला पुरुष (वायुः प्राणो भूत्वा) **उन्मथायति**=उत्तमतया मन्थित करता है। यह प्राणसाधक ही दीप्त प्रज्ञावाला बनकर प्रभु का मनन कर पाता है।

भावार्थ—प्रभु सर्वकर्त्ता व स्वस्थान में सुदृढ़ हैं—कूटस्थ हैं। प्राणसाधक पुरुष ही प्रभु का मनन कर पाता है।

'उदारता' व 'उत्तम घर का निर्माण'

कुलायं कृणवादिति॥ ५॥ उग्रं वनिषदाततम्॥ ६॥
न वनिषदनाततम्॥ ७॥

१. **कुलायम्**=घर को **कृणवात् इति**=बनानेवाला हो। इस कारण से **उग्रम्**=अतिशयेन तेजस्वी **आततम्**=सर्वत्र फैले हुए सर्वव्यापक प्रभु की ही **वनिषद्**=याचना करे—प्रभु को ही पाने की प्रार्थना करे। तेजस्वी, व्यापक प्रभु का आराधन करनेवाला व्यक्ति घर को सदा उत्तम बनाता है। इस आराधक के घर में सबका जीवन उत्तम होता है। २. **अनाततम्**=जो व्यापक नहीं, उसकी पूजा न करे, अर्थात् व्यक्ति को गुरु धारण करके उसकी पूजा में ही न लग जाए। 'पति घर में रोटी पकाये चूँकि पत्नी गुरुजी के दर्शन को गई हुई है' यह भी कोई घर है? और इन गुरुओं के कारण परस्पर फटाव व अकर्मण्यता उत्पन्न हो जाती है, चूँकि उनका विचार होता है कि गुरुजी का आशीर्वाद ही सब-कुछ कर देगा। अविस्तृत—संकुचित व अनुदार की **न वनिषत्**=याचना न करे। 'उदारं धर्ममित्याहुः' उदार ही धर्म है। संकुचित तो कभी धर्म होता ही नहीं। महत्ता ही उपादेय हो। यह महान् पुरुष ही उत्तम घर का निर्माण करनेवाला होता है।

भावार्थ—जो यह चाहता है कि वह उत्तम घर का निर्माण करे—उसे तेजस्वी, सर्वव्यापक प्रभु की ही याचना करनी चाहिए। यह कभी अनुदारता व अल्पता की ओर नहीं जाता।

कर्करी विलेखन व दुन्दुभि हनन

क एषां कर्करी लिखत्॥ ८॥ क एषां दुन्दुभिं हनत्॥ ९॥
यदीयं हनत्कथं हनत्॥ १०॥

१. **एषाम्**=गतमन्त्र के अनुसार इन क्रियाशील प्राणसाधकों व उदारधर्म का पालन करनेवालों की **कर्करी**=क्रियाशीलताओं को **कः**=कौन **लिखत्**=अवदीर्ण—विनष्ट कर देता है? कौन इनकी क्रियाशीलताओं को उखाड़ फेंकता है? 'कर्करी' शब्द द्विवचन में है। एक अभ्युदय-साधक क्रियाएँ हैं, दूसरी निःश्रेयस-साधक। कौन-सी शक्ति है जो इसकी इन क्रियाओं को विदीर्ण कर

डालती है? २. **कः**=कौन-सी वह प्रबल शक्ति **एषाम्**=इन साधकों की **दुन्दुभिम्**=दुन्दुभि को—अन्तर्नाद को—अन्तःस्थित प्रभु से दी जानेवाली प्रेरणा को—**हनत्**=नष्ट कर देती है। किसके वशीभूत होकर यह जीव उस प्रेरणा को नहीं सुनता। ३. **यदि**=यदि **इयम्**=यह देदीप्यमान रूपवाली प्रकृति **हनत्**-इन क्रियाओं व अन्तर्नाद को नष्ट करती है तो **कथं हनत्**=कैसे नष्ट करती है? जीव बड़े उत्तम मार्ग पर चल रहा होता है। न जाने क्या होता है कि उसकी सब क्रियाएँ विनष्ट हो जाती हैं और वह अन्तःस्थित प्रभु-प्रेरणा को सुननेवाला नहीं रहता।

भावार्थ—प्रकृति का चमकीला आवरण हमपर इसप्रकार आक्रामक हो जाता है कि हमारी सब शुभ क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं और हम उस अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को नहीं सुन पाते।

फिर-फिर बन्धन में

देवी हनत्कुहनत्॥ ११॥ **पर्यागारं पुनः पुनः॥ १२॥**

१. **देवी**=यह चमकती हुई प्रकृति ही हमारी क्रियाओं व अन्तर्नाद को **हनत्**=विनष्ट करती है और **कुहनत्**=बुरी तरह से विनष्ट करती है। यह हमें सुला-सा देती है (दिव् स्वप्ने) और विषय-कीड़ाओं में फँसा देती है (दिव् क्रीडायाम्)। उस समय हम अपने कर्त्तव्यों को भूल जाते हैं और अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणाओं को नहीं सुन पाते। २. इसका परिणाम यह होता है कि हम **पुनःपुनः**=फिर फिर **परि आगारम्**=इस शरीर गृह के ही भागी बनते हैं (परि=भागे)। हमें बार बार इन शरीर-बन्धनों में आना पड़ता है—हम मुक्त नहीं हो पाते।

भावार्थ—प्रकृति-बन्धनों में फँसने पर मुक्ति सम्भव नहीं। प्रकृति का आकर्षण बन्धन का ही कारण बनता है।

उष्ट्र के तीन नाम (शत्रु-नायक बल)

त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि॥ १३॥ **हिरण्य इत्येके अब्रवीत्॥ १४॥**

द्वौ वा ये शिशवः॥ १५॥

१. प्रकृति के बन्धनों में न फँसनेवाले **उष्ट्रस्य**=वासनाओं को (उष दाहे) दग्ध करनेवाले के **त्रीणि**=तीन **नामानि**=नाम हैं, अथवा शत्रुओं को झुकानेवाले (नम प्रह्वीभावे) तीन बल हैं। एक बल 'काम' का पराजय करता है, दूसरा 'क्रोध' का और तीसरा 'लोभ' का। इसप्रकार तीनों शत्रुओं को विनष्ट करके यह स्वर्गीय सुख का अनुभव करता है। २. प्रभु ने **इति अब्रवीत्**=ऐसा कहा कि **एके**=(same) ये सब सम (समान) हैं। ये बल अलग-अलग नहीं हैं। **हिरण्यम्**=(हिरण्यं वै ज्योतिः) ये बल हिरण्य, अर्थात् ज्योतिरूप है। ज्ञान ही वह बल है जिसमें ये सब शत्रु भस्म हो जाते हैं। ३. ये **शिशवः**=(शो तनूकरणे) जो अपनी बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाले हैं, वे कहते हैं कि ये बल **वा**=निश्चय से **द्वौ**=दो भागों में बटे हुए हैं=शरीर में इसका स्वरूप 'क्षत्र' है, मस्तिष्क में 'ब्रह्म'। ये ब्रह्म और क्षत्र मिलकर सब शत्रुओं को भस्म कर देते हैं।

भावार्थ—वासनाओं को दग्ध करनेवाला व्यक्ति तीन शत्रुओं को नमानेवाले बलों को प्राप्त करता है। ये सब बल समान रूप—'हिरण्य' (ज्योति) ही हैं। अथवा ये 'ब्रह्म व क्षत्र' के रूप में हैं।

नील-शिखण्ड-वाहन

नीलशिखण्डवाहनः॥ १६॥

१. वासना को जीतकर संसार के रंगों में न रंगा हुआ यह पुरुष—'नील' बनता है

'कृष्णा'-न रंगा हुआ। २. क्रोध को जीतकर यह 'शिखण्ड' (crest) मूर्धन्य=शिरोमणि बनता है। ३. लोभ को जीतकर यह न्यायार्जित धन से जीवन-यात्रा का वहन करनेवाला 'वाहन' बनता है। इसप्रकार इसका नाम 'नीलशिखण्ड वाहन' हो जाता है।

भावार्थ—हम 'काम, क्रोध, लोभ' रूप तीनों शत्रुओं को जीतकर 'नीलशिखण्डवाहन' बनें।

१३३. [त्रयस्त्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

ज्ञान की दो किरणें

वितंतौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः।
न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे॥ १॥

१. प्रभु से दिये गये वेदज्ञान में **द्वौ किरणौ**=दो प्रकाश की किरणें **विततौ**=विस्तृत हैं। वेद में जहाँ प्रकृति का सम्यक् ज्ञान दिया गया है, उसी प्रकार जीव के कर्त्तव्यों का प्रतिपादन भी पूर्णतया हुआ है। जीव का वहाँ अन्तिम लक्ष्य उपासना द्वारा प्रभु का सान्निध्य कहा गया है। 'तदपश्यत् तदभवत् तदासीत्' इन शब्दों में यह स्पष्ट है कि जीव ने प्रभु-दर्शन करना है—प्रभु जैसा बनना है—प्रभु-पुत्र होने के नाते प्रभु-जैसा तो था ही। बालबुद्धिवश प्रकृति का आकर्षण ही उसे विषयपंक में फँसाकर मलिन कर देता है। **पूरुषः**=इस शरीर-नगरी में बद्ध होकर रहनेवाला जीव **तौ**=उन प्रकाश-किरणों को **आपिनष्टि**=पीस डालता है। इन प्रकाश-किरणों से अपने जीवन को दीप्त नहीं करता। विषयों में ही क्रीड़ा करता रहता है। २. वह जीव विषयों को बड़ा प्रिय समझता है, परन्तु वस्तुतः ये वैसे हैं तो नहीं, अतः कहते हैं कि हे **कुमारि**=(कुमार क्रीडायाम्) विषयों में क्रीड़ा करनेवाली युवति! **वै**=निश्चय से **तत्**=वह विषयस्वरूप **तथा न**=वैसा नहीं है। हे कुमारि! **यथा मन्यसे**=जैसा तू इसे समझ रही है। जीव इसमें आनन्द-लाभ की आशा करता है, परन्तु ये विषय तो 'सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः' सब इन्द्रियों के तेज को जीर्ण ही करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु ने वेद में हमारे लिए प्रकृतिज्ञान व जीव-कर्त्तव्यज्ञानरूपी दो प्रकाश की किरणों को प्राप्त कराया है। प्रकृति में फँसकर हम इन ज्ञान-किरणों को प्राप्त करने के लिए यत्नशील नहीं होते, परन्तु प्रकृति वस्तुतः आनन्दप्रद लग ही रही है, है तो नहीं। यह तो इन्द्रियों के तेज को जीर्ण ही करनेवाली है। इस बात को समझकर हमें प्रकाश को ही पाना चाहिए।

माता के दो उपदेश

मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते।
न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे॥ २॥

१. हे जीव! **ते**=तेरी **मातुः**=इस वेदमाता की (स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्) **द्वौ किरणौ**=प्रकाश की ये दो किरणें—प्रकृति-ज्ञान व जीव-कर्त्तव्यज्ञानरूप प्रकाश **पुरुषान्**=सब पुरुषों को **ऋते**=सत्य के विषय में—जो ठीक है उसके विषय में **निवृत्तः**=(वृतु भाषणे दीपने च) कहती हैं और दीप्त करती हैं, परन्तु तू माता के उस भाषण को सुनता नहीं, अतः तेरा जीवन दीप्त भी नहीं होता। २. हे **कुमारि**=विषयों में खेलनेवाले जीव! तू यह समझ ले कि **वै तत् तथा न**=निश्चय से यह विषयस्वरूप वैसा नहीं है, हे कुमारि! **यथा मन्यसे**=जैसा तू इसे समझ रही है।

भावार्थ—वेदमाता की प्रकाश की दो किरणें हमें ऋत के विषय में ज्ञान देकर दीप्त जीवनवाला बनाने के लिए यत्नशील हैं। संसार क्रीडारत होने पर हम उनकी ओर झुकते नहीं—

माता की बात को सुनते नहीं।

दो कर्णकों (विक्षेपों) का निग्रह

निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे।
न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे॥ ३॥

१. तमोगुण के विक्षेपों के कारण मनुष्य 'प्रमाद-आलस्य व निद्रा' की ओर झुक जाता है। राजस् विक्षेप इसे अर्थप्रधान बनाकर हर समय भगदौड़ में रखते हैं। इन **द्वौ**=दोनों ही **कर्णकौ** (कृ विक्षेपे)=विक्षेपों को **निगृह्य**=निगृहीत करके—रोककर तमोगुण के आलस्य व रजोगुण की भगदौड़ के **मध्यमे**=मध्य में होनेवाले सात्त्विक गति-सम्पन्न स्वर्णीय मध्यमार्ग में **निरायच्छसि**=तू अपने को संयत करता है। २. हे **कुमारि**=संसार के विषयों में क्रीड़ा करनेवाले जीव! यह तू समझ ले कि **वै**=निश्चय से **तत्**=वह **तथा न**=वैसे नहीं है, हे कुमारि! **यथा मन्यसे**=जैसे तू इस संसार को मानती है।

भावार्थ—तमोगुण व रजोगुण के विक्षेपों से ऊपर उठकर हम सदा मध्यम सात्त्विक मार्ग पर चलनेवाले बनें। संसार के तत्त्व को समझें।

'उत्ताना Vs शयाना' चित्तवृत्ति

उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि।
न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यस॥ ४॥

१. **उत्तानायै**=(Elevated, Candid)=उत्कृष्ट—छल छिद्र-शून्य चित्तवृत्ति के लिए **तिष्ठन्ती**=स्थित होती हुई तू **वा**=निश्चय से **शयानायै**=आलस्य में शयन करनेवाली चित्तवृत्ति के लिए **अवगूहसि**=अपने को संवृत कर लेती है—छिपा लेती है (Conceal)। शयाना चित्तवृत्ति का तू शिकार नहीं होती। २. हे कुमारि! यह तू सदा ध्यान रखना कि **वै**=निश्चय से **तत् तथा न**=यह संसार वैसा नहीं, हे कुमारि! **यथा मन्यसे**=जैसा तू इसे मानती है।

भावार्थ—हम संसार में विलासों की चमक से बचकर उत्कृष्ट व छल-छिद्र शून्य जीवन को अपनाएँ। आलस्यमयी भोगप्रवण चित्तवृत्ति को दूर रक्खें।

श्लक्ष्णा Vs श्लक्ष्णिका

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि।
न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे॥ ५॥

१. दो प्रकार की चित्तवृत्तियाँ हैं—एक 'श्लक्ष्णा' (Honest, candid, Beautiful, charming)=छल-छिद्र-शून्य उदार चित्तवृत्ति हैं जो वस्तुतः सुन्दर हैं। दूसरी 'श्लक्ष्णिका' (कुत्सिते-कन्)=श्लक्ष्णा से विपरीत कुत्सित छल-छिद्रपूर्ण चित्तवृत्ति है। हे कुमारि! तू इस बात का ध्यान करना कि **श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायाम्**=इन श्लक्ष्णा और श्लक्ष्णिका चित्तवृत्तियों में तू **श्लक्ष्णाम् एव**=छल-छिद्रशून्य सुन्दर चित्तवृत्ति को ही **अवगूहसि** (गुह Hug)=आलिंगन करती है। हमें संसार में उत्तम चित्तवृत्ति को ही अपनाना चाहिए। संसार की चमक-दमक में फँसकर कुटिलता की ओर न झुक जाना चाहिए। ३. हे कुमारि! तू यह समझ ले कि **वै**=निश्चय से **तत् तथा न**=यह संसार वैसा नहीं है, हे कुमारि! **यथा मन्यसे**=जैसा तू इसको समझ रही है। छल-छिद्र से प्राप्त ऐश्वर्य अन्ततः कल्याण देनेवाले नहीं।

भावार्थ—हम संसार में छल-छिद्र से शून्य, उदार चित्तवृत्तिवाले बनें। संसार के स्वरूप

को ठीक से समझने का यत्न करें।

अवश्लक्ष्णम् इव

अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे।
न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे॥ ६॥

१. यह संसार **अवश्लक्ष्णम् इव**=(not honest) छल-छिद्र से भरा हुआ-सा है—यह सुन्दर नहीं। **लोममति ह्रदे अन्तः**=विषय-शैवालरूपी लोमोंवाले ह्रद के अन्दर **भ्रंशत्**=गिर रहा है, अर्थात् संसार-ह्रद में मनुष्य डूबते-से चलते हैं। यह संसार-ह्रद विषय के शैवाल से भरा हुआ है। ये विषय लोम हैं (लू छेदने) छेदन के योग्य हैं। अन्यथा ये मनुष्य को उलझा लेते हैं। २. हे कुमारि! **वै**=निश्चय से **तत् यथा न**=यह संसार वैसा नहीं, हे कुमारि! **यथा मन्यसे**=जैसा तू समझती है। संसार के तत्त्व को समझकर हमें इस संसार-ह्रद में डूबने से बचना चाहिए।

भावार्थ—यह संसार छल-छिद्र से भरा-सा हुआ है। मनुष्य इसकी चमक से चुंधियाई हुई आँखोंवाला होकर विषय-शैवाल से भरे इस संसार-ह्रद में डूब जाता है, अतः अत्यन्त सावधानी अपेक्षित है।

सूचना—छह बार यह बात कही गई है कि यह संसार वैसा नहीं जैसाकि इसे हम समझ रहे हैं। यही संसार का मिथ्यात्व है—यही वेदान्त-सिद्धान्त है। 'संसार न हो' ऐसा नहीं। इसे ठीक रूप में समझकर इस संसार-सागर में डूबने से हमें बचना चाहिए। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन ही इसमें उलझने का कारण बन जाते हैं, अतः यह बात छह बार दुहरा दी गई है। जब बुद्धि का राज्य होता है तब मनुष्य इसमें उलझने से बच जाता है।

१३४. [चतुस्त्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

कुटिलता का तर्जन

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् अरालागुदभर्त्सथ॥ १॥

१. संसार के विषयों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि हम इस रूप में सोचें और समझें कि **इह**=यहाँ **इत्थ**=सचमुच **प्राग् अपाग् उदग् अधराग्**-पूर्व, पश्चिम उत्तर व दक्षिण सब दिशाओं में उस प्रभु की सत्ता है। २. वह प्रभु **अरालागुदभर्त्सथ** (भर्त्सथः)=(अराल=crooked गुद=क्रीडायाम्, भर्त्स-झिड़कना) छल-छिद्र व कुटिलतापूर्ण क्रीड़ाओं का भर्त्सन करनेवाला है। प्रभु अपने पुत्रों से अकुटिल कर्मों को ही चाहता है?

भावार्थ—प्रभु की सर्वव्यापकता का स्मरण करते हुए हम कुटिलता से ऊपर उठें। कुटिल कर्मों में फँसकर प्रभु से धिक्कारने के योग्य न हो जाएँ।

पुरुषन्त

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् वत्साः पुरुषन्त आसते॥ २॥

१. **इह**=यहाँ **इत्थ**=सचमुच **प्राग् अपाग् उदग् अधराग्**=पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में सर्वत्र वे प्रभु विद्यमान हैं। २. इस प्रभु के **वत्साः**=प्रिय पुत्र **पुरुषन्तः**-(पुरुष इव आचरन्तः) एवं पुरुष की भाँति आचरण करते हुए—मानवोचित व्यवहार करते हुए—छल-छिद्र से दूर होते हुए **आसते**=ठहरते हैं।

भावार्थ—प्रभु की सर्वव्यापकता का स्मरण करते हुए हम मानवोचित व्यवहार करें और

प्रभु के प्रिय बनें।

स्थालीपाक-विलय

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् स्थालीपाको वि लीयते॥ ३॥

१. **इह**=यहाँ **इत्थ**=सचमुच **प्राग् अपाग् उदग् अधराग्**=पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में वे प्रभु सर्वत्र विद्यमान हैं। २. ऐसा अनुभव होने पर **स्थालीपाकः**=कुण्ड में (देगची में) पकाते रहने की क्रिया **विलीयते**=विलीन हो जाती है—नष्ट हो जाती है। यह व्यक्ति हर समय खाता-पीता ही नहीं रहता। खान-पान में ही मज़ा लेने से ऊपर उठकर यह अध्यात्म उन्नति की ओर अग्रसर होता है?

भावार्थ—हम प्रभु की सर्वव्यापकता को अनुभव करें और हर समय पशुओं की तरह चरते ही न रहें। अध्यात्म-उन्नति में प्रवृत्त हों।

प्रभु-भक्ति-लीनता

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् स वै पृथु लीयते॥ ४॥

१. **इह**=यहाँ **इत्थ**=सचमुच **प्राग् अपाग् उदग् अधराग्**=पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में सब ओर वे प्रभु हैं, २. ऐसा अनुभव करनेवाला **सः**=वह उपासक **वै**=निश्चय से **पृथु**=(प्रथ-विस्तारे) उस सर्वव्यापक प्रभु की भक्ति में **लीयते**=लीन होने के लिए यत्नशील होता है।

भावार्थ—हम प्रभु की सर्वव्यापकता को अनुभव करें और उसकी उपासना में लीन होने के लिए यत्नशील हों।

'सर्वत्र व सर्वविजेता' प्रभु

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् आष्टे लाहणि लीशाथी॥ ५॥

१. **इह**=यहाँ **इत्थ**=सचमुच **प्राग् अपाग् उदग् अधराग्**=पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में सर्वत्र प्रभु व्याप्त हैं। २. ऐसा सोचनेवाले पुरुष की बुद्धि **आष्टे**=उस सर्वव्यापक (अश् व्याप्तौ) **लाहणि**=(लाभ=conquest, apprehansion) सर्व-विजेता, सर्वज्ञ प्रभु में **लीशाथी**=(लिश गतौ) गतिवाली होती है। यह पुरुष सदा प्रभु का ही चिन्तन करता है। इसके सब व्यापार प्रभु-चिन्तनपूर्वक होते हैं।

भावार्थ—प्रभु की सर्वव्यापकता का स्मरण करते हुए हम बुद्धि को प्रभु के चिन्तन में प्रवृत्त करें। सब विजयों को उस प्रभु से होता हुआ जानें।

अशुद्धि क्षये ज्ञानदीप्तिः

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् अक्ष्लिली पुच्छिलीयते॥ ६॥

१. **इह**=यहाँ **इत्थ**=सचमुच **प्राग् अपाग् उदग् अधराग्**=पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में सर्वत्र उस प्रभु की व्याप्ति है। २. ऐसा चिन्तन करनेवाले पुरुष की **अक्ष्लिली**=(अक्ष् pervade, penetrate) सर्वविषय व्यापिनी गहराई तक जानेवाली बुद्धि **पुच्छिलीयते**=('पुच्छ् प्रसादे' शब्द कल्पद्रुमे) प्रसादवाली होती है—निर्मल हो जाती है। इस बुद्धि के निर्मल होने पर ही उसे विवेकख्याति होकर प्रभु का साक्षात्कार होता है।

भावार्थ—प्रभु की सर्वव्यापकता का चिन्तन बुद्धि को निर्मल बनाता है। इस निर्मल बुद्धि से प्रभु का साक्षात्कार हो पाता है।

१३५. [पञ्चत्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

भुक्, शल्, फल्

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो दैव॥ १॥

१. **भुक्**='हे प्रभो! आप ही तो पालनेवाले हो' **इति**=यह चिन्तन करता हुआ स्तोता **अभिगतः**=आपकी ओर चलनेवाला बनता है। **शल्**='वह प्रभु ही संसार का संचालक है, सम्पूर्ण गतियों को देनेवाले वे प्रभु ही हैं' **इति**=यह सोचकर **अपक्रान्तः**=यह स्तोता सब विषय-वासनाओं से दूर हो जाता है। सर्वत्र प्रभु की गति को देखता हुआ—उसकी सर्वव्यापकता को अनुभव करता हुआ विषयों में नहीं फँसता। **फल्**='प्रभु ही सब वासनाओं को विशीर्ण करनेवाले हैं', **इति**=यह सोचकर यह स्तोता **अभिष्ठितः**=प्रातः-सायं उस प्रभु के चरणों में स्थित होता है। यह प्रभु की उपासना ही उसे काम, क्रोध को पराजित करने में समर्थ करती है। २. हे **जरितः**=हमारी वासनाओं को जीर्ण करनेवाले प्रभो! **दैव**=सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले प्रभो! हम **आहननाभ्याम्**=(हन् गतौ) शरीर में सर्वत्र (आ) प्राणापान की गति के द्वारा **दुन्दुभिः**=अन्तर्नाद को **आउथामः** (उत्थापयामः)=उठाने का प्रयत्न करते हैं। प्राणायाम द्वारा मलों के दूर होने पर ही तो अन्तःस्थित आपकी प्रेरणा सुन पड़ती है।

भावार्थ—हम प्रभु को 'भुक्' जानकर प्रभु की ओर चलें, उसे 'शल्' समझते हुए वासनाओं से बचें, उसे 'फल्' जानते हुए प्रातः-सायं प्रभु-चरणों में स्थित हों। प्राणसाधना द्वारा मलों को विक्षिप्त करके अन्तर्नाद को सुनने का प्रयत्न करें।

गृहस्थ से, वानप्रस्थ होकर संन्यास की ओर

कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम्।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन्वर्त्मन्यात्॥ २॥

१. 'प्रभु-चरणों में स्थित होनेवाला यह व्यक्ति किस प्रकार चलता है?' इसका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इसके जीवन में पहली बात तो यह होती है कि **कोशबिले**=खजाने के द्वार पर **रजनि ग्रन्थेः**=(रजनि red lac) लाख की ग्रन्थि का **धानम्**=स्थापन होता है, अर्थात् अब यह कोश को बढ़ाना बन्द कर देता है। धन की वृद्धि ही तो इसके जीवन का उद्देश्य नहीं। जीवन के लिए आवश्यक धन के होने पर धन को ही बढ़ाने में लगे रहना समझदारी नहीं। २. अब यह **उपानहि पादम्**=जूते में पाँव को रखता है, अर्थात् गृहस्थ से ऊपर उठकर वानप्रस्थ बनने के लिए घर से प्रस्थान के लिए तैयार हो जाता है। ३. **उत्तमां जनिमां जन्या**=उत्तम सन्ततियों को जन्म देकर (जनयित्वा) अब यह **अनुत्तमाम्**=सर्वोत्तम **जनीन्**=प्रादुर्भावों को—शक्तिविकासों को लक्ष्य करके (जनीन्=जनिम्) **वर्त्मन् यात्**=मार्ग पर चलता है। अब यह ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग पर ही चलता है। यही मार्ग है जिसमें उसे सर्वोत्तम शक्तियों की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—हम जीवन में धन की एक सीमा का निर्धारण करें—अन्यथा आजीवन इसे कमाने में ही उलझे रहेंगे। गृहस्थ से ऊपर उठकर वानप्रस्थ बनने को तैयार हों। उत्तम सन्तानों को जन्म देने के बाद अब सर्वोत्तम शक्तियों के विकास के लिए तैयारी करें।

घरों को उत्तम बनाने के लिए

अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम्।
पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोथामो दैव॥ ३॥

१. हम घरों को उत्तम बनाने के लिए घरों में हे **जरितः**=हमारी वासनाओं को जीर्ण करनेवाले **दैव**=सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले प्रभो! **अलाबूनि**=प्रिया कद्दू की बेलों को, **पृषातकानि**=दधि मिश्रित आज्य (घृत) को, **अश्वत्थपलाशम्**=पीपल व ढाक के वृक्षों को, **पिपीलिका-अवट-श्वसः**=उन वट-वृक्षों को जिनकी खोलों में चींटियाँ प्राण धारण करती हैं **आ उथामः**-उत्थापित करते हैं। भोजन के लिए अलाबू व पृषातक का प्रयोग स्वास्थ्यप्रद होता है। छाया के लिए वट-वृक्ष का महत्त्व है—वट का दूध वीर्य-दोषों को दूर करने में सहायक है। ढाक व पीपल की समिधाएँ यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करने के लिए उपयोगी हैं। एवं एक घर में इनका महत्त्व स्पष्ट है। २. इनके अतिरिक्त हम प्रकाश के लिए **विद्युत्**=बिजली को घर में स्थापित करते हैं। इनके सिवाय हमारे घरों में **स्वापर्णशफः**=(सु आपर्ण) उत्तम पंखोंवाले, अर्थात् पक्षी के समान वायुवेग से उड़ चलनेवाले घोड़ों के शफों को तथा **गोशफः**=दूध देनेवाली गौओं के शफों को उत्थापित करते हैं। हमारे घरों में घोड़े व गौएँ हों। ये ही तो मनुष्य के बाएँ व दाएँ हाथ होते हैं। (स नःपवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते)।

भावार्थ—हमारे घर स्वास्थ्यप्रद भोजनों, यज्ञिय वृक्षों व घोड़े व गौ से युक्त हों।

यज्ञ+ज्ञान+स्तुति

वी ∫ मे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर। सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि॥ ४॥

१. **इमे देवाः**=ये देववृत्ति के पुरुष—घरों को उत्तम बनाने के बाद वानप्रस्थ होने पर ये देव—**वि अक्रंसत**=विशिष्ट रूप से गतिवाले होते हैं। इनका जीवन सदा क्रियामय होता है। हे **अध्वर्यो**=अहिंसात्मक यज्ञों में प्रवृत्त पुरुष तू **क्षिप्रं प्रचर**=शीघ्र गतिवाला हो—तू इन यज्ञ आदि कर्मों में प्रवृत्त रह। २. तू तो **इत्**=निश्चय से **सुसत्यम्**=सचमुच **गवाम् असि**=ज्ञान की वाणियों का है, अर्थात् तेरा जीवन इन ज्ञान की वाणियों के लिए अर्पित हो गया है। तू **प्रखुत्** (खु-to sound) **असि**=प्रकर्षेण स्तुतिवचनों का उच्चारण करनेवाला है और (प्रखुत्) **असि**=तू सचमुच उस प्रभु का स्तोता बना है।

भावार्थ—वानप्रस्थों का जीवन यज्ञों ज्ञानों व स्तुतियों से परिपूर्ण हो।

यक्ष्यमाणा+होता

पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोथामो दैव।
होता विष्टीमेन जरितरोथामो दैव॥ ५॥

१. हे **जरितः**=हमारी वासनाओं को जीर्ण करनेवाले **दैव**=देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले प्रभो! **यत्**-जब **पत्नी**=गृह पत्नी **यक्ष्यमाणा**=यज्ञों को करती हुई—यज्ञों की कामनावाली होती हुई **पत्नी दृश्यते**=सचमुच घर का पालन करनेवाली दिखती है तो **आ उथामः**=हम घरों को सब प्रकार से उन्नत करनेवाले होते हैं। जिस घर में गृहपत्नी यज्ञ आदि उत्तम कर्मों की वृत्तिवाली होती है, वह घर पवित्र वातावरणवाला होता हुआ सदा उन्नत होता है। २. हे **जरितः**=वासनाओं को जीर्ण करनेवाले **दैव**=देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले प्रभो! (यत्) जब घर में गृहपति **विष्टीमेन**=बड़े स्नेहार्द्र हृदय से (ष्टीम आर्द्रीभावे) **होता**=यज्ञों में आहुति देनेवाला (दृश्यते) दिखता है तो हम **आ उथामः**=घरों को सर्वथा ऊपर उठानेवाले होते हैं।

भावार्थ—जिस घर में पति-पत्नी यज्ञिय वृत्तिवाले होते हैं वह घर सदा उन्नत होता चलता है।

दक्षिणा

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन्॥ ६॥

१. हे **जरितः**=वासनाओं को जीर्ण करनेवाले प्रभो! **आदित्याः**=विद्यादि गुणों का आदान करनेवाले पुरुष **ह**=निश्चय से **अंगिरोभ्यः**=यज्ञों के रक्षक अंगिरसों (विद्वानों) के लिए **दक्षिणाम्**=दान को **अनयन्**=प्राप्त कराते हैं। गुणों का आदान करनेवाले सद्गृहस्थ स्वयं यज्ञशील होते हुए यज्ञों के रक्षक ज्ञानी पुरुषों के लिए भी धनादि के दान द्वारा यज्ञों में सहायक होते हैं। २. हे **जरितः**=वासनाओं को जीर्ण करनेवाले प्रभो! **ताम्**=उस दक्षिणा को **ह**=निश्चय से **प्रत्यायन्**=ये अंगिरस् प्राप्त होते हैं। हे **जरितः**=वासनाओं को जीर्ण करनेवाले प्रभो! **ताम्**=उस दक्षिणा को **उ ह**=अवश्य ही **प्रत्यायन्**=प्राप्त होते हैं। इस दक्षिणा-प्राप्त धनों का विनियोग वे यज्ञों में ही करते हैं।

भावार्थ—गुणों का आदान करनेवाले ज्ञानी पुरुष स्वयं घरों में यज्ञ करते ही हैं। ये यज्ञों के रक्षक अंगिरसों के लिए भी दक्षिणा प्राप्त कराके उनसे किये जानेवाले यज्ञों में सहायक होते हैं।

'दान-स्वाध्याय-यज्ञ'

तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः।
अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः॥ ७॥

१. हे **जरितः**=वासनाओं को जीर्ण करनेवाले प्रभो! **नः**=हमारी **ताम्**=उस दक्षिणा को ये अंगिरा **ह**=निश्चय से **प्रत्यगृभ्णन्**=ग्रहण करते हैं। हे **जरितः**=वासनाओं को जीर्ण करनेवाले प्रभो! **नः**=हमारी **ताम्**=उस दक्षिणा को **उ ह**=निश्चय से **प्रत्यगृभ्णः**=ग्रहण कीजिए। आपके नाम पर हम जो दान दें, वह दान हमें आपका प्रिय बनाए। २. आपकी हमारे लिए यही तो प्रेरणा है कि **वि चेतनानि**=ज्ञानशून्य **अहान इत** (अहानेत)=दिनों को मत प्राप्त करो, अर्थात् तुम्हारा प्रत्येक दिन स्वाध्याय द्वारा ज्ञानवृद्धिवाला बने। **रसं न** (इत)=विषयों को मत प्राप्त होओ। तुम्हें विषयों का चस्का न लग जाए। **यज्ञान् आ इत** (यज्ञानेत)=यज्ञों को तुम प्राप्त होओ। तुम्हारा जीवन यज्ञमय हो। **रसं न**=विषयों के चस्कों में ही न पड़ जाओ। ३. हे प्रभो! आपकी इस प्रेरणा को सुनकर स्वाध्याय व यज्ञों में लगे हुए हम निरन्तर **पुरोगवामः**=(गवतिर्गतिकर्मा)=आगे और आगे चलते हैं। उन्नति का मार्ग यही है कि हम 'स्वाध्याय व यज्ञ' को ही अपना कर्त्तव्य समझें—विषयों में न फँसे।

भावार्थ—हमारा जीवन 'दान, स्वाध्याय व यज्ञ' को अपनाने के द्वारा उन्नत और उन्नत होता चले।

उत्तम जीवन

उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः। उतेमाशु मानं पिपर्ति॥ ८॥

१. गतमन्त्र के अनुसार 'दान, स्वाध्याय व यज्ञ' को अपनानेवाला व्यक्ति **उत**=निश्चय से **श्वेतः**=शुद्ध चरित्रवाला होता है—इसके जीवन से वासनारूप मल विनष्ट हो जाता है। यह **आशुपत्वाः**=शीघ्रगामी होता है—अपने कर्त्तव्यकर्मों को स्फूर्ति के साथ करनेवाला होता है। **उत**

उ=और निश्चय से यह **पद्याभिः**=कर्त्तव्यकर्मों में गतियों के द्वारा (पद् गतौ) **यविष्ठः**=बुराइयों को दूर करनेवाला व अच्छाइयों को अपने से मिलानेवाला होता है (यु मिश्रणामिश्रणयोः) २. **उत**=और **ईम्**=निश्चय से यह साधक **आशु**=शीघ्र ही **मानं पिपर्ति**=मान का पालन करता है। यह मर्यादा ही इसके जीवन को सुन्दर बनाती है।

भावार्थ—हमारा जीवन शुद्ध हो, हम शीघ्र गतिवाले हों, क्रियाशीलता द्वारा जीवन को बुराइयों से बचाए रक्खें। मर्यादा का हम कभी उल्लंघन न करें।

'विभु-प्रभु-बृहत्-पृथु' राधः

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेऽनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत्पृथु॥ ९॥

१. हे **अंगिरः**=गतिशील (अगि गतौ)—आलस्यशून्य विद्यार्थिन्! **आदित्याः**='प्रकृति, जीव व परमात्मा' तीनों से सम्बद्ध ज्ञान को प्राप्त करनेवाले विद्वन्! **रुद्राः**=ज्ञानोपदेश द्वारा (रुत्) जीवनों को पवित्र बनानेवाला उपदेष्टा तथा **वसवः**=ज्ञानोपदेश द्वारा जीवन को उत्तम बनानेवाले विद्वान् **त्वे अनु**=तेरे प्रति अनुकूलतावाले हैं। **ते**=तेरे लिए वे 'आदित्य, रुद्र व वसु' **इदं राधः**=इस ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त कराते हैं। हे अंगिरः! तू इस ज्ञानैश्वर्य को **प्रतिगृभ्णीहि**=ग्रहण कर। परिश्रमी विद्यार्थी आचार्यों को सदा प्रिय होता है। वे इसके लिए ज्ञानरूप ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं। २. हे अंगिरः! **इदं राधः**=यह ज्ञानैश्वर्य **विभु**=जीवन को वैभवमय बनानेवाला है, **प्रभु**=यह जीवन को प्रभावयुक्त करता है। **इदं राधः**=यह ऐश्वर्य **बृहत्**=वृद्धि का साधन बनता है (वृहि वृद्धौ) तथा **पृथु**=शक्तियों का विस्तार करनेवाला होता है।

भावार्थ—हम गतिशील—आलस्यशून्य—बनें। हमें 'आदित्यों, रुद्रों व वसुओं' द्वारा वह ज्ञानैश्वर्य प्राप्त होगा जो हमारे 'वैभव व प्रभाव, वृद्धि व शक्ति-विस्तार' का साधन बनेगा।

आसुरं+सुचेतनम्

देवा ददत्वासुरं तद्वो अस्तु सुचेतनम्। युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत॥ १०॥

१. 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव' इन उपनिषद् वाक्यों के अनुसार 'माता, पिता व आचार्य' देव हैं। ये **देवाः**=माता, पिता व आचार्यरूप देव **आसुरम्** (Divine. spiritual)=दिव्य बल **ददतु**=दें। ये तुम्हारे लिए दिव्य बल को प्राप्त करानेवाले हों। **तत्**=वह दिव्य बल **वः**=तुम्हारे लिए **सुचेतनम् अस्तु**=उत्तम चेतना व ज्ञान देनेवाला हो। २. यह उत्तम चेतना का साधनभूत दिव्य बल **दिवेदिवे**=दिन-प्रति दिन **युष्मान् अस्तु**=तुम्हें प्राप्त हो, तुम **प्रतिगृभायत एव**=इसे प्रतिदिन ग्रहण करो ही।

भावार्थ—हम उत्तम माता, पिता व आचार्य को प्राप्त करके दिव्य बल व ज्ञान को प्राप्त करें। यह दिव्य बल व ज्ञान हमें सदा प्राप्त हो।

'पारावत'

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः। विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह॥ ११॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **पारावतेभ्यः**=(परात् शत्रोः अंहकारात् ज्ञानोपदेशेन अवति) ज्ञानोपदेश द्वारा अहंकाररूप शत्रु से बचानेवाले ज्ञानियों के लिए **शर्म**=सुख को व **हव्यम्**=हव्य पदार्थों को—जीवन के लिए आवश्यक यज्ञिय पदार्थों को **रिणाः**=प्राप्त कराते हैं। २. हे प्रभो! आप **विप्राय**=(वि+प्रा पूरणे) अपनी कमियों को दूर करनेवाले **दुरश्रवसे** (दुर्व् हिंसायाम्, दुरंश्रवो यस्य)=शत्रुसंहारक ज्ञानवाले **स्तुवते**=स्तोता के लिए **वसुवनिं वह**=निवास के

लिए आवश्यक धन के संभजन को **वह**=प्राप्त कराइए।

भावार्थ—हम ज्ञान द्वारा अहंकाररूप शत्रु से बचानेवाले बनें। प्रभु हमें सुख व हव्य पदार्थों को प्राप्त कराएँगे। हम अपनी न्यूनताओं को दूर करनेवाले, वासनासंहारक ज्ञानवाले व स्तोता बनें। प्रभु हमारे लिए निवास को उत्तम बनानेवाले धन का संभजन करेंगे।

परिव्राजक के लिए भिक्षा

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः॥ १२॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **त्वम्**=तू **च्छिन्नपक्षाय**=(पक्ष परिग्रहे) परिग्रह को जिसने काट डाला है—जो अब परिवार के बन्धनों से ऊपर उठ गया है **अस्मै**=इस **वञ्चते**=चारों दिशाओं में भ्रमण करनेवाले **कपोताय**=आनन्द के पोत (बेड़े) के समान प्रसन्न संन्यस्त पुरुष के लिए **श्यामाकम्**=धान्यविशेष को **पक्वम्**=जिसको ठीक प्रकार से पकाया गया है **च**=तथा **पीलु**=(पीलु गुडफलः स्रंसी) सुपच, उत्तम फल को तथा **वाः**=जल को **बहुः**=बहुत बार **अकृणोः**=करता है। २. गृहस्थ के लिए उचित है कि द्वार पर आये संन्यस्त को आदर से भिक्षा प्राप्त कराए। भिक्षा में दिया गया खान-पान स्वास्थ्य के लिए ठीक हो। संन्यासी भी सर्वबन्धनमुक्त-सर्वत्र आनन्द का सन्देश प्राप्त कराता हुआ परिव्राजक ही है।

भावार्थ—सद्गृहस्थ द्वार पर उपस्थित परिव्राजक के लिए स्वास्थ्य वर्धक भिक्षान्न को प्राप्त कराएँ।

त्रिदण्डी परिव्राजक का ज्ञानोपदेश

अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया। इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति॥ १३॥

१. **अरंगरः**=खूब ही ज्ञानोपदेश करनेवाला (अरं गृणाति) यह परिव्राजक **वावदीति**=लोगों के लिए ज्ञान का उपदेश करता है। यह स्वयं **वरत्रया**=व्रतबन्धनरूप रज्जु से **त्रेधा बद्धः**= तीन प्रकार से बँधा होता है—यह 'वाणी, मन व शरीर' तीनों में संयत होता है 'वाग्दण्डोऽथ मनोदण्ड कायदण्डस्तथैव च'। इस संन्यस्त के मुख से कोई अपशब्द उच्चरित नहीं होता, किसी के प्रति मन में द्वेष नहीं होता, इसकी सब शारीरिक क्रियाएँ बड़ी संयत होती हैं तभी तो इसके ज्ञान के उपदेश का प्रभाव होगा। ४. यह **अह**=निश्चय से **इराम्**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता सरस्वती का **प्रशंसति**=शंसन करता है। लोगों को ज्ञान की रुचिवाला बनने की प्रेरणा देता है। **अनिराम्**=जो ज्ञान के प्रतिकूल है उसका **अपसेधति**=वर्जन करता है। स्वयं ज्ञान के प्रतिकूल बातों से दूर रहता हुआ लोगों को भी वैसा बनने के लिए कहता है।

भावार्थ—'वाणी, मन व शरीर' को व्रतबन्धनों से बाँधकर यह त्रिदण्डी लोगों को खूब ही ज्ञान का उपदेश करता है। ज्ञान के प्रतिकूल प्रत्येक भाव से दूर रहता है।

१३६. [षट्त्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

कठोर राजदण्ड से चोरी का अभाव

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत्।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव॥ १॥

१. **यत्**=जो कोई भी **अंहुभेद्याः**=पाप का भेदन करनेवाली—पाप से दूर रहनेवाली **अस्याः**=इस प्रजा को **कृधु**=(ह्रस्वम् नि० ३.२) थोड़ा-सा अथवा **स्थूलम्**=अधिक **उपातसत्**=क्षय करता है,

अर्थात् प्रजा की छोटी व बड़ी चोरी करता है। चोर के रूप में सेंध लगाकर घर का सामान चुरा ले-जाता है, अथवा परिपन्थी के रूप में व्यापारी को मार्ग में ही रोककर लूट लेता है तो **अस्याः**=इस प्रजा के **मुष्कौ**=मोषण करनेवाले चोर **इत्**=निश्चय से **एजतः**=राजदण्डभय से काँप उठते हैं। ये चोर इसप्रकार काँप उठते हैं, **इव**=जैसेकि **गोशफे**=गोखुर प्रमाण जल में **शकुलौ**=मछलियाँ काँप उठती है। २. प्रजा जब पापवृत्तिवाली नहीं होती तब चोरियाँ होती ही कम हैं और होती भी हैं तो कठोर राजदण्ड के भय से चोर काँप उठते हैं, फिर इस अशुभ मार्ग की ओर झुकाववाले नहीं होते।

भावार्थ—प्रजा का झुकाव पाप की ओर होने पर कठोर राजदण्डभय से चोर काँप उठते हैं। इसप्रकार राष्ट्र में छोटी व बड़ी चोरियाँ समाप्त हो जाती हैं।

व्यापार-समृद्धि

यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत्।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ॥ २॥

१. **यदा**=जब **स्थूलेन**=(stout) बड़े मजबूत **पससा**=(राष्ट्रं वा पसः श०) राष्ट्र-प्रबन्ध के द्वारा **अणौ**=सूक्ष्मतम अपराधों के होने पर राजा **मुष्का**=चोरों व डाकुओं को **उपावधीत्**=दण्डित करता है तब **अस्याः**=इस राष्ट्र की प्रजा के नर नारी **विष्वञ्चौ**=(वि सु अञ्च) विविध दिशाओं में उत्तम गतिवाले होते हुए **वर्धतः**=इसप्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं **इव**=जैसे **आ सिकतासु**=चारों ओर रेतीले प्रदेशों में **गर्दभौ**=गर्दभ। रेतीले प्रदेशों में घोड़े गधे आदि पशु अधिक शक्तिशाली होते हैं। २. अरब में व राजस्थान में घोड़े उत्तम होते हैं। इसीप्रकार चोरों से शून्य राष्ट्र में प्रजा के नर नारी उत्तम स्थिति में होते हैं। वे निःशङ्क इधर-उधर जाते हुए समृद्ध व्यापारवाले बनते हैं।

भावार्थ—चोरी आदि का भय न होने पर राष्ट्र में प्रजा समृद्ध व्यापारवाली होती है।

गरीब-से-गरीब प्रजा का ध्यान

यदल्पिकास्व ∫ ल्पिका कर्कन्धूकेव पद्यते।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति॥ ३॥

१. **यत्**=जब **अल्पिकासु अल्पिका**=छोटों से भी छोटी, अर्थात् बहुत ही हीन अवस्था की प्रजा भी **कर्कन्धूके** (कर्क fire, धूक-wind)=आग या हवा में **अवपद्यते**=अवसन्न होती है, अर्थात् राष्ट्र में यदि गरीब से-गरीब प्रजा भी आग या हवा के भयों से पीड़ित होती है तो राजपुरुष **इव**=जैस **वासन्तिकम्**=वसन्त ऋतु में होनेवाले **तेजनम्**=(Bamboo, reel) बाँसों व सरकण्डों की ओर **यन्ति**=जाते हैं, अर्थात् इन्हें एकत्र करके उन गरीब प्रजाओं के रहने व वायु आदि से बचाव के लिए झोपड़ियों का निर्माण कराते हैं, उसी प्रकार **अवाताय**=(अवात=unattacked) अग्नि, वायु आदि के आक्रमण न होने देने के लिए **वित्पति**=(विद् ज्ञाने, पत् गतौ) ज्ञान के साथ गति करनेवाले व्यक्ति में **यन्ति**=शरण लेते हैं। इन विद्वानों से अग्नि, वायु आदि के भयों से बचाव के लिए आवश्यक साधनों के प्रचार के लिए प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—राष्ट्र में अग्नि व वायु का उपद्रव होने पर राजपुरुषों द्वारा गरीब प्रजा के निवास के लिए झोपड़ियों का निर्माण करवाया जाए और विद्वानों से उन्हें उचित ढंग से रहने के लिए साधनों का ज्ञान प्राप्त कराया जाए।

राजा तथा सभ्य कैसे हों?

यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा॥ ४॥

१. राजा की सभा में **यत्**=जब **ललामगुम्**=सुन्दर वाणीवाले (ललाम+गो) तथा **प्रविष्टीमिनम्**=प्रजा के लिए विशेषरूप से करुणार्द्रभाववाले (स्तीम् आर्द्रीभावे) राजा को **देवासः**=व्यवहारकुशल विद्वान् लोग **आविषुः**=समन्तात् व्याप्त कर लेते हैं, अर्थात् जब राजा खुशामदियों से न घिरा होकर इन विद्वानों से संगत होता है तब यह **नारी**=नरहितकारिणी राजसभा **सकुला**=(कुल=a noble family) कुलीन **देदिश्यते**=कही जाती है। २. यह सभा उतनी ही 'सकुला' कही जाती है **यथा**=जिस प्रकार इस सभा के साथ **सत्यस्य अक्षिभुवः**=सत्य की आँखों से देखनेवाले होते हैं। जितना-जितना सभ्य सत्य से—न कि पक्षपात से प्रत्येक मामले (वस्तु) को देखेंगे उतना-उतना ही यह राजसभा कुलीन पुरुषों की सभा कहलाएगी।

भावार्थ—राजा को सुन्दर वाणीवाला व प्रजा के प्रति प्रेमार्द्रहृदयवाला होना चाहिए तथा राजसभा के सभ्यों को सब मामलों को सत्य की दृष्टि से देखना चाहिए। राजा खुशामदियों से न घिरा रहकर सत्यवादी देवों से युक्त हो।

राजा व सभ्यों का परस्पर प्रेममय व्यवहार

महानग्न्य॑तृप्नद्वि मोक्रदद्दस्थानासरन्। शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम॥ ५॥

१. **महान्**=(मह पूजायाम्) महिमा-सम्पन्न—पूजनीय राजा **अग्नी**=सभा व समितिरूप राष्ट्र की दोनों अग्नियों को—राष्ट्र को आगे ले-चलनेवाली सभाओं को **वि अतृप्नत्**=अपने मधुर व्यवहार से प्रीणित करनेवाला होता है। यह राजा **अस्थाना**=दुर्गम स्थानों में—कठिन (विषम) परिस्थितियों में **आसरन्**=गति करता हुआ **मा उ क्रदत्**=व्याकुल नहीं हो जाता—रोने नहीं लगता। सभा व समिति के साथ मिलकर उस अस्थान से पार होने के उपाय सोचता है। २. **शक्तिकानना**=(कन् दीप्तौ) शक्ति को दीप्त करनेवाले हम सभ्य **स्वचम्** (सु अञ्च्)=उत्तम गति को **अशकम्**=करने में समर्थ हों तथा **सक्तु**=परस्पर समवाय को **पद्यम**=प्राप्त करें। सभ्य शक्तिशाली हों, उत्तम गतिवाले तथा परस्पर मेलवाले हों।

भावार्थ—राजा सभा व समिति के प्रति मधुर व्यवहारवाला हो। उनकी सम्मति से कठिन समस्याओं को भी हल करनेवाला हो। सभ्य शक्तिशाली, उत्तम गतिवाले व परस्पर मेलवाले हों।

'सभा व समिति'=उलूखलम्

महानग्न्यु॑लूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत्।
यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवति॥ ६॥

१. **महान्**=गतमन्त्र का महनीय राजा **अब्रवीत्**=कहता है कि **अग्नी**=राष्ट्र को आगे ले चलनेवाली ये सभा व समितिरूप अग्नियाँ **उलूखलम्** (उरुकरं नि० ९.२०)=खूब ही कार्य करनेवाली हैं तथा **अतिक्रामन्ति**=ये सभा व समिति के सदस्य सब समस्याओं को—दुर्गम परिस्थितियों को लाँघ जाते हैं। दुर्गम परिस्थितियों में न घबराकर ये उपाय का चिन्तन करते हैं। २. राजा कहता है कि हे **वनस्पते**=वनस्पति-विकार—वनस्पति के बने हुए ऊखल! **यथा**=जैसे **तव निरघ्नन्ति**=तुझमें स्थित वस्तु को लोग खूब ही कूटते हैं—विभक्त करते हैं, **तथा**=उसी प्रकार ये सभा व समिति **एवति**=(इवि व्याप्तौ) विजय का व्यापन करती हैं—विषय

के एक एक पहलू को विभक्त करके देखती हैं।

भावार्थ—राजा की दृष्टि में सभा व समिति एक उलूखल के समान हैं। ये महान् कार्यों को करती हैं तथा प्रत्येक विषय का सूक्ष्मता से विचार करती हैं।

'ज्ञानाग्नि विदग्ध-चिन्तनशील' राष्ट्रसभा के सभ्य

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः। यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवेति॥ ७॥

१. **महान्**=महनीय राजा **उपब्रूते**=कहता है कि **अग्नी**=राष्ट्र को आगे ले चलनेवाली ये सभा व समितिरूप अग्नियाँ **भ्रष्टः** (भ्रस्ज् पाके)=ज्ञानाग्नि में खूब ही परिपक्व हुई हैं—इनके सभ्य ज्ञानसम्पन्न हैं। **अथ अपि**=और निश्चय से **अभूभुवः**=(भू to consider, reflect) चिन्तनशील हैं। ये सभ्य प्रत्येक विषय के उपाय व अपाय का सम्यक् चिन्तन करते हैं। २. हे **वनस्पते**=वनस्पति विकार ऊखल **यथा एव**=जैसे ही **ते पिप्पति**=(पिशन्ति) तुझमें किसी वस्तु को, एक एक अवयव को पृथक् करते हुए पीसते हैं **तथा**=उसी प्रकार **एवति**=ये सभ्य एक विषय का पूर्णतया व्यापन करते हैं (इवि व्याप्तौ)—उसके एक एक पहलू को सम्यक् देखते हैं।

भावार्थ—राष्ट्रसभा के सभ्य ज्ञानाग्नि विदग्ध व चिन्तनशील हों। वे प्रत्येक विषय के सारे पहलुओं का सम्यक् विचार करें।

बन्धनों से ऊपर उठकर

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः। यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते॥ ८॥

१. **महान्**=महनीय राजा **उपब्रूते**=कहता है कि **अग्नी**=राष्ट्र को आगे ले चलनेवाली ये सभा व समिति के सभ्य **भ्रष्टः** (भ्रस्ज् पाके)=ज्ञानाग्नि में खूब ही परिपक्व हुए हैं, **अथ अपि**=और निश्चय से **अभूभुवः**=(भू-to consider) चिन्तनशील हैं। २. **यथा**=जैसे **वयः**=(वेञ् तन्तुसन्ताने) कर्मतन्तु का विस्तार करनेवाला **विदाह्य**=माता, पिता व आचार्य द्वारा सब वासनाओं को दग्ध कराके **स्वर्गे**=आनन्दमय लोक में स्थित होता है, उसी प्रकार ये सभा के सभ्य भी **नम्**=(नः=band, tie) सब बन्धनों को **अवदह्यते**=दग्ध कर देते हैं। पारिवारिक बन्धनों से ऊपर उठकर ही—वानप्रस्थ बन कर ही ये राजकार्यों को समुचित रूप से कर पाते हैं।

भावार्थ—राजा कहता है कि ये सभ्य 'ज्ञानाग्निविदग्ध, चिन्तनशील व पारिवारिक बन्धनों से ऊपर उठे हुए' हैं। ऐसे ही सभ्य राष्ट्रकार्य का सम्यक् सम्पादन कर सकते हैं।

उत्तम गति व दीप्तिवाला राष्ट्र

महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः। इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि॥ ९॥

१. **महान्**=महनीय राजा **अग्नी उपब्रूते**=राष्ट्र को आगे ले चलनेवाली सभा व समिति के सदस्यों से कहता है कि अब आप लोगों के श्रम से **पसः**=(पसः राष्ट्रम्। श०) **स्वसा** (सु अस गतिदीप्त्यादानेषु)=उत्तम गति व दीप्ति से **आवेशितम्**=आवेशित हो गया है। राष्ट्र में सब लोग ठीक गतिवाले—ठीक कर्मोंवाले व उत्तम ज्ञानदीप्तिवाले किये गये हैं। २. **इत्थम्**=इसप्रकार अब हम **फलस्य वृक्षस्य**=फले हुए इस राष्ट्रवृक्ष के **शूर्पे शूर्पम्**=शूर्प में शूर्प को (प्रदर्ष to measure) **शूर्पे**=माप के निमित्त प्रजा में अच्छे व बुरों को जानने के निमित्त छाज में छाज को **भजेमहि**=सेवित करें। जिस प्रकार छाज अन्न को भूसी से पृथक् कर देता है, उसी प्रकार हम इस राष्ट्र में आर्यों को दस्युओं से पृथक् कर लें 'विजानीहि आर्यान् ये च दस्यवः' (मा ते राष्ट्रे याचनका भवेयुर्मा च दस्यवः)। दस्युओं को राष्ट्र से पृथक् करते हुए हम सदा राष्ट्र

के कल्याण की वृद्धि करनेवाले हों।

भावार्थ—राजा ने सभ्यों से मिलकर राष्ट्र को उत्तम गति व दीप्तिवाला बनाना है। अब राष्ट्र में आर्यों व दस्युओं का ध्यान करते हुए, दस्युओं को पृथक् करके राष्ट्र को सदा कल्याणयुक्त करना है।

(मृग) मुख्य राजपुरुष की नियुक्ति

म॒हान॒ग्री कृ॑कवा॒कं॒ शम्य॑या॒ परि॑ धावति।
अ॒यं न वि॒द्म यो॑ मृ॒गः शी॒र्ष्णा ह॑रति॒ धाणि॑काम्॥ १०॥

१. **महान्**=महनीय राजा **अग्नी**=सभा व समिति के सदस्यों के प्रति **परिधावति**=शीघ्रता से जाता है, उसी प्रकार जाता है जैसे कि **शम्यया** (शमी-कर्म नि० २.१) शान्तभाव से किये जानेवाले कर्मों के हेतु से **कृकवाकम्**=कण्ठ से बोलनेवाले—सम्मति देनेवाले पुरुष को कोई प्राप्त होता है। सभा व समिति के परामर्श से ही राजा कार्यों को करता है। २. राजा सभा व समिति के सदस्यों से यही पूछता है कि 'मुझे **न विद्म**=समझ नहीं पड़ रहा कि **अयम्**=वह कौन-सा **मृगः**=आत्मान्वेषण करनेवाला तथा प्रत्येक राजकार्य का ठीक से अन्वेषण करनेवाला व्यक्ति है **यः**=जो **धाणिकाम्**=इस प्रजा की धारक पृथिवी को **शीर्ष्णा हरति**=आपने सिर पर उठाता है, अर्थात् किस व्यक्ति के कन्धे पर मुख्यरूप से राज्यभार डाला जाए। सभा व समिति के सदस्यों से सलाह करके ही राजा इस मुख्य राजपुरुष की नियुक्ति करता है। ('सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु।' इस अथर्वमन्त्र में स्पष्ट है कि राजा सभा व समिति के सदस्यों से परामर्श करता है और उस सारे कार्य में बड़े मधुर शब्दों का ही प्रयोग होता है।)

भावार्थ—राजा सभा व समिति के सदस्यों के परामर्श से मुख्य राजपुरुष की नियुक्ति करता है। यह राजपुरुष पृथिवी के बोझ को धारण करने के लिए एक-एक राजकार्य को सूक्ष्मता से देखता है।

राजा पति है, प्रजा पत्नी

म॒हान॒ग्री म॑हान॒ग्रं धाव॑न्त॒मनु॑ धावति।
इ॒मास्तद॑स्य॒ गा र॑क्ष॒ यभ॒ माम॑द्ध्यौद॒नम्॥ ११॥

१. गतमन्त्र में वर्णित मुख्य राजपुरुष को प्रस्तुत मन्त्र में 'अग्न' कहा गया है—राष्ट्र को आगे और आगे ले चलनेवाला। **महान्**=महनीय राजा **अग्नी**=सभा व समिति के सदस्यों के **अनुधावति**=पीछे तो जाता ही है, अर्थात् प्रत्येक कार्य में उनका परामर्श तो लेता ही है। यह **महान्**=महनीय राजा **धावन्तम्**=गति के द्वारा प्रजा के जीवन को शुद्ध करते हुए (धाव् गतिशुद्धयोः) **अग्नम्**=इस मुख्य राजपुरुष को भी **अनुधावति**=अनुसृत करता है, अर्थात् इस मुख्य राजपुरुष के अनुकूल होता है। २. इस मुख्य राजपुरुष से प्रजाएँ कहती हैं कि **तत्**=सो **अस्य**=इस राजा की **इमाः गाः**=इन भूमियों का तू **रक्ष**=रक्षण कर। **माम् यभ**=मेरे साथ तेरा निवास हो (co-habit)। प्रजा पत्नी हो तो तू उसका पति बन। पति पत्नी की रक्षा करता है। इसी प्रकार यह मुख्य राजपुरुष प्रजा की रक्षा करनेवाला हो। प्रजारक्षक तू **ओदनम् अद्धि**=ओदन खानेवाला बन। उसी राजा को खाने का अधिकार है जो प्रजा का रक्षण करता है। राजा का भोजन भी सात्त्विक ही होना चाहिए। मांसभोजन राजा की वृत्ति को क्रूर बना देगा—यह राजा प्रजा पर अत्याचार करेगा।

भावार्थ—राजा मुख्य राजपुरुष के अनुकूल होता है। यह राजपुरुष राजा की भूमियों का रक्षण करता है। सदा सात्त्विक भोजन ही करता है।

अग्नि-विबाधन व खोदन

सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम्। कुसं पीवरो नवत्॥ १२॥

१. हे प्रजे! यह **सुदेवः**=उत्तम ज्ञान की ज्योतिवाला व उत्तम व्यवहारवाला **महान्**=महनीय राजा **त्वा**=तेरा लक्ष्य करके—तेरी स्थिति को अच्छा बनाने के उद्देश्य से **अग्नीः**=आग लगाने आदि उपद्रवों को **बबाधते**=खूब ही रोकता है। राष्ट्र में उत्पन्न होनेवाले उपद्रवों को रोकने का पूर्ण प्रयत्न करता है। इस **महतः**=महनीय राजा का—इसके द्वारा किया हुआ **खोदनम्**=(खुद् भेदने) शत्रुओं का विदारण **साधुः**=उत्तम है। यह राष्ट्र को शत्रुओं के आक्रमण से सुरक्षित करता है। २. यह **पीवरः**=प्रजा-रक्षण द्वारा परिपुष्ट राज्यांगोंवाला राजा **कुसं नवत्**=प्रभु के संश्लेषण को प्राप्त करता है (नवतिर्गतिकर्मा) राजा को प्रभु-प्राप्ति तभी होती है जबकि वह प्रजा का सम्यक् रक्षण करता है। प्रजापालन ही राजा का प्रभु-पूजन है।

भावार्थ—उत्तम राजा अन्तः व बाह्य उपद्रवों से प्रजा का रक्षण करता हैं। इसप्रकार प्रजापालन करता हुआ राजा प्रभु का सच्चा पूजन करता है और प्रभु-प्राप्ति का पात्र बनता है।

वशादग्धा अंगुलि को काट देना

वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोग्रतं परे। महान्वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम्॥ १३॥

१. सभा व समिति 'परा' हैं—उत्कृष्ट हैं अथवा राजा का पालन व पूरण करनेवाली हैं 'पृ पालनपूरणयो'। इन्हें प्रजापति की दुहिता (दुह् प्रपूरणे) प्रपूरकम् कहा ही गया है। ये **परे**=सभा व समिति दोनों **अग्रतम्**=सर्वप्रथम **वशा दग्धाम्**=(वशा=barren) बन्ध्य-विफल-राजनीति से जली हुई **इमा अंगुरिम्**=इस अंगुलि को **प्रसृजतः**=प्रकर्षेण काट डालते हैं, अर्थात् ये राजकार्यों में जिस भी बात को अनुपयोगी देखते हैं उसे समाप्त कर देते हैं। इसप्रकार प्रजा का कोई भी राजकार्य बिना शोभावाला नहीं दिखता। २. उस समय प्रजा यही कहती है कि यह **महान्**=महनीय राजा **वै**=निश्चय से **भद्रः**=बड़ा भला है—हमारा कल्याण करनेवाला है। प्रजा राजा से कहती है कि **माम् यभ**=मेरे साथ तेरा सहवास है, तू पति हो तो मैं पत्नी। तू **औदनम्**=सात्त्विक भोजन को ही **अद्धि**=खा, जिससे तेरी वृत्ति सदा सात्त्विक बनी रहे।

भावार्थ—सभा व समिति राजनीति के दोषों को दूर करती हुई राजा को प्रजा का प्रिय बनाती है। यह राजा सात्त्विक भोजन से सात्त्विक वृत्तिवाला होकर प्रजा का वस्तुतः पति बनता है।

कुमारिका पिङ्गलिका

विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम्।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति॥ १४॥

१. हे प्रजे! **विदेवः**=(दिव् क्रीडायां मदे स्वप्ने च) व्यर्थ की क्रीड़ाओं, मद व स्वप्न से रक्षित यह **महान्**=महनीय राजा **त्वा**=तेरा लक्ष्य करके **अग्नीः**=अग्नि आदि से होनेवाले उपद्रवों को **विबाधते**=उत्तम व्यवस्था द्वारा रोकता है। राजा के लिए यही उचित है कि शिकार आदि में समय का व्यर्थ यापन न करे। सदा अप्रमत्त व जागरित रहकर राजकार्यों में ध्यान दे। **महतः**=इस महनीय राजा का **खोदनम्**=शत्रुओं के विदारण का कार्य **साधु**=उत्तम है। २. इस राजा की **कुमारिका**=(कु मार्) बुरी तरह से शत्रुओं को मारनेवाली **पिङ्गलिका**=तेजस्विनी

सेना—तेज से रक्तवर्णवाली सेना **कार्द भस्मा**=राष्ट्र की उन्नति में विघ्नरूप कीचड़ व राख को **कुधावति**=बुरी तरह से सफाया कर देती है। सेना किन्हीं भी अन्तः या बाह्य उपद्रवों को शान्त करती हुई राष्ट्र के उत्थान में सहायक होती है।

भावार्थ—राजा शिकार आदि में समय न गवाकर राष्ट्र के अन्दर व बाहर के उपद्रवों को शान्त करने का प्रयत्न करता है। इसकी तेजस्विनी सेना सब विघ्नों के कीचड़ व भस्मों को दूर कर देती है।

बिल्व+उदुम्बर

महान्वै भद्रो बिल्वो महान्भद्र उदुम्बरः।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम्॥ १५॥

१. **महान्**=महनीय राजा **वै**=निश्चय से **भद्रः**=राष्ट्र का कल्याण करनेवाला है। यह **बिल्वः** (विल्वं भिल्मं भेदनात्। नि०) यह शत्रुओं का विदारण करनेवाला है। यह **महान्**=महनीय राजा **भद्रः**=बड़ा भला है—राष्ट्र का कल्याण करनेवाला है। **उदुम्बरः**=(उत् अतिशयेन अम्बते, अबि शके) राष्ट्र में खूब ही ज्ञान का प्रचार करनेवाला है अथवा प्रभु का स्तवन करनेवाला है। यह प्रभु-स्तवन ही इसे कर्तव्यकर्म की समुचित प्रेरणा प्राप्त कराता है। २. यह **महान्**=महनीय-पूजनीय राजा **अभिक्त** (अभिक्तः-अभि अक्तः, अञ्ज गतौ) शत्रु के प्रति गया हुआ, अर्थात् शत्रु पर आक्रमण करनेवाला होकर उन शत्रुओं को **बाधते**=पीड़ित करता है। **महतः**=इस महनीय राजा का **खोदनम्**=शत्रुभेदनरूपी कार्य साधु=बड़ा उत्तम है। यह शत्रुओं का सम्यक् विदारण करके राष्ट्र-रक्षण का कार्य करता है।

भावार्थ—राजा शत्रुओं का भेदन करके प्रजा का कल्याण करता है। यह प्रजा में ज्ञान का प्रसार करके उसे उन्नत करता है।

'यः वसन्, तैलकुण्ड, अंगुष्ठ, रोदन्'

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत्।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत्॥ १६॥

१. **कुमारी**=शत्रुओं को बुरी तरह से मारनेवाली (कु-मार्) **पिंगलिका**=तेजस्विनी **पीवरी**=हृष्ट पुष्ट सेना जब **यः वसन्तम्**=(यस् प्रयत्ने भावे क्विप्) सदा प्रयत्न में निवास करनेवाले, **तैल-कुण्डम्**=राग की चिकनाई का दहन कर देनेवाले—परिवार के राग में ही न फँसे हुए—**इम** (इमम्)=इस **अंगुष्ठम्**=सदा गति में निवास करनेवाले—क्रियामय जीवनवाले, **रोदन्तम्**=प्रजा के कष्टों पर रोदन करनेवाले (Shedding tears) **शु-दम्**=शीघ्र ही वेतन दे देनेवाले राजा को **लभेत्**=प्राप्त करती है तो **उद्धरेत्**=यह राष्ट्र का उद्धार करनेवाली होती है। २. राजा सदा प्रजा कल्याण के प्रयत्नों में लगा हुआ (यः वसन्), परिवार के राग में न फँसा हुआ (तैल-कुण्ड) गतिशील (अंगु-ष्ठ), प्रजा के कष्टों को अनुभव करनेवाला (रोदन्) तथा समय पर सेना को वतेन देनेवाला (शु-द) होना चाहिए। सेना भी शत्रुसंहार करनेवाली (कु-मारी), तेजस्विनी (पिंगलिका) तथा सबल (पीवरी) होनी चाहिए। ऐसा होने पर ही राष्ट्र का उत्थान होता है।

भावार्थ—राजा व सेना दोनों के उत्तम होने पर राष्ट्र का उत्थान सम्भव होता है।

इति कुन्तापसूक्तानि

यहाँ कुन्ताप सूक्तों की समाप्ति होती है। इनमें बुराई के विनाश का उपदेश था (कु+तप्) अन्तिम सूक्त में राजा राष्ट्र के सब मलों का विनाश करके राष्ट्र का उत्थान करता है। इस

राष्ट्र में लोग 'शिरिम्बिठि'-(बिठम् अन्तरिक्षं, शृ) हृदयान्तरिक्ष से वासनाओं को विनष्ट करनेवाले होते हैं (१३७.१) 'बुध'—ज्ञानी बनते हैं (१३७.२) 'वामदेव'—सुन्दर दिव्यगुणोंवाले होते हैं (१३७.३), 'पयातिः'—खूब ही यत्नशील होते हैं (१३७.४-६), 'तिरश्ची—अंगिरसः द्युतानः'-(तिरः अञ्च्) हृदय-गुहा में तिरोहित प्रभु की ओर चलनेवाले, अंग-प्रत्यंग में रसमय, ज्ञान-ज्योति का विस्तार करनेवाले होते हैं (१३७.७-११)। ये 'सुकक्ष'-लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उत्तमता से कटिबद्ध होते हैं (१३७.१२ १४)। अगले सूक्त में ये ही मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं—

१३७. [सप्तत्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**शिरिम्बिठिः** ॥ देवता—**अलक्ष्मीनाशनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'शिरिम्बिठि' का पवित्र जीवन

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः॥ १॥

१. **यत्**=जब **ह**=निश्चय से लोग **प्राचीः अजगन्त**=प्रकृष्ट गतिवाले होकर आगे और आगे चलते हैं तब **उरः** (उर्वी हिंसायाम्)=वासनाओं का हिंसन करनेवाले होते हैं। ये **मण्डूरधाणिकीः**=(मन्दनस्य धनस्य धारयित्र्यः) आनन्दप्रद धनों का धारण करनेवाले होते हैं। प्रभु का भक्त 'शिरिम्बिठि' बनता है—यह कभी अनुचित उपायों से धनार्जन नहीं करता। २. **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के **शत्रवः**=काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रु **हताः**=विनष्ट हो जाते हैं। **सर्वे**=ये सब शत्रु **बुद्बुदयाशवः** (यान्ति, अश्नुवते)=बुलबुलों की भाँति नष्ट हो जानेवाले होते हैं और व्यापक रूप को धारण करते हैं। बुलबुला फटा और पानी में फैल गया (विलीन हो गया)। इसी प्रकार इस व्यक्ति के जीवन में 'काम' फटकर फैल जाता है और 'प्रेम' का रूप धारण कर लेता है। 'क्रोध' फटकर 'करुणा' के रूप में हो जाता है और 'लोभ' त्याग का रूप धारण कर लेता है।

भावार्थ—हम 'काम, क्रोध, लोभ' आदि शत्रुओं को विनष्ट करके आगे बढ़नेवाले हों।

ऋषिः—**बुधः** ॥ देवता—**विश्वेदेवा ऋत्विक्स्तुतिर्वा** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'बुध' का उत्तम जीवन

कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये॥ २॥

१. हे **नरः**=मनुष्यो! वे प्रभु **क-पृत्**=तुम्हारे जीवनों में सुख का पूरण करनेवाले हैं। उस **क-पृथम्**=आनन्द के पूरक प्रभु को ही **उद्दधातन**=उत्कर्षेण धारण करो। **चोदयत्**=उस प्रभु को ही अपने हृदयों में प्रेरित करो। **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिए **खुदत**=उस प्रभु में ही क्रीड़ा करो—आत्मक्रीड़ व आत्मरति बनो। २. 'निष्टि' अर्थात् विनाश को 'गिरति' निगल जाने के कारण प्रभु 'निष्टिग्री' हैं। विनाश को निगीर्ण कर जानेवाले प्रभु को (निष्टिग्र्यः पुत्रम्) **ऊतये**=रक्षा के लिए **आच्यावय**=सब प्रकार से प्राप्त कर। **इह**=इस जीवन में **सोमपीतये**=शरीर में सोमशक्ति के रक्षण के लिए, हे **सबाधः**=वासनारूप शत्रुओं के बाधन के साथ विचरनेवाले लोगो! **इन्द्रम्**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु को (आच्यावय) प्राप्त करो। प्रभु की शक्ति से शक्ति सम्पन्न होकर ही तो तुम इन शत्रुओं का बाधन कर सकोगे।

भावार्थ—हम प्रभु को हृदयों में स्थापित करें। प्रभु में ही क्रीड़ा करनेवाले हो। प्रभु की शक्ति से शक्ति सम्पन्न होकर शत्रुओं का विदारण करें।

ऋषिः—**वामदेवः**॥ देवता—**दधिक्राः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वामदेव का प्रभु-स्तवन

द॒धि॒क्राव्णो॑ अकारिषं जि॒ष्णोरश्व॑स्य वा॒जिनः॑।
सु॒र॒भि नो॒ मुखा॑ कर॒त्प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत्॥ ३॥

१. मैं उस प्रभु का **अकारिषम्**=स्तवन करूँ जोकि **दधिक्राव्णः**=(दधत् क्रामति) इस ब्रह्माण्ड का धारण करते हुए गतिवाले हैं। प्रभु की क्रिया ही इस ब्रह्माण्ड का धारण करती है। **जिष्णोः**=उस विजयशील प्रभु का हम स्तवन करें—प्रभु ही वस्तुतः हमारे काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं को पराजित करते हैं। **अश्वस्य** (अश् व्याप्तौ)=हम उस सर्वव्यापक **वाजिनः**=शक्तिशाली प्रभु का स्तवन करें। २. यह प्रभु-स्तवन, अर्थात् 'प्रभु की तरह धारणात्मक कर्मों को करना, शत्रुओं को जीतना, व्यापकता व उदारता का धारण करना तथा शक्तिशाली बनना' **नः**=हमारे **मुखा**=मुखों को **सुरभि करत्**=सुगन्धित करे—हम कभी कोई कड़वा शब्द न बोलें और इसप्रकार यह प्रभु स्तवन **नः**=हमारी **आयूंषि**=आयुवों को **प्रतारिषत्**=खूब बढ़ाए।

भावार्थ—प्रभु को 'दधिक्रावा-जिष्णु-अश्व व वाजी' इन नामों से स्मरण करते हुए हम भी धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त हों, शत्रुओं को जीतें, उदार और शक्तिशाली बनें। हमारे मुखों से सुन्दर, मधुर शब्द ही उच्चरित हों और हम दीर्घ जीवन को प्राप्त करें।

ऋषिः—**ययाति**॥ देवता—**सोमः पवमानः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'मधुमत्तमः-मन्दिनः' सोमाः

सु॒तासो॒ मधु॑मत्तमा॒: सोमा॒ इन्द्रा॑य म॒न्दिनः॑।
प॒वित्र॑वन्तो अक्षरन्दे॒वान्ग॑च्छन्तु वो॒ मदाः॑॥ ४॥

१. **सुतासः**=उत्पन्न हुए-हुए **सोमाः**=सोमकण **मधुमत्तमाः**=अत्यन्त माधुर्य को लिये हुए हैं। शरीर में सुरक्षित होने पर ये जीवन को बड़ा मधुर बनाते हैं। **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए ये **मन्दिनः**=हर्ष देनेवाले हैं। २. **पवित्रवन्तः**=पवित्रता करनेवाले ये सोम **अक्षरन्**=शरीर के अंग प्रत्यंग में संचरित होते हैं। शरीर को ये नीरोग बनाते हैं, मन को निर्मल। हे सोमकणो! **वः मदाः**=तुम्हारे उल्लास **देवान् गच्छन्तु**=इन देववृत्तिवाले पुरुषों को प्राप्त हों। देववृत्तिवाले पुरुष ही इन सोमकणों का रक्षण कर पाते हैं और वे ही सोमजनित उल्लास का अनुभव करते हैं। वस्तुतः सोम-रक्षण ही उन्हें 'देव' बनाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोमकण 'माधुर्य, हर्ष, पवित्रता व उल्लास' को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**ययाति**॥ देवता—**सोमः पवमानः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'जितेन्द्रियता-ज्ञानरुचिता-यज्ञशीलता'=सोम-रक्षण

इन्दु॒रिन्द्रा॑य पवत॒ इति॑ दे॒वासो॑ अब्रुवन्। वा॒चस्पति॑र्मखस्यते॒ विश्व॒स्येशा॑न॒ ओज॑सा॥ ५॥

१. **इन्दुः**=यह शक्तिशाली सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **पवते**=प्राप्त होता है **इति**=यह बात **देवासः**=देववृत्ति के विद्वान् पुरुष **अब्रुवन्**=कहते हैं। सोम जितेन्द्रिय को ही प्राप्त होता है। २. **ओजसा**=ओजस्विता से **विश्वस्य**=सबका **ईशानः**=स्वामी यह सोम **वाचस्पतिः**=सब ज्ञान की वाणियों का रक्षक है, अर्थात् सोम-रक्षण से बुद्धि की तीव्रता होकर जीवन में इन ज्ञानवाणियों का रक्षण होता है। यह सोम **मखस्यते**=यज्ञ की कामना करता है, अर्थात् एक पुरुष यज्ञशील बनता है तो उसे सोम की अवश्य प्राप्ति होती है। यज्ञशीलता सोम-रक्षण में साधन

बनती हैं तथा सोमरक्षक पुरुष अवश्य यज्ञशील बनता है।

भावार्थ—सोम-रक्षण जितेन्द्रिय ही कर पाता है। सुरक्षित सोम ज्ञान प्राप्त कराता है। इसके रक्षण के लिए यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में लगे रहना आवश्यक है।

ऋषिः—**ययाति**॥ देवता—**सोमः पवमानः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सहस्रधार-इन्द्रसखा

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः। सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे॥ ६॥

१. **सहस्रधारः**=हज़ारों प्रकार से धारण करनेवाला **सोमः**=सोम **पवते**=हमें प्राप्त होता है। यह सोम **समुद्रः**-(समुद्) आनन्द से युक्त है—अपने रक्षक पुरुष को आनन्दयुक्त करता है। **वाचम् ईंखयः**=ज्ञान की वाणियों को हममें प्रेरित करनेवाला है। सुरक्षित सोम बुद्धि की तीव्रता द्वारा ज्ञानवृद्धि का कारण बनता है। २. **सोमः**=यह सोम **रयीणां पतिः**=अन्नमय आदि सब कोशों के ऐश्वर्यों का रक्षक है। यह **दिवेदिवे**=प्रतिदिन **इन्द्रस्य सखा**=जितेन्द्रिय पुरुष का मित्र है। जितेन्द्रिय पुरुष में ही सोम का निवास होता है और यह सुरक्षित हुआ-हुआ सोम अन्नमयकोश को तेजस्वी बनाता है, प्राणमय को वीर्यवान्, मनोमय को ओजस्वी व बलवान्, विज्ञानमय को मन्यु-(ज्ञान)-युक्त तथा आनन्दमय को सहस्वी करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम 'सहस्रधार, समुद्र, वाचम् ईंखय, रयीपति व इन्द्रसखा' है।

ऋषिः—**तिरश्ची-[राङ्गिरसो] द्युतानो वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'कृष्ण के रक्षक' इन्द्र (प्रभु)

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त॥ ७॥

१. **द्रप्सः** (drop, a spark)=प्रभु का अंशरूप (miniature) यह जीव **दशभिः सहस्रैः**=दस (सहस्-बल) बलवान् प्राणों के साथ **इयानः**=गति करता हुआ **कृष्णः**=सब दोषों को कृश करनेवाला होता है और **अंशुमतीम्**=प्रकाश की किरणोंवाली ज्ञान-नदी के समीप **अव अतिष्ठत्**=नम्रता से स्थित होता है। २. **शच्या**=शक्ति व प्रज्ञान से **धमन्तम्**=(to cast, throw away) शत्रुओं को परे फेंकते हुए **तम्**=उस कृष्ण को **इन्द्रः**-वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **आवत्**=रक्षित करते हैं। **नृमणाः**=(नृषु मनो यस्य) कर्मों के प्रणेता मनुष्यों में प्रेमवाले वे प्रभु **स्नेहितीः**=श्री का हिंसन करनेवाली वासनाओं को **अप अधत्त**=सुदूर स्थापित करनेवाले होते हैं। वासनाओं के विनाशक वे प्रभु ही तो हैं।

भावार्थ—जीव जब अंशुमती (ज्ञान की किरणोंवाली) सरस्वती का उपासक बनता है तब प्रभु उसका रक्षण करते हैं और उसकी वासनाओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**तिरश्ची-[राङ्गिरसो] द्युतानो वा**॥ देवता—**इन्द्रः; (चतुर्थः पादः) मरुतः**॥
छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

नभः न (सूर्य की भाँति)

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो ∫ अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ॥ ८॥

१. **द्रप्सम्**=प्रभु के उस छोटे रूप (अंश) जीव को **विषुणे** (विष्वग् अञ्चने, विस्तृते देशे)=चारों ओर गति-(व्याप्ति)-वाले प्रभु में **अपश्यम्**=मैं देखता हूँ। प्रभु की गोद में स्थित जीव

को अनुभव करता हूँ। यह **अंशुमत्याः नद्यः**=प्रकाश की किरणोंवाली ज्ञाननदी (सरस्वती) के **उपह्वरे**=अत्यन्त गूढ़ स्थान में **चरन्तम्**=गति कर रहा है। २. **नभः न**=आदित्य के समान **अवतस्थिवांसम्**=स्थित **कृष्णम्**=वासनाओं के क्षीण (कृश) करनेवाले को **इष्यामि**=चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं वासनामय वृत्र को विनष्ट करके सूर्य की भाँति चमकूँ। हे **वृष्णः**=शक्तिशाली मरुतो (प्राणो)! **वः**=तुम **आजौ**=संग्राम में **युध्यत**=वासनारूप शत्रुओं के साथ युद्ध करो। इन्हें पराजित करके ही तो मैं चमक सकूँगा।

भावार्थ—जीव अपने को व्यापक प्रभु में स्थित देखे। सदा ज्ञान में विचरने का प्रयत्न करे। प्राणसाधना द्वारा वासनाओं का विनाश करके सूर्य की भाँति चमके।

ऋषिः—**तिरश्ची-[राङ्गिरसो] द्युतानो वा**॥ देवता—**इन्द्रो बृहस्पतिश्च**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

स्वाध्याय+प्रभु-मैत्री

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्या३चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे॥ ९॥

१. **अध**=अब **द्रप्सः**=परमात्मा का अंशभूत (छोटा रूप) यह जीव **अंशुमत्याः**=प्रकाश की किरणोंवाली ज्ञान-नदी के **उपस्थे**=समीप **अधारयत्**=अपने को धारण करता है। इसप्रकार यह अपने **तन्वम्**=शरीर का **तित्विषाणः**=दीप्त करनेवाला होता है। 'शरीर में तेज, मस्तिष्क में ज्ञान' इसप्रकार यह चमक उठता है। यह तित्विषाण **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **अदेवीः**=आसुरी **अभ्याचरन्तीः**=आक्रमण करती हुई **विशः**=प्रजाओं के काम, क्रोध, लोभ आदि आसुरभावों को **बृहस्पतिना युजा**=ज्ञान के स्वामी प्रभु को साथी के रूप में पाकर **ससाहे**=अभिभूत करनेवाला होता है।

भावार्थ—स्वाध्याय व प्रभु की मित्रता हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाती है। प्रभु की मित्रता से हम सब शत्रुओं का पराभव कर पाते हैं।

ऋषिः—**तिरश्ची-[राङ्गिरसो] द्युतानो वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अ-शत्रुओं के लिए शत्रु

त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र।
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः॥ १०॥

१. हे **इन्द्र**-जितेन्द्रिय पुरुष! **त्वम्**=तू **ह**=निश्चय से **त्यत्**=उस कर्म को करता है कि **जायमानः**=विकास को प्राप्त करता हुआ तू **अ-शत्रुभ्यः**=जिनका शातन (Shattering=समाप्ति) बड़ा ही कठिन है, उन **सप्तभ्यः**='काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर व अविद्या' नामक सात शत्रुओं के लिए **शत्रुः अभवः**=शत्रु होते हैं—आप इनका शातन कर पाते हैं। हमारे लिए तो ये अ-शत्रु ही हैं—अशातनीय ही हैं। सामान्य मनुष्य इनका शातन नहीं कर सकता। २. इन शत्रुओं का शातन करके **गूढे द्यावापृथिवी**=शत्रुओं से आवृत्त हुए-हुए मस्तिष्क (द्यावा) व शरीर (पृथिवी) को तू फिर से **अन्वविन्दः**=प्राप्त करता है। काम, क्रोध व लोभ आदि ने इन्हें आवृत्त सा कर लिया था। काम आदि के विनाश से इन्हें हम फिर प्राप्त करनेवाले होते हैं। इनको काम आदि के आवरण से रहित करके **विभुमद्भ्यः**=महत्त्वयुक्त **भुवनेभ्यः**=लोकों के लिए—शरीर के सब अंगों के लिए **रणं धाः**=तू रमणीयता को धारण करता है (रमणं धारयसि)।

भावार्थ—'काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर व अविद्या' ये हमारे प्रबल शत्रु हैं। इनका शातन करके ही हम मस्तिष्क व शरीर को स्वस्थ कर पाते हैं और तभी सब अंगों के लिए

रमणीयता को धारण करनेवाले होते हैं।

सूचना—प्रस्तुत मन्त्र में काम आदि को 'अ-शत्रु' कहा है। यहाँ इसका अर्थ अशातनीय अर्थात् 'जिनका शातन कठिन है' यह है।

ऋषिः—**तिरश्ची-[राङ्गिरसो] द्युतानो वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शुष्णासुर वध व गोप्राप्ति

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघन्थ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः॥ ११॥

१. हे **वज्रिन्**=क्रियाशीलतारूप वज्र को हाथ में लिये हुए इन्द्र! **त्वम्**=तू **ह**=निश्चय से **त्यत्**=उस **अप्रतिमानम्**=निरुपम—अतिप्रबल **ओजः**=शुष्णासुर के ओज को—वासना के बल को **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा **धृषितः**=संग्राम में शत्रुहनन में कुशल होता हुआ **जघन्थ**=नष्ट करता है। २. इसके ओज को नष्ट करता हुआ **त्वम्**=तू **वधत्रैः**=हनन साधन आयुधों से **शुष्णास्य**=इस शुष्णासुर का—अपने शिकार को सुखा देनेवाली कामवासना का **अवातिरः**=वध कर डालता है। इसप्रकार हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **शच्या**=अपनी शक्ति व प्रज्ञान से **इत्**=निश्चयपूर्वक **गाः अविन्दः**=ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करता है। काम-विध्वंस से ही ज्ञान प्राप्त होता है। काम ही तो सदा ज्ञान को आवृत्त किये रहता है।

भावार्थ—हम क्रियाशीलता द्वारा वासना को विनष्ट करें तभी हम ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे।

ऋषिः—**सुकक्षः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

'सुकक्ष' द्वारा प्रभु अर्चन

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत्॥ १२॥
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः। द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः॥ १३॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः॥ १४॥

व्याख्या अथर्व० २०.४७.१-३ पर द्रष्टव्य है।

प्रभु-स्तवन करता हुआ यह प्रभु का प्रिय बनता है। यह 'वत्स' कहलाता है। यह 'वत्स' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

१३८. [अष्टात्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वत्सः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

ओजस्विता से महान्

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँइव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे॥ १॥

१. **यः इन्द्रः**=जो परमैश्वर्यशाली प्रभु हैं, वे **ओजसा महान्**=अपनी ओजस्विता से महान् हैं। अपने सब कार्यों को करने का उनमें पूर्ण सामर्थ्य है। वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **वृष्टिमाम् पयर्जन्यः इव**=वृष्टि करनेवाले बादल के समान हैं। वे सबके सन्ताप को हरनेवाले व सब इष्टों को प्राप्त करानेवाले हैं। २. ये प्रभु **वत्सस्य**=इन स्तोत्रों का उच्चारण करनेवाले प्रिय स्तोता के **स्तोमैः**=स्तुति-समूहों से **वावृधे**=खूब ही बढ़ाए जाते हैं। यह स्तोता स्तोत्रों द्वारा सर्वत्र प्रभु के गुणों का प्रख्यापन करता है।

भावार्थ—प्रभु अपनी ओजस्विता से महान् हैं। सब काम्य पदार्थों का वर्षण करनेवाले हैं। प्रभु प्रिय लोग प्रभु-स्तवन द्वारा सर्वत्र प्रभु की महिमा का प्रख्यापन करते हैं।

ऋषिः—**वत्सः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

विप्र

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः। विप्रा ऋतस्य वाहसा॥ २॥

१. **ऋतस्य**=ऋत का—सत्य वेदज्ञान का **पिप्रतः**=अग्नि आदि ऋषियों के हृदयों में पूरण करनेवाले प्रभु की **प्रजाम्**=प्रजा को **यत्**=जब **प्रभरन्त**=प्रकर्षेण धारण करनेवाले होते हैं तब ये **वह्नयः**=इस प्रजा के पोषण के भार का वहन करनेवाले लोग **ऋतस्य वाहसा**=स्वयं अपने अन्दर ऋत का वहन करने के कारण **विप्राः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले—ज्ञानी—कहलाते हैं। २. एवं विप्रों के दो मुख्य लक्षण हैं (क) प्रभु की प्रजा का ये पालन करते हैं (ख) और इस पालन की क्रिया को सम्यक् कर सकने के लिए ये सत्य वेदज्ञान को धारण करते हुए अपना विशेषरूप से पूरण करते हैं।

भावार्थ—विप्र वे हैं जो प्रभु की आज्ञा का पालन करें और ज्ञान के धारण से अपनी न्यूनताओं को दूर करें।

ऋषिः—**वत्सः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभु संरक्षण व आयुध-वैयर्थ्य

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधम्॥ ३॥

१. **कण्वाः**=मेधावी पुरुष **यत्**=जब **इन्द्रम्**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु को **स्तोमैः**=स्तुति-समूहों के द्वारा **यज्ञस्य साधनम्**=अपने सब उत्तम कर्मों का सिद्ध करनेवाला **अक्रत**=कर लेते हैं तब वे **आयुधम्**=इन बाह्य अस्त्र-शस्त्रों को **जामि ब्रुवते**=व्यर्थ ही कहते हैं। २. प्रभु जब रक्षक हैं तो इन अस्त्रों की बहुत उपयोगिता नहीं रह जाती। स्पेन ने आरमेडा द्वारा जब इंग्लैण्ड पर आक्रमण किया तो आँधी तूफ़ान के झोंको से उसके तितर-बितर हो जाने पर रानी एलिबेथ ने ठीक ही कहा था कि 'प्रभु ने फूँक मारी और आरमेडा विनष्ट हो गया'। प्रभु के रक्षण के प्रकार अद्भुत ही हैं। प्रभु-विश्वासी प्रयत्न में कमी नहीं रखता और प्रभु उसे अवश्य ही सफलता प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु का संरक्षण होने पर सब बाह्य अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ हो जाते हैं।

यह प्रभु का भक्त प्लुतगतिवाला—आलस्यशून्य होने से 'शश' होता है और वासनाओं के विक्षेप से 'कर्ण' (कृ विक्षेपे) कहलाता है। इस 'शशकर्ण' ऋषि के ही अगले चार सूक्त हैं—

१३९ [एकोनचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

'अवृकं पृथु' छर्दिः

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः॥ १॥

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप **नूनम्**=निश्चय से **वत्सस्य**=ज्ञान व स्तुति-वाणियों का उच्चारण करनेवाले इस अपने प्रिय साधक के **अवसे**=रक्षण के लिए **आगन्तम्**=आइए। प्राणापान ही हमें रोगों व वासनाओं के आक्रमण से बचाते हैं। २. **अस्मै**=इस वत्स के लिए **छर्दिः**=ऐसे शरीर-गृह को **प्रयच्छतम्**=दीजिए, जोकि **अवृकम्**=बाधक शत्रुओं से रहित है तथा **पृथु**=विशाल है, अर्थात् जिस शरीर-गृह में वासनाओं व रोगों का प्रवेश नहीं तथा जो विस्तृत शक्तियोंवाला है। ऐसे शरीर गृह को प्राप्त कराने के लिए **याः**=जो **अरातयः**=शत्रु हैं, उन्हें

युयुतम्=पृथक् कीजिए।

भावार्थ—प्राणापान हमारा रक्षण करें। हमें रोगों की बाधाओं से रहित, विस्तृत शक्तिवाले शरीर-गृह को प्राप्त कराएँ। हमारे शत्रुभूत काम, क्रोध, लोभ आदि को हमसे पृथक् करें।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'सन्तोष, ज्ञान व स्वास्थ्य' रूप धन

यदन्तरिक्षे यद्दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु। नृम्णं तद्धत्तमश्विना॥ २॥

१. मानवजीवन को सुखी करनेवाला धन 'नृम्ण' कहलाता है। हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यत्**-जो **नृम्णम्**=धन **अन्तरिक्षे**=हृदयान्तरिक्ष में होता है, अर्थात् जो सन्तोष-(आत्मतृप्ति)-रूप धन हृदय में निवास करता है, **तत्**=उस धन को **धत्तम्**=हमारे लिए धारण कीजिए। प्राणसाधना से हृदय निर्मल होता है—चित्तवृत्ति बाह्यधनों के लिए बहुत लालयित नहीं होती। इसप्रकार हृदय में एक सन्तोष के आनन्द का अनुभव होता है। २. हे प्राणापानो! **यत्**=जो **दिवि**=मस्तिष्क का ज्ञानरूप धन है और **यत्**=जो **पञ्चमानुषान्**=पाँच मानव-सम्बन्धी वस्तुओं के **अनु**=अनुकूलतावाला धन है, उसे आप हमारे लिए प्राप्त कराइए। मानव-सम्बन्धी सर्वप्रथम पाँच वस्तुएँ शरीर को बनानेवाले पाँच महाभूत हैं। फिर पाँच प्राण हैं। फिर पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ व पाँच 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार व हृदय' हैं। इन सबके अनुकूल धनों को ये प्राणापान हमारे लिए प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—हृदय के सन्तोषरूप धन को, मस्तिष्क के ज्ञानरूप धन को तथा मानव पञ्चकों के पूर्ण स्वास्थ्यरूप धन को ये प्राणापान हमारे लिए प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्राणमहत्त्व-बोध व प्राणसाधना

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः। एवेत्काण्वस्य बोधतम्॥ ३॥

१. ये **विप्रासः**=जो अपना पूरण करनेवाले ज्ञानी पुरुष हैं, वे हे **अश्विना**=प्राणापानो! **वाम्**=आपके **दंसांसि**=वीरतापूर्ण कर्मों का **परिमामृशुः**=चिन्तन करते हैं। इन कर्मों का चिन्तन करते हुए वे आपके कर्मों का (परिमामृशुः-) स्पर्श करते हैं, अर्थात् आपकी साधना के कर्म में प्रवृत्त होते हैं। २. **एवा इत्**=ऐसा होने पर ही, अर्थात् जब यह साधक आपकी साधना में प्रवृत्त होता है, तभी **काण्वस्य**=इस मेधावी पुरुष का **बोधतम्**=आप ध्यान करते हो। समझदार व्यक्ति प्राणों का रक्षण करता है—प्राण उसका रक्षण करते हैं।

भावार्थ—हम प्राणों के महत्त्व को समझते हुए प्राणसाधना में प्रवृत्त हों और इस साधना द्वारा शक्ति-सम्पन्न बनें।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

घर्म+सोम

अयं वां घर्मो अश्विना सोमेन परि षिच्यते।
अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः॥ ४॥

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **अयम्**=यह **वाम्**=आपका **घर्मः**=तेज **सोमेन**=प्रभु-स्तवन के साथ **परिषिच्यते**=शरीर में चारों ओर सिक्त होता है। जब प्रभु-स्तवन के साथ प्राणसाधना चलती है तब शरीर के सब अंग तेजस्विता से सिक्त होते हैं। २. हे **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनोंवाले प्राणापानो! **अयम्**=यह **वाम्**=आपका—आपके द्वारा शरीर में सुरक्षित होनेवाला **सोमः**=सोम

(वीर्य) **मधुमान्**=जीवन को मधुर बनानेवाला है। **येन**=जिस सोम के द्वारा **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **चिकेतथः**=आप हन्तव्यरूप में जानते हो (हन्तव्यतया जानीथः)। सामान्य भाषा में यही प्रयोग इस रूप में होता है कि 'अच्छा, मैं तुझे समझ लूँगा'। सोमशक्ति के रक्षण से ही वासनाओं का विनाश होकर ज्ञान की वृद्धि होती है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन के साथ प्राणसाधना के चलने पर शरीर में तेजस्विता व सोम का रक्षण होता है।

ऋषिः—**शशकर्णः**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**ककुप्**॥

प्राणापान+वानस्पतिक भोजन

यद॒प्सु यद्वन॒स्पतौ॒ यदोष॑धीषु पुरुदंससा कृ॒तम्। तेन॑ माविष्टमश्विना॥ ५॥

१. हे **पुरुदंससा**=पालक व पूरक कर्मोंवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **यत्**=जो तेज (घर्म) आप **अप्सु**=जलों का प्रयोग होने पर, **यद् वनस्पतौ**=जो वनस्पतियों का प्रयोग होने पर तथा **यद् ओषधीषु**=जो तेज आप ओषधियों का प्रयोग होने पर **कृतम्**=उत्पन्न करते हो, **तेन**=उस तेज से **मा आविष्टम्**=मेरा रक्षण करो। २. यहाँ 'अप्सु ओषधीषु वनस्पतौ' इन शब्दों का प्रयोग स्पष्ट प्रतिपादन कर रहा है कि योगसाधना में खान-पान की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। प्राणायाम के साथ मनुष्य का शाकभोजी होना आवश्यक है। सादा खानपान योगसाधना में सहायक होता है।

भावार्थ—हम जलों व ओषधियों के प्रयोग के साथ प्राणापान की साधना करते हुए तेजस्वी बनें और अपना रक्षण करें।

१४०. [चत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**शशकर्णः**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**बृहती**॥

भुरण्यथो+भिषज्यथः

यन्ना॑सत्या भुर॒ण्यथो॒ यद्वा॑ देव भिष॒ज्यथः॑।
अ॒यं वां॑ व॒त्सो म॒तिभि॒र्न विन्धते ह॒विष्म॑न्तं॒ हि गच्छ॑थः॥ १॥

१. हे **नासत्या**=हमारे जीवनों से सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! आप **यत्**=जब **भुरण्यथः**=हमारा भरण करते हो **वा**=और **देव**=(देवा) सब रोगों को जीतने की कामनावाले आप **भिषज्यथः**=हमारे सब रोगों की चिकित्सा करते हो तब **अयम्**=यह **वाम्**=आपका **वत्सः**=प्रिय आराधक **मतिभिः**=केवल ज्ञानों से—ज्ञानपूर्वक की गई स्तुतियों से **न विन्धते**=आपको प्राप्त नहीं करता। **हि**=निश्चय से आप **हविष्मन्तम्**=दानपूर्वक अदन करनेवाले व्यक्ति को **गच्छथः**=प्राप्त होते हो। २. प्राणसाधना करनेवाला मनुष्य यह अच्छी तरह समझ लेता है कि ये प्राणापान हमारा पालन करते हैं, ये ही हमारे सब रोगों को दूर करते हैं। ऐसा समझता हुआ यह पुरुष केवल प्राणों का स्तवन ही नहीं करता रहता, इस स्तवन के साथ यह त्यागपूर्वक अदन की वृत्तिवाला बनकर प्राणसाधना में प्रवृत्त होता है। 'हविष्मान्' बनता है।

भावार्थ—प्राणापान हमारा पालन करते हैं, ये हमारे सब रोगों की चिकित्सा करते हैं। इनका हम स्तवन करें तथा त्यागपूर्वक अदन करनेवाले बनकर प्राणसाधना में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**शशकर्णः**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मधुमत्तमं-घर्मम्

आ नू॒नम॒श्विनो॒र्ऋषि॒ स्तोमं॑ चिकेत वा॒मया॑।
आ सोमं॒ मधु॑मत्तमं घ॒र्मं सिञ्चा॒दथ॑र्वणि॥ २॥

१. **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा ज्ञानी पुरुष **नूनम्**=निश्चय से **अश्विनोः**=प्राणापान के **स्तोमम्**=स्तवन को **वामया**=सुन्दर वाणी के द्वारा **आचिकेत**=सर्वथा करने योग्य जानता है। प्राणापान का स्तवन करता हुआ प्राणसाधना में प्रवृत्त होता है। २. इस प्राणसाधना में प्रवृत्त होने के द्वारा यह ऋषि **अथर्वणि**=(अथर्वति चरति) चित्त के डाँवाडोल न होने पर **सोमम्**=सोमशक्ति को **आसिञ्चात्**=अपने शरीर में ही सर्वत्र सिक्त करता है। यह सोम **मधुमत्तमम्**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाला है और **घर्मम्**=यह तेज ही तेज है—अपने रक्षक को तेजस्वी बनानेवाला है।

भावार्थ—हम प्राणापान के लाभों का स्तवन करते हुए प्राणसाधना द्वारा सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति करनेवाले हों। यह सोम हमें माधुर्य व तेज प्राप्त कराएगा।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

रघुवर्तनिं रथम्

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत॥ ३॥

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **नूनम्**=निश्चय से **रघुवर्तनिम्** (लघुगमनम्)=शीघ्र गतिवाले इस **रथम्**=शरीर-रथ पर आप **आतिष्ठाथः**=स्थित होते हैं। प्राणसाधना के द्वारा यह शरीर रथ आलस्यशून्य—स्फूर्तिवाला बनता है, २. अतः **इमे**=ये **मम**=मेरे—मुझसे किये जानेवाले—**स्तोमाः**=स्तुतिसमूह **नभः न**=सूर्य के समान तेजस्वी **वाम्**=आपको **आचुच्यवीरत**=अभिगत होते हैं। मैं प्राणापान का स्तवन करता हुआ प्राणसाधना में प्रवृत्त होता हूँ। यह प्राणसाधना मुझे सूर्य के समान तेजस्वी बनाती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर में स्फूर्ति आ जाती है। यह प्राणसाधना हमें सूर्यसम तेजस्वी बनाती है।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

उक्थैः-वाणीभिः

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि। यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम्॥ ४॥

१. हे **नासत्या**=हमारे जीवनों से असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! **यत्**=जब **अद्य**=आज हम **उक्थैः**=स्तोत्रों के द्वारा **वाम्**=आपको **आचुच्युवीमहि**=अपने अन्दर प्राप्त कराएँ। **वा**=अथवा **यत्**=जब **वाणीभिः**=इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा आपको अपने में प्राप्त कराएँ तो हे **अश्विना**=प्राणापानो! **काण्वस्य इव**=समझदार मेधावी पुरुष की भाँति **इत्**=निश्चय से **बोधतम्**=हमारा ध्यान करो। हम आपके अनुग्रह से समझदार बनें। प्राणसाधना में प्रगति के लिए प्रभु स्तवन (उक्थ) व स्वाध्याय (वाणी) सहायक होते हैं। वस्तुतः इनके द्वारा ही प्राणसाधना में हम प्रगति कर पाते हैं। साधित प्राण हमारी बुद्धि का वर्धन करते हुए हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु स्तवन व स्वाध्याय द्वारा प्राणों की साधना में प्रगति करने में समर्थ हों। साधित प्राण हमारी बुद्धि का वर्धन करते हुए हमारा रक्षण करें।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कक्षीवान्-व्यश्व-दीर्घतमा-पृथीवैन्य

यद्वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम्॥ ५॥

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यत्**=जब **वाम्**=आपको **कक्षीवान्**=बद्ध कक्ष्यावाला (One

who has girded up one's loins) कमर कसे हुए—दृढ़ निश्चयी पुरुष **जुहाव**=पुकारता है, **उत**=और **यत्**=जब **व्यश्व**=विशिष्ट इन्द्रियाश्वोंवाला पुरुष पुकारता है और **यत्**=जब **वाम्**=आपको **दीर्घतमाः**=तमोगुण को विदीर्ण करनेवाला **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा पुरुष पुकारता है तथा अन्ततः **यत्**=जब **वैन्यः**=लोकहित की प्रबल कामनावाला आपको पुकारता है तब हे प्राणापानो! आप **अतः**=इस प्रार्थना व आराधना के द्वारा **सादनेषु एव इत्**=यज्ञगृहों में ही **चेतयेथाम्**=चेतनायुक्त करते हो, अर्थात् आप इन आराधकों को सदा यज्ञशील बनाते हो। २. हमारा जीवन प्रथमाश्रम में 'कक्षीवान्' का जीवन हो। जीवन-यात्रा में आगे बढ़ने के लिए दृढ़ निश्चयी पुरुष का जीवन हो। 'कक्षीवान्' शब्द की भावना ही ब्रह्मचर्यसूक्त में 'मेखलया' शब्द से व्यक्त हुई है। द्वितीयाश्रम में हमें 'व्यश्व' बनना है। विशिष्ट इन्द्रियाश्वोंवाला, अर्थात् हमारे ये इन्द्रियाश्व विषयों को चरने में ही व्यस्त न रहें। तृतीयाश्रम में तप व स्वाध्याय के द्वारा तमोगुण का विदारण करके 'दीर्घतमा' बनता है। चतुर्थ में सर्वलोकहित की कामना करते हुए अधिक-से-अधिक व्यापक परिवारवाला 'पृथीवैन्य' बन जाना है। ये सब बातें तभी हो सकेंगी जब हम प्राणसाधना में प्रवृत्त होंगे। प्राणसाधना से जीवन यज्ञमय रहेगा, अन्यथा यह भोगप्रधान बन जाएगा।

भावार्थ—हम प्राणसाधना करते हुए 'कक्षीवान्, व्यश्व, दीर्घतमा व पृथीवैन्य' बनें।

१४१. [एकचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥

छर्दिष्पा-तनूपा

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम्॥ १॥

१. हे प्राणापानो! आप **छर्दिष्पाः**=हमारे शरीर-गृह के रक्षक होते हुए **यातम्**=हमें प्राप्त होओ। **उत**=और **नः**=हमारे लिए **परस्पाः**=अतिशयेन रक्षक व शत्रुओं से रक्षा करनेवाले **भूतम्**=होओ। **जगत्पाः**=इस संसार के आप रक्षक हों, **उतः**=और **नः**=हमारे **तनूपाः**=शरीरों के आप रक्षक बनें। २. **तोकाय तनयाय**=हमारे पुत्र-पौत्रों के लिए भी **वर्तिः**=रथ-मार्ग को **यातम्**=प्राप्त कराइए, अर्थात् वे सदा सन्मार्ग पर चलनेवाले हों।

भावार्थ—प्राणसाधना हमारा सब प्रकार से रक्षण करनेवाली हो। हमारे पुत्र-पौत्रों को भी यह सन्मार्ग पर ले-चलनेवाली बने।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

इन्द्र, वायु, आदित्य, विष्णु

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः॥ २॥

१. 'प्राणसाधना हमें जितेन्द्रिय बनाती है' इस बात को इस रूप में कहते हैं कि हे **अश्विना**=प्राणापानो! आपकी साधना होने पर समय आता है **यत्**=जबकि **इन्द्रेण**=जितेन्द्रिय पुरुष के साथ **सरथं याथः**=समान रथ में गति करते हो। शरीर ही रथ है। इसमें जितेन्द्रिय पुरुष का प्राणों के साथ निवास होता है। **यद् वा**=अथवा आप **वायुना**=वायु के साथ (वा गतौ)—गतिशील पुरुष के साथ **सम् ओकसा**=समान गृहवाले **भवथ**=होते हो, अर्थात् प्राणसाधना हमारे जीवनों को बड़ा क्रियाशील बनाती है। २. हे प्राणापानो! **यत्**=अब आप **ऋभुभिः** (उरुभान्ति, ऋतेन भान्ति)=ज्ञानज्योति से खूब दीप्त होनेवाले **आदत्येभिः**=सब ज्ञानों का आदान करनेवाले

पुरुषों के साथ **सजोषसा**=प्रीतियुक्त होते हो। **यद् वा**=अथवा आप **विष्णोः**=व्यापक उन्नति करनेवाले पुरुष के **विक्रमणेषु**=विक्रमणों में—तीन कदमों में **तिष्ठथः**=स्थित होते हो। शरीर को 'तैजस्' बनाना ही इस विष्णु का पहला कदम है। मन को 'वैश्वानर' बनाना—सब मनुष्यों के हित की कामनावाला बनाना दूसरा कदम है। मस्तिष्क को 'प्राज्ञ' बनाना तीसरा—ये सब कदम प्राणसाधना से ही रक्खे जाते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें 'जितेन्द्रिय, क्रियाशील, ज्ञानदीप्त व व्यापक' उन्नतिवाला (विष्णु) बनाती है।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

श्रेष्ठम् अवः

यद॒द्याश्वि॑नाव॒हं हु॒वेय॒ वाज॑सातये। यत्पृ॒त्सु तु॒र्वणे॒ सह॒स्तच्छ्रेष्ठ॑म॒श्विनो॒रवः॑ ॥ ३ ॥

१. **यत्**=जब **अद्य**=आज **अहम्**=मैं **अश्विनौ**=प्राणापान का **हुवेय**=आह्वान करूँ—यदि मैं प्राणसाधना में प्रवृत्त होऊँ, तो ये प्राणापान **वाजसातये**=मुझे शक्ति प्राप्त करानेवाले हों। २. **यत्**=चूँकि प्राणसाधना से **पृत्सु**=संग्रामों में **तुर्वणे**=शत्रुओं के हिंसन के निमित्त **सहः**=बल प्राप्त होता है, **तत्**=अतः **अश्विनोः**=इन प्राणापान का **अवः**=रक्षण **श्रेष्ठम्**=श्रेष्ठ है।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा शक्ति प्राप्त होती है। शक्ति से शत्रुओं का मर्षण होता है। इसप्रकार प्राणों द्वारा प्राप्त होनेवाला रक्षण श्रेष्ठ है।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

तुर्वशः-यदु-कण्व

आ नू॒नं या॑तमश्विने॒मा ह॒व्यानि॑ वां हि॒ता।
इ॒मे सोमा॑सो॒ अधि॑ तु॒र्वशे॒ यदा॑वि॒मे कण्वे॑षु वा॒मथ॑ ॥ ४ ॥

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **नूनम्**=निश्चय से **आयातम्**=हमें प्राप्त होओ। **इमे**=ये **हव्यानि**=हव्य पदार्थ—यज्ञशेष के रूप में सेवन किये जानेवाले पदार्थ **वां हिता**=आपके लिए निहित हुए हैं। हव्य पदार्थों का सेवन प्राणसाधना के लिए बड़ा सहायक होता है। २. **अथ**=अब **इमे**=ये **वाम्**=आपके **सोमासः**=सोमकण—आपके द्वारा रक्षित होनेवाले सोमकण **तुर्वशे अधि**=शत्रुओं को त्वरा से वश में करनेवाले पुरुष में होते हैं। **यदौ**=यत्नशील पुरुष में—सदा क्रिया में तत्पर पुरुष में इनका निवास होता है। **इमे**=ये सोमकण **कण्वेषु**=मेधावी पुरुषों में निवास करते हैं। प्राणसाधना ही सोम रक्षण के द्वारा हमें 'तुर्वश, यदु व कण्व' बनाती है।

भावार्थ—प्राणसाधना के साथ हव्य पदार्थों का सेवन भी अभीष्ट है। प्राणसाधना से सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति होती है, तब हम 'शत्रुओं को वश में करनेवाले, यत्नशील व मेधावी' बन पाते हैं।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

वत्स, विमद

यन्ना॑सत्या परा॒के अ॑र्वा॒के अस्ति॑ भेष॒जम्।
तेन॑ नू॒नं वि॑म॒दाय॑ प्रचेतसा छ॒र्दिर्व॒त्साय॑ यच्छतम् ॥ ५ ॥

१. प्राणापान वासना को विनष्ट करके ज्ञानदीप्ति का साधन बनते हैं तो इन्हें 'प्रचेतसा' कहा गया है। हे **नासत्या**=हमारे जीवनों से असत्य को दूर करनेवाले प्राणापानो! **यत्**=जो **पराके**=दूर

देश के विषय में तथा **अर्वाके**=समीप क्षेत्र के विषय में **भेषजम्**=औषध **अस्ति**=है, **तेन**=उस औषध के साथ हे **प्रचेतसा**=प्रकृष्ट ज्ञान के साधनभूत प्राणापानो! **नूनम्**=निश्चय से **वत्साय**=इस ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले **विमदाय**=मद व अभिमान से शून्य-जीवनवाले इस ऋषि के लिए **छर्दिः**=सुरक्षित गृह प्राप्त कराओ। २. यह शरीर ही सुरक्षित गृह है। जब इसमें प्रथम ड्योढ़ी के रूप में स्थित अन्नमयकोश नीरोग होता है तथा तृतीय ड्योढ़ी के रूपमें स्थित मनोमयकोश वासनाशून्य होता है तब यह शरीर-गृह बड़ा सुन्दर बनता है। इसे ऐसा बनाने के लिए प्राणसाधना ही साधन है। यही प्राणों का 'अर्वाक् व पराक' क्षेत्र के विषय में भेषज है। ये प्राण रोगों व वासनाओं पर आक्रमण करके इस गृह को दृढ़ व प्रकाशमय बनाते हैं। प्राणापान इस शरीरगृह के पति को 'वत्स व विमद' बनाते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर के रोग दूर होंगे और मन की वासनाएँ नष्ट होंगी। इसप्रकार यह शरीर-गृह बड़ा सुन्दर बनेगा।

१४२. [द्विचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मतिम्-रातिम्

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः। व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥

१. **अहम्**=मैं **अश्विनोः**=प्राणापान की **वाचा**=स्तुतिरूप वाणी के द्वारा **देव्या साकम्**=इस प्रकाशमयी ज्ञानवाणी के साथ **उ प्र अभुत्सि**=सचमुच प्रबुद्ध हो उठा हूँ। जब मैं प्राणापान के स्तवन व साधन में प्रवृत्त होता हूँ तब मैं ज्ञानदीप्ति प्राप्त करता हूँ। २. हे **देवि**=प्रकाशमयी ज्ञानवाणि! तू **आ (गच्छ)**=आ, हमें प्राप्त हो और **मतिं व्यावः**=हमारी बुद्धि को अज्ञानान्धकार के आवरणों से रहित कर तथा **मर्त्येभ्यः**=मनुष्यों के लिए **रातिम्**=धनों को **वि** (आवः-यच्छ) देनेवाली हो।

भावार्थ—प्राणसाधक ज्ञानदीप्ति तथा आवश्यक धनों को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रातःकालीन कार्यक्रम

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि।
प्र यज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

१. हे **उषः**=उषाकाल की देवि! **अश्विना प्रबोधय**=तू प्राणापान को हममें प्रबुद्ध कर, अर्थात् हम प्रातः प्रबुद्ध होकर प्राणसाधना में प्रवृत्त हो। हे **देवि**=प्रकाशयुक्त **सूनृते**=प्रिय सत्य वाणी उषे! **महि**=(मह पूजायाम्) पूजा को **प्र** (बोधय)=हममें प्रबुद्ध कर। हम प्रातः प्रबुद्ध होकर प्रभु की उपासना में प्रवृत्त हों। २. हे **आनुषक्**=निरन्तर **यज्ञहोतः**=यज्ञों में हव्यों को आहुत करनेवाली तू हमें **प्र**=प्रबुद्ध कर। हम प्रातः यज्ञ करनेवाले हों। हे उषे! **मदाय**=आनन्द प्राप्त कराने के लिए **बृहत् श्रवः**=बहुत उत्कृष्ट ज्ञान को **प्र**=हममें प्रबुद्ध कर।

भावार्थ—हम प्रातः जागकर प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। प्राणसाधना के साथ 'प्रभु-पूजन-यज्ञ व स्वाध्याय' करें।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

नृपाय्य वर्ति

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे। आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥

१. हे **उषः**=उषाकाल की देवि! **यत्**=जब **भानुना**=ज्ञान दीप्ति के साथ **यासि**=तू प्राप्त होती है और **सूर्येण सं रोचसे**=ज्ञान-सूर्य के साथ सम्यक् दीप्त हो उठती है तब **ह**=निश्चय से **अयम्**=यह **अश्विनोः**=प्राणापान का **रथः**=शरीर रथ—वह शरीर जिसमें प्राणसाधना प्रवृत्त हुई है **नृपाय्यम् वर्तिः**=मनुष्यों का रक्षण करनेवाले मार्ग पर **आयाति**=गतिवाला होता है, अर्थात् हम उसी मार्ग पर चलना प्रारम्भ करते हैं जो हमें सदा सुरक्षित करता है। जिस मार्ग पर चलते हुए हम विषयों में फँसकर विनष्ट नहीं हो जाते।

भावार्थ—उषा के होते ही हम प्रबुद्ध होकर स्वाध्याय व प्राणसाधना के लिए उद्यत हों। सदा उस मार्ग पर आक्रमण करें जो मनुष्यों का रक्षण करनेवाला है।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सोम-रक्षण व ज्ञानवाणियों का उच्चारण

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः। यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥

१. **यत्**=जब **आपीतासः**=शरीर में समन्तात् पीये गये **अंशवः**=सोमकण **ऊधभिः गावः न**=अपने ऊधसों से गौओं की भाँति **दुह्रे**=ज्ञानदुग्ध का हममें दोहन करते हैं। सोम रक्षण से ही बुद्धि की तीव्रता होकर ज्ञान की वृद्धि होती है। २. **यद् वा**=और जब **अश्विना**=प्राणापानो के द्वारा (आ-भ्याम्) **देवयन्तः**=दिव्य गुणों की कामनावाले लोग **वाणी**=इन स्तुतिवाणियों का **प्र अनूषत**=प्रकर्षेण उच्चारण करते हैं तभी गतमन्त्र के अनुसार यह प्राणापान का रथ उस मार्ग पर चलता है जोकि मनुष्यों का रक्षण करनेवाला होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से सोम-रक्षण द्वारा बुद्धि की तीव्रता प्राप्त होती है। उसी समय ज्ञान की वाणियों का उच्चारण होता है।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'द्युम्न, शवस्, शर्म, दक्ष'

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे। प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥

१. हे **प्रचेतसा**=प्रकृष्ट ज्ञान प्राप्त करानेवाले प्राणापानो! आप हमारी **द्युम्नाय**=ज्ञान- ज्योतियों के लिए **प्र** (भवतम्)=होओ। **शवसे प्र**=बल के लिए होओ। २. इसी प्रकार **नृषाह्याय**=शत्रुनायकों का—काम, क्रोध, लोभरूप शत्रु सेनापतियों का पराभव करनेवाले **शर्मणे**=सुख के लिए **प्र** (भवतम्)=होइए और **दक्षाय**=सब प्रकार की उन्नति के लिए **प्र**=होइए।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा हमें 'ज्ञान, बल, शत्रु-पराजय-जनित सुख तथा विकास' प्राप्त हो।

ऋषिः—**शशकर्णः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

धीभिः-सुम्नेभिः

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः। यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **यत्**=चूँकि **धीभिः**=बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मों के द्वारा **पितुः योना**=उस परमपिता प्रभु के गृह में **निषीदथः**=आसीन होते हो, अर्थात् आपकी साधना के द्वारा मल-क्षय व ज्ञानदीप्ति होकर प्रभु का दर्शन होता है। **यद् वा**=अथवा **सुम्नेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा आप ब्रह्मलोक में निवास कराते हो, अतः **उक्थ्या**=आप स्तुत्य होते हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से बुद्धि का विकास होता है, स्तुति की प्रवृत्ति जागरित होती है।

ये बुद्धि व स्तुति हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाली होती हैं।

यह प्रभु के गृह में निवास करनेवाला व्यक्ति 'पुरुमीढ'=अपने में शक्ति का खूब ही सेचन करनेवाला बनता है यह 'आजमीढ'=(अजा गतौ) गति का अपने में सेचन करता है। प्रभु का उपासक शक्ति व गतिवाला होता है। इन्हीं के अगले सूक्त के प्रथम सात मन्त्र हैं। आठवें का ऋषि वामदेव=सुन्दर दिव्यगुणोंवाला है। नौवें के ऋषि मेध्यातिथि व मेधातिथि हैं—पवित्र प्रभु की ओर चलनेवाले, बुद्धि की ओर चलनेवाले। प्रथम मन्त्र यह है—

१४३. [त्रिचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—**पुरुमीढाजमीढौ**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'पृथुज्रय' रथ

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम्॥ १॥

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **वयम्**=हम **अद्य**=आज **वाम्**=आपके **तं रथम्**=उस शरीर-रथ की **हुवेम**=पुकार करते हैं—उस शरीर-रथ को प्राप्त करने की कामना करते हैं जोकि **पृथुज्रयम्**=बड़े वेगवाला है—स्फूर्तियुक्त है, **गोः संगतिम्**=ज्ञान की किरणों के मेलवाला है। यह रथ शक्ति के कारण गतिवाला व प्रकाशमय है। २. **यः**=जो रथ **सूर्याम्**=सूर्य की दुहिता को—बुद्धि को **वहति**=धारण करता है। **बन्धुरायु**=सौन्दर्यों को अपने साथ जोड़नेवाला है। हम उस रथ की कामना करते हैं, जो **गिर्वाहसम्**=ज्ञानपूर्वक स्तुति की वाणियों का धारण करता है। **पुरुतमम्**=खूब ही पालक व पूरक है। **वसूयुम्**=निवास के लिए आवश्यक सब धनों को अपने में लिये हुए है।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमारा शरीर स्फूर्तिमय, ज्ञान के प्रकाशवाला, बुद्धि-सम्पन्न, सुन्दर, ज्ञानपूर्वक स्तुतिवाणियों को धारण करनेवाला, नीरोग व उत्तम निवासवाला बनता है।

ऋषिः—**पुरुमीढाजमीढौ**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'श्री सम्पन्नता' के साधक प्राणापान

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम्॥ २॥

१. हे **दिवः नपाता**=ज्ञान को न नष्ट होने देनेवाले **देवता** (देवते)=दिव्यगुणोंवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप **शचीभिः**=कर्मों व प्रज्ञानों के द्वारा **तां श्रियम्**=उस प्रसिद्ध शोभा को **वनथः**=विजय करते हो (वन् win)। प्राणापान ही कर्मेन्द्रियों से कर्म कराते हैं तथा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त कराते हैं। इसप्रकार ये शरीर को शोभा-सम्पन्न बनाते हैं। २. **युवोः**=आप दोनों के इस **वपुः**=शरीर को **पृक्षः**=सात्त्विक अन्न **अभिसचन्ते**=प्रातः-सायं सेवन करते हैं। यह सब तब होता है **यत्**=जबकि **वाम्**=आप दोनों को **ककुहासः** (महन्नाम नि० ३.७)=महान् इन्द्रियाश्व **रथे**=इस शरीर-रथ में **वहन्ति**=धारण करते हैं। शरीर में प्राणसाधना के होने पर ही अन्न का पाचन हुआ करता है। इन्द्रियों में व अन्य सब अंग-प्रत्यंगों में प्राणों की ही शक्ति कार्य करती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर श्रीसम्पन्न बनता है। प्राणसाधना से ही अन्न का भी ठीक से पाचन होकर सब रस-रुधिर आदि धातुओं का निर्माण होता है।

ऋषिः—**पुरुमीढाजमीढौ** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ऊतये-सुतपेयाय

को वाम॒द्या क॑रते रा॒तह॑व्य ऊ॒तये॑ वा सु॒तपे॒या॑य वा॒र्कैः।
ऋ॒तस्य॑ वा व॒नुषे॑ पू॒र्व्या॑य॒ नमो॑ येमा॒नो अ॑श्विना॒ व॑वर्तत्॥ ३ ॥

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **कः**=कोई विरल पुरुष ही **रातहव्यः**=दिये हैं हव्य पदार्थ जिसने, अर्थात् जो यज्ञशील है, वह **ऊतये**=रक्षण के लिए **वा**=तथा **सुतपेयाय**=सोम (वीर्य) के पान (शरीर में ही व्यापन) के लिए **वाम्**=आपकी **अद्या**=आज **अर्कैः**=स्तुतिमन्त्रों से **करते**=आराधना करता है। स्तुतिमन्त्रों से प्रभु का आराधन करते हुए प्राणसाधना से हमारे मन वासनाओं से आक्रान्त नहीं होते और शरीर में सोम का रक्षण होता है। हमारी वृत्ति यज्ञों की ओर होती है—भोगवृत्ति से हम दूर होते हैं। २. कोई विरल व्यक्ति ही **नमः येमानः**=नम्रता का अपने अन्दर धारण करता हुआ **ऋतस्य**=ऋत के—सत्य के **पूर्व्याय वनेषु**=सर्वोत्तम संभजन—सर्वमुख्य विजय के लिए **अश्विना**=प्राणापानो को **आववर्तत्**=आवृत्त करता है। प्राणायाम करता हुआ अपने अन्दर सत्य को धारण करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा शरीर का रक्षण होता है, सोम का शरीर में व्यापन होता है, ऋत का हम विजय कर पाते हैं।

ऋषिः—**पुरुमीढाजमीढौ** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

हिरण्यय रथ

हि॒र॒ण्यये॑न पुरुभू॒ रथे॑ने॒मं य॒ज्ञं ना॑स॒त्योप॑ यातम्।
पिबा॑थ॒ इन्मधु॑नः सो॒म्यस्य॒ दध॑थो॒ रत्नं॑ विध॒ते जना॑य॥ ४ ॥

१. हे **परिभू**=(परि=पृ पालनपूरणयोः) पालक व पूरक होते हुए—या शरीर में चारों ओर व्याप्त होते हुए **नासत्याः**=प्राणापानो! आप **हिरण्ययेन रथेन**=ज्योतिर्मय शरीर-रथ से **इमं यज्ञम्**=हमारे इस जीवन-यज्ञ को **उपयातम्**=समीपता से प्राप्त होओ। आपकी साधना से हमारा यह शरीर-रथ ज्योतिर्मय व तेजस्वी बने। आपकी साधना से हम जीवन-यज्ञ को सुन्दरता से पूर्ण करनेवाले हों। २. हे प्राणापानो! आप **इत्**=निश्चय से **सोम्यस्य मधुनः**=इस सोम-सम्बन्धी मधु का **पिबाथः**=पान करते हो—सोम को शरीर में ही सुरक्षित करते हो। हे प्राणापानो! आप **विधते जनाय**=परिचर्या करनेवाले उपासक मनुष्य के लिए **रत्नं दधथः**=रमणीय वस्तुओं को धारण करते हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर-रथ ज्योतिर्मय व तेजस्वी बनता है, सोम का रक्षण होता है तथा शरीर में सब रत्नों का धारण होता है।

ऋषिः—**पुरुमीढाजमीढौ** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'हिरण्यय-सुवृत्' रथ

आ नो॑ यातं दि॒वो अच्छा॑ पृथि॒व्या हि॑र॒ण्यये॑न सु॒वृता॒ रथे॑न।
मा वा॑म॒न्ये नि य॑मन्देव॒यन्तः॒ सं यद्द॒दे नाभिः॑ पू॒र्व्या वा॑म्॥ ५ ॥

१. हे प्राणापानो! **दिवः पृथिव्याः अच्छा**=द्युलोक व पृथिवीलोक का लक्ष्य करके, अर्थात् मस्तिष्क व शरीर का ध्यान करके **नः**=हमारे लिए आप **हिरण्ययेन**=ज्योतिर्मय **सुवृता** (सुष्ठु वर्तते)=बिलकुल ठीक-ठाक, अर्थात् सर्वांगपूर्ण **रथेन**=शरीर-रथ से **आयातम्**=प्राप्त होओ।

प्राणापान की साधना ही इस शरीर-रथ को सुन्दर बनाती है। २. **अन्ये**=दूसरे **देवयन्तः**=द्यूत आदि क्रीड़ाओं को करते हुए लोग **वाम्**=आपको **मा नियमन्**=रोकनेवाले न हों, अर्थात् हम अन्य व्यवहारों में उलझकर आपकी साधना को कभी भूल न जाएँ। **यत्**=चूँकि **वाम्**=आपका तो **पूर्व्या**=सर्वमुख्य—सर्वप्रथम **नाभिः**=सम्बन्ध (नह बन्धने) **सं ददे**=मुझे आपके साथ बाँधता है। मेरा सर्वोत्तम सम्बन्ध आपके साथ ही तो है। आत्मा के साथ प्राणों का दृढ़ सम्बन्ध है।

भावार्थ—प्राणसाधना से ही हमारा मस्तिष्क हिरण्यय (ज्योतिर्मय) बनता है तथा शरीर सुवृत्=पूर्ण स्वस्थ होता है।

ऋषिः—**पुरुमीढाजमीढौ**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्राणायाम+सम्मिलित प्रार्थना

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीढासो अग्मन्॥ ६॥

१. **अस्मे**=हममें **उभयेषु**=दोनों में—मन्त्र के ऋषि पुरुमीढ व आजमीढों में रहनेवाली ये **पुरुवीरम्**=खूब वीरतावाली **बृहन्तम्**=वृद्धि की कारणभूत **रयिम्**=सम्पत्ति को **नु**=निश्चय से हे **दस्रा**=दुःखों का उपक्षय करनेवाले प्राणापानो! **नः**=हमारे लिए **मिमाथाम्**=बनाओ। हमें वह सम्पत्ति प्राप्त कराओ जो पुरुमीढ़ों व आजमीढों में रहा करती है, जो सम्पत्ति हमें वीर बनाती है व हमारी वृद्धि का कारण बनती है। २. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **नरः**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले लोग **यत्**=जब **वाम्**=आपके **स्तोमम्**=स्तवन का **आवन्**=अपने में रक्षण करते हैं, उस समय **आजमीढासः**=गति के द्वारा सब बुराइयों को दूर करके सुखों का सेचन करनेवाले ये लोग **सधस्तुतिम्**=मिलकर उपासना की वृत्ति को **अग्मन्**=प्राप्त होते हैं। ये लोग परिवार में सबके सब एकत्र होकर प्रभु की उपासनावाले बनते हैं। सब प्राणायाम करते हैं और मिलकर प्रभु का गायन करते हैं।

भावार्थ—हम प्राणायाम करें—मिलकर प्रभु का स्तवन करें। इसप्रकार ही हम उस धन को प्राप्त करेंगे जो हमें वीर गुणों से वृद्ध बनाएगा।

ऋषिः—**पुरुमीढाजमीढौ**॥ देवता—**अश्विनौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सुमति व शक्ति

इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक्॥ ७॥

१. हे **समना**=(सम् अन्) सम्यक् प्राणित करनेवाले प्राणापानो! **इह इह**=इस जीवन में और इस जीवन में ही **यत्**=जब मैं **वां पपृक्षे**=आपके सम्पर्क में आता हूँ, अर्थात् आपकी साधना में प्रवृत्त होता हूँ, तब **सा**=वह **इयम्**=यह **अस्मे सुमतिः**=हमारी कल्याणी मति **वाजरत्ना**=शक्तिरूप रमणीय धनवाली होती है, आपकी साधना से जहाँ मुझे बुद्धि प्राप्त होती है, वहाँ मुझे शक्ति भी मिलती है। २. **युवम्**=आप दोनों **जरितारम्**=स्तोता को **ह**=निश्चय से **उरुष्यतम्**=रक्षित करो। हे **नासत्या**=सब असत्यों को हमसे दूर करनेवाले प्राणापानो! **कामः**=हमारी इच्छा **युवद्रिक्**=आपकी ओर आनेवाली होती हुई **श्रितः**=हमें प्राप्त हो, अर्थात् हमें आपकी ही साधना का विचार हो। हम प्राणायाम की रुचिवाले बनें।

भावार्थ—प्राणसाधना से सुमति व शक्ति प्राप्त होती है, अतः हमारी कामना यही है कि हम प्राणसाधना करनेवाले बनें।

ऋषिः—(१-२ पादः) **वामदेवः** (३-४ पादः)॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

माधुर्य-ही-माधुर्य

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम॥ ८॥

१. छठे मन्त्र के अनुसार प्राणसाधनों व सम्मिलित प्रार्थना के होने पर **ओषधीः मधुमतीः**=ओषधियाँ हमारे लिए माधुर्यवाली हों। **द्यावः**=द्युलोक तथा **आपः**=द्युलोक से बरसनेवाले जल माधुर्यवाले हों। द्युलोकस्थ सूर्य ने ही तो हमारे क्षेत्रस्थ अन्नों को वृष्टि द्वारा उत्पन्न करना है और सन्ताप द्वारा परिपक्व करना है। २. वायु देवता का निवासस्थान यह **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष **नः**=हमारे लिए **मधुमत्**=माधुर्यवाला हो। ३. **क्षेत्रस्य पतिः**=सब क्षेत्रों का स्वामी प्रभु **नः**=हमारे लिए **मधुमान् अस्तु**=माधुर्य को प्राप्त करानेवाले हों। **अरिष्यन्तः**=अहिंसित होते हुए हम **एनम् अनुचरेम**=प्रभु की अनुकूलता में गतिवाले हों। प्रभु-स्मरण ही हमें वासनाओं से हिंसित होने से बचाएगा।

भावार्थ—ओषधियाँ-द्युलोक-जल-अन्तरिक्ष और इन सबके स्वामी प्रभु हमारे लिए माधुर्य प्रदान करें।

ऋषिः—**मेध्यातिथिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'शरीर, मन व बुद्धि' का शक्ति-सम्पन्न होना

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै॥ ९॥

१. हे **अश्विना**=प्राणापानो! **वाम्**=आपका **तत्**=वह **कृतम्**=कर्म **पनाय्यम्**=स्तुत्य है, जोकि **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक में, **रजसः**=हृदयरूप अन्तरिक्षलोक में तथा **पृथिव्याः**=शरीररूप पृथिवीलोक में **वृषभः**=शक्ति का सेचन करनेवाला है। प्राणापान शरीर में सोम की ऊर्ध्वगति का कारण बनते हैं और इस सुरक्षित सोम के द्वारा वे 'शरीर, हृदय व मस्तिष्क' को शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं। २. **उत**=और **पिबध्यै**=सोमपान के लिए **ये**=जो **गविष्टौ**=ज्ञानयज्ञों में **सहस्रम्**=हज़ारों **शंसाः**=ज्ञान की वाणियों के उच्चारण हैं, **तान् सर्वान्**=उन सबको **उपयात**=समीपता से प्राप्त होओ। इन ज्ञान की वाणियों के अध्ययन से वासनाओं की ओर झुकाव नहीं होता और इसप्रकार सोम का रक्षण होता है, अतः प्राणायाम के अभ्यासी को चाहिए कि अतिरिक्त समय को सदा स्वाध्याय में व्यतीत करे।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर, मन व बुद्धि—तीनों ही सशक्त बनते हैं। सोम-रक्षण के लिए यह भी आवश्यक है कि मनुष्य अतिरिक्त समय का यापन स्वाध्याय में करे।

॥ इति षट्त्रिंशः प्रपाठकः ॥

॥ इति विंशं काण्डम्॥